प्रकाशकीय

२–हस्तमैथुन– इसके बारे मे भ्रम है कि इससे हुई जीवनी शक्ति तथा वीर्य की हानि पूर जीवन रहती है, इन्द्रिय छोटी रह जाती है, शरीर निस्तेज हो जाता तथा पुरुष नामर्द हो जाता है। यद्यपि हस्तमैथुन अच्छी आदत नही है लेकिन इसके परिणामो का जो भयावह चित्रण किया जाता है वास्तव मे वैसा है नही।

३–शीघ्रपतन—जैसा हमने ऊपर बताया है कि आज के नवयुवक अश्लील साहित्य पढते है, सिनेमा आदि देखते है अत उनके मन मे, इन्द्रिय मे उत्तेजना बनी रहती है और सन्तानोत्पत्ति के मुख्य ध्येय से भटक कर वासना मे लीन हो जाते है और कुछ ही समय पश्चात् शीघ्रपतन के शिकार हो जाते हैं। लेकिन वह नही समझते है कि शीघ्रपतन कोई रोग नही है तथा यदि वे अश्लील वातावरण का परित्याग कर शान्त वातावरण मे रहे तो बिना किसी औषधि के स्वत ही स्वस्थ हो जायेंगे।

४–नपुसकता—बहुत से व्यक्ति इस भ्रम को पाल लेते है कि "म नामर्द हूँ" जबकि वास्तव मे ऐसा नही होता। घरेलू परिस्थितियो के कारण जो व्यक्ति सम्भोग कार्य मे सफल नही हो पाते उनमे यह भ्रम शीघ्र ही स्थापित हो जाता है। अपने पास इसकी चिकित्सा के लिये आगे रोगियो की वीर्य परीक्षा कराकर उनके भ्रम का निवारण कर सकते हैं।

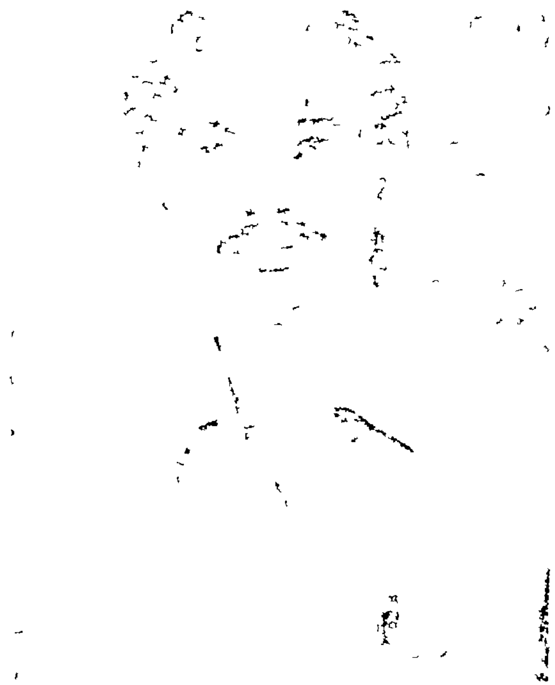
और भी अनेको भ्रम हैं जिन्हे रोगी आपको बताता है। आप उनको ध्यानपूर्वक सुनकर सहानुभूति पूर्वक विचार करे – उचित निर्देश दे, उसको यदि आवश्यकता हो तो औषधि दे। आपका मुख्य उद्देश्य रोगी को स्वस्थ करना है उसके धन को खीचना नही।

इन्ही सब बातो पर विचार कर हमे "पुरुष रोग चिकित्सा" प्रकाशित करना सामयिक लगा और इसके लिए हमने श्री वैद्य अशोक भाई तलाविया जी को पत्र लिखा। आपने सहृदयतापूर्वक हमारे प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया जिसके लिये हम आपके अत्यन्त आभारी है। हमे प्रसन्नता है कि आपने हमारा अनुरोध स्वीकार कर इस गुरुतर भार को योग्यतापूर्वक वहन किया। हमे आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वास है कि हमारे पाठको को श्री तलाविया जी की यह कृति अवश्य पसद आयेगी। श्री तलाविया जी को हमने बहुत सोच समझकर–तर्क-वितर्ककर यह भार सौपा था। गुजरात मे आयुर्वेद की स्थिति अन्य राज्यो की अपेक्षा अधिक सुदृढ है। श्री तलाविया जी के सहयोग से हमे गुजरात के अनेको विद्वान वैद्यो का सहयोग प्राप्त हुआ है जिससे पूरे भारत का चिकित्सक वर्ग लाभान्वित हो सकेगा। यद्यपि हमारे कम्पोजीटरो को गुजराती शब्द प्रधान लेखो को कम्पोज करने मे कठिनाई रही, श्री तलाविया जी को भी कई लेखो को गुजराती से अनुवाद करके पुन हिन्दी मे लिखना पडा, या अस्पष्ट लेखो को पुन लिखना पडा लेकिन श्री तलाविया जी अपने कार्य में पूर्णत सफल हुए हैं। उन्होने गुजरात के हिन्दी जगत से अज्ञात बहुत से लेखको से लेखो का प्रसाद ग्रहण किया तथा यहा प्रस्तुत कर उपकृत किया है। हम आपके पुनश्च अत्यन्त आभारी हैं।

पुरुष रोगो की गणना अत्यन्त कठिन है। उपदश-पूयमेह फिरग आदि रोग स्त्री पुरुष दोनो को होते है फिर भी हमने उनका अल्प वर्णन उचित समझा। कुछ प्रकरण ऐसे भी हैं जिन पर उपयुक्त लेख न प्राप्त हुये और उन्हे छोड देना पडा। दोनों ही स्थितियो मे यदि पाठको को कुछ अनुचित लगे तो उसके लिए क्षमा प्रार्थी हैं। स्थानाभाव के कारण कुछ लेख हमे छोडने पडे है, उनके लेखको से भी क्षमाप्रार्थी हैं।

इस "पुरुष रोग चिकित्सा" के प्रकाशन मे विशेष सम्पादक महोदय श्री अशोक भाई तलाविया भारद्वाज तथा अन्य सभी लेखको, अपने कर्मचारियो का अत्यन्त आभारी हू जिनका कि सहयोग पग-२ पर मिला है।

डी–७८ औद्योगिक नगर (फैक्ट्री एरिया) अलीगढ
७-४-१९८७ (रामनवमी सम्वत् २०४४)



पुरुष रोग चिकित्सा

के लेखक एवं सकलन कर्ता

वैद्य अशोक भाई तलाविया

भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एस.ए.एम.

का

संक्षिप्त जीवन परिचय

*

में प्रवेश लेकर सन् १९७० में आयुर्वेदाचार्य (B S A. M) हुए। आयुर्वेद शिक्षा के समय आप साहित्य मे रस लेते रहे और महाविद्यालय के वार्षिक अक में सर्व प्रथम आपके लेख प्रकाशित हुए। उन दिनो मे आपने वैद्य मडलों के अधिवेशनो मे स्वय सेवक के रूप मे भाग लिया।

१९७१ में आप सावर कुन्डला आ गये, तत्पश्चात स्वतन्त्र चिकित्सा हेतु आपने मु० डेडान जि० अमरेली मे पांच वर्ष तक चिकित्सा व्यवसाय किया। वहा आपने अभूतपूर्व लोक ख्याति प्राप्त की। सामाजिक कार्य भी किये।

सन् १९७५ मे आप पिताजी की आज्ञानुसार सावर-कुन्डला आ गये, और पिताजी का चिकित्सा व्यवसाय स्वतन्त्र रूप मे सम्भाल लिया, और पिताजी निवृत्त होकर चरखडीया स्थायी हुए।

आपने सन् १९७५ मे सौराष्ट्र प्रदेश बी.एस ए एम ग्रेज्यु. एसोसिएशन की स्थापना कर तीन वर्ष तक स्थापक महामन्त्री रहे। उस समय आयुर्वेद स्नातकों की अप्रतिम सेवा की। सन् १९७५ से आप निरन्तर आयुर्वेद विषय पर लिखते रहे है। आज तक आपने स्पन्दन, जन कल्याण, धन्वन्तरि, सुश्रुत, आयु डायजेस्ट, स्वामी नारायण

धर्म सिद्धान्त, खेडूत धर्म, हम सफर, रामदूत, वीर हाक, आरोग्य प्रदीप, शहद पूनम, चिकित्सा चन्द्रोदय और 'धन्वन्तरि' जैसे मासिकों और पत्रिकाओं में लिखते रहे, आज भी आपका लेखन कार्य अनवरत चालू है।

सन् १९७५ में आपको गुजरात प्रदेश शुद्ध आयुर्वेद मण्डल द्वारा उनके हिम्मत नगर के अधिवेशन मे राजवैद्य रसिक भाई पारीख ने सुवर्ण चन्द्रक से सम्मानित किया।

भूतकालीन पद—

व्यवस्थापक सदस्य–मित्र मंडल पुस्तकालय, डेडाण
व्यवस्थापक सदस्य–सौराष्ट्र युवक अभिवादन समिति
महामन्त्री-सौराष्ट्र प्रदेश बी.एस.ए.एम. स्नातक एसोसियेशन
स्वागत सदस्य–अखिल गुजरात वैद्य मंडल-अधिवेशन
व्यवस्थापक सदस्य–अमरेली जिला वैद्य सभा

वर्षो से आप प्रश्नोत्तरी के माध्यम से दर्दियों को निःशुल्क सेवा देते हैं। समग्र गुजरात, बम्बई, इन्दौर, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश से पत्र आते रहते हैं, और आप पत्राचार माध्यम से सेवा दे रहे हैं।

मूलत आप गुजराती भाषा के लेखक हैं, और आज तक आपके सैंकडों लेख गुजराती में प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी में सर्व प्रथम 'धन्वन्तरि' के सङ्कट–कालीन चिकित्साङ्क मे लेख प्रकाशित हुए, और तब से हिन्दी जगत मे प्रवेश किया, और 'धन्वन्तरि' में अन्य लेख भी प्रकाशित होते रहे है। 'धन्वन्तरि' मे लेख प्रकाशित होने से आपके लेख की माग शुचि, आयुर्वेद विकास, आरोग्य सखा इत्यादि मे होती रही, और उन मासिकों ने आपको लेखक रूप मे मान्यता दी। शुचि मे आपका लेख स्वीकार किया, प्रकाशित किया और निरन्तर लेख भेजने हेतु आपको निमन्त्रण दिया।

आप शुद्ध आयुर्वेद के पक्षधर हैं। व्यवसाय में आप शुद्ध आयुर्वेद से चिकित्सा करते है। आप अम्लपित्त, त्वग् रोग, कर्ण रोग, अर्श, जातिय रोग, शिरो रोग और क्षुद्र रोग पर विशेष सशोधनात्मक चिकित्सा करते हैं।

आप सफल लेखक एव सफल चिकित्सक हैं। 'धन्वन्तरि' पुरुष रोग चिकित्साङ्क का विशेष सम्पादन आपने सफलतापूर्वक किया है, इसका मुझे गौरव है, आनन्द है। भविष्य में भी आप 'धन्वन्तरि' के प्रति सहयोगी बनेंगे ऐसा विश्वास है।

मैं वैद्य श्री तलाविया जी को अपनी शुभ कामना व्यक्त करता हू, और उनके करकमलो द्वारा आयुर्वेद का प्रचार एव प्रसार होता रहे; ऐसी मनोकामना व्यक्त करता हू।

—डा० दाऊदयाल गर्ग

सम्पादक–'धन्वन्तरि' मासिक पत्रिका, अलीगढ़

समर्पण

पुरुष रोग चिकित्सा

भविष्य में आयुर्वेद की धुरी जिन पर है–और
जिन्होंने चिकित्सा मे शुद्ध आयुर्वेद को अपनाया है,
अपनायेंगे······इन सभी युवा वैद्यों को

सादर समर्पित

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य

पुरुष रोग चिकित्सा

की

विषयानुक्रमणिका

पुरुष का महत्व	डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी वैद्य	४१
पुरुष (नर) का गौरव	आयु० चक्रवर्ती नागशङ्कर वैद्य	४३
पुरुष प्रसर की प्राचीन विधा	डा० ईश्वरलाल आर० दवे	४५
ब्रह्मचर्य	वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य	४७
ब्रह्मचर्य का महत्व	प्रो० वैद्य वेणीमाधव अश्विनी कुमार शास्त्री	५१
ब्रह्मचर्य का महत्व	आयु० बृह० डा० सत्यनारायण खरे ए०, एम० बी एस०	५४
ब्रह्मचर्य महत्त्वम्	वैद्य जगदीश चन्द्र वसावा बी० ए०, ए० एम० बी० एस०	५८
बीज शुक्र एवं शोणित उत्पादन	—आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी आयु० शास्त्राचार्य बी ए, आयु बृह.	६१
संयम-असंयमशील युवक	वैद्य शिवकुमार शास्त्री डी० एस्-सी० ए०	६४
नपुंसकता-विवेचन व उपचार	वैद्य दरबारी लाल आयु० विशारद	६७
नपुंसकता (कर्तव्य)	डा० ज्ञानचन्द्र जैन शास्त्री ए एम बी एस, एच पी ए, पीएच डी	७५
पुरुष वन्ध्यत्व (बृहत्त्रयी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण)	डा० देवेन्द्रनाथ मिश्र एम. डी (आयु)	७७
शुक्राणु समस्या	डा० बी० एन० गिरि ए० एम० बी० एस०	८१
जातोत्तर कर्तव्य	वैद्य पी० एस० अणुमान एच० पी० ए०	८७
मर्द को नग, घोड़े को तंग	वैद्य अम्बालाल जोशी आयु० केसरी	९२
नपुंसकता की चिकित्सा	वैद्य मोहरसिंह आर्य आयु० बृह०	९६
पुरुष के पौरुषत्व की रक्षा	वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र आयुर्वेदाचार्य, आयु० शिरोमणि (श्रीलंका)	१०२
नपुंसक विवेचन	वैद्य एम० एच० बारोट एच० पी० ए०	१०४
शुक्राणु की अनुपस्थिति में शुक्राणु उत्पादन	डा० धर्मदास मनसोरिया आयु० रत्न	१०८
जातीय सुखवर्धक कुछ औषधि योग	वैद्य वत्सल वसाणी एम० एस० ए० एस०	१०९
आयुर्वेदीय औषधि द्वारा शुक्राणु वृद्धि	वैद्य शोभन वसाणी; वैद्य भानुप्रताप मिश्र बी०एस० ए० एम०	११३
अल्प शुक्राणुत्व तथा अशुक्राणुत्व की चिकित्सा	वैद्य धीरेन्द्र त्र्यम्बकलाल जोशी डी एस ए सी, वैद्या पुष्पा धीरेन्द्र जोशी, डा० ए. जे डवावाला, डा० ऊषा बहन पटेल, श्रीमती एम पी गोहिल	११५
नपुंसकता निवारण योग संग्रह	वैद्य श्री चन्द्रशेखर व्यास आयु० विशारद	११९
शुक्राणु अल्पता	डा० दिनेशकुमार एन श्रीवास्तव एम डी (आयु)	१३२
नपुंसकता की आधुनिक चिकित्सा	डा० जहान सिंह चौहान एम० एस्-सी० ए०	१३४
व्यवाय शोष	डा० शिव पूजन सिंह कुशवाह शास्त्री एम० ए०	१४०
शुक्र सम्बन्धी विकृतियां और उनका निराकरण	डा० प्रमोद मालवीय एम० डी०	१४४
शुक्रदोष में हरीतक्यादि क्वाथ	डा० (श्रीमती) मंजुला बहन डी० श्रीवास्तव एम एस ए एम	१४८
शिलाग-उपचार	वैद्य रामदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य एम० ए०	१५०

☆ ☆ ☆ ☆ पुरुष रोग चिकित्सा ☆ ☆ ☆ ☆

नपुंसकता की सफल चिकित्सा	वैद्य रविकान्त शास्त्री बी० ए० एम० एस	१५१
फोर्टेज	वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयु०	१५३
कुछ शुक्रवर्धक पेटेन्ट आयुर्वेदिक औषधिया	वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र बी एस ए एम	१५५
नपुंसकता निवारण	कवि० वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य	१५८
कामोपचार मे गलत मान्यता—शिश्न की लम्बाई	वैद्य श्री सुभाष ठाकर सक्सोलोजिस्ट	१६४
नपुंसकता की होमियो चिकित्सा	डा० प्रकाशचन्द्र गगराडे बी एस-सी ,डी फार्मा	१६७
शिश्न वृद्धिकर योग	वैद्य रविकात शास्त्री बी ए एम एस	१७०
रसायन का महत्व	वैद्य श्री रामचन्द्र शाकल्य	१७१
रसायन का महत्व	आचार्य वेदव्रत शास्त्री	१७२
रसायन का महत्व	कवि० (डा०) यशपाल शास्त्री ए , एम बी एस	१७५
वाजीकरण विमर्श	वैद्य जी० के० दवे एच० पी० ए०, वैद्य नयन पी० जोशी	१८०
कुछ वाजीकरण प्रयोग	श्री बृजेशकुमार वर्नवाल	१८३
शीघ्रपतन	डा० योगेश शर्मा बी० एस० ए० एम०	१८६
शीघ्रपतन की चिकित्सा	वैद्य कपूरचन्द जैन आयु० बृह०	१८८
शीघ्रपतन—निदान चिकित्सा	वैद्यराज पी० सी० पटेल डी एस ए सी	१८९
हस्तमैथुन के दुष्परिणाम एवं उपचार	डा० भवानी शङ्कर दीक्षित आयु० रत्न	१९२
स्वप्नदोष—निदान एव चिकित्सा	आयु० चक्र० डा० गिरिधारीलाल मिश्र आयु० वाचस्पति	१९५
स्वप्नदोष विवेचन	वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र बी. एस ए एम.	२०१
स्वप्नदोष	वैद्य कन्हैयालाल गुप्ता एम ए, आयु० रत्न	२०४
शुक्रक्षय	वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य	२०७
हस्तमैथुन विकृति है ?	,, ,,	२११
स्वप्न दोष—कारण एव निवारण	आयु० चक्र० वैद्य मिश्रीलाल गुप्त डी ए एम एस	२१८
स्वप्नदोष और मेरा अनुभव	वैद्य विश्वम्भर दयाल गोयल बी ए	२१९
क्या स्वप्नदोष रोग है ?	वैद्य प० द्वारका प्रसाद दुबे आयु०, काव्यतीर्थ	२२१
स्वप्नदोष—स्वप्नमेह	आचार्य विरिञ्चिलाल शास्त्री	२२४
स्वप्नदोष निवारक मन्त्र प्रयोग	ज्योतिर्विद प० सुरेशचन्द्र ठाकुर एम ए आयु० रत्न	२२५
कुछ असाध्य पुरुष रोग	वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य	२२७
शुक्रमेह	,, ,,	२२८
शीघ्र पतन चिकित्सा	कवि० वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य	२३०
मूत्र शुक्र	वैद्य अशोक भाई तलाविया, भारद्वाज बी एम ए एम	२३१
पुरुष रोगो पर अश्वगंधा प्रयोग जन्य औषधिया	वैद्य द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य	२३३
पुरुष मे वृषण का विशेष महत्व	डा० नयनकुमार पी० जोशी बी एम ए एम	२३६
वृषण शोथ (Orchitis)	डा० वेदप्रकाश शर्मा त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य एच पी ए	२४०
वृषण कच्छू-निदान चिकित्सा	वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयु०	२४३
वृषण कच्छू मे उपयोगी कच्छू राक्षस तैल	वैद्य शोभन वसाणी, वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र	२४५
छिद्रार्श	आयु० बृह० डा० महेश्वर प्रसाद सर्जन	२४६

☆ ☆ ☆ ☆ पुरुष रोग चिकित्सा ☆ ☆ ☆ ☆

परिवर्तिका, अवपाटिका एवं निरुद्ध प्रकश — वैद्य अयोध्याप्रसाद 'अचल' एम ए, पीएच डी — २४८
वाताष्ठीला-पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि — वैद्यराज नवीन भाई ओझा डी एम ए.सी एच पी ए. — २५२
पौरुष ग्रन्थि वृद्धि — वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य — २५५
शुक्राश्मरी तथा शर्करा निदान चिकित्सा — डा० महेश भाई तलाविया बी०एस०ए०एम० — २५८
शुक्रज मूत्र कृच्छ्र-निदान चिकित्सा — वैद्यराज डा० रणवीर सिंह शास्त्री एम ए., पीएच डी. — २६२
पुरुष को होने वाली विशेष व्याधिया — डा० ब्रजमोहन वाशिष्ठ ए०,एम० बी०एस० — २६४
पुरुष जननेन्द्रिय का कैंसर — कवि० आचार्य हरिवल्लभ मन्नूलाल द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री — २६८
शूक सम्बन्धी विकृतिया एवं निराकरण — डा० पी सी जैन ए एम एस, डा० प्रमोद मालवीय एम डी — २७१
वृद्धि मे कर्णवेध एवं दाहकर्म — वैद्य शामजी भाई तलाविया आयु० विज्ञान शिरोमणि — २७७
पित्तज वृद्धि की सफल चिकित्सा — वैद्य शोभन वसाणी, वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र — २८४
अन्त्र वृद्धि एक क्लिनिकल अध्ययन — श्री पी एस. अंशुमान एच.पी ए, श्री के पी सिंह एच पी ए, श्रीमती के जी आशरा, एम आशरा एम डी — २८६
पैत्तिक वृद्धि की सफल चिकित्सा — वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज बी.एस ए एम — २९०
उष्ण वात-उपदंश फिरंग — वैद्य पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य — २९३
उपदंश के निर्णय हेतु परीक्षायें — डा० अनोखेलाल शर्मा 'प्याज वाले' — २९५
पूयमेह — वैद्य मोहरसिंह आर्य आयु० बृह० — ३०३
पश्चिम की खौफनाक बीमारी एड्स — कवि० वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य — ३११
इच्छित सन्तान पुत्र प्राप्ति — वैद्य दिलीप के० दल एम०डी० — ३१३
इच्छित सन्तान — आचार्य डा० महेश्वरप्रसाद 'सर्जन' प्राणाचार्य, डा० (श्रीमती) शशि उमादेवी — ३१५
पुरुषत्व सदैव रखने मे अश्वगन्धा का कार्मुकत्व — वैद्य हरिभाई के० त्रिवेदी डी०ए०पी० — ३१६
शतावर — वैद्य प० घनशकर जी गौरीशंकर वैद्य शास्त्री — ३१७
अश्वगन्धा — वैद्य राजेन्द्र खण्डेलवाल आयु० रत्न — ३१९
पुरुष रोगों मे उपयोगी महत्व के प्रयोग — ,, ,, — ३२१
पुरुष रोगो मे वंग भस्म का प्रभाव — वैद्य मूलराज भाई जेठालाल — ३२४
पुरुष रोगों मे व्यवहार की जाने वाली उपयोगी औषधिया — कवि० वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य — ३२५
पुरुष रोगो पर मेरे सफल प्रयोग — राजवैद्य प० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित आयु० बृह० — ३२७
पुंसत्व शक्तिवर्धक योग — डा० भागचन्द जैन आयु० बृह० — ३२८
विविध पुरुष रोगों पर अनुभूत प्रयोग — स्व० प० ठाकुर दत्त शर्मा वैद्य भूषण — ३२९
ध्वज भंग — आचार्य गयाप्रसाद शास्त्री आयु० बृह०, भिषग्रत्न — ३३९
नपुंसकता मे सफल प्रयोग — आर्य वैद्य प० मिलिन्द वैद्य वाच० — ३४०
ध्वज भंग पर अन्य परीक्षित प्रयोग — वैद्य बी एन जी. शर्मा वैद्य भूषण, स्व. कवि धर्मदत्त चौधरी, कवि वेद व्यासदत्त शर्मा, प शिवचन्द्र राजवैद्य आयु० मार्तण्ड — ३४२
उपदंश तथा उपदंश विषजात रोगों की चिकित्सा — डा० शिवपूजन सिंह कुशवाहा एम० ए० — ३४५
उपदंश तथा उपदंश विषजात रोगों की चिकित्सा — कवि० प० उदयनारायण झा आयुर्वेदाचार्य — ३४५
कामोपचार में गलत मान्यतायें — वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयु० — ३४८
कुछ वाजीकरण औषधि योग — वैद्य धीरेन्द्र बी० त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य — ३५२

पुरुष का महत्व

वैद्यरत्न कविराज पं० शंकरलाल गौड "शम्भुकवि" दूरा (आगरा) उ०प्र०

पुरुषऽएवेद क्षं सर्व्व यद्भूतंयच्च भाव्व्यम् ।
उतम् तत्वस्ये शानो यदन्नें नाति रोहंति ॥१॥

यह जो वर्तमान जगत है, वह सब विराट पुरुष ही है जैसे वर्तमान कल्प मे समस्त प्राणियो के शरीर विराट पुरुष के ही अवयव है। वैसे ही व्यतीत हुए और आने वाले कल्पो में भी जानना चाहिए। वे पुरुष विराट् अन्न रूप फल के निमित्त से इन फलों और भोग्यो के स्वामी है। मरण धर्मरहित मुक्ति के अधिपति होने से मोक्षेश्वर नाम से भी सम्बोधित किये जाते है।

एता वांनस्य महिमातो ज्ज्यायाँश्च पूरु षः ।
पादांस्यव्विश्वा भूतानि त्रिपादंस्या मृतंन्दिवि ॥२॥

भूत, भविष्य और वर्तमान काल से सम्बद्ध जितना जगत है यह सब उस विराट् पुरुप की सामर्थ्य विशेप ही है। वास्तविक कोई रूप नही देखने में आता। इस पुरुष विराट् का विशेष महत्व है। तीनों कालो मे भोगने वाले प्राणिमात्र इस विराट् पुरुप के चतुर्थांश है। इस पुरुष के अवशिष्ट जो शेप बचे हैं वह त्रिपाद है।

ततोव्विराडं जायतव्विराजोऽअधि पूरु षः ।
सजातोऽअत्यंरिच्यत पश्चाद्भूमि मथों पुरः ॥३॥

इसलिए विराट् स्वरूप शरीर की उत्पत्ति हुई उस शरीर से, उसी शरीर के ऊपर अधिकारी मानकर एक शरीर का एक अभिमानी पैदा हुआ। वह ईश्वर अपनी माया से ब्रह्माण्ड रूप उत्पन्न कर जीव रूप से उसमें व्याप्त होकर जीव रूप हुआ। वही विराट् पुरुष–देवता, तिर्यक, मनुष्यादि रूप मे हुआ। इसी ने भूमि तथा जीवों को उत्पन्न किया। सारे संसार की सृष्टि उसीने की।

पुरुष रोग चिकित्सा

पूर्ण पुरुष का पूर्ण रूप बन,
जो जगतीतल में आया।
दुर्लभ मानव जन्म प्राप्त कर,
दीन बन्धु के मन भाया ॥
पौरुष, साहस, शक्ति पुंज का,
केन्द्र रहा जो इस जग में।
उसको भोग रोग ने घेरा,
पतित बना पर डग मग में ॥
विविध साधनाओं के साधक,
ऋषि अगस्त्य थे परम महान।
बलकी इच्छा तनय कामना से,
वपु था निज किया महान ॥
रसायनों का सेवन करके,
पुष्ट किया कृश काय महान।
देवगणों में पूजित होकर,
बने मन्त्र द्रष्टा मतिमान् ॥
शोक मग्न लख इसी पुरुष को,
प्रिय भाई 'अशोक' गुणधाम।
पुरुष चिकित्सा का सम्पादन,
करते हैं सचमुच निष्काम ॥

★ रचयिता –आचार्य श्री वेदव्रत शास्त्री,
कासगंज (एटा) उ०प्र०

प्र स्ता व ना

आयुर्वेद विकास में आदि से आज तक पुरुष का महत्व

आयुर्वेद एवं वेद आदि महाग्रन्थो मे शरीर को पुरुषकहा गया है जिसमे पञ्चमहाभूत, इन्द्रिया आदि हैं और उसके साथ जीवात्मा प्रवेश करता है, तब उनको पुरुष कहा गया है। पुरुष शब्द से जाति भेद नही जानें। नर, नारी और नान्यतर (नपुंसक) तीनो जाति पृथ्वी पर हैं, उन तीन को पुरुष शब्द से कहा गया है।

जाति भेद से देखें तो मनुष्य के पुरुष (नर) स्त्री (नारी) और नपुंसक तीन भेद हैं। पुरुष रोग चिकित्सा में पुरुष पर लिखना, विश्लेषण करना अनिवार्य है। अतः पुरुष जाति पर भी विश्लेषण किया गया है।

हिमालय की तलहटी में आयुर्वेद का प्रथम अधिवेशन

ऐतिहासिक तथ्य है कि जब-सतयुग मे ऋषि मुनि निरन्तर सशोधन किया करते थे तब उसी समय मे माना जाता था कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल शरीर ही है। ('धर्मार्थकाममोक्षाणा मूल कलेवर उत्तमम्') मगर तप, स्वाध्याय, धर्म, ब्रह्मचर्य व्रत और आयुष्य को नाश करने वाली व्याधि जगह जगह पर चारों ओर फैली हुई हैं और वह व्याधि शरीर को कृश बनाती हैं, बल का क्षय करती हैं, शारीरिक चेष्टा का नाश करती हैं, उससे इन्द्रिय शक्ति का नाश होता है, सर्वाङ्ग मे वेदना होती है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष गति में विघ्न आती है। ऐसे रोग समूह इस ऋषि युग मे पैदा हुये, तब महान तपस्वी, दया के सागर, त्रिकालज्ञ भगवान भारद्वाज ऋषि की अध्यक्षता में हिमालय की तलहटी में किसी जगह जगत का सर्वप्रथम स्वेच्छा से आरोग्य रक्षा के लिए और रोगो का नाश करने के लिए विश्व सम्मेलन (महा अधिवेशन) हुआ था। मैं यहां विश्व सम्मेलन का उल्लेख इसलिए करता हू कि विश्व के कोने कोने से ऋषि यहा आये थे। तब भारत का साम्राज्य समग्र जगत पर चलता था। ऋषियों के नाम यहा प्रस्तुत करता हूँ—

अंगिरा, गर्ग, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्ति असित, पराशर, वशिष्ठ, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, गार्ग्य, काश्यप, कश्यप, नारद, वामदेव, मार्कण्डेय, कपिजल, कौण्डिन्य, शाण्डिल्य, शाकुनेय, शौनक, आश्वलायन, सांकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य, काम्य, कात्यायन, काकायन, वैजपाय, कुशिक, बादरायण, हिरण्याक्ष, लौगाक्षि, शरलोमा, गोभिल, वैखानस, बालखिल्य और अनेक महात्मा इस अधिवेशन मे उपस्थित हुये थे। वहा आरोग्य विषयक स्वास्थ्य रक्षा हेतु सम्भाषा परिषद हुयी, चर्चा हुयी। व्याधि नाश हेतु किस तरह क्या उपाय किया जाय ? तब सर्वसम्मति से भगवान भारद्वाज को आदेश दिया कि इन्द्र लोक मे आप जाकर इन्द्र के पास आरोग्य विषयक ज्ञान आयुर्वेद स्वरूप से है, वह ज्ञान पढ़कर पृथ्वी लोक में वापिस आओ। सब ऋषिओ का एक ही मत था जो भारद्वाज मुनि ने स्वीकार किया। सभा निर्णय स्वीकार कर भगवान भारद्वाज इन्द्र के पास गये, वहां इन्द्र ने भारद्वाज मुनि को सर्वाङ्ग अष्टाङ्ग आयुर्वेद सिखाया।

एक बार भगवान इन्द्र की दृष्टि पृथ्वी लोक पर पड़ी। उन्होंने देखा कि पृथ्वी लोक के लोग व्याधि ग्रस्त हैं, तो उन्होंने धन्वन्तरि को आयुर्वेद सिखाकर पृथ्वी लोक पर भेजा। धन्वन्तरि भगवान द्वारा सुश्रुत आदि शिष्यों को आयुर्वेद का ज्ञान प्रदान कियागया। सुश्रुत ने शल्य-शालाक्य तन्त्र का विस्तृतिकरण किया। मानो कि सर्जरी का संशोधन (खोज) उन्होंने सर्वप्रथम किया।

अन्य मत कहता है कि जब श्रीहरि भगवान द्वारा मत्स्यावतार से वेद का उद्धार किया गया था, तब शेष भगवान उसी जगह अंग सहित वेद को और अथर्ववेद मे रहे हुये आयुर्वेद के ज्ञान से लाभान्वित हुये थे। एकदम वह शेष भगवान परराज्य का वृतान्त जानने के लिए पृथ्वी पर चर स्वरूप में आये थे। तब पृथ्वी लोक में असख्य व्याधि उपस्थित थी। लोग व्याधियों से त्रस्त

थे, दुखी थे। उन्होंने सोचा कि यदि योग्य समय में उपाय नहीं होगा तो पृथ्वी लोक का अवश्य नाश होगा। भगवान शेषनाग ने निर्णय किया और वह तो आयुर्वेद के ज्ञाता ही थे, मगर गुप्त रूप मे भगवान ने विशुद्ध मुनि के यहा पुत्र स्वरूप जन्म लिया और पृथ्वी लोक मे 'चरक' नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होंने आयुर्वेद की सहिता बनाई। यही आज की चरक सहिता के नाम से सुप्रसिद्ध है। अन्य मत से कहा जाता है कि अग्निवेश सहिता का पुनरोद्धार चरक ने किया था, इसलिए उसका नाम चरक सहिता रखा गया है। चरक पुरुष थे। यही कथा प्रस्तुत की गई है। वह ऋषि युग की है। तब उस समय मे आयुर्वेद के विकास मे प्रचार और प्रसार मे पुरुष का ही प्राधान्य मालूम पड़ता है।

युग परिवर्तन होता रहा, जनसख्या बढती गई, तब भारतवर्ष मे विश्वविद्यालयो का प्रादुर्भाव हुआ। उत्तर भारत तक्षशिला विश्वविद्यालय और नालदा विश्वविद्यालय तथा पश्चिम मे सौराष्ट्र मे वल्लभी विश्वविद्यालय का प्रादुर्भाव हुआ। तक्षशिला विश्वविद्यालय मे भिक्षु आत्रेय जी कुलाधिपति थे। वह सभी विद्याओं के ज्ञाता थे। आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित भी थे। तब उसी समय मगध राज्य के पाटलीपुत्र राजनगर के राजकुमार जीवक तक्षशिला में जाकर वहा स्थाई होकर अष्टाग आयुर्वेद का अभ्यास किया। बाद में उसने अनेक जगह अनेक रुग्णो की शल्य चिकित्सा की थी। वह उस समय के सर्जन थे। जीवक वैद्य पुरुष थे।

समय परिवर्तन होता रहा, भारत में विदेशी लोग साम्राज्य स्थापित करने के लिए आते रहे, तब आयुर्वेद की प्रकृति में बाधा आयी। फिर भी आयुर्वेद का नाश नहीं हुआ। रसशास्त्र का विकास हुआ। महर्षि नागार्जुन ने रसशास्त्र का सम्पूर्ण विकास किया। उसमे सशोधन किया। नागार्जुन भी पुरुष थे। आगे माधव निदान के कर्ता माधवाचार्य अष्टाग हृदय के कर्ता महर्षि वाग्भट्ट, भावप्रकाश के रचयिता पण्डित भावमिश्र आदि पुरुष थे। महान वैद्य पण्डित लोलिम्बराज भी पुरुष थे। भावार्थ यह है कि आयुर्वेद की समग्र विकासगाथा मे सिर्फ पुरुष का ही सहयोग देखने को मिलता है। सबने अपने अपने समय में आयुर्वेद मे सशोधन किया, चिकित्सा की सहितायें रची। किसी भी जगह स्त्री का उल्लेख नही मिलता।

सुश्रुत कालीन युग—

जब सुश्रुत महाराज हो गये थे, तब उस समय की परिस्थिति कैसी होगी? समाज कैसा होगा? सामाजिक व्यवहार, आर्थिक स्थिति इत्यादि सशोधन का विषय है। मगर स्वास्थ्य रक्षा का सवाल आता है, तब उस समय मे आयुर्वेद सोलह कला से सम्पन्न था। सुश्रुत आद्य सर्जन थे। उन्होंने सर्जरी मे सशोधन किया। स्त्री रोगों मे सशोधन किया। योनि रोग बीस प्रकार का होता है, मूढगर्भ कैसा होता है? उनकी चिकित्सा किस तरह करनी चाहिए? प्रसव विद्या, सूतिकाचर्या, कौमार भृत्य, तत्कालीन प्रसवा का निवास, उत्तरबस्ति का विज्ञान, योनि का वर्णन, गर्भाशय वर्णन इत्यादि स्त्री सम्बन्धी अनेक विषयों पर सुश्रुत ने विचार किया और सहिता मे भी वर्णन है। तो क्या उस समय स्त्री को पूरी स्वतन्त्रता थी? अवश्य होगी ही। माना जाय या समझा जाय कि उस समय स्त्रियां बीमार पड़ती थीं, वह अपनी स्वास्थ्य रक्षा हेतु सुश्रुत जैसे पुरुष वैद्य के पास जाती थी। उस समय के सशोधनकारो ने अनगिनत स्त्रियों की शारीरिक परीक्षा की होगी। बाद में बीस प्रकार के योनि रोग का वर्णन लिखा होगा। क्या तब किसी ऋषि महर्षि को विचार नही आया होगा कि जब स्त्री रोग का सवाल है, तो उसके लिए स्त्री वैद्य तैयार किया जाय तो सबसे अच्छा कार्य होगा। मगर ऐसा नही हुआ। किसी भी युग में स्त्री वैद्य का वर्णन उपलब्ध नहीं है। उस समय सिर्फ पुरुष ही चिकित्सक थे। इस तरह चरक, वाग्भट्ट, भावमिश्र, माधवाचार्य आदि के समय मे भी स्त्री वैद्य का उल्लेख नहीं है। चरक तो दृष्टा पुरुष थे। खुले मन वाले विद्वान थे। चरक सहिता मे मिलता है कि जब रोग का अधिकार औषध चिकित्सा से नही है तो चरक ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि इस रोग का अधिकार केवल शल्य वैद्य का है। तो स्त्री रोगाधिकार मे ऐसा क्यों नही मिलता? बालको के वैद्य होगे, अस्थि रोग के लिए भी निष्णात होंगे, कोई निदानज्ञ होंगे,

पुरुष रोग चिकित्सा

मगर कोई स्त्री रोग विशेषज्ञ का उल्लेख नही मिलता। उस समय में समाज ने भी यह व्यवहार स्वीकार कर लिया होगा। और लोग भी खुले मन वाले होगे कि जिसमे यह बात स्वीकारी गई होगी कि स्त्री अपने रोग के परीक्षणार्थ पुरुष चिकित्सक के पास जा सकती है।

अब हम वर्तमान युग अर्थात् बीसवी सदी मे आ जायें, इससे पहले भारत परतन्त्र हो गया था। मुगल साम्राज्य मे यूनानी का विकास हुआ, साथ साथ आयुर्वेद तो जीवित रहा ही था मुगल के बाद अग्रेज साम्राज्य स्थापित हुआ। इस समय मे भी पुरुष वैद्य थे। आजकल बीसवी सदी का अन्त होने वाला है। बीसवी सदी मे वनस्पति शास्त्री जयकृष्ण इन्द्र जी हो गये। इन्होने वनस्पति के व्यवस्थित सम्पूर्ण महाग्रन्थ की रचना की। आचार्य झण्डु भट्ट जी, गढडा के नानभट्ट, आचार्य प्रभाशकर भट्ट, सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य आचार्य श्री यादव जी त्रिक्रम जी, पण्डित शिव शर्मा इत्यादि वैद्यों ने आयुर्वेद को जीवित रखा। इसके विकास मे महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। यह सभी पुरुष थे।

वर्तमान समय—

जब तक गुरू परम्परा से आयुर्वेद सिखाया जाता था, तब तक केवल पुरुष को ही यह अधिकार माना जाता था। जब से स्वतन्त्र भारत में आयुर्वेद महाविद्यालय का जन्म हुआ तब से धीमी गति से क्रमशः स्त्रिया आयुर्वेद क्षेत्र में आने लगी। स्नातिका होने लगीं। अनुस्नातिका होकर प्राध्यापिका भी होने लगीं। वर्तमान समय में भारत मे आयुर्वेद का विकास राष्ट्रीय स्तर पर हो रहा है। उनका श्रेय स्व० पडित वैद्य महादय श्री शिवशर्मा, आचार्य विश्वनाथ जी द्विवेदी, कवि. आशुतोष मजूमदार, वैद्य श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी, स्व० वैद्य श्री रामनारायण शर्मा, आचार्य प्रियव्रत शर्मा और बनारस युनि० के आयुर्वेद विभाग को देना चाहिए। डा० पी जे देशपाडे ने सर्वप्रथम ही क्षार सूत्र पद्धति का विशेष संशोधन किया। और अर्श एवं भगन्दर की चिकित्सा क्षार सूत्र से करने की शुरूआत की।

गुजरात में आयुर्वेद का विशेष महत्व—

वर्षों से गुजरात आयुर्वेद का धाम रहा है। गुजरात मे सर्वप्रथम विश्व के प्रथम आयुर्वेद विश्व विद्यालय की स्थापना हुई। इसका श्रेय स्व० मोहनलाल व्यास आरोग्य प्रधान गुजरात राज्य को दिया जाना उचित है। इनसे पहले गुजरात युनि० के आयुर्वेद फेकल्टी के डीन और निष्णात वैद्य आचार्य श्री बल्लभराम जी दवे थे। वह गुलाब कुंवरवा आयुर्वेद महाविद्यालय-जामनगर के आचार्य भी रह चुके हैं। उन्होने आयुर्वेद विकास में महत्व का योगदान दिया। राजवैद्य श्री रसिक भाई पारीख ने तो अपना सम्पूर्ण जीवन आयुर्वेद को समर्पित कर दिया है। जब गुजरात में प्राईवेट आयुर्वेद अस्पताल नहीं था, तब श्री रसिक भाई ने अहमदाबाद में अपनी सजीवनी आयुर्वेद अस्पताल की स्थापना की। और सजीवनी मे अनेक विद्यार्थी आकर, वहा रहकर आयुर्वेद का ज्ञान लेते रहे। श्री रसिक भाई ने गुजरात और देश के जगलो में घूमकर वनस्पति का सशोधन किया हैं। और अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। शुद्ध आयुर्वेद मण्डल द्वारा वैद्यो का सम्मेलन योजते रहे हैं। गुजरात आयुर्वेद युनि० के उपकुलपति भी थे। और वैद्य श्री सी.पी शुक्ल, आचार्य विनायक ठाकर, स्व० वासुदेव द्विवेदी, स्व० वैद्य बापालाल वैद्य, आचार्य रणजीत राय देसाई, देश के सुप्रसिद्ध आयुर्वेद निष्णात और गुजरात के आयुर्वेद नियामक वैद्य श्री के० सदाशिव शर्मा, वैद्य श्री कस्तुरे जी, वैद्य श्री जी० के० दवे, वैद्य श्री एम० एच० बारोट, वैद्य श्री हिरू भाई पटेल, वैद्य श्री किरीट भाई पण्डया, वैद्य श्री शोभन वसाणी, श्री वत्सल वसाणी गुजरात के प्रथम पक्ति के कवि, साहित्यकार, वैद्य श्री लाभशकर ठाकर, वैद्य श्री त्र्यबकलाल जोशी, वैद्य श्री रमणीकलाल पण्डया, वैद्य श्री बालकृष्ण दवे, वैद्य श्री प्रागजी भाई राठोड, वैद्य श्री गोविन्दप्रसाद जेसे विद्वान पुरुषो ने आयुर्वेद विकास मे अपना सहयोग प्रदान किया। अब समय का परिवर्तन हो गया है। व्याधि पर काबू पाने के लिए अलग विभाग के निष्णात तैयार होते रहते हैं। उसमे त्वक् रोग मे वैद्य किरीट भाई पण्डया अग्रिम स्थान पर हैं, गुप्त रोगो में वैद्य श्री सुभाष ठाकर का नाम लिया जाता है। साम-निराम पद्धति पर चिकित्सा करने वाले आयु. युनि. के विद्वान सेवेटर वैद्य श्री धीरेन्द्र

☆ ☆ ☆ ☆ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

पी लगातार आयुर्वेद विकास के लिए कार्य करते रहते हैं। इच्छित सन्तान में वैद्य श्री हेमन्त दवे, वैद्य श्री दिलीप दत्त कार्य करते हैं। अर्श भगन्दर में वैद्य श्री रघु भाई दवे का का नाम आज प्रथम पंक्ति में लिया जाता है। एक्युपंक्चर चिकित्सा में वैद्य श्री शांति भाई यादव कार्य करते हैं। महाविद्यालयों के स्तर पर देखें तो प्रा वैद्य श्री जी के. दवे जो अखण्डानन्द आयु महाविद्यालय के आचार्य हैं वह पचकर्म निष्णात हैं। देश के प्रथम पंक्ति के पचकर्म निष्णात वैद्य श्री कस्तूरे भी विद्वान पुरुष हैं। चर्मरोग के निष्णात प्राध्यापक वैद्य श्री बी. डी नन्दुरबारकर, वैद्य श्री श्रीकांत लक्ष्मण देशपांडे, वैद्य श्री महेस्कर, वैद्य श्री बारोट जी हैं। वैद्य श्री बारोट जी ने तो केन्सर पर सशोधन किया है और जिनेवा जाकर अपना संशोधन पेपर भी पढा है। इस तरह देखें तो वैद्य श्री हरी भाई त्रिवेदी, वैद्य श्री पी. एस अ धुमात, लोदरा के विद्वान लेखक वैद्य श्री भानुप्रताप जी मिश्र, वैद्य श्री अविनाश झोपे का नाम आयुर्वेद विकास मे लिया जाना सर्वथा योग्य ही होगा।

वैद्य श्री शोभन वसाणी का नाम आज गुजरात मे प्रचलित है। श्री शोभन जी ने ६० ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित किये है। इसी तरह वडोदरा के विद्वान वैद्य श्री नवीन भाई ओझा अग्रिम स्थान पर हैं। वैद्य श्री नवीन भाई ओझा लेखक भी हैं और प्रतिमास एक पुस्तक आयुर्वेद कि विविध विषयों पर प्रकाशित करते हैं। इस तरह देखें तो गुजरात में सिर्फ एक ही व्यक्ति द्वारा आयुर्वेद का विकास नहीं हुआ है। अलग क्षेत्रो के निष्णात वैद्यों द्वारा यह कार्य होता रहा है और यह पवित्र कार्य पुरुष वैद्यों द्वारा ही हुआ है।

मैं यहा विस्तृत दृष्टि से यह लिखता हूँ। स्त्री पर कोई अन्याय करना मेरी विचारधारा में नहीं है। आज हम देखते हैं, अनुभव है कि अनेक स्त्री वैद्य तैयार हुई हैं और आयुर्वेद चिकित्सा व्यवसाय करती हैं। यह शुभ लक्षण है। स्त्री रोग अनेक हैं और समाज मे ऐसा भी है कि स्त्री रोग के लिए स्त्री रोग निष्णात ही होनी चाहिये। यह हम स्वीकार भी करते हैं। हमारा भावार्थ सिर्फ जो स्त्री केवल आयुर्वेद की चिकित्सा करती है, उनसे है। क्योंकि आज तो अनेक आयु स्नातिका आधुनिक चिकित्सा करती हैं, वह मनुष्य मात्र नहीं है। स्त्री होकर स्नातिका बनना और समाज मे प्रतिष्ठा पाकर केवल आयुर्वेद की चिकित्सा करना ही अति अभिनन्दनीय कार्य है। तो स्त्री वैद्य तैयार करने में और आयु. चिकित्सा करने का प्रोत्साहन देने वाले स्त्री रोग निष्णात ही हैं। उनमें वैद्य श्रीमती ईला बहन देशपांडे का नाम है। इनके अलावा बरोडा की मञ्जुला बहन श्रीवास्तव इत्यादि स्त्री अध्यापिका सतत चिन्तित हैं। परिणामत आज देखें तो सौन्दर्य चिकित्सा मे वैद्य नीता गोस्वामी ने अपना अधिकार आयुर्वेद द्वारा जमा लिया है। इस तरह केश के रोगों में इला शाह, उषा जानी आदि स्त्री रोग निष्णात के रूप मे चिकित्सा व्यवसाय करती हैं। शुरूआत शुभ है। आगे भी अन्य स्त्री रोग निष्णात, अलग अलग स्त्री रोग में आगे जरूर आयेंगी। जमाने की माग भी है और इस तरह से हमारा आयुर्वेद का नाम विश्व में आगे आयेगा।

साहित्य द्वारा पुरुष का योगदान—

समग्र भारतवर्ष में अनेक आयुर्वेदीय साहित्य प्रगट होते रहते हैं। उनमें धन्वन्तरि मासिक का नाम सर्वप्रथम ही लिया जाना जरूरी है। ६० वर्षों से धन्वन्तरि मासिक नियमित प्रकाशित होता है। और आदि से आज तक उनके सचालक पुरुष ही रहे हैं। इनके अलावा स्वास्थ्य, सचित्र आयुर्वेद, शुचि, आयुर्वेद विकास, आयुर्वेद सम्मेलन पत्रिका, अनुभूत योगमाला, स्वास्थ्य और सौंदर्य आदि का नाम राष्ट्रीय स्तर पर है और उन सबका संचालन पुरुषों द्वारा ही होता है और गुजरात मे देखें तो दुख के साथ लिखना पडता है कि कुछ ही मासिक का प्रकाशन होता है। भूतकाल में वैद्य कल्पतरु वैद्यो में प्रिय था। वह बन्द हो गया। सुश्रुत मासिक वर्षों तक प्रकाशित होकर बन्द हो गया। आयुर्वेद डाइजेस्ट ने अपना नाम सिर्फ तीन-चार वर्षो मे कमाया था। उसकी भी मृत्यु हो गयी। इसी तरह निरोगी श्रेयसी भी बन्द हो गया। आज केवल निरामय मासिक, चरक मासिक, जन आरोग्य और भिषक् प्रकाशित होते हैं। बम्बई से आरोग्य सिंधु प्रकाशित होता है।

पुरुष रोग चिकित्सा

ऐसा माना जाता है कि समस्त ब्रह्माण्ड में केवल पृथ्वी ग्रह में जीवन व्यवस्था है। अतः असंगिनित वर्षों से पृथ्वी लोक में जीवन पर संशोधन होता रहा है। कहा जाता है कि पृथ्वी लोक में ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण किया, विष्णु ने पालन किया और अनेक बार शिवजी ने संहार भी किया। भगवान विष्णु ने अनेक बार जन्म धारण कर आसवाद, पाप कर्म आदि का नाश किया, और समस्त जीवों की रक्षा की। वेदों मे भी यही ज्ञान है। हमारे शास्त्रों (आयुर्वेद) में तो जीवनोत्पत्ति, उसकी रक्षा, व्याधि निवारण पर जोर दिया है।

पृथ्वी लोक में सजीव और निर्जीव दो बातें मुख्य हैं। दोनों आपस में मिले हुये देखे जाते हैं। सजीव की व्याख्या क्या होती है? जिनमें जीव है, वह सजीव। प्राणी मात्र में जीव होता है, और शरीर बिना जीव सजीव नहीं है। जीव का आश्रय स्थान शरीर ही है, चाहे मनुष्य शरीर हो, चाहे पशु, पक्षी, जलचर, भूचर आदि शरीर हो, चाहे बडे प्राणी हो, चाहे अति सूक्ष्म जन्तु हों। सबमे शरीर होता है, और उस शरीर मे जीव का आश्रय होता है, तब वह शरीर सजीव बनकर जीवन बनता है।

जब 'धन्वन्तरि' मासिक पत्रिका के संचालक डा० दाऊदयाल गर्ग का पत्र प्राप्त हुआ कि सन् १९८७ में "पुरुष रोग चिकित्सा" प्रकाशित करना होगा और उसका विशेष सम्पादन आपको करना होगा। अतः आप प्रस्तावित विषयानुक्रमणिका भेजें। मैंने पुरुष शब्द पर जोर दिया। आज तक मैं जानता हूँ कि अब तक पुरुष पर विशेष विश्लेषण नहीं है। अतः इस में पुरुष पर विद्वानों ने विद्वतायुक्त विश्लेषण किया है। विषयानुक्रमणिकानुसार लगभग सभी विषयों पर लेख आये हैं, और जिस विषय का लेख नहीं आया है, उसकी पूर्ति मैंने स्वयं कर दी है, ताकि विषय शेष न रह जावे।

धन्वन्तरि मासिक मैं वर्षो से पढ़ता हूँ। अत. मानसिक से धन्वन्तरि के संचालक महोदय डा० गर्ग जी से परिचित था। दो वर्ष पहले धन्वन्तरि का संकट-कालीन चिकित्सांक प्रकाशित हुआ था, उसमें लिखने हेतु धन्वन्तरि के भावे भावे लेखक और वोदरा (गुजरात) के आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राध्यापक वैद्य श्री भानुप्रताप जी मिश्रा ने मुझे निमन्त्रण दिया। हिन्दी मे लिखने का प्रथम प्रयास था। मैंने लेख श्री मिश्राजी को भेजा, और उन्होंने विशेष सम्पादक वैद्य श्री गिरिधारीलाल मिश्र को भेजा। लेख प्रकाशित हुआ। मैंने डा० गर्ग जी का आभार माना। तब से प्रत्यक्षतया डा० गर्ग जी से सम्पर्क में आया। सामान्य अंकों के लिए लेख मांगा गया। मैं भेजता रहा, प्रकाशित भी होता रहा। जब मार्च ८६ में डा० गर्गजी का पत्र आया कि पुरुष रोग चिकित्सा ८७ में प्रकाशित होगा, उनका सम्पादन आप कर सकोगे? मैं मूलत गुजराती भाषा का लेखक हूं। वर्षो से लिखता हू। हिन्दी में विशेष सम्पादन कठिन है, फिर भी मैंने स्वीकार कर लिया। और भारत के विद्वानो से सम्पर्क किया। मुझे आनन्द है कि इस पुण्य कार्य में सभी विद्वानो ने सहायता की है। गुजराती में तो विशेष सम्पादन कार्य मैं जानता हू अब हिन्दी में प्रथम बार ही हुआ, अतः गुजरात के विद्वान लेखकों और वैद्यो ने उत्साहवर्धक सहायता प्रदान की।

वर्तमान समय में पुरुषों मे नपुंसकता, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन और ध्वजभङ्ग आदि रोग अधिक दृष्टिगोचर होते देखे जाते हैं। अत इन विषयों में एक से अधिक लेख लेना उचित समझा गया है। अनेक विद्वानों और वैद्यो ने लिखा और कहा कि यह काम वासना ग्रन्थ है, ये मान्यता ठीक नही है। पुरुष सम्बन्धी अनेक रोग है, जो ग्रन्थ में दिये गये हैं। अत काम (सेक्स) वासना ग्रन्थ न कहकर पुरुष (नर) रोग शब्द सर्वदा उचित है।

मैं विद्वान नहीं हू, सिर्फ आयुर्वेद का सेवक ही हूँ। अत. इस मे त्रुटि रह गई हो तो मैं आयुर्वेद जगत से क्षमाप्रार्थी हू। मैंने अपनी शक्ति अनुसार और स्वल्प-बुद्धि से कार्य किया है। ऋषिऋण अदा किया है।

आभार—सर्वप्रथम तो मैं धन्वन्तरि के प्रमुख सम्पादक महोदय डा० श्री दाऊदयाल जी गर्ग का विशेष आभार मानता हूँ। क्योंकि "धन्वन्तरि" मासिक भारत प्रसिद्ध पत्रिका के रूप में और प्रतिष्ठित रूप मे प्रकाशित होता है और उसकी विशेष प्रतिष्ठा भी है। इसके लेखन एवं सम्पादन का कार्य मुझे दिया और प्रतिभा

सम्पन्न मालिक में कार्य करने का निमन्त्रण देकर मुझको ऋणी बनाया। इस बात से मैं अपना सौभाग्य समझता हूं। अत. डा० श्री गर्गजी का मैं ऋणी हू, और मानपूर्वक डा० महोदय का विशेष आभार व्यक्त करता हू। जिन विद्वानों और लेखकों का लेख मिला उन सबका मैं ऋणी हूं, और "धन्वन्तरि" के इस महा कार्य में मुझे साथ सहकार दिया उन सभी विद्वानों का मैं हार्दिक आभार मानता हू। इसमे भी वाराणसी के महा विद्वान और आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित परमादरणीय श्री आचार्य विश्वनाथ जी द्विवेदी जी ने कृपा कर लेख भेजा, मैं सौभाग्य समझता हूँ, उनका मैं हार्दिक नमस्कार पूर्वक आभार मानता हूं। वैद्य श्री भानुप्रताप जी मिश्र, जो मेरे परम मित्र भी हैं, उन्होने अपने लेख तथा अन्य गुजराती लेख (शोभन जी वसाणी कृत) अनुवाद कर भेजकर सहायता प्रदान की, तथा गुजरात आयु० विश्व-विद्यालय के सेनेटर तथा सिन्डिकेट मेम्बर और प्रसिद्ध वैद्य श्री डी० टी० जोशी ने तो गुजरात भर मे अपने प्रवास के दौरान इसका और 'धन्वन्तरि' का प्रचार किया और लेख भेजने को अनेक लेखकों से आग्रह किया और इस सम्बन्ध मे श्री जोशीजी पत्र लिखकर मुझे अवगत कराते रहे, उन दोनों विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

समर्पण—मैंने यह महाग्रन्थ युवा वैद्यों को अर्पण किया है। क्योंकि आयुर्वेद की भविष्य की धुरी आज के युवा वैद्यो पर निर्भर है। जिन युवाओं ने आयुर्वेद के स्नातक होकर आयुर्वेद को अपनाया है, और अपनायेंगे उन युवा वैद्यों को यह ग्रन्थ सादर समर्पित करता हू।

अपेक्षा—यह ग्रन्थ चिकित्सक समाज, आयुर्वेद के छात्रों और सामान्य जन समाज को पथ दर्शक बनेगा ऐसा विश्वास है, अपेक्षा भी है।

अन्त मे भारत के सभी आयुर्वेद विद्वानो को नमस्कार कर विशेष आभार प्रकट करूगा, और सभी विद्वानों से प्रार्थना भी करता हूँ कि भविष्य में आपका शुभाशीर्वाद मुझे मिलता रहे। ।।अस्तु।।

जय आयुर्वेद···· ·············जय धन्वन्तरि।

भाद्रपद कृष्ण जन्माष्टमी
२७ अगस्त १९८६

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज, आयुर्वेदाचार्य बी० एस० ए० एम०
लेखक एवं संकलनकर्ता– पुरुष रोग चिकित्सा"
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर,
मु० सावर कुण्डला ३६४५१५ (भावनगर) गुजरात

—o✤o—

पुरुष का महत्व

डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी वैद्य, के ३०/६ घामीटोला वाराणसी (उ० प्र०)

— ०ô० —



अनेक महाकाव्यो के सम्पादक, विभिन्न विषयों के मौलिक ग्रन्थों के रचयिता, आलोचक, व्याख्याकार, टीकाकार, मस्कृत के आशुकवि विविध पत्र पत्रिकाओ के सम्माननीय लेखक — डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी मूलत नैनीताल के निवासी हैं। विगत ४० वर्षों से आपने विविध विषयक ज्ञानपिपासा की शान्ति के लिये काशी को अपना उपासना क्षेत्र बना लिया है। काशी से अन्यत्र अनेक सम्मानित पदों का समय समय पर आस्वाद करने के बाद भी आपका अटल अनुराग काशी के प्रति है।

आप आयुर्वेद, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष आदि विषयों के विद्वान हैं। चरक संहिता पर आप द्वारा लिखित 'चरक-चन्द्रिका' हिन्दी टीका आपकी चतुरस प्रतिभा का सम्यक् परिचय देती है। आयुर्वेद के विद्वान कविराज लोलिम्बराज के सम्पूर्ण साहित्य को प्रकाश में लाकर आपने जो आयुर्वेद की सेवा की है, वह आपकी अनुपम देन है। यही कारण है कि आपकी अनेक रचनाए समय-समय पर राजकीय संस्थाओ द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं।

आप 'धन्वन्तरि' के जाने माने पुराने स्थायी आधार स्तम्भ लेखक हैं। धन्वन्तरि को आपने अपना ही समझा है। 'धन्वन्तरि' परिवार आपके प्रति विविध अपेक्षा रखते हैं जो मूलत आयुर्वेद के विकास के प्रति हो। विविध विषयो के उत्कृष्ट विद्वान को हमारा नमस्कार। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

'पुरुष' शब्द का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, वह वैदिक वाङ्मय में ईश्वर तथा आतमा से सम्बन्धित है और लौकिक साहित्य में इससे भिन्न है। कुल मिलाकर इसका क्षेत्र है परमात्मा से लेकर कीट पर्यन्त। प्रस्तुत निबन्ध में हम विविध दृष्टिकोणो को लेकर इसी विषय की चर्चा करेंगे। कोष साहित्य में यह शब्द ह्रस्व दीर्घ भेद से दो प्रकार का दृष्टिगोचर होता है—१ पुरुष और पूरुष।

पुरुष शब्द की निरुक्ति—

पुरुष—'पुरति, पुरअग्रगमने धातु से उणादि 'कुषन्' ४।७४ प्रत्यय करने पर 'पुरुष' शब्द सिद्ध होता है। पूरुष-पूरी आप्यायने धातु से बाहुलकात् उणादि कुषन् प्रत्यय करने पर दीर्घादि 'पूरुष' शब्द सिद्ध होता है। सांख्यशास्त्र में कहे गये प्रकृति-पुरुष जिस प्रकार एक दूसरे का पूरण करते हैं, उस दृष्टिकोण का सूचक यह 'पूरुष' शब्द है, क्योकि यह 'पूरयति आप्यायते' इस अर्थ का द्योतक है।

दर्शनशास्त्र की दृष्टि से पुरुष—वैदिक वाङ्मय को तल स्पर्शी दृष्टि से देखने और समझने के लिये ही दर्शन शास्त्रों का उद्भव माना जाता है। अत. हम सर्वप्रथम एक वैदिक मन्त्र को प्रस्तुत करते हैं—'पुरुष एवेद सर्वं यद्भूत यच्च भव्याम्,' ऋग्वेद, श्रीमद्भगवद्गीता का पुरुषोत्तम योग नामक १५ वां अध्याय उसी परम पुरुष की चर्चा करता है। इसके अतिरिक्त गीता अध्याय ८।२२ तथा १३।२०,२१ का भी इस प्रसंग में विवेचन महत्वपूर्ण है।

साख्यमत—ससार की रचना करने वाली मूलभूत प्रकृति किसी की कार्य नहीं है, अपितु वह समस्त चराचर रूप विश्व की कारण है और महद् आदि सात पदार्थ

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

किसी के कारण, किसी के कार्य दोनों माने गये हैं, १६ पदार्थ (५ बुद्धिन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, १ मन, ५ महाभूत) कार्य ही होते हैं और पुरुष न किसी का कारण है न किसी का कार्य है, वह निर्लेप है। तात्पर्य यह है कि सांख्यशास्त्र में सामान्यतः चार पदार्थ माने गये हैं–१ कारण, २ कार्य, ३. कार्यकारणोभयरूप, ४. कार्यकारणानुभयात्मक, जिनमें कारणभूत पदार्थ केवल प्रकृति है और कार्यभूत पदार्थ सोलह हैं और १. महत्, १. अहंकार तथा ५ तन्मात्राए ये ७ पदार्थ कारण-कार्य (उभय) रूप हैं, पुरुष अनुभयात्मक है। इस प्रकार इन चार प्रकार के पदार्थों के ही २५ भेद हो जाते हैं। आगे चलकर व्यक्त अव्यक्त का आपस में साधर्म्य है किन्तु पुरुष के साथ इसका वैधर्म्य कहा गया है। सांख्य शास्त्र मे आत्मा को ही जीवात्मा मानने का प्रयास किया है, देखें–सांख्यकारिका १७। इसके अनन्तर पुरुष के एकत्व, बहुत्व विषयक चर्चा को उपस्थित किया गया है, २१ वी कारिका मे पुरुष और प्रकृति का सम्बन्ध क्यो और कैसे होता है, इस विषय की चर्चा प्रस्तुत करते हुए इस निष्कर्ष पर आते हैं कि इनके इस प्रकार के सम्बन्ध से भोग और अपवर्ग रूप लक्ष्य की सिद्धि हो जाती है।

स्मृति-पुरुष चर्चा—

सृष्टि का यह नियम है कि चौरासी लाख योनियो में उत्पन्न सभी प्राणी सुख पाना चाहते हैं, इन सब में पुरुष ही एक योनि है, जो अपने पुण्य कर्मों द्वारा सुख की प्राप्ति कर सकता है। शेष सभी भोग योनियां हैं, जिनमें पैदा होकर प्राणी अपने किये हुए कर्मों का मात्र भोग कर सकता है। इसीलिये कहा गया है—

'कदाचिल्लभ्यते जन्म मानुष्य पुण्यसञ्चयात् ॥' और भी-
'नरत्व दुर्लभ लोके'······ ···। अग्निपुराण,

जब ब्रह्माजी ने लोकवृद्धि के लिये चारों वर्णों की सृष्टि की, तदनन्तर उन्होंने अपने शरीर से पुरुष और स्त्री की सृष्टि की। देखें–मनुस्मृति अ. १।३२। आगे इसी पुरुष को महामानव मनु ने सर्व समर्थ कहा है। वही–७।१७।

पुराण-पुरुष—

विराट् पुरुष जिसे अमरसिंह ने 'क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष' अमर कोष १।५।२९ कहा है, उसी का वर्णन श्रीमद्-भागवत–१,३,१, २,१,२५-३९ तथा वायु पुराण ५९,७६ में देखें। यह अदृश्य, अकर्त्ता, असग एवं चेतन पदार्थ इस वर्णन के लिये देखें–भाग० ११,१६,३७; २४,४,५ यह हृदयाकाश में निवास करता है–भागवत २,२,८-१३ वायु० ४,४४। इसी से हिरण्मय अण्ड की उत्पत्ति ४ भाग०-२,५,३५-४२। इसी से यज्ञ की उत्पत्ति हुई, भाग २,६,१,२७। पुरुष से ही आगे की सृष्टि का विस्तार हुआ भाग० २,६,२८-३१, विष्णु पुराण–१,२,१४-१५, ६, ४, ४६। यह ईश्वर और प्रकृति का प्रथम अवतार है भाग० २,६,४१, वायु०-५,२०, २९,३२। ब्रह्मा, शिव, यज्ञ, प्रजापति, लोकपाल, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, राक्षस, नाग, दैत्य, दानव, सिद्ध आदि सब पुरुष के अवतार हैं, भाग०-२,६,४१। पुरुष की शक्ति, भाग०-१२,४,२२। श्रीकृष्ण और बलराम पुरुष अवतार थे, भाग०-१०,३८, १५,३२। इस प्रकार प्राचीन साहित्य मे उपलब्ध पुरुष का सक्षिप्त परिचय उपस्थित कर अब हम आयुर्वेदोचित चिकित्सा पुरुष का यहाँ कुछ वर्णन उपस्थित करेंगे।

आयुर्वेद मे पुरुष—

लोक तथा साहित्य मे पुरुष को प्रधान या स्वाधीन और स्त्री को पुरुष का पूरक तत्व या पराधीन के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु कविवर शूद्रक ने अपने शब्दो द्वारा पुरुष अथवा स्त्री का स्वरूप सम्पन्नता एव विपन्नता की स्थिति द्वारा निर्धारित किया है—

'अर्थत पुरुषो नारी या नारी सार्थत. पुमान्',
मृच्छकटिक ३।२७।

चारुदत्त कहता है—पैसे, धन सम्पत्ति के कारण ही मानव पुरुष (पौरुष शक्तियुक्त) होता है, वही धन न होने से दूसरे के आश्रय मे रहने वाली स्त्री की भाति पराधीन हो जाता है। आप भी आंख खोलकर देखें, क्या यह सच है? महर्षि आत्रेय ने 'कतिधापुरुषीय शारीर' नामक च. शा अ १ के १६ वें पद्य मे पहले तो अन्य शास्त्रीय पुरुष की चर्चाकर अचिकित्स्य पुरुष को प्रस्तुत किया है, तदनन्तर इससे भिन्न एक चेतना प्रधान पुरुष को भी इस प्रकार स्वीकार किया है—

खादयश्चेतनाषष्ठा धातव पुरुष. स्मृतः।
चेतनाधातुरप्येक स्मृत पुरुषसज्ञक ॥

—शेषांश पृष्ठ ५० पर देखें।

पुरुष [नर] का महत्व

आयुर्वेद चक्रवर्ती श्री ताराशङ्कर वैद्य, प्रधानाचार्य–श्री अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय, रामपुरी–जगतगंज, वाराणसी–२

सहस्रों वर्षों से वाराणसी विद्या का धाम रहा है। यह संतों एवं विद्वानों की भूमि है। आयुर्वेद का श्रेष्ठतम धाम है। अनेक आयुर्वेदज्ञों ने यहां से उनकी ध्वजा लहराई है। उनमें आयुर्वेद चक्रवर्ती श्री ताराशंकर जी वैद्य का नाम अग्रिम स्तर पर लिया जाता है। आप उच्चकोटि के विद्वान एवं आयुर्वेदज्ञ हैं। अत्याग्रह से आपने 'पुरुष का महत्व' विषय पर लेख भेज कर उपकृत किया है। लेख श्रेष्ठतम है, विचारणीय है। आशा करता हूँ कि इस तरह श्री वैद्य जी बार-बार ऐसे विषय आयुर्वेद संहिता में से खोजकर मार्गदर्शन देते रहेंगे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

तत्र पुरुष प्रधानम्–भगवान धन्वन्तरि ने कहा है—

तत्र पुरुषः प्रधानम् तस्योपकरणमन्यत् तस्मात् पुरुषोऽधिष्ठानम्। —सु. सू. १।२२

अर्थ स्पष्ट है। यहां पुरुष की व्याख्या इस प्रकार है—

अस्मिन् शास्त्रे पंचमहाभूत शरीरिसमवाय पुरुष इत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया, सोऽधिष्ठानम्।

—सु सू १।२२

तत्र चतुर्विधोभूतग्राम' स्वेदजाण्डजोद्भिज्जजरायु सञ्ज्ञ। तत्र पुरुषः प्रधानम्' ...... —सु० सू०

तात्पर्य यह है कि पञ्चमहाभूत और शरीरी (जीव या आत्मा) के अविच्छिन्न सम्बन्ध को पुरुष कहते हैं। इसी मे चिकित्सा या समस्त क्रिया होती है। और वही चिकित्सा आदि कर्मों का अधिष्ठान है। उसीके अन्तर्गत स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायु संज्ञक प्राणियों के समूह हैं। उन प्राणियों मे पुरुष (मनुष्य) प्रधान है। शेष प्राणी उसके उपकरण (साधन) हैं। इसलिए पुरुष चिकित्सा शास्त्र का अधिष्ठान (प्रधान अधिकारी) है।

निरुक्ति के दृष्टिकोण से विकास परम्परा में नवनीया शरीर रूपी पुरी के निवासी को पुरुष कहते हैं। इसके पर्यायवाची शब्द हैं—

पुमान अथवा नर। ईश्वर, जीव, प्राणी और मनुष्य अभिनव शरीर (उपक्रम प्रकरण)

वह सर्वत्र शरीरधारी, विश्वकर्मा, विश्वरूप, चेतना अतिन्द्रीय नित्ययुक्त एवं समनुशय है। —च शा २।३२

यद्यपि उपर्युक्त पुरुष शब्द का स्पष्ट तात्पर्य पुलिङ्ग और स्त्री लिंग (नपुंसक की चर्चा विस्तारभय से नहीं की जा रही है।) वाची समस्त प्राणियों से है। तथापि सामान्य रोगों की चर्चा समस्त चिकित्सा साहित्य मे पुरुष (नर) को अधिकृत करते हुए की गई है। और, नारी के विशेष रोगों का प्रकरण संक्षिप्त रूप से पृथक दिया हुआ है। अर्थात् सामान्यतः पुरुष (नर) को महत्व दिया गया है। सृष्टि प्रकरण में भी 'सत्वरजस्त-मसां साम्यावस्थाप्रकृति.' से प्रारम्भ कर समस्त अदृश्य भावों के पश्चात दृश्य भावों में पुरुष को ही एकमात्र स्थान दिया गया है। इसमे स्त्रीलिङ्ग का अन्तर्ध्यान होते हुए भी यह पुल्लिंग है। पुरुष (आत्मा या जीव) नर नारी दोनों में हैं। परन्तु सभी पुल्लिङ्ग हैं। पुरुष-नारी की समानता का नगाडा चाहे जितने जोर से चाहे जहां पीटा जाय मौलिकता यह है कि सर्वत्र सब समय नर की महत्ता को स्पष्ट स्वीकार किया गया है।

प्राय. समस्त वर्णन पुरुष या नर को समक्ष रखकर किया गया है।

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

नर शब्द नृ नये धातु से बना है जिसका अर्थ है, "नयन्ति पूर्व पुरुषानुत्तमा गति" इति नरा । पुरुष ही पूर्वजों को उत्तम गति देता है, यह सकल्प है । इसका विकल्प मात्र ही नारी है । इस प्रकार से साहित्य और वर्णन से नर का महत्व अधिक है ।

बीज प्रधानम्-विश्व जानता है कि बीज प्रधान होता है क्षेत्र नही । स्पष्ट है कि मटर के खेत मे गेंहू का बीज बोया जाय तो फल या अन्न का नाम सर्वत्र गेंहू ही होगा मटर नही । किसी भी वाटिका का फल कहीं भी वाटिका के नाम से नहीं पुकारा जाता । बीज के नाम से पुकारा जाता है जैसे आम का फल, केला का फल आदि । स्पष्ट है जिस वीर्य (बीज) से गर्भाधान होता है उसी के नाम से गर्भ से उत्पन्न शिशु की जाति, गोत्र, अधिकार आदि मान्य होते हैं क्षेत्र या नारी के नाम से नहीं । यत वीज या वीर्य नर का है इसलिये उसका महत्व नारी से अधिक है ।

विश्व के विधान मे प्रत्येक प्रपत्र मे पिता या पति का कालम बना होता है । माता या पत्नि का नाम कही नहीं होता । सामान्यत अधिक अधिकार सेवा या नौकरी पिता के नाम पर होते हैं । सम्पत्ति का अधिकार भी अधिकाशत पिता के नाम मे होता है । प्राय पैतृक सम्पत्ति का उल्लेख होता है मातृक सम्पत्ति का नाम प्राय नही होता है । उत्तर प्रदेश या विहार या अन्यत्र ननवासा (मातृपक्ष) से छिटपुट स्थानो मे होता है । जो इतना नगण्य होता है कि उदाहरण या तर्क के रूप मे उपस्थित नही किया जा सकता ।

नर ऊपर-प्राणियों अथवा नर-नारी की सबसे बड़ी इच्छा प्राणैषणा के व्यास से सन्तानैषणा है । उसकी पूर्ति मे शारीरिक रचना के कारण नर को ऊपर और नारी को नीचे ही रहना है । विना इस प्रकार के सन्तान या सृष्टि की रचना प्राय हो ही नही सकती । सूर्य के समान स्पष्ट है कि प्रकृति ने नर को ऊपर एव नारी को नीचे स्थान दिया है । इसी न्याय के कारण ज्ञान विज्ञान मे अगुलिगणनीय महिलाओं का नाम श्रेष्ठता के क्रम मे आता है । इसी प्रकार ज्ञात इतिहास मे बडे-बडे युद्धों को जीता है । प्रसिद्ध सभी आविष्कार या सिद्धान्त प्रायः पुरुषों (नरों) की देन हैं । २-३ शती मे शासन में इनी-गिनी महिलाओं का नाम आया है जबकि नरों के नामों की बहुत लम्बी तालिका प्राप्त है । नारी जननी है, मां है, वन्दनीय है पर शिव, राम और कृष्ण के कारण पार्वती, सीता और राधा का नाम है । किसी स्त्री के नाम मे किसी पुरुष का नाम रोशन नहीं हुआ है । अपने देश और विदेश में सर्वत्र यही स्थिति है ।

अपने देश में एक अति विशेष नाम सावित्री का है जिसके कारण उसके पति सत्यवान को लोग जानते हैं । पर ऐसा उदाहरण हमारी जानकारी में अन्य नही है । इसका भी कारण उसकी पति भक्ति ही है । पति के कारण ही उसने यमराज को पराजित किया ।

बलात्कार—नर-नारी का सबसे बड़ा नाता मैथुन का है और नारी के हजार न चाहने पर भी नर चाहे तो मैथुन कर सकता है इसी को बलात्कार कहा जाता है । भले ही नर को विधान दण्डित कर दे पर विधाता ने तो उसे बलवान और महत्वपूर्ण बनाया ही है । यह भी ज्ञातव्य है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । तथापि नर बीस ही है और नारी को उन्नीस ही रहना है ।

यह भी ज्ञातव्य है कि गर्भ मे शुक्र पितृज भाव है । शुक्र का ही नाम वीर्य या बल है । दूसरी ओर यह कहा गया है कि—"शुक्रायत्त बल पुर्सा" (पुरुषों का बल शुक्र के आधीन है ।) रज या आर्तव को बल या वीर्य नहीं कहा गया है । इससे सिद्ध होता है कि शुक्र या बल नामक सम्पत्ति का एकमात्र अधिकारी होने के कारण नर-नारी से बलवान है ।

'स्वातन्त्र्य पारतन्त्राभा व्याधे प्राधान्यमादिशेत्" के आधार पर व्याधि या किसी भी वस्तु की प्रधानता उसकी स्वतन्त्रता में है । और नारी अपने नारीत्व अथवा मैथुन मे नर के आधीन है इसलिए वह अप्रधान और नर प्रधान है ।

यहाँ आदर का प्रश्न नहीं है, आदर्श का भी प्रश्न नही है अपितु प्रश्न है व्यवहार का, वास्तविकता का । इसकी तुला पर तुलने से पुरुष का (नर का) पलड़ा भारी ही पडेगा ।

पुरुष-प्रसव की प्राचीन विद्या

लेखक—डा॰ ईश्वरलाल आर दवे,
हिन्दी अनुवाद—वैद्य अशोकभाई तलाविया भारद्वाज

—✱✤✱—

उर्वशी पुरुष के प्रसव से पैदा हुई प्रथम संतान—

अभी आधुनिक विज्ञान ने शोध की है कि जिस तरह स्त्री प्रसव द्वारा बालक को जन्म देती है, उसी तरह पुरुष भी प्रसव द्वारा बालक को जन्म दे सकते हैं। गत सप्ताह से यह आधुनिक शोध का समाचार आ गया है। यह एक क्रान्तिकारी शोध है। इसके सामाजिक और कानूनी नतीजा अनेक हो सकते है, जो पुरुष के प्रसव द्वारा बालक हुआ तो मातृत्व का दावा किस का रहे ? पिता को माता मान सके कि नहि ? अब तक प्रसव का भार मात्र स्त्री पर था। अब शायद स्त्री इस भार को त्याग दें, ऐसा संयोग पैदा हुआ है। और भी कानून से प्रसव की रजा मिल सकेगी और इसके लिए सरकार ने नया कानून करना होगा।

स्त्री के पेट में कोई गुप्त बात टिक नहीं सकती, ऐसा कहा जाता है। मगर स्त्री के पेट मे गर्भ व्यवस्थित रहता हैं। अब आधुनिक विज्ञान कह सकता है कि किसी का प्रदान हुआ अण्डबीज को शुक्राणु द्वारा शरीर के बाहर फलित कर सकते हैं। इस तरह बाहर फलित हुआ गर्भ पुरुष के शरीर मे डालकर उनका पोषण (पालन) कर सकते हैं। और नव मास तक उसका पालन हो सकता हैं, और नव मास बाद उसका शल्यकर्म द्वारा बालक का जन्म हो सकता है। विज्ञान पुरुष को आश्वासन देता है कि इसमे उसको खास कोई वेदना नहि होगी। यह शल्यकर्म साधारण है। पुरुष के पेट मे अगर वृक्क मे (किडनी) कहीं भी गर्भ को रख सकते हैं। और हार्मोन चिकित्सा से पुरुष मे कुछ फेरफार कर सकेंगे। जो अपना मूल पुरुष के पेट एवम् वृक्क में इसके लिए अनुकूलता नहीं होगी तो अन्य किसी पुरुष की किडनी एवम् पेट किराये पर रख सकेंगें। बाद में यह बालक किसका रहे, यह प्रश्न होगा। हार्मोन चिकित्सा से पुरुष भी इस तरह माता बन सकेंगे।

आधुनिक विज्ञान ने इस तरह पुरुष प्रसव की यह शक्यता बताई है। अब तक यह गभीर प्रयोग आधुनिक विज्ञान ने किया नही है।, मगर प्राचीन युग मे सफलतापूर्वक ऐसा प्रयोग हुआ है–इनका दृष्टात मिलता है। पुरुष-प्रसव द्वारा पैदा हुई प्रथम सतान शायद "उर्वशी" है। 'उर्वशी' का मतलब 'उर-वसी' यह कल्पित व्युत्पत्ति देते हैं, यह ठीक नही हैं। उर्वशी का अर्थ है–उरु मे से (जघा मे से) जन्मी है–वह उर्वशी स्वर्ग की विख्यात अप्सरा है। ब्रह्माड पुराण की कथा अनुसार इसका जन्म नारायण की उरु से हुआ था।

नर-नारायण के तपोभग के लिए इन्द्र ने स्वर्ग की अप्सरायें भेजी थी। इसमे न लुब्ध हुआ नारायण ने स्वय अपनी जघा मे से उर्वशी पैदा की। इनका अद्भुत सौंदय देखकर स्वर्ग की अप्सरायें पराजय होकर पस्त हुई। दूसरी सुन्दर स्त्रिओं को भी नारायण नें पैदा करके इन्द्र को भेंट में दी।

उर्वशी बदरिकाश्रम मे पुष्प चुनती थी, तब उनके सौंदर्य देखकर मित्र एवम् वरुण धैर्य खो बैठे। उनका स्खलित वीर्य मे से अगस्त्य और वशिष्ठ पैदा हुए। ऐसी कथा भागवत और मत्स्य पुराण में है। नारायण की जघा में से पैदा हुई उर्वशी विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी।

जघा में से उनकी प्रसूति मे बिलकुल तकलीफ नही हुई थी। जघा कदाचिद् गर्भ को पोषण पहुंचाने का योग्य अवयव होगा। आधुनिक विज्ञान ने अब तक जघा का विचार नहीं किया। मगर उर्वशी के दृष्टात से आधुनिक विज्ञान जघा के प्रयोग की शक्यता का विचार कर सकता है।

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

जघा में से पैदा हुए ऋषि थे "और्व ऋषि"। भृगुवश दके ऋषिओं का नाश करने के लिए क्षत्रिय अत्याचार कर रहे थे। भृगुवश की ऋषि पत्निओ के गर्भ नाश के लिए वह त्रास देते थे। इनमे से एक ऋषि पत्नी ने अपना गर्भ जघा मे पाल रखा था। त्रासवादियो ने पीछा किया तव गर्भ जघा में से निकल गया। उरु मे से जन्मा हुआ यह "और्व" मे जन्म से इतना वडा तेज प्रकट हुआ कि मारने वाले अन्धे हो गये। और्व ने क्षत्रियों के नाश के लिए प्रचड वेग से कार्यारम्भ किया। उनका रोप प्रबल था। और्व ने अपनी जघा मे से अग्नि पैदा किया, और वह क्षत्रियों को नाश कर देता, मगर पितृओ ने उनके क्रोध को शांत किया। इस अग्नि को समुद्र मे डाला गया, वह वडवानल से प्रसिद्ध हैं। भृगुओं को जघा मे गर्भ का पालन करने की विद्या का ज्ञान होगा। महाभारत के आदि पर्व में तथा ब्रह्माड पुराण मे और्व की कथा है।

पुरुष को हुआ गर्भाधान और पुरुष प्रसव का दृष्टांत "माधाता" का है। भागवत तथा विष्णु पुराण में उनकी कथा हैं। युवानाध राजन को सतान नही थी। उनकी एकसो पत्निया थी। ऋषियों के आदेश से उसने यज्ञ किया। ऋषियों द्वारा मत्रित जल कुम्भ मे रखा था। एक रात्रि को तृषातुर राजा ने भूल से यह मत्रित जल पिया। वह जल पीने से राजा को गर्भ रहा। सगर्भावस्था मे उनकी रानिया उनको भूतडा और मिट्टी भी खाने को देती थी। रानिया राजा की मश्करी करते-करते दोहद में जो कुछ चाहिए वह खाने को कहती जाय। विचारा राजन शर्म से भूतडा और मिट्टी मागता जाय। दसवाँ मासे राजा को पुत्र पैदा हुआ। पेट के दाहिने भाग मे से गर्भ वाहर निकाला गया। वालक किससे दुग्धपान करे, यह प्रश्न खडा हुआ। पुरुष प्रसव की इस घटना मे इन्द्र ने मदद की। इन्द्र ने कहा कि यह मुझसे दुग्धपान करेगा। (मा धाता) इन्द्र की अगुली से धावकर वह वडा हुआ। इन्द्र की अगुंली में से दुग्ध व पोषक प्रवाही पदार्थ मिलता होगा। इन्हे "मा धाता" कहा, उस पर से पुत्र का नाम "माधाता" रखा गया। यह माधाता आगे विश्वविजेता भी बना। अत बहुत एश्वर्ययुक्त विजेता को हमारे यहा 'मांधाता' कहने का रिवाज है। "देखा ! अब बटा माधाता हो गया है तो !" यह माधाता का जन्म पुरुष के गर्भ धारण और पुरुष के प्रसव मे से हुआ था। पुरुष के प्रसव मे से हुई उर्वशी और माधाता इन दोनों ने अपनी तरह से विश्व में डका वजाया था। अगुली द्वारा इन्द्र के शरीर मे से पोषण मिलने का दृष्टात भी भविष्य की शोध के लिए दिग्दर्शित है।

एक स्त्री के गर्भ में से गर्भ लेकर दूसरी स्त्री के गर्भ में परिवर्तित (ट्रान्सफर) करने का दृष्टात भी प्राचीन युग मे हुआ है। भगवान महावीर पहले ब्राह्मण ऋषभदत्त की पत्नी देवनदा के गर्भाशय मे गर्भ स्वरुपे थे। वहां से क्षत्रिय सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशला के गर्भ में उनका स्थमान्तर हुआ। स्वर्ग के शक की इच्छानुसार कार्य-वाही हुई। यह स्थलान्तर का कार्य स्वर्ग के सेनानी हरिणांगमेषी को सौपा था। इस पर मे ज्ञात होता है कि प्राचीन युग मे गर्भ के स्थलान्तर की विद्या भी होगी।

किन्ही किरणो द्वारा स्त्री के गर्भ का नाश करने की विद्या भी होगी। अश्वत्थामा ने अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ मे रहे हुये वालक का नाश करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था। भगवान कृष्ण ने वीच मे सुदर्शन चक्र रखकर ब्रह्मास्त्र को वापिस भेजा था। इसी लिए वह रक्षित वालक परीक्षित कहलाया।

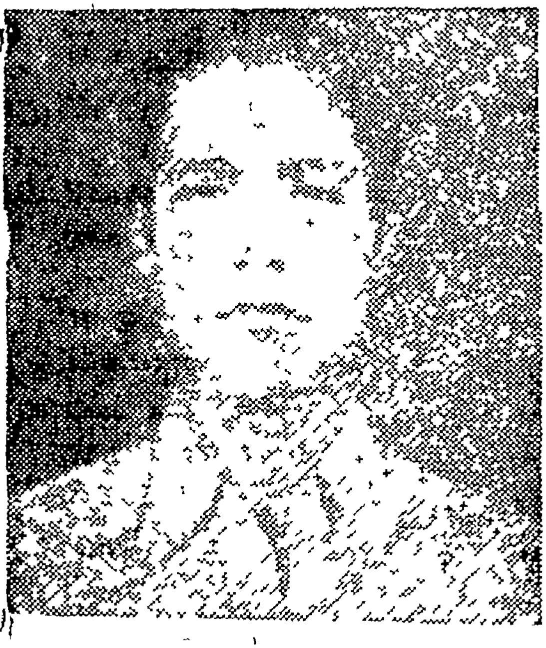
इस तरह पाण्डु वश के एकमात्र वारिस को भगवान कृष्ण ने बचा लिया। गर्भ रहा हुआ बालक की इस तरह से रक्षा की विद्या भी थी।

यह पुरानी विद्याए अब नये स्वरूप मे आ रही हैं। जो पुरुष के प्रसव की विद्या का प्रयोग आधुनिक युग में सफल होंगे, तो स्त्री पुरुष के सम्बन्ध मे ही क्राति आयेगी। स्त्री कहेगी कि अब प्रसव का भार मुझे नही चाहिए। हमने बहुत युगों से प्रसूति की वेदना सहन की हैं, अब आप पुरुष यह आनन्द लीजिये। युवनाश्व राजा का दृष्टात परीक्षार्थ मौजूद है।

सदर्भ—गुजरात समाचार-दैनिक-विज्ञान पू
दिनाक ३१-५-८६ से साभार अनु

।। ब्रह्मचर्य ।।

वैद्य श्री गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिषगाचार्य, साहित्य रत्न
काव्यतीर्थ, आयु वृह., पचार (सीकर) राजस्थान



श्री वैद्य गोपीनाथ जी पारीक आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य हैं। धन्वन्तरि' पर आपकी सदैव असीम कृपा बनी रही है। श्री पारीक जी हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध कवि एव उत्तम साहित्यकार भी हैं। अत आप एक प्रबुद्ध कवि, समाज चिन्तक, कहानीकार एव यथार्थ के पक्षधर लेखक हैं। आपकी विभिन्न रचनायें शुचि, राष्ट्रदूत, जाह्नवी, शब्द, सबोधन, धन्वन्तरि, सुधानिधि, आयुर्वेद विकास आदि पत्रिकाओं में कविता, कहानी एव लेख के रूप मे प्रकाशित होती रहती हैं।

सन् १९८४ के धन्वन्तरि वातव्याधि चिकित्सा विशेषाक के आप विशेष सम्पादक रह चुके हैं। यह अङ्क अत्युपयोगी एव मार्गदर्शक हुआ है। वातव्याधि विशेषाक मे आपकी विशेष विद्वता दिखाई देती है। यहा आपने ब्रह्मचर्य पर लेख भेजकर उपकृत किया है। आशा है कि आप हर समय धन्वन्तरि पर कृपा बरसाये रखेंगे। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य को आयुर्वेद में उपस्तम्भ के नाम से जाना जाता है। आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य अन्योन्याश्रित हैं। शक्ति और उत्साह ही स्वस्थ मानवता के प्रतीक हैं। इनकी प्राप्ति बिना ब्रह्मचर्य के सभव नहीं अत ब्रह्मचर्य की महता सर्वोपरि है। सप्त धातुओं का सारभूत तेज ओज कहलाता है, इसे बल भी कहते हैं। यह शुक्र के आधीन है – शुक्रायत बलं पुसाम्। शुक्र का सयम ही ब्रह्मचर्य हैं इसे एकान्तत पथ्य कहा गया है–

ब्रह्मचर्य निवात शयनोष्णदकस्नाननिशास्वप्न व्यायामश्चैकान्तत पथ्यतम। —सु सू २०।६

ब्रह्मचर्य एक चेतना का विस्फोट है एक मनस् क्रांति है जिसके बल पर मनुष्य अपना अभीष्ट पाता है। प्राचीन गुरुकुलों मे निर्दिष्ट नियमों मे रह कर अध्ययन करना ब्रह्मचर्याश्रम कहा जाता था। इसके पश्चात् कुछ उसी ब्रह्मचर्याश्रम मे रहकर तपस्यारत रहते थे तथा बहुत से गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते थे। कहा गया है—

ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् गृहत्वा बनाद्वा।

—जाबाल्योपनिषद्।

जो सदैव ब्रह्मचर्याश्रम मे रहकर साधना करता था वह उपकुर्वाण कहा जाता था। जो सयमपूर्वक गृस्थाश्रम मे ब्रह्मचर्य का पालन करता वह नैष्ठिक कहा जाता था। महामहोपाध्याय डा० श्री गोपीनाथ जी कविराज ने व्यक्त किया है कि—

'सामाजिक दृष्टि से विवाह न करना और विवाह करके स्वपत्नी के साथ सयत रहना दोनों ब्रह्मचर्य के स्वरूप हैं। स्वदारा के प्रति निरत रहने पर भी विस सयम के तारतम्य के अनुसार गुणभेद से गृहस्थ का

ब्रह्मचर्य सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार का होता है।

आयुर्वेद जो सम्यग्योग का पाठ पढाता है, उद्बोधित करता है—

व्यायामहास्यभाष्याध्व ग्राम्यधर्मप्रजागरान्।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया॥
—च० सू० ७।३४

अन्यथा दुःखी होकर कहना पड़ सकता है—

भोगैस्तैरेव तैरेव तुच्छैर्वयमपीकिल।
पश्य जर्जरता नीता वातैरिव गिरिद्रुमा॥ —वशिष्ठ

भोगा न भुक्ता. वयमेव भुक्ताः —भर्तृहरि

कितनी थोडी सी यौवन की, हाला हा मैं पी पाया।
बन्द गई हो कितनी जल्दी मेरी जीवन मधुशाला॥
—बच्चन

मनु महाराज ने ऋतुकाल मे स्वदारा सग को ब्रह्मचर्य ही कहा है। अन्य भी कहते हैं—

ऋतावृतौ स्वदारेषु सगतिश्च विधानत।
ब्रह्मचर्यं च तत्प्रोक्त गृहस्थाश्रमवासिन॥
—वशिष्ठ सहिता

स्त्रीणा च प्रेक्षणात्स्पर्शाद्धास्यशृङ्गारभाषणात्।
स्पन्दते ब्रह्मचर्यं च न दारेस्वृतुसगमात्॥
—आचारमयूख

यही एकमात्र युक्ति है जिससे ब्रह्मचर्य का निर्वाह किया जा सकता है। सुतरा आचार्य वाग्भटादि कहते हैं—

आहार शयना ब्रह्मचर्येर्युक्त्या प्रयोजितैः।
शरीर धार्यते नित्यमागारमिव धारणै॥
—अ० हृ० सू० ७।३८

रतिमूल शरीर हि शरीरस्य रति फलम्।
तस्मात्फलार्थी मूलार्थं स्त्रियस्सेवेत युक्तित॥
—भेलसंहिता नि० १

यद्यपि ब्रह्मचर्य को उक्त सीमित अर्थ मे ही ग्रहण किया जाता है। चरक—चतुरानन चक्रपाणिदत्त भी कहते है—'ब्रह्मचर्यमुपस्थ निग्रह:।' ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है—ब्रह्म की खोज करना। ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। अत ध्यान और आत्मानुभव से उसे अपने अन्त करण मे खोजना चाहिए। समस्त इन्द्रियो के संयम के बिना आत्मानुभव असम्भव है। इसलिए ब्रह्मचर्य का मतलब है—मन, वचन और कर्म से हर समय सब इन्द्रियो का सयम सामान्य जन सयम का स्वरूप एकागी मानते है। वह है शक्तियों के प्रवाह को रोकना। वस्तुत सयम का अर्थ है शक्ति प्रवाह को निरर्थक हानिकारक दिशा से रोककर सार्थक कल्याणकारी दिशा मे लगाना। ब्रह्मचर्य के तीन यथार्थ उद्देश्य कहे गये हैं—सरक्षण, सशोधन और उद्बोधन। इनके बल पर ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होता है। चरक सहिता मे भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने भी मोक्षसाधन मार्गो मे ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठतम कहा है—ब्रह्मचर्यमयनानामिति (च० सू० ३०।१५)।

आयुर्वेद मध्य मार्ग के पक्ष मे है। युक्तियुक्त ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार का भय नही हैं। अयुक्तियुक्त सदैव भयावह है—

"आज मानव समाज मे सेक्स का ऊधम मचाया जा रहा है। मुझे इसमे युद्ध से भी ज्यादा भय मालूम होता है। अहिंसा को हिंसा का जितना भय है, उससे ज्यादा कामवासना का है। हर जगह विज्ञान की मदद ली जारही है, लेकिन सेक्स मे नही। आज समाज की स्थिति ऐसी है कि सेक्स मे भी साइंटिफिक एटीट्यूड (वैज्ञानिक वृत्ति) की आवश्यकता पैदा हुई है।"
—सन्त विनोबा भावे

प्रत्येक मनुष्य में अपनी मूल सत्ता की पिपासा होती है। उसकी पिपासा पूर्णता की ओर अग्रसरित होती है। इसी पिपासा को फ्रायडे कामशक्ति (लिबिडो), एडलर अह (ईगो), कार्ल गुस्तेव जुग जीवन शक्ति (साइकी) और वर्गसा प्राण सत्ता (इलेन वाईतल) कहता है। इसका दमन सभव नही है। काम इसी पिपासा की अभिव्यक्ति का द्वार है। यह प्रवाह अविरल बहता है। एक द्वार को बन्द करने से वह दूसरा द्वार ढूंढता है। और अधिक उग्र होकर उभरता है। काम शक्ति को बलपूर्वक रोकने से कई प्रकार के शारीरिक और मानसिक उपद्रव खड़े होते हैं। इस तथ्य पर फ्रायड से लेकर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों तक ने अपने-अपने ढग से प्रकाश डाला है। विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिको के अनुसार एक नियमित अन्तराल पर सहवास न करने पर मानव शरीर क्षतिग्रस्त होता है। आयुर्वेद मे भी स्वीकार किया गया हैं—

अव्यवायान्मेह भेदो वृद्धि शिथिलता तनो ।

वीणा के तार को जब ढीला छोड़ दिया जाता है, तब भी वह बेसुरा बजती है और जब उसे अधिक खींच दिया जाता है तब भी। इसी से शिक्षा लेकर गौतम बुद्ध ने मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया था। बौद्ध धर्मानुयायी आयुर्वेदाचार्य प्रवर वाग्भट ने भी स्वास्थ्य संरक्षण हेतु इसी मार्ग को उपयुक्त मानकर पदे-पदे सचेत किया है।

महाभारत में नारायण ऋषि का मत प्रकट किया गया है—

प्रवृत्ति लक्षण धर्मं ऋषिर्नारायणोऽब्रवीत् ।

—महा० शा० २१७।२

प्रवृत्ति से ही समृद्धि प्राप्त होती है। किन्तु जब यह समृद्धि मनुष्य को धर्म से विमुखकर उसके विवेक का हरण कर लेती है, तो इससे उसका वास्तविक विकास नही हो पाता। सुतरा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता (७।११) मे "मैं धर्म-अविरुद्ध काम हू" कहकर धर्म अविरुद्ध काम सेवन की बात कही है। 'यदा वै करोति अथ निस्तिष्ठति" छान्दोग्य के इस कथन के अनुसार प्रवृत्ति और निवृत्ति की सह साधना मे प्रकृति शोध करना अनिवार्य कहा गया है। मनोविकारों को अनुशासित और सयमित रखने मे ही चेतना का क्रमिक विकास होता है। भोग का सर्वोत्तम मार्ग सयम ही है। वस्तुत सयम भोग का निषेध नहीं, अपितु उसका ऐसा विवेकपूर्ण नियमन है जिसमें भोग योग मे बदल जाता है। स्वर्गीय राष्ट्रकवि दिनकर ने अपने उर्वशी काव्य मे कामविषयक तथ्य प्रकट किये हैं। वहां इस काव्य की भूमिका में उन्होने लिखा है कि—"शरीर का काम, सयत काम सामाजिक मर्यादा को मानकर एक घाट पर बहने वाला काम पाप नही है। पाप वह तब हो जाता है, जब काम मन को अपने वश मे कर लेता है और मन शरीर को हाकने लगता है, जबर्दस्ती हांकने लगता है। तन का काम अमृत है, लेकिन मन का काम सरल है। आनन्दातिरेक प्रकृति का धर्म होना चाहिए। जब यह आनन्द जीवन के अन्य क्षेत्रों में नहीं मिलता, तब मनुष्य बलपूर्वक इच्छापूर्वक उसकी खोज काम में करने लगता है। यही पाप है।"

इस पाप से बचने हेतु अमृत प्राप्ति के लिए, परमात्मा की प्राप्ति हेतु ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ उपाय है। उक्त अभीष्ट के इच्छुक इसी उपाय का सहारा लेते हैं—

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति । —गीता ८।११

ब्रह्मचर्य के पालनार्थ शास्त्रानुमोदित निम्नाङ्कित उपाय आवश्यक हैं—

१ आयु वृद्धि हेतु ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है—"ब्रह्मचर्यं-मायुष्याणाम्–चरक सू० २५।४०"। सुतरां बाल विवाह का सर्वथा त्याग आवश्यक है। सम्प्रति शासन ने भी विवाह के लिए १८ वर्ष लड़की की तथा २१ वर्ष लड़के की आयु निर्धारित की है। मनुस्मृति में रजोदर्शन पूर्व कन्या के विवाह के लिए कहा गया है। कन्या के आहार विहार को पूर्ण सात्विक बनाना आवश्यक है। योग्यवर के अभाव मे ३ वर्षों तक रजोदर्शन के बाद भी कन्या को कुंवारी रखने का धर्मशास्त्र आदेश देते हैं। इसी प्रकार वृद्ध विवाह भी अनुचित है।

२. आज शिक्षा में नैतिक शिक्षा देने की लम्बी-चौड़ी बातें की जाती हैं किन्तु यह शिक्षा बिना ब्रह्मचर्याश्रमों की स्थापना के अभाव मे असफल हो रही है। प्रारम्भ से ही इन आश्रमो मे धर्मपरक ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जानी चाहिये। इनमें उनके सम्पूर्ण आहार-विहार पर पूर्ण ध्यान दिया जाय।

३ उचित समय पर विवाह के पश्चात् सयमपूर्वक जीवन निर्वाह करे—

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ।

४ ब्राह्ममुहूर्त मे उठकर आयुर्वेदोक्त सम्पूर्ण उत्तम दिनचर्यादि का निर्वाह करे।

५. तामसी भोजन का सर्वथा त्याग आवश्यक हैं—

जीर्णे हित मित चाद्यात् ।

६ वेगों को न रोके एव मलमूत्रादि त्याग के समय शुद्धता पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये ।

७ नियमित यथोचित व्यायाम आसन प्राणायामादि करें।

८ महिने में कम से कम २ उपवास (एकादशी के) अवश्य करें।

९ कुसगति का सर्वथा त्याग करें—

अक्षुद्रवृत्तिर्गंभीरः साधुराश्रितवत्सल । —अ० सग्रह

१० महापुरुषो और ब्रह्मचारियों के चरित्रों का मनन करते रहे—

सता बुद्धिप्रदीपेन पश्येत्सर्वं यथातथम् ।—च० १।११।१६

११ मन को सदैव उच्च किंवा पवित्र रखने की पूर्ण आवश्यकता है—

मनसैव कृत पाप न वाचा न च कर्मणा ।
येनैवालिङ्गिता कान्ता तेनैवालिङ्गिता सुता ॥

अश्लील साहित्य, नाटक आदि से बचना चाहिए । उत्तम साहित्य ही पढें । च० स० सू० ८।३ मे भी उत्तम शास्त्रो के अध्ययन करने हेतु उद्बोधित किया गया है ।

१२. यथासाध्य सवमे परमात्मा मानकर बन्धुता बनाये रखें—

सर्वं प्राणिषु बन्धुभूत स्यात् —च० सू० ८।१८

सदाचार सयम का ही क्रियात्मक रूप है और सदाचारयुक्त बन्धु भाव ही समाज सेवा है ।

१३ अपने निर्माण मे समाज का विकास निहित है। की हुई भूल न दोहराने से अपना निर्माण स्वत. हो जाता है । अत अपने निर्माण के लिए सदैव प्रयत्नशील रहें ।

१४ दार्शनिक दृष्टिकोण से दु खो के दो ही कारण हैं—अज्ञान और अभक्ति । अत इनके नाश के दो ही उपाय हैं–ज्ञान और भक्ति । इनमे भी भक्ति सर्वोत्कृष्ट है–

लोक विलोकि पुरान वेद सुनि,
समुझि बूझि गुरु ग्यानी ।
प्रीति प्रतीति रामपद पकज सकल सुमगल खानी ॥ ★

पुरुष का महत्व : —पृष्ठ ४२ का शेषाश

सुश्रुत का मत—

'अस्मिञ्छास्त्रे पञ्चमहाभूत शरीरिसमवाय पुरुष इत्युच्यते', तस्मिन् क्रिया, सोऽधिष्ठानं, तस्मात्, लोकस्य द्वैविध्यात् । लोकोहिद्विविध-स्थावरो जङ्गमश्च, द्विविधात्मक एवाग्नेय सौम्यश्च, तद्भूयस्त्वात् । पञ्चात्मको वा । तत्र चतुर्विधो भूतग्राम. ·· ·· ·· · तत्र पुरुषः प्रधान, तस्योपकरणमन्यत् । तस्मात् पुरुषोऽधिष्ठानम् ।

—सु०सू०अ० १।२२

इस आयुर्वेद शास्त्र मे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच भूतो के और आत्मा के सयोग का नाम पुरुष है (अन्यत्र २५ तत्वों के सयोग का नाम पुरुष है, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं ।) इसी पुरुष में चिकित्सा सम्बन्धी क्रियायें की जाती हैं, क्योंकि यही पुरुष रोग तथा स्वास्थ्य का अधिष्ठान (आधार) है । यह पुरुष जातीय व्यक्ति ही इसका अधिष्ठान इसलिये है कि यह लोक दो प्रकार का है, एक स्थावर और दूसरा जगम, ये दोनो प्रकार के लोक पचमहाभूतो से निर्मित होने पर भी दो प्रकार के गुणो की अधिकता होने के कारण आग्नेय और सौम्य कहे जाते हैं । अथवा पांच भूतों वाला होने के कारण पाँच स्वभाव वाले ये दोनों प्रकार के लोक हैं । यह सम्पूर्ण प्राणि समूह स्वेदज, जरायुज, अण्डज, उद्भिज भेद से चार प्रकार का होता है । इन सब में पुरुष ही प्रधान है, अन्य सब लोक इस पुरुष के साधन रूप हैं, इसलिये इस आयुर्वेद शास्त्र का अधिष्ठान पुरुष ही है, पुरुष की इस श्रेष्ठता का समर्थन महामानव मनु ने इस प्रकार किया है—

भूताना प्राणिन श्रेष्ठा प्राणिना बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नरा. श्रेष्ठा. ···· ·· ·· ॥ मनु० १।९६।

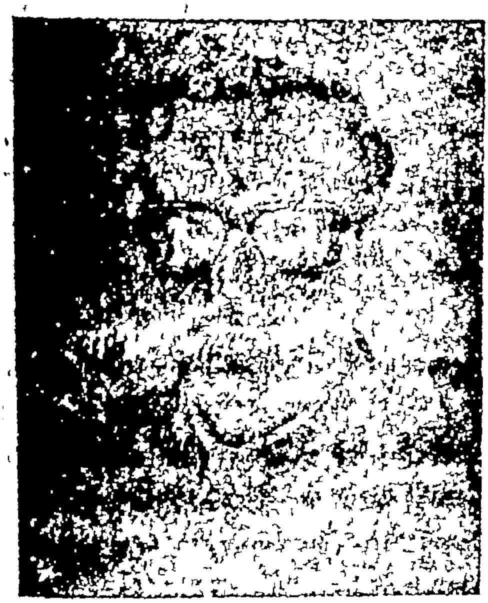
अर्थ स्पष्ट है, यहाँ पुरुष प्राणिमात्र का नाम है, क्योकि आयुर्वेद शास्त्र ऊपर कहे गये चतुर्विध भूतग्राम की चिकित्सा का उपदेश करता है, किन्तु इन सबमे पुरुष ही प्रधान है ।

महर्षि सुश्रुत ने शारीर स्थान अ० ३।४ में भी जिन विचारो को पुरुष की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कहा है, वे भी अवलोकनीय हैं ।

इस प्रकार पुरुष के महत्व का सक्षेप में यहाँ वर्णन उपस्थित किया गया है । वास्तव में सदाचार-सद्वृत्त आदि का व्यवहार करने वाला पुरुष ही महत्व से सम्पन्न हो सकता है । आज विज्ञान की चकाचौंध में पुराने सभी मूल्यों का अवमूल्यन हो चुका है, जिनका नही भी हुआ है, उनका बलात् अवमूल्यन कराया जारहा है, जिनके कारण आज 'एड्स' जैसे विभीषिका पूर्ण रोग हमारे ऊपर बलात् आक्रमण करते जारहे हैं, आयुर्वेदोपजीवियों का पवित्र कर्तव्य है, वे आज के परिप्रेक्ष्य में इस पर विचार करें । जय आयुर्वेद, जय धन्वन्तरि । ★★

ब्रह्मचर्य का महत्व

प्रो० वैद्य वेणीमाधव अश्विनी कुमार शास्त्री
विभागाध्यक्ष काय चिकित्सा–शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, ग्वालियर
डीन फैकल्टी आफ आयुर्वेद–जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर
मानसेवी चिकित्सक–महामहिम राज्यपाल मध्य प्रदेश



ब्रह्मचर्य भारतीय जनमानस में प्रसिद्ध एवं मान्य उस जीवनचर्या (पद्धति, आचरण, व्यवहार, नियम, सयम) का नाम है, जो हमारे शारीर और मानसिक सौष्ठव के साथ निकट सम्बन्ध रखती है। मनुष्य की आयुर्वेदानुसार सपूर्ण आयु को चार विभागों में आयुक्त सज्ञाओं के द्वारा निरूपित किया गया है। इसमे बाल्यावस्था (६ से १२ वर्ष), युवावस्था (१२ से ३५ वर्ष), प्रौढावस्था (२५ से ४० वर्ष) वृद्धावस्था (४० से १०० वर्ष या आजीवन समाप्ति पर्यन्त) प्रमुख हैं। इन्ही अवस्था भेदो का ब्रह्मचर्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय जीवनचर्या विधान के अनुसार मनुष्य की न्यूनतम शतायु १०० वर्ष मान्य की गई है। इन सौ वर्षों को क्रमश २५-२५ वर्ष के क्रमानुसार चार आश्रमो में विभक्त किया गया है। प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम, द्वितीय ग्रहस्थाश्रम, तृतीय वानप्रस्थाश्रम, चतुर्थ सन्यासाश्रम। आयु के भेदो के अनुसार बाल्यकाल और आपचविशति वर्ष तक तथा आश्रमानुसार ब्रह्मचर्याश्रम की स्थिति एक ही मानी गई है। यह अवस्था विद्याभ्यास-ज्ञानार्जन एव देह स्वास्थ्य को सगठित करने की है। इस अवस्था में सभी कुछ सीखने को ही होता है। क्योंकि जो कुछ भी सीखा जाता है वह प्रथम ही होता है। ज्ञातास्वाद की दशा इस काल में नही होती। अत जीवन को सार्थक-स्वस्थ-सुगठित-कर्मनिष्ठ बनाने हेतु सब कुछ सीखने का ही यह अवसर है। इसी आश्रम की वय में व्यायाम, आहार, निद्रा, अध्ययन और सदाचार सीखा व ग्रहण किया जाता है।

ब्रह्मचर्य और शरीर घटक—

ब्रह्मचर्य जैसाकि पूर्व में कहा गया है कोई आरोपित भार या शपथ नही है, आचरण है। शरीर घटकों के अनुसार आयु एवं आश्रम के रूप में शरीर की सात धातुओं में से विशेषकर शुक्र धातु से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। शुक्रधातु शरीर मे रस रक्त आदि धातुओं की तरह ही स्थित रहती है। किन्तु उसका प्राकृतिक स्वरूप एव कार्य का ज्ञान शारीरिक विशेष क्रिया एव मानसिक विशेष अवस्था से जुड़ा हुआ है। जीवधारियो मे सभी को शुक्रधातु के कार्य मे अवलिप्त देखा जाता है किन्तु मनुष्य को छोडकर शेष जीवधारी काल मर्यादा में ही शुक्र धातु के कार्य में लीन होते हैं। आयुर्वेदीय क्रिया शरीर के अनुसार बाल्यकाल से शुक्रधातु शरीर में विद्यमान रहते हुए भी पुष्पमुकुल में निहित गन्ध के समान होती है। जब पुष्प मुकुल व्यक्तावस्था में पुष्पित होता

है तभी उसका गन्ध प्रव्यक्त होता है, ठीक इसी प्रकार शुक्र भी शरीर में विद्यमान रहते हुए भी व्यक्त युवावस्था मे प्रकट होता है। इस प्रकार शुक्रधातु के दो प्रकार के कार्य देखे गये हैं।

शुक्र धातु के कार्य—

शुक्रधातु ब्रह्मचर्य घटक होने से शुक्रधातु के कर्मों का जानना आवश्यक है। शुक्रधातु अपने आभ्यन्तर स्राव के कारण देह पुष्टि, उत्साह, हर्ष, शौर्य, आभा, पौरुष और बल माना गया है तथा शरीर के लिए श्लेष्मा की तरह ही कार्य करता है। इसी कारण से गुणवान् शरीर के विवरण मे महर्षि चरक ने निदान स्थान अध्याय ८।१०९ पर शुक्रसार पुरुष लक्षणों में निम्न गुण उल्लिखित किये हैं—

सौम्य, सौम्यदृष्टि, प्रहर्षितसलाप, चिकीर-गोल-समान-दृढ बडे २ दात, मधुर स्वर एव प्रियदर्शन, स्निग्ध वर्ण, कातियुक्त शरीर, भारी गोल नितम्ब युक्त, स्त्रियो में प्रिय, स्त्रियों के उपभोग मे कुशल, बलवान्, सुख, ऐश्वर्य आरोग्य, वित्त, सम्मान, सतति युक्त पुरुष शुक्रसार होते हैं।

उक्त शुक्रसारता का नैष्ठिक आधार ब्रह्मचर्य ही है। यदि शुक्रसार पुरुष ब्रह्मचर्य पालन न करे तो सारता शुक्र के क्षय रूप मे परणित होकर अनेको रोगो का आधार बन सकता है। राजयक्ष्मा आजकल की Pulmonary tuberculosis के कारणो मे भी क्षय कारण के रूप मे प्रतिलोम धातुक्षय Retrograde tissue decarys के रूप में शुक्रक्षय भी कारण स्वीकृत है। इस प्रकार शुक्रधातु के आभ्यन्तर कार्यों मे यदि शुक्रधातु अपरिपक्व दशा मे, असामयिक रूप में–अतिकार्य रूप मे प्रयुक्त की जाय तो वह अब्रह्मचर्य की स्थिति बनकर शरीर को क्षीण करता है तथा दुर्बलता का कारक बन जाता है।

शुक्रधातु का द्वितीय कर्म प्रसिद्ध सतानोत्पादन है। जो विशेष परिस्थितियो के सहकार से ही सतानोत्पाद क्षय होता है। शुक्र का सततिकर्म विवाहित जीवन के बाद ही हो पाता है। इसके लिये ब्रह्मचर्याश्रम अथवा बाल्य एव युवावस्था व्यतीत होने पर ही शुक्र का सतति उत्पादन कर्म होना चाहिए। इससे पूर्व करने पर सतति दुर्बल एव अविकसित तथा शरीर भी दुर्बल एवं क्षयग्रस्त हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का शुक्रधातु से घनिष्ठतम सबन्ध बनता है।

ब्रह्मचर्य और शरीर—

मानव शरीर अपने विकास के क्रमानुसार जीवनोपयोगी विविध क्रियाओं को सतत आरभ कर सम्पादन करता रहता है। ऐसी क्रियाओं में रतिकर्म मैथुन भी एक शारीर क्रिया है। यह क्रिया सामान्यत' विशेष स्थिति एव मानसिक भावना की अपेक्षा रखती है। यह क्रिया शारीरिक अगों के कर्म के साथ साथ विचारगत भी होती है। इस क्रिया का अधिकांश भाग विचारगत तथा अतिम (चरम भाग) अग प्रत्यग कर्म प्रधान होता है। पाश्चात्य मनोविज्ञानी फ्राइड ने इसे प्राकृतिक आवश्यकताओ की श्रेणी में Natural Inctiach माना है। उन्होंने माता एव शिशु के शारीरिक सगोपन को भी इसी क्रिया का अग माना है। भारतीय विचार इस मान्यता को नहीं मानता है। भारतीय दर्शन में इस सपूर्ण स्थिति को कामवासना या मैथुन की सज्ञा दी है। चूंकि कामवासना का अधिकाश भाग विचार क्षेत्रीय होता है इसीलिए वासनागत स्थिति अथवा मैथुन के आठ प्रकार भारतीय विचारकों एव चिकित्सको ने स्वीकृत किये हैं। इन आठ प्रकारो मे शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के मैथुन कर्म की गणना की गई हैं—

१–स्मरण, २–कीर्त्तन, ३–केलि, ४–प्रेक्षण
५–गुह्य भाषण, ६–सकल्प, ७–अध्यवसाय
८–मैथुन क्रिया सिद्धि

उक्त सभी प्रकार के शारीरिक मानसिक भाव सयुक्त मैथुन प्रकारों का यदि सामयिक स्वाभाविक एवं नियत सदर्भ में व्यवहार किया जाता है तो शरीर को आनदानुभव, हर्ष एव तृप्ति का अनुभव होता है। शुक्र धातु का वर्द्धन होकर देहसौष्ठव होता है। किन्तु यदि यह मैथुन अपूर्ण असमय एव अनियमित हो तो शुक्र धातु के आन्तर यथेष्ठ लाभ तथा मानसिक आनन्द का अभाव होता है। परिणाम ब्रह्मचर्य भग दोष प्रारभ होता है। अपूर्ण एव अतृप्त आनन्द की उत्कटता के कारण ही ब्रह्मचर्य विरोधी क्रियायें एव अयोनि मैथुन की ओर प्रवृत्ति में मानव कृत्रिम सलग्न होता है। यह प्रवृत्ति ही ब्रह्मचर्य के विपरीत

शरीर एवं मन दोनो पर विपरीत क्षय परिणामी प्रभाव करती है। किन्ही-किन्ही व्यक्तियो मे इस अवस्था में कामोन्माद की रोगावस्था तक देखी जाती है। कामोन्माद में भी अतृप्तिकारक शुक्रक्षय होने से प्रतिलोम क्षयज राजयक्ष्मा आज का Tuberculosis भी होता देखा गया है। Insencity के साथ pulmonary Tuberculosis आज सामान्य स्थिति है। अत ब्रह्मचर्य (शुक्र धातु सरक्षण) से शरीर सौष्ठव एव शरीर मानसिक स्वास्थ्य सुदृढ होता है और अब्रह्मचर्य से इसमे अस्वास्थ्य एव रोगग्रस्तता तथा उत्साह और क्षमता का ह्रास तथा जरजोब्धापद् होते पाये जाते हैं।

ब्रह्मचर्य से हानि की शंका निराधार ?

कुछ लोगों में यह भ्रान्ति एव अपरीक्षित अविचारित धारणा है कि ब्रह्मचर्य से कोई हानि होती है। किसी भी संरक्षित वस्तु में उसके सगुण जिस प्रकार यथारूप बने रहते हैं उसी प्रकार शुक्रधातु के सरक्षणजन्य सयमित व्यवहार एव काल प्रयुक्त व्यवहार की विधि-रूप मे भारतीय जीवन में अनन्त काल से मान्य ब्रह्मचर्य विधान से शरीर एव मन के विकास मे सहायता मिलती है तथा देह पुष्टि-उत्साह-बल-वर्ण-ओज आदि की स्थायी स्थिति बनी रहती है।

ब्रह्मचर्य किसी दबाव अथवा आरोपित चर्या का नाम नहीं है। यह मानव जीवन मे आयु एव आश्रम रूपी सामाजिक व्यवहार एवं आचरण से सम्बन्धित शारीर मानसिक विधान है। इसके विपरीत आचरण से ब्रह्मचर्य के मूल आधार शारीर भाव शुक्रधातु का असामयिक क्षय होता है। इसी को आचार्य चरक ने लिखा है कि—

> अतिबालो ह्यसम्पूर्ण सर्वधातु स्त्रिय व्रजन् ।
> उपशुष्येत सहसा तडागमिव काजलम् ॥
> —च०चि० २।१।०४।४१

यहा अतिबाल शब्द द्वारा ब्रह्मचर्याश्रम का अनुगामी अर्थात् पच्चीस वर्ष की आयु अप्राप्त मानव यदि उक्त अष्टाग मैथुन की प्रक्रियाओं में अभ्यस्त होकर ब्रह्मचर्य के विपरीत आचरण करता है अथवा असपूर्ण सर्वधातु अवस्था में मैथुनारम्भ करता है तो शुक्रधातु शीघ्र ही अल्पजलाशय की तरह शुष्क या क्षीण हो जाती है।

इस प्रामाणिक व्यावहारिक शरीर क्रिया विज्ञान की स्थिति के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि बाल्यावस्था से युवावस्था प्राप्त होने तक या शुक्रधातु के सम्पूर्णता प्राप्त करने तक ब्रह्मचर्याश्रम (मैथुन कर्म में अप्रवृत्ति) का पालन करना ही ब्रह्मचर्य विधान है। इस विधान के पालन के कारण योग सम्बन्धी अभ्यास द्वारा कुण्डलिनी सिद्धि एव ब्रह्मवर्चस् या नैष्ठिक बल को प्राप्त किया जाता है। भारतीय ऋषिकुलों में यही ब्रह्मचर्य विधान निष्ठा एव समक्ष के साथ पालन करके दीर्घतपा ऋषिगण दीर्घायु-मेधा-स्मृतिकाशि-अरोगता-उत्कृष्ट इन्द्रियबल आदि प्राप्त कर लिये। ब्रह्मचर्य भारतीय जीवन में आरोपित विधान न होकर सहज आचरित विधान है। देह सौष्ठव के लिए व्यायाम की तरह मन और इन्द्रिय (मस्तिष्क और नाडियों) के लिए ब्रह्मचय विधान परम आवश्यक है।

अत यह नितान्त भ्रामक एव तथ्यहीन धारणा है कि ब्रह्मचर्य कोई हानि करता है। पश्चिमी सभ्यता में पाशविक आचरण तथा स्वच्छन्द यौनाचार के वातावरण में भले ही कोई प्रमादवश ब्रह्मचर्य को हानिकर बता सकता है। किन्तु भारतीय जीवन दर्शन मे तो ब्रह्मचर्य एक अनूठी शरीर क्रिया परक स्थिति का द्योतक है।

तन्त्रशास्त्र एव योगशास्त्र द्वारा इसकी व्यावहारिक अनुभूत विधियों का व्यापक अनुशीलन किया है जो सद्गुरुओं के माध्यम से जाना और सीखा जा सकता है। ऐसे सद्गुरू भी दुर्लभ हैं।

★—★—★

ब्रह्मचर्य का महत्व

आयु० वृहस्पति डा० सत्यनारायण खरे ए. एम. बी एस.
चिकित्साधिकारी—जिला परिषद (आयु०) चिकित्सालय, ककवारा (झांसी) उ०प्र०

आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्येक भारतीय पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण कर रहा है। सभी प्रकार के आहार विहार रहन-सहन व मनोरंजन पाश्चात्य देशो के अनुसार ही चल रहा है। पहले तो केवल चलचित्र (सिनेमा) ही मनोरंजन के साधन थे पर अब तो घर मे ट्रांजिस्टर, टेपरिकार्ड एवं टेलीविजन की भरमार है। उनके संगीत एवं गायन चित्रो का अनुकरण ४-५ वर्ष का बालक भी करने का प्रयास करता है तो नवयुवको का कहना ही क्या है।

इस प्रकार के उपरोक्त उत्तेजक आहार-विहार से अल्पायु के लडके व लडकिया मानसिक मैथुन में रुचि लेने लगते है जिससे मानसिक तनाव प्रारम्भ होजाता है एवं अनिद्रा एवं अष्टविध मैथुन के रोग शिकार हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप अनेक युवक युवतियां स्वप्न-दोष व धातुस्राव प्रदर आदि रोगो से ग्रसित हो जाती हैं एवं स्वस्थ शरीर त्वचा व अस्थियो के ढांचे के रूप में परिवर्तित होजाता है।

आज से ५० वर्ष पहिले लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे, भोजन आदि पौष्टिक थे, वायुमण्डल का वातावरण (विज्ञान के अभाव में) स्वच्छ था। वाहनों के अभाव मे मीलों पदयात्रा करते थे, यथासम्भव सभी कार्य स्वयं स्त्री व पुरुष अपने हाथों से करते थे अत स्वास्थ्य सबल व स्वस्थ रहता था एवं भोजन भी शक्ति के अनुसार पर्याप्त करते थे, अब तो कुछ लोग अपने दिनभर के भोजन में केवल २५० ग्राम ही आटा का सेवन कर पाते हैं। इतना थोडा भोजन करने वाले कितने स्वस्थ व सबल होंगे। आप ही सोचिये।

अस्तु प्रस्तुत लेख मे ब्रह्मचर्य का महत्व एवं इसको नष्ट करने वाले अष्टविध मैथुन का उल्लेख किया जारहा है जिनसे आज के वैज्ञानिक युग में बचना चाहिये अन्यथा टेलीविजन (T V) रखने वाले कहीं T. B (क्षय रोग) से पीडित न हो जावें जिससे सम्पूर्ण मानव जीवन निराशाजनक हो जावे।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिये निम्नलिखित ३ उपस्तम्भ हैं जिनका युक्तिपूर्वक सेवन करना चाहिये जैसाकि च० सू० अध्याय ११ में लिखा है—

त्रय उपस्तम्भा आहार., स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।

अर्थात् आहार, नींद व ब्रह्मचर्य यह शरीर को स्वस्थ रखने के मुख्य तीन उपस्तम्भ हैं। इनका उपयुक्त मात्रा मे सेवन किया जाना चाहिये। इनसे आयु की वृद्धि होती है व स्थिर रहती है। इसी प्रकार या० सू० अ० ७ मे भी लिखा है कि—

आहार शयन ब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितै।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणै॥

अर्थात युक्ति पूर्वक आहार, शयन व ब्रह्मचर्य द्वारा समान रूप से नित्य शरीर धारण किया जाता है।

ससार के सभी मनुष्य सुख, स्वास्थ्य व दीर्घ जीवन चाहते हैं इनकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य से होती है जैसा कि शास्त्र मे लिखा है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

शरीर रूपी भवन का ब्रह्मचर्य एक नीव के समान है। इसका पालन न करने से शरीर किसी भी समय धराशायी होकर नष्ट होजाता है अथवा अन्य क्षय रोग जैसी भयंकर व्याधियो से पीडित हो जाता है।

कुछ लोगों का कहना है कि ब्रह्मचर्य का पालन करना है तो ग्रहस्थाश्रम की आवश्यकता है यह भ्रामक विचारधारा है। कामवासना को संयमित रखना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।

भारत मे गर्मी अधिक पड़ती है इस कारण इस देश मे छोटी आयु १०-१२ वर्ष से ही कामवासना की प्रवृत्ति जागने लगती है। कुछ पाश्चात्य देशों जैसा मनोरन्जन का

वातावरण अधिक होने से बच्चे बुरी आदतों का अनुकरण करने लगते हैं। इस प्रकार की कुसंगत व अल्पायु में शुक्रक्षय हो जाने से नवयुवक दुबले पतले, निस्तेज, उत्साहहीन व नपुन्सक (नामर्द) हो जाते हैं जिसके कारण कुछ लोग शादी के बाद अपने को निराश समझते हैं। अत अल्पायु मे शुक्र का क्षय नहीं होने देना चाहिये। क्योंकि ब्रह्मचर्य पालन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति महान बुद्धिमान व बलशाली बनते हैं।

महात्मा गान्धी ने ब्रह्मचर्य को आरोग्य की महान कुन्जी बताया है।

उन्होंने 'आरोग्य की कुन्जी' नामक पुस्तक में लिखा है कि एक रत्ती भर रति सुख के लिये अपना विशेष बल एक पल में खो बैठते है एवं व्यक्ति इसके बाद निस्सत्व हो जाता है। इसके बाद उसका शरीर भी शिथिल व बलहीन हो जाता है। अत प्रत्येक दम्पत्ति को शास्त्र के अनुसार संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से ही सम्भोग करना चाहिये।

आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ सन्त और नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री बिनोबाभावे ने ब्रह्मचर्य के बारे मे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं—

हिन्दू धर्म ने विशिष्ट आचार व स्वस्थ रहने के लिये 'ब्रह्मचर्य' का शब्द बनाया है वह अन्य धर्मों मे देखने को नहीं मिलता है। परन्तु ईसामसीह भी स्वयं ब्रह्मचारी थे। इसी प्रकार भीष्म पितामह भी ब्रह्मचारी थे।

संयमी जीवन व्यतीत करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। बातचीत, भोजन व स्वाध्याय वगैरह सभी बातो में संयम रखना चाहिये।

आयुर्वेद में स्वस्थ जीवन व विद्याध्ययन के हेतु विद्यार्थी जीवन २५ वर्ष की आयु तक ब्रहमचर्याश्रम की संज्ञा दी गई है। इस आयु में एकाग्रचित्त होकर संयमित जीवन व्यतीत कर लगन से विद्याध्ययन करना चाहिये, इसके बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहिये, तभी जीवन स्वस्थ व सुखी रह सकता है। इससे अकाल मृत्यु का भी दूर हो सकता है जैसाकि शास्त्र में लिखित है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।"

—अर्थात ब्रह्मचर्य के बल से अकाल मृत्यु को जीता जा सकता है। इसी कारण हनुमान, ब्रह्मण, मेघनाथ, भीष्म, शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द, महात्मा गाधी व विनोबाभावे व जवाहरलाल नेहरू जैसे महान पुरुषों ने ब्रह्मचर्य पालन कर शारीरिक व मानसिक शक्ति बढाकर समाज व देश की सेवा की।

इसके अतिरिक्त जो ब्रह्मचर्य के विरुद्ध रहकर कामवासना मे लीन रहकर विलासी जीवन मे व्यस्त रहे वह क्षयरोग जैसे भयङ्कर व्याधि से पीडित हुये व जीवन भर कष्ट भोगा। उनमे सर्व प्रथम स्थान चन्द्रमा का है एवं रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण भी बहुत स्त्री लम्पट थे। उनको भी क्षयरोग हुआ। इस प्रकार के राजा आधुनिक युग में सभी लोग हैं जो ब्रह्मचर्य का पालन नही करते हैं जिसके कारण अधिकतर लोग क्षयरोग से पीडित हो रहे है एवं इसके शासन द्वारा विशिष्ट चिकित्सालय भी है परन्तु उनमें भी उन रोगियों के लिये स्थान नहीं हैं। अत जब तक ब्रह्मचर्य का पालन नही किया जावेगा तब तक कोई चिकित्सा किसी को क्षयरोग से मुक्ति नही दिला सकती यह निश्चित समझिये।

स्त्रियों में विधवा स्त्रियों की जीवनचर्या देखिये गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियो की अपेक्षा विधवा स्त्रिया ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने से वह अपेक्षाकृत स्वस्थ सुखी व बलशाली रहती हैं वह अस्वस्थ कम होती हैं एवं प्रत्येक कार्य करने मे सक्षम रहती हैं। प्रत्येक बीमारी से मुक्त होने के लिये ब्रह्मचर्य पालन आवश्यक है।

आजकल अधिकतर नवयुवक व युवतियाँ विद्यार्थी जीवन मे ब्रह्मचर्य व्रत के अभाव व अज्ञानता के कारण शुक्रक्षय कर बैठते हैं जिसके कारण वह धातु स्राव, शीघ्र पतन, नपुन्सकता, मन्दाग्नि व अनिद्रा के शिकार हो जाते हैं जो निद्राकारक दवायें खाकर जीवन यात्रा व्यर्थ मे ही नष्ट कर रहे हैं।

अत ब्रह्मचर्य पालन करने से प्रत्येक प्राणी बल प्राप्ति के अतिरिक्त दिव्य शक्ति व मनोबल प्राप्त करता है जिसके कारण वह इस संसार मे महान कार्य करता है व उनके कार्यों से सभी लोग प्रभावित रहते हैं। संत बिनोवा भावे ने अपने मनोबल के आधार पर ही महान यज्ञ में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है।

ब्रह्मचर्य पालन करने का यह अभिप्राय नहीं है कि सभी लोग ग्रहस्थ जीवन ही न वितायें व सत सन्यासी बन जावे अपितु जो व्यक्ति केवल अपनी पत्नी के साथ रति क्रिया सयमित रक्खे वह भी ब्रह्मचर्य व्रत करने वाला कहलाता है जैसाकि स्त्री सम्भोग प्रकरण मे वाग्भट्टाचार्य ने ऋतुओं के अनुसार उल्लेख किया है कि —

सेवेत कामत काम तृप्तो वाजीकृते हिमे ।
त्र्यहाद्वसन्तशरदो पक्षाद्वर्षा निदाघयो ॥

—अर्थात रति क्रिया का सयमित जीवन के नियम इस प्रकार है कि कडाके की सर्दियों मे रति क्रिया किसी भी समय की जा सकती है वशर्ते कि नित्य वीर्यवर्द्धक पदार्थों का सेवन किया जावे । बसन्त व शरद ऋतु मे सप्ताह में दो बार एव वर्षा व ग्रीष्म ऋतु मे माह मे दो बार भी सम्भोग किया जा सकता है । परन्तु पाश्चात्य ठंडे देशों मे इसका कोई प्रभाव नही पडता है जबकि हमारे भारतवर्ष में दस माह गर्मी पडती है अत अधिक गर्मी के कारण कामवासना ज्यादा जाग्रत रहती है । अत इस देश में सयमित जीवन व्यतीत कर ब्रह्मचर्य का पालन किया जावे तभी विभिन्न प्रकार की भयङ्कर व्याधियो से बचा जा सकता है ।

ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने में कुछ बाधक कारण हैं जो सभी विद्याध्ययन करने वाले युवक युवतियों को जानना चाहिये जिनकी अज्ञानता मे वह भयङ्कर भूल कर बैठते हैं जिनसे निद्रानाश व धातुस्राव एव नपुन्सकता (Impotency) जैसी व्याधियो से ग्रसित हो जाते हैं एव ग्रहस्थ जीवन मे निराश हो जाते हैं ।

ब्रह्मचर्य के बाधक कारण इस प्रकार हैं—

आयुर्वेद शास्त्र में अष्टविध मैथुन का उल्लेख किया है जो कि ब्रह्मचर्य व्रत में बाधक होते हैं—

स्मरणं कीर्तनं केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निवृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति विचक्षणा ।
विपरीत ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम् ॥

१ स्मरण—पूर्व देखे सुने सम्भोग का ध्यान करना ।

२ कीर्तन—मैथुन सम्बन्धी बात करना, अश्लील कहानी, नाटक, उपन्यास व अन्य कोई पुस्तक जिससे सम्भोग करने की इच्छा जागृत हो ।

३ केलि—काम क्रीडा, हसी मजाक, हाथापाई, छेड़छाड करना अथवा हाथ, पाँव, आँख आदि गन्दे इशारे करना यह मैथुन में शामिल हैं ।

४ प्रेक्षण—किसी को छिपकर या सामने आकर देखना जिससे विषय भोग की इच्छा उत्पन्न हो । यह भी मैथुन मे सहायक है ।

५ गुह्य भाषण—मैथुन सम्बन्धी गुप्त भाषण बातचीत करना भी पुरुष कही छिपकर बातचीत करें ।

६. सकल्प—सम्भोग करने का मन में सकल्प बनाना ।

७ अध्यवसाय—सम्भोग करने के उद्देश्य से किसी को कुछ प्रलोभन देना, नौकरी देना, अपराध मुक्त करना व अन्य कोई उस उद्देश्य से सहायता देना आदि ।

८ क्रिया निवृत्ति—जानबूझ कर हस्त क्रिया या अन्य कारणों द्वारा वीर्यपात करना साक्षात मैथुन है ।

यह आठ प्रकार के मैथुन हैं जो रति क्रिया की उत्पत्ति में सहायक हैं एव ब्रह्मचर्य पालन करने मे बाधा उत्पन्न करते हैं ।

इसके अतिरिक्त सिनेमा, दूरदर्शन, अश्लील साहित्य, सह शिक्षा, घर का वातावरण, कुसङ्गति, वीर्य सम्बन्धी ज्ञान का अभाव, साइकिल की सवारी, शृगार, नित्य कार्यों मे अनियमितता एव शक्ति से ज्यादा वीर्य क्षरण में असावधानी से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता जिससे मनुष्य के वीर्य (शुक्र) का सरक्षण नही हो पाता है जोकि मनोबल व शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं ।

मनु स्मृति में वीर्य रक्षा के उपायों का उल्लेख किया गया है जोकि इस प्रकार हैं—

प्रोक्त मैथुनमष्टाङ्गं त्यजेद् ब्रह्म परोथवा ।
ऋतुकालभिगामी स्यात्स्वदारनिरत सदा ।
पर्व वर्जो ब्रजेच्चैना तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥मनु॥

—अर्थात ब्रह्मचर्य धारण करने वाला पुरुष उपरोक्त आठ प्रकार के मैथुन त्याग दे । ऋतुकाल में तथा अपनी पत्नी में ही सर्वदा रमण करने वाला हो । एक पत्नी

व्रत धारण करता हुआ रति की इच्छा से पर्वरहित तिथियो मे स्त्री गमन करे। इस प्रकार जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है उसे निम्न प्रकार से फल प्राप्त होता है जैसाकि वाग्भट्ट मे उल्लिखित है—

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वरसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्त निर्मलम्॥ वा०सू०॥

—अर्थात धर्म यश एव आयु को करने वाले एव इस लोक व परलोक के लिये रसायन स्वरूप एकान्त निर्मल ब्रह्मचर्य का हम अनुमोदन करते हैं।

आहार का परम तेज अपना शुक्र है। इसकी रक्षा करनी चाहिये क्योकि इसके क्षय से वहुत से रोग अथवा मृत्यु प्राप्त होती है। स्वय क्लेश न पाये हुये मनुष्य को देवता, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस और अन्य कोई भी कष्ट नही दे पाता है। अत यह ब्रह्मचर्य पालन का फल शास्त्र मे उल्लिखित है।

ब्रह्मचर्य रक्षा के कुछ सामान्य उपाय आगे उल्लिखित हैं जिन्हे यथासम्भव अपने जीवन मे उपयोग मे लाना चाहिये—

१. ईश्वर/परायणता—ईश्वर सर्व व्यापक है अत इनको साक्षी समझकर कोई चोरी द्वारा दुर्व्यमन नही करें।

२ राम नाम जप—विषय वासना को जीतने के लिये राम नाम जप आवश्यक है। मन की शुद्धि के लिये गायत्री मन्त्र का जप बहुत श्रेष्ठ है।

३ सात्विक भोजन—शाकाहारी सात्विक भोजन से मन शुद्ध रहता है तामसी प्रभाव पैदा नही हो पाता है।

४ सदा स्वास्थ रहने की कामना—अपने को स्वास्थ व सबल रखने के लिए तन मन से स्वच्छ व स्वस्थ रहने का प्रयास करना चाहिए।

५ महान ध्येय—सतत प्रयत्न करना चाहिए कि कोई महत्वपूर्ण कार्य किया जावे। उसमे व्यस्त रहना चाहिए। केवल खाने पीने के लिये जीना तो व्यर्थ है। कोई नई खोज सम्बन्धी कार्य के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिए। व्यर्थ बैठने से मन की प्रवृत्ति खराब होती है।

६ कार्य व्यस्तता—सदैव किसी कार्य मे व्यस्त रहना चाहिए।

७ सादगी से रहना—खाना पीना एव वस्त्र आदि सादगी से पहनना चाहिए। जिससे राजसीगुण पैदा न हो।

८ विद्या प्राप्ति का प्रयास—जीवन मे सदैव विद्याध्ययन मे लगे रहना चाहिए। इससे अनेको प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्य पालन के लिए उपरोक्त अनेकों उपायो का उल्लेख किया है जिससे प्रत्येक प्राणी को अपने शरीर की रक्षा करके स्वस्थ व सबल बनाना चाहिए जिससे आरोग्य प्राप्त कर अपने व देश की समृद्धि मे सलग्न रह सके जिससे शारीरिक मानसिक व आर्थिक ह्रास न होकर प्रत्येक प्राणी का विकास हो। उपरोक्त नियम स्त्री-पुरुष सभी के लिए आवश्यक हैं। सभी को अपना सयमी जीवन बिताकर रोगी की सख्या कम करनी चाहिए।

— पृष्ठ ६० का शेषाश —

भी दुर्भाग्यवश आधुनिक शिक्षित समाज पाश्चात्य सभ्यता की मृग मरीचिका में फस कर उसकी उपेक्षा करता है। आधुनिक योन विज्ञान की मान्यता है कि वीर्य रक्षा की प्राचीन अवधारणा भ्रामक है तथा वीर्य धारण से अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आधुनिक समाज केवल इसी सिद्धान्त का अनुगामी योन स्वच्छदता का पोषक बन रहा है। इस सम्बन्ध मे आचार्य रजनीश का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु केवल इसी सिद्धान्त के आधार पर सहस्रो वर्षों से स्थापित मान्यताओ की अवहेलना नही हो सकती है।

विश्व में व्याप्त तथा चिकित्सा विज्ञान को चुनौती के रूप मे उत्पन्न Aids (Acqured Immune defficiency Syndrome) नामक व्याधि का कारण मुख्य रूप से सम लैङ्गिकता ही ठहराया गया है। अत यदि परीक्षण के अभाव मे केवल अधानुकरण का मार्ग अपनाया गया तब निश्चय हानि की सम्भावना रहती है।

—डा० जगदीश चन्द्र असावा बी ए ,ए एम बी एस.(Hons)
रीडर/विभागाध्यक्ष शारीर विभाग
ल० हृ० राज० आयु० कालेज, पीलीभीत—उ० प्र०

"दोष धातु मल मूल हि शरीर"

इनमे भी ३ दोष ७ धातुयें मल सम्मिलित आहार सेवन से उत्पन्न रस से उत्तरोत्तर शरीर की धातुयें क्रमश. रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा एव अन्त मे शुक्र का पोषण होता है।

तत्र तेषा धातूनामन्नपान रस प्रीणयिता।—सु० सू०

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि अन्न के सर्वोत्कृष्ट अंश से शुक्र (वीर्य) का निर्माण होता है। इस सम्बन्ध मे कहा गया है—

आहारस्य परम धाम शुक्र तद्रक्ष्य प्रयतात्मन ।
क्षयो यस्य वहून रोगान मरण वा नियच्छति ।।

अर्थात् शुक्र आहार का अन्तिम रूप है। इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। इसके क्षीण होने पर अनेकों रोग यहा तक कि मृत्यु भी हो सकती है। सु सू. स्थान मे कहा गया है—

शुक्र धैर्यं च्यवन प्रीति देह वल बीजार्थाच्च ।

यह शुक्र धैर्य (सुख दु:खादि मे निर्विकारता), शूरता, निर्भयता, हर्ष, स्त्रियो पर प्रीति तथा गर्भाधान प्रक्रिया मे बीज का कार्य करता है।

सुश्रुत शारीर स्थान मे शुद्ध शुक्र के लक्षण इस प्रकार कहे हैं—

स्फटिकाभ द्रव स्निग्ध मधुर मधु गन्धि च ।
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैल क्षौद्र निभं तथा ।।

अर्थात शुद्ध शुक्र स्फटिका की आभा वाला, द्रव, स्निग्ध मधुर तथा मधु के समान गन्ध वाला होता है। कुछ विद्वान तेल या मधु के समान शुक्र को मानते हैं। आधुनिक क्रिया शरीर के अनुसार शुक्र को Semen कहा जाता है।

शुक्र का स्राव—सर्वाङ्ग मे व्याप्त यह शुक्र मैथुन कर्म के समय प्रहर्ष होने पर पुरुषेन्द्रिय (शिश्न) मार्ग से च्युत होता है। प्रसगवश यहां शुक्र स्राव या वीर्यपात की प्रक्रिया का उल्लेख करना युक्तिसगत होगा। कारण कि वीर्य रक्षा हेतु मैथुन कर्म का सम्यक् योग ही आवश्यक है। अतियोग, हीनयोग तथा मिथ्या योग ही अहितकर होते है।

मैथुन—

१२ से १६ वर्ष की आयु प्राप्त होने पर शरीर का लैङ्गिक विकास होने लगता है उसको Puberty कहते हैं। उस समय मासपेशियो का विकास श्मश्रु आदि का प्रकट होना, जननेन्द्रियो का विकास, विपरीत लिङ्ग के प्रति प्रीति आदि लक्षण होने लगते हैं। इस प्रकार विपरीत लिङ्ग के प्रति आकर्षण एव मैथुन की इच्छा एक नैसर्गिक धर्म होता है।

मैथुन कर्म मे १ लिंग का उत्थान तथा २ शुक्र का स्राव दो कियाए सम्मलित रहती हैं। क्रिया शारीर की दृष्टि से यह एक प्रत्यावर्तन कर्म (Reflex action) है।

सज्ञा की उत्पत्ति शिश्न मुण्ड तथा सम्वद्ध चर्म से तथा अन्य ज्ञानेन्द्रियो से होती है, तथा इसका सम्वहन मस्तिष्क के उच्च केन्द्रो तक होता है। उच्च केन्द्रों से आज्ञा का वहन होता है।

१ लिङ्गोत्थान—Nervi Crigentes के द्वारा होता है जो कि शिश्न धमनियो के मासल स्तर को शिथिल कर देती है। कार्पस केवरनोसा तथा कार्पस स्पंजियोसा के स्पंज कोषाणुओ मे रक्त की आपूर्ति बढ जाती है, उसी समय शिश्न की पृष्ठीय सिरा पर दवाव पडता है तथा रक्त की वापिसी वाधित हो जाती है। फलत. शिश्न जोकि विश्राम काल मे शिथिल तथा झुर्रीदार होता है, मोटा, लम्बा एव दृढ होकर योनि गुहा मे प्रवेश योग्य हो जाता है।

२. शुक्रोत्सर्ग—शिश्न मुण्ड का योनि की श्लेष्मिक कला के साथ घर्षण, अन्य इन्द्रियो से प्राप्त संज्ञाएं तथा मनोवैज्ञानिक कारणो के सयुक्त प्रभाव से नाडी सूत्र सक्रिय होकर शुक्र का स्राव कराते हैं।

मैथुन कर्म की अन्तिम परिणति शुक्रोत्सर्ग होती है। आर्ष ग्रन्थों मे मैथुन के ८ प्रकार कहे हैं—

(१) स्मरण—किसी पूर्वानुभूत विषय का मन में पुन:पुन चिन्तन स्मरण कहा जाता है। जैसे प्रेमी-प्रेमिका अथवा पति पत्नी के मध्य पूर्वघटित घटनाओं का स्मरण करना। स्मरण द्वारा स्नायु संस्थान पर क्षोभ वना रहता है, जिससे कामेच्छा जागृत होती रहती है।

(२) कीर्तन—काम विषयक वार्तालाप कीर्तन के अन्तर्गत आता है। आज के युग मे सिनेमा सबधी गीतो का होना इसी का उदाहरण है। इसके द्वारा नाडी सस्थान उत्तेजित होता है।

(३) केलि—पुरुष के स्त्री के साथ क्रीडा-अङ्ग स्पर्श सौन्दर्य दर्शन आदि केलि कहा जाता है। इस प्रकार की क्रीडा से तन्त्रिका स्थान अत्यधिक प्रभावित होता है।

(४) प्रेक्षण—सौंदर्य दर्शन तथा रति की इच्छा प्रेक्षण कहलाता है।

(५) गुप्त भाषण—गुप्त स्थानो पर कामेच्छा की अभिव्यक्ति प्रेम पत्र लिखना एव सकेतो द्वारा प्रदर्शन इस के अन्तर्गत आता है।

(६) सङ्कल्प—रति पूर्ति हेतु निश्चय करना सकल्प कहा जाता है।

(७) अध्यवसाय—उद्देश्य पूर्ति हेतु उचित-अनुचित तरीके अपना कर प्रयत्न करना अध्यवसाय कहलाता है।

(८) क्रिया निवृत्ति—तन्त्रिकाओ के उत्कृष्टतम क्षोभ उत्पन्न होने पर शिश्न मार्ग से वीर्यपात होना ही क्रिया निवृत्ति कहलाता है। इसके पश्चात आवेग शान्त होता है।

इस प्रकार शुक्रोत्सर्ग मैथुन की अन्तिम परिणति होती है। शुक्रोत्सर्ग प्राकृतिक एव अप्राकृतिक भेद से दो प्रकार से होता है।

१ प्राकृतिक—जब स्त्री प्रसग हो तथा शुक्र का क्षरण योनि से होता है।

२. अप्राकृतिक—जब अयोनि अर्थात स्त्री प्रसङ्ग के अतिरिक्त शिश्न को उत्तेजित कर वीर्यपात किया जावे इसमे हस्त मैथुन, गुद मैथुन तथा पशु मैथुन आदि का समावेश होता है।

अष्ट विधि मैथुन का उल्लेख तथा उनके परित्याग का निर्देश केवल इस उद्देश्य से किया गया है कि किसी भी प्रकार नाडी सस्थान मे क्षोभ irritation उत्पन्न न हो एव वीर्य पात को कोई भी अवसर न उत्पन्न हो। उपरोक्त ८ भेदो मे अन्तिम क्रिया निवृत्ति आनन्दातिरेक की अवस्था शेष ७ भेद इसकी उत्पत्ति में सहायक होते हैं। वीर्य रक्षा का वर्णन (ब्रह्मचर्य) प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी विद्वान करते आये हैं।

आचार्य वाग्भट ने कहा है—

इत्याचार समासेन ये प्राप्नोति समाचरन।
आयु आरोग्य एश्वर्य यश लोकश्च शश्तान् ॥

अर्थात जो व्यक्ति युक्ति पूर्वक वीर्य रक्षा करता है अर्थात मैथुन सबन्धी सद्व्रत सयम का पालन करता है, उसे आरोग्य, एश्वर्य तथा शाश्वत लोक प्राप्त होता है।

अथर्ववेद मे कहा गया है—

मरण विन्दु पातेन जीवन विन्दु धारणात्।
तस्मादति प्रयत्नेन करण विन्दु धारणम् ॥

अर्थात वीर्य का धारण जीवन तथा वीर्यपात मृत्यु है। अत प्रयन्नपूर्वक वीर्य धारण करना चाहिए।

डा० निकोलास का कथन है।

वीर्य शरीर का राजा है। जिन लोगो का जीवन सयम के साथ बीतता है, उनके शरीर मे वीर्य व्याप्त होता है तथा उन्हे दीर्घायु-साहसी एव अध्यवसायी बनाता है। वीर्यपात से मनुष्य का शरीर दुर्बल तथा चित्त अस्थिर हो जाता है।

चरक सूत्र स्थान मे शुक्र क्षय के लक्षण इस प्रकार कहे है—

दौर्बल्य मुख शोषश्च पाण्डुत्व सदन श्रम।
क्लैब्य शुक्राविसर्गाश्च क्षीण शुक्रस्य लक्षणम् ॥

अर्थात शुक्र के क्षीण होने पर—शरीर मे दुर्बलता, मुख शोष, पाडु, जी मिचलाना, थकावट, नपुसकता, तथा शुक्र का स्राव न होना जैसे लक्षण होते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा—वीर्य ही साधुता है तथा निर्वीर्य ही श्राप है अत बलवान एव वीर्यवान बनने की चेष्टा करनी चाहिए।

ब्रह्मचर्य एव योग सुख के मार्ग हैं। (योगी अरविन्द)

इस प्रकार अनेक विद्वानो ने ब्रह्मचर्य का महत्व बताया है। महात्मा टाल्सटाय, महात्मा गाधी तथा लोकमान्य तिलक का भी ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे विशेष स्थान हैं। विस्तारभय से यहा केवल नामोल्लेख करना ही अभीष्ट होगा।

उपसहार—

ब्रह्मचर्य या वीर्य रक्षा का इतना महत्व होने पर

—शेषाश पृष्ठ ५७ पर देखें।

बीज शुक्र एवं शोणित उत्पादन

लेखक—आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी आयुर्वेद शास्त्राचार्य, बी० ए०, आयु० बृहस्पति,
चरक चिकित्सालय, कुसुम भवन, शिवपुरी कालोनी, नगवा, वाराणसी (उ प्र)·

—*—



भारत मे कुछ ही आयुर्वेद के प्रकाण्ड पडित हैं, उनमे श्री आचार्य जी का स्थान प्रथम पक्ति मे है। भारत के अनेक महाविद्यालयो के साथ आपका सम्बन्ध रहा है। भारत सरकार की एव अनेक राज्य सरकारो की आयुर्वेदीय सस्थाओ मे महत्व के स्थानों पर आपने कार्य किया है। आप अनेक सस्थाओं मे सदस्य रह चुके हैं। जामनगर-गुजरात की तीन सस्थाओ को एक करने मे आप निमित्त हैं। सन् १९५६ से सन् १९६८—१२ वर्षों तक स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र जामनगर मे प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष द्रव्य गुण तथा डाइरेक्टर आई. ए एस आर जामनगर मे कार्य करते रहे। आप गुजरात यूनिवर्सिटी के सेनेटर, बोर्ड आफ एजूकेशन कमेटी गुजरात युनि० के सदस्य थे एवं गुजरात युनि० में आयुर्वेद फेकल्टी के डीन भी थे। आपने आज तक अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आप सफल चिकित्सक हैं। आज तक आपने अनेक महाविद्यालयो (४०) का निर्देशन किया है। भारत भर के जङ्गलों पर्वतो में भ्रमण किया है। आपका परिचय देने मे मैं असमर्थ ही हूँ। यहा आपने लेख भेजकर मुझे ऋणी बना दिया है। आशा है कि लेख मार्गदर्शक होगा। भगवान धन्वन्तरि आपको शतायु बनावें। नमस्कार करता हू।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

स्वस्थ पुरुष की स्वस्थता इसीमे समझी जाती है जिसमें शुक्र की उत्पत्ति सम्यक् प्रकार से होती रहे, मन प्रसन्न रहे, सब इन्द्रिया कार्य करती रहे। सब धातुओ की क्रिया होती रहे। ऐसे स्वस्थ पुरुष के शुक्र और स्वस्थ स्त्री के शोणित से समागम ऋतुकाल मे होने पर मन के सम्मिश्रित होने पर शुक्र शोणित के मिलने पर गर्भ रहता है। उसकी गर्भ सज्ञा होती है। ऐसा महर्षि चरक का मत है। किन्तु यदि इन दोनो में कोई रोग ससर्ग से, अन्य हेतु से शुक्र व शोणित दुष्ट हो जाते हैं तो गर्भ नहीं रहता। इसमें गर्भाधान शुद्ध शुक्र व शोणित के सयोग से ही होता है।

सुश्रुत ने शुक्र दुष्टि, अप्राप्ति के कई हेतु लिखें हैं। कई-प्रकार के नपुन्सक हैं—

पुरुषस्यानुपहतरेतस स्त्रियाश्चाप्रदुष्टयोनि शोणित गर्भाश्रया यदाभवति ससर्गऋतुकाले, यदानयोस्तथा प्रयुक्ते ससर्गे शुक्रशोणित ससर्गे तन्त गर्भाशयगतजीवोऽवक्रामति सत्वसयोगात्तद्‌तृदामर्योवक्रमाति सत्वसप्रयोगात्सदा गर्भोवक्रामति। —च० चि० अ० ३-३

स्त्रियों के भी सम्यक प्रकार से आर्तव काल में शोणित निकलना, ऋतुकाल मे शोणित (ओवम) का ठीक न निकलना इत्यादि कई हेतु बतलाये हैं। इनसे शुक्रशोणित का सम्यक् योग नही होता और गर्भ नही रहता तो निःसतानता होती है। रोगो के अतिरिक्त शुक्र मे जब बीज शुक्र नही निकलता तो वह मैथुनादि क्रिया सम्यक् प्रकार करते हुए भी गर्भाधान नही कर सकता। स्त्री का गर्भाशय सम्यक् वृद्धि को नही प्राप्त होता तो शोणित नही निकल सकता और गर्भ नही रहता। देखने मे शरीर स्वस्थ होगा, सुरूप होगा, स्त्री सब कार्य करते हुए भी गर्भाधान नही कर सकती। ऐसी दशा में गर्भ धारण नहीं होता। दापत्य सुख रहने पर भी सतान का सुख नहीं मिलता।

ऐसे समय मे प्रश्न उठता है कि क्या कारण है कि गर्भ नही रहता, गर्भाधान नही होता ?

इसमे बीज शुक्र स्पर्म या शुक्र कीट नही होते या अल्पमात्रा मे होते या नही होते। इसी प्रकार स्त्री मे भी ऋतुकाल में निकलने वाला शोणित या ओवम (Ovum) नही निकलता तो पुरुष कितना ही हृष्ट पुष्ट हो वह गर्भाधान नहीं कर सकता। इसलिए शुद्ध शुक्र, बीज शुक्र और बीज शोणित का होना अत्यन्त आवश्यक है। इनकी प्राप्ति का आधार शुक्र और शोणित का उपयुक्त होना आवश्यक है। इनकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है यह विचार करना है।

महर्षियो ने बीज शुक्र की प्राप्ति के लिए प्रयत्न लिखे हैं। यह ससार वनस्पतियो के द्वारा परिपूर्ण है। इसमे एक से एक उत्तम वनस्पति है। बला, अतिबला, महाबला, शतावरी, वाराहीकद, क्षीर विदारी, आत्मगुप्ता, भल्लातक, गृह कन्या, पुष्करमूल, कुष्ठ और तोदरी जर्द, त्रिकटु और त्रिफला आदि से परिपूर्ण है। मनुष्य को इन औषधियों से लाभ उठाना चाहिए। ये साधन हैं जिनके सेवन से मनुष्य शुद्ध वीर्य पा सकता है। ऐसे ही अशोक, दशमूल, दारुहरिद्रा, हरिद्रा और पुष्कर मूल ऐसे पदार्थ प्रकृति ने दिये हैं जिनके सेवन से नारी शुद्धसत्वा होकर प्रजत्पोदन मे समर्थ हो सकती है। इनको किस तरह उपयोग करना चाहिए यही विधि जानना अपेक्षित है—

पुरुषपक्ष मे—पचकर्म द्वारा शुद्ध शरीर प्राप्त कर स्त्री या पुरुष शुद्ध हो सकते हैं। पचकर्म मे वमन विरेचन व वस्ति कर्म ही प्रधान हैं। इनकी विधि आयुर्वेद की पुस्तको में लिखी है। स्नेहन घृत व तेल उष्ण करके वमन या विरेचन देने से पुरुष या स्त्री शुद्ध हो जाती है।

वमन—मदनफल के ६ माशा चूर्ण को मधुयष्टि के क्वाथ के साथ देने पर उर्ध्वकाय की शुद्धि हो जाती है।

विरेचन—स्नेहन करके अर्थात् स्नेह में घृत या तेल को खिलाकर पूर्णस्नेहित हो जाने पर विरेचनार्थ ६ माशे या १ तोले देने पर विरेचन सम्यक् प्रकार से हो जाता है। क्रूर कोष्ठ वाले के लिए वस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

वस्ति—क्षीर, घृत या एरण्ड तैल मिलाकर वस्ति देने पर शरीर ससर्जन क्रम अपना कर शुद्ध किया जा सकता है। वमन विरेचन हो जाने पर सम्यक् ससर्जन क्रम अपनाते हुए शरीर की शुद्धि की जाती है। इसमें मनुष्य या स्त्री के अग्निबल प्राप्त होजाने पर तब औषधि सेवन कराना चाहिए।

औषधि—शतावरी, अतिबला बीज, इक्षुरक, बडा गोखरू, आत्मगुप्ता के बीज, उटगन के बीज, नागबला मूल, तोदरी जर्द, अश्वगधा तथा क्षीर विदारीमूल, मुलहठी समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रख लीजिये। यह चूर्ण ३ माशे को एक वर्ण की गाय के दूध से, जिसका बछडा जीवित हो उससे दूध ग्रहण करना चाहिए।

दूध ग्रहण से पूर्व—गाय को उडद के हरे पत्तो को खिलाकर जब उसका दूध आने लगे उस दूध को ग्रहण करना चाहिए।

विधि—विधिपूर्वक किए ३ माशे चूर्ण को गाय के दूध को पाव भर लेकर चूर्ण को खाकर ऊपर से दूध पीवें। ऐसे ही शाम को भी करें। दूध का सेवन उचित रूप से करें।

दोपहर को—खाना खाने के बाद दशमूलारिष्ट या द्राक्षारिष्ट २ तोले रसोन वटी दो को खाकर पीलेना चाहिए। इसमे खाने के साथ शालि चावल का क्षीरपक्व भोजन करना चाहिए।

शाक मे—परवल, सोया, पालक ही लेना चाहिए। यह विधि ४१ दिन नियम से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए करनी चाहिए। इसमे तनिक ढील न देनी चाहिए।

प्रात काल की औषधि लेकर उसके पच जाने पर ही दोपहर का भोजन करना चाहिए। शाम की औषधि पच जाने पर ही रात्रि का भोजन क्षीरपक्व करना चाहिए। इस विधि को ४१ दिन पालन कर के शुक्र की परीक्षा करा लेनी चाहिए। शुक्र कीट पर्याप्त सख्या में आजाने पर इसे ठीक समझना चाहिए। यदि शुक्र कीट पर्याप्त मात्रा मे न हों तो औषधि का पुन यही क्रम दूसरी बार भी अपनाना चाहिए। ऐसे २-३ बार तक औषधि का सेवन करना चाहिए।

स्त्रियों मे यदि शोणित (ओवम) न निकलता हो तो कारण की जानकारी कीजिए और यदि गर्भाशय मे गड़-

बडी हो तो उसे सुधारने की दवा दीजिए। यदि मासिक की गडबडी के कारण यह रोग हो तो उसकी समुचित दवा दीजिये ताकि मासिक ठीक समय से हो।

पुष्यानुग चूर्ण ३ माशा की मात्रा प्रात साय देकर दूध के साथ भोजनोत्तर अशोकारिष्ट २ तोले खिलाकर पानी के कुछ घूट पिलाइए। यह चिकित्सा करीब २ मास देकर तब उसकी जांच कीजिए। यदि प्रदर के कारण हो रहा है तो मधुकादि चूर्ण ३ माशे देकर दूध के साथ प्रात साय पिलावें। मधुकादि चूर्ण मे मधुयष्टि और हरिद्रा चूर्ण व बग भस्म हैं। इसे ठीक से बनाकर दें। भोजनोत्तर पत्रागासव २ तोले, २ रसोन वटी के साथ मिलाकर दें। इसे दो माह सेवन करावें।

गर्भाशय को विकसित करने के लिए—

बहुत सी स्त्रियों मे गर्भाशय विकसित नहीं होता। ऐसी स्त्री देखने मे सुरूप व स्वस्थ होती है किन्तु जांच करने पर यह ज्ञात होता है कि गर्भाशय स्वाभाविक स्थिति मे नही है। ऐसी स्त्रियो को पुष्करावलेह दीजिए। पुष्करावलेह भैषज्य रत्नावली का योग है। इसे किसी फार्मेसी से ले लीजिये या बनवा लीजिये और इसका सेवन २ मास कराइये। इस प्रकार से परिचर्या पूर्णरूप से ब्रह्मचारिणी रह कर सेवन करे। अथवा-शिलाजतु वटी का नियमित सेवन मधुयष्टि के साथ कराइये। यह योग अचूक है। इस प्रकार स्त्री पुरुष अनुपहत शुक्र और शोणित युक्त होजाते हैं और तब गर्भ संभव है।

जब तक शुक्र व शोणित उपयुक्त नहीं होंगे गर्भ धारण नही हो सकता। यह योग मैं बराबर प्रयोग कराता हूं और निश्चित रूप से लाभ हो जाता है। जितने लोगों को यह सेवन कराया है प्रभु की कृपा से सबके पुत्र व पुत्री हुए हैं। यह योग दुर्लभ है। विश्वासपूर्वक सेवन कराने से लाभ होता है।

यदि कोई और कारण हो जो गर्भधारण मे बाधा पहुचाता हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। स्त्रियो मे योनि रोग २० प्रकार के बतलाये हैं। उनकी चिकित्सा करके तब स्त्री को उपयुक्त बनाना चाहिए।

ऐसे ही यदि शुक्र उत्पादन न होता हो या उपदश सुजाक या किन्हीं रोग विशेष से दूषित हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

—o✱o—

नपुसकता—विवेचन व उपचार : —पृष्ठ ७४ का शेषांश

पाक, शतावरी पाक, गोखरू पाक, असगन्ध पाक, अफीम पाक, वसन्त कुसुमाकर रस, कामिनी विद्रावण रस, अतुल शक्तिदाता सन्यासी प्रयोग आदि।

इसके अतिरिक्त विचित्र प्रकार के उत्तम भोजन, विविध प्रकार के पीने के द्रव्य, कानों को प्यारी लगने वाली बातें तथा स्पर्श का सुख देने वाली त्वचा वाली सुन्दरिया, चादनी रात, नवयौवना कामनी, कान तथा मन को हरने वाले गीत, ताम्बूल (पान) खाना, शराब पीना, पुष्प मालायें पहनना, उत्तम गन्ध इत्र आदि सूघना, चित्र विचित्र रूप देखना व वाटिकाओं में घूमना फिरना, मन को किसी बात से दुखी न करना व मन की प्रसन्नता ये सभी बातें मनुष्य को वाजीकरण करने वाली हैं।

लाल मिर्च, आम की खटाई, तेल सरसों, गरम मसाला, अधिक नमकीन खारी, कडवी वस्तुओ का सेवन न करें। स्त्री प्रसग से बचे रहें। पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहें। मलावरोध करने वाली वस्तुओ का प्रयोग न करें। मन को सदैव प्रसन्न रक्खें और हिम्मत से काम लें। हतोत्साहित न हो।

संयम-असंयमशील युवक

श्री शिवकुमार वैद्य शास्त्री, D Sc A., शिव चिकित्सालय, रावतपाड़ा, आगरा

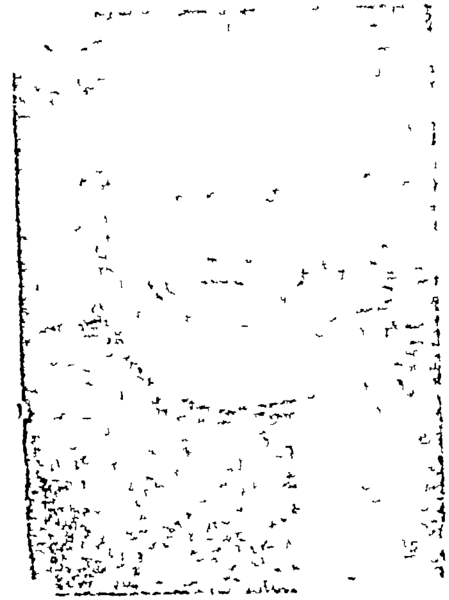
—★★—

अनुचित विधियों द्वारा वीर्य का अपव्यय कर डालने वाले एव असयमी जीवन बिताने वाले युवको के लक्षण तथा शुक्रक्षीणता की शास्त्रीय परिभाषा—

अल्पशीतोष्ण तेजः क्षुत्पिपासाश्रमरुट सह ।
पिंडिकासन्धिशिथिलो हीन बुद्धिबलेन्द्रिय. ।।
पाण्डुरोऽल्परतिस्तोयतुल्यरेता' । श्लथध्वज ।
मन्दवह्निश्च दीनश्च क्षीण शुक्रो नरो मत ।।

अर्थ—शीत, गर्मी, भूख, प्यास, परिश्रम और दुःख शोक आदि इनके झेलने मे असमर्थता आ जाती है, अर्थात सहनशक्ति का प्राय. अभाव हो जाता है। पैरो की पिंडलियां और सन्धिया (जोड) ढीले-ढीले से पड जाते हैं। बुद्धि बल, शारीरिक बल और सर्व इन्द्रियो की शक्तियां प्राय हीन पड जाती हैं। मैथुन क्रिया सुचारू रूप से नहीं हो पाती है अर्थात् कम सम्पन्न हो पाती है। शिश्न का उत्थान भी पूर्णरूप से नही हो पाता है। अर्थात मूत्रेन्द्रिय शिथिल एव जकडी सी हो जाती है। व्यवहार मे दीनता के भाव आ जाते हैं (गुलामी या दब्बूपन के भाव) उपर्युक्त सर्व लक्षण क्षीण, शुक्र अल्प वीर्य वाले नरों (मनुष्यो) के शास्त्रों मे बतलाये गए हे। इसके अतिरिक्त शुक्र क्षीण (वीर्य को नष्ट कर देने वाले) एवं वीर्य को दूषित (विकृत) कर देने वाले जो-जो लक्षण मुझे अपने पैंसठ वर्ष के चिकित्सा काल के मध्य (दरम्यान) देखने मे आते रहे हैं, उन सबका भी एकत्र रूप में यहा वर्णन कर देना जिज्ञासुओ के लाभार्थ उचित प्रतीत होता है।

शुक्र क्षीण (अल्पवीर्य) अर्थात असयमी जीवन बिताने वाले युवक अपने से बडी आयु वाले सम्बन्धियों एव किञ्चित (साधारण) सामर्थ्यवान व्यक्तियों के सम्मुख भी साहस के साथ उठने बैठने और वार्तालाप करने से अधिकतर बचने की चेष्टा करते हैं। अर्थात् ऐसे युवक



लज्जित हुए अपराधी की भाति नीची दृष्टि के साथ मुंह छिपाकर अपने से बडो के सामने बातचीत करते हुए प्राय पाये जाते है। कतिपय युवक ऐसे भी देखे जाते है जो दिखावटी सीना तानकर चलने और वार्तालाप, चपलता एव तीव्रता के साथ करने का प्रदर्शन इसलिए करते हैं कि समाज (सर्व साधारण जन) उन्हे शुद्ध, पवित्र, निर्दोष, बल, वीर्य, ओज, तेज वाला समझे, किन्तु उनका यह प्रदर्शन उद्दण्डता के रूप मे परिणित हो जाता है। उपरोक्त प्रकार के युवकों के आनन्दमय, स्वाभाविक, प्रसन्न वदन (मुख) की आभा नष्ट होकर निस्तेज (उदास) हो जाती है. अर्थात फीकी-फीकी सी किंचित पीतवर्ण युक्त और निर्जीवपना लिए हुए मुख प्रतीत होने लगता हैं। अत ऐसे युवक भाति-भाति के क्रीम पाउडरो द्वारा अपने मुख की आभा बनाये रखने में प्राय प्रयत्नशील रहते देखे जाते हैं। प्राय नेत्र और कपोल भीतर की ओर धसकर कपोलों की हड्डिया दीखने लगती हैं।

सिर के बाल अल्पायु मे ही झडने और पकने लग

जाते हैं। बारह वर्ष की आयु के उपरान्त ही केशों का श्वेत होने लगना प्राय शुक्रक्षीणता के कारण ही पाया जाता है।

प्रात शौच के पश्चात तथा अन्य अस्वाभाविक समयो मे दिन मे अनेक बार खाने की झूठी भूख, निर्बलता के कारण ऐसे युवको को प्राय अनुभव होती रहती हैं, किन्तु खाया हुआ आहार पच नही पाता है। ऐसे युवको को बद्धकोष्ठ (कब्ज) प्राय बना ही रहता है। मन्दाग्नि और अपच प्राय दोनों बने रहते हैं।

ऐसे युवको को निद्रा प्राय अधिक रात्रि बीतने के पश्चात ही आ पाती है और बहुत बार न्यून ही आती है। किन्तु जगाने पर आलस्य के कारण उठकर बैठना भी कठिन प्रतीत होता है।

ऐसे युवको का वीर्य जलसदृश पतला पड जाता है। मूत्र करते समय यदाकदा वीर्य की बूंद भी टपक जाया करती हैं। जहा सख्या मे मूत्र अधिक होते हैं वहा मूत्र वेग को रोकना भी कठिन हो जाता है।

ऐसे युवकों की हाथ-पैरो और शरीर की नस-नस प्राय. दुखा करती हैं। तथा हाथ पैरो मे शिथिलता, जडता और सनसनी सी भी प्राय होती रहती हैं। हाथ पैरो के पजे एव उगलिया शीत ऋतु मे एकदम ठडे रहते हैं और ग्रीष्म ऋतु मे एकदम अधिक गरम अर्थात जलते रहते हैं। पैरों के तलुए और हाथो की हथेलियो का अधिक पसीजते रहना भी प्राय क्षीण वीर्य वाले एव दूषित वीर्य वाले युवको मे ही पाया जाता है। हाथ पैरो मे कम्पन और निर्जीवता सी भी बनी रहती है।

ऐसे युवकों की नाटक, उपन्यास एव सिनेमा की पत्रिकायें पढने और अश्लील एव नग्न चित्रों को देखने मे अभिरुचि होती हैं। स्त्रियो मे उठने बैठने एव बातचीत करने में ऐसे पुरुषो को अधिक अभिरुचि होती है, तथा छिपी हुई दृष्टि से इनकी ओर देखते रहने मे भी इन्हें अधिक आनन्द आता है।

मुख पर पिडिका (मुहासो) का अधिक उभरना भी कामवासना मे अधिक लिप्त रहने वालों या/एव दूषित वीर्य वालो मे ही प्राय अधिक पाया जाता है।

वीर्य का अनुचित प्रकार से निस्सरण करने वालो के हृदय की धडकन अधिक बढ जाती हैं। चढने, उतरने, तेज चलने एव बातचीत करने तक से भी श्वास एव हृदय की धडकन अधिक तीव्र हो जाती हैं। ऐसे युवक बडी बडी आशाओ के परिणाम के साथ किसी भी कार्य को प्रारम्भ तो कर देते है, परन्तु प्रारम्भ किये गये कार्य अन्त तक न चलाकर प्राय वे बीच मे ही अधूरा छोड दिया करते है अर्थात क्षीण शुक्र युवको के विचारो की दृढता का प्राय अभाव सा ही हो जाया करता है। प्राय. मन मे दूसरो के प्रति ईर्ष्या, द्वेष के परिणामस्वरूप फल कुछ नही निकाल पाते हैं। अत स्वजीवन मे शत्रुओ की सख्या अधिक बढाकर अपना मन व्यर्थ मे ही मलीन और अपवित्र करते रहते हैं।

क्षीण शुक्र वाले युवको की पिडलिया और सन्धिया अधिक ढीली-ढीली सी हो जाती है। क्षीण शुक्र युवक बुद्धिहीन और बलहीन हो जाते हैं। तथा इनके शरीर की अन्य सब इन्द्रिया भी शक्तिहीन हो जाती हैं। रति क्रिया (मैथुन क्रिया) समुचित प्रकार से कर सकने मे भी पूर्ण समर्थ नही हो पाते हैं। लिंगोत्थान भी पूर्णरूप से नही हो पाता है, तथा मूत्रेन्द्रिय वक्र (किंचित झुकी हुई एव टेढी सी) हो जाती हैं। क्षीण शुक्र वाले युवक दीन (दासता एव दब्बूपन) की सी भावना वाले होते हैं। मस्तिष्क बिना मस्तिष्कीय परिश्रम किये हुए भी अति-थकित सा बना रहता है। पसीने मे दुर्गन्ध अधिक एव चिपचिपापन होता है। उत्साह एव उमग की प्राय कमी रहती है। धैर्यता न्यून होकर अधीरता अधिक बढ जाती है।

वीर्य रक्षा के साधन और संयमशील जीवन बिताने वाले युवको के लक्षण

स्मरण कीर्तन केलि ! प्रेक्षण गुह्यभाषणम्।
सकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाग प्रवदन्ति मनीषिणा ॥दक्षस्मृति॥

अर्थ—स्त्रियों का ध्यान करने, वर्णन करने, उनके साथ हसने खेलने, कामवासना की दृष्टि से देखने, गुप्त रूप से वार्तालाप करने वाले, मन में सभोग की इच्छा

एव विचार लाने वाले तथा उपर्युक्त बातो के लिए मन मे लगनशील बने रहने और साक्षात रूप मे मैथुन क्रिया प्रवृत्त हो जाने वाले इन आठो प्रकार के मैथुनो को सभोग का ही अग माना जाता है।

सयमी जीवन बनाने के लिए जहा अन्य श्रेष्ठ मानवो ने जिन साधनो के द्वारा स्वजीवन सयमशील बनाने मे क्षमता (समर्थता) प्राप्त की है तथा मुझे भी स्वजीवन में जो-जो अनुभव होते रहे हैं, उन सबको एकत्रित करके यहा लिखा जाता है। साथ ही मनुस्मृति के अनुसार जो मानव गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी ब्रह्मचारी के सदृश ही माननीय होते हैं। उनका भी उल्लेख कर देना यहा उचित प्रतीत होता है—

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरत सदा।
ब्रह्मचार्येव भवति तत्र तत्राश्रमे वसन् ॥

जो पुरुष केवल मात्र स्वपत्नी मे ही सतोष करता है। अर्थात् अन्य सब नारी मात्र को "मातृवत्परदारेषु" उक्ति के अनुसार ससार की सभी पराई स्त्रियो को माता की भावना वाली दृष्टि से ही देखता है वह मानव गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी ब्रह्मचारी के समान ही माननीय होता है। कहा भी है, "जाकी एक नारी सदा ब्रह्मचारी"।

सयमशील जीवन बनाने वाले युवको के लिए कतिपय स्मरणीय बातें

जिस प्रकार गन्धक, अग्नि और पेट्रोल अथवा कोई भी स्नेह पदार्थ घृत तैल और अग्नि इनका एकत्रित होने का परिणाम आदि काल से आज तक सदैव अग्नि की उत्पत्ति करने वाला ही होता है, ठीक इसी प्रकार से स्त्री, पुरुष, नर और मादा का परस्पर एकत्रित होकर रहने का परिणाम कामाग्नि का प्रज्वलित होना ही आदि काल से आज तक देखने, सुनने एव पढने में बराबर आता रहता है।

अत सयमशील जीवन बनाने वाले अभिलाषी स्त्री-पुरुषो को परस्पर मिलकर खेल खेलना, पढना, लिखना, आफिसों मे काम करना या स्वतन्त्र व्यवसाय आदि सभी कार्य युवक-युवतियों के साथ साथ परस्पर मिलकर करना सर्वथा वर्जनीय (निषिद्ध) रखना परमावश्यक होता है। अर्थात् सयमशील जीवनयापन करने वाले युवक-युवतियो को सर्व प्रथम उक्त नियम का पालन स्मरणीय है। क्योकि उचित एव आवश्यक समय पर जब अग्नि को स्वय प्रज्वलित करके नियन्त्रित रूप मे इससे सुव्यवस्थापूर्वक कार्य लिया जाता है तब साधारण से लेकर महान से महान कार्य करके इसके द्वारा ससार के सर्व प्राणी नित्य ही लाभान्वित होते हैं। (बल्कि सासारिक दैनिक कार्य) बिना अग्नि के पूर्ण होना सम्भव नही हो सकता। किन्तु जब अग्नि प्रज्वलित होने की सामग्री समीप होने से बिना अवसर और प्रयत्न किये हुए ही स्वय प्रज्वलित होकर अनियन्त्रित एव अव्यवस्थित रूप से अर्थात बेकाबू होकर फैल जाती है, तब इसके परिणाम भयकर एव हानिकारी होते है। लाभ किंचितमात्र भी न होकर अग्नि तीव्र होकर आस-पास रखी हुई बहु-मूल्य एव अत्यावश्यक सामग्री को भस्मीभूत कर डालती है, क्योकि बिना अवसर फैली अग्नि का ईश्वरीय नियम के अनुसार यह कार्य करना उसका स्वाभाविक धर्म होता हैं। उपर्युक्त प्रकार से ही स्त्री-पुरुष अर्थात नर मादा यदि एकान्त मे समीप रहने का अवसर पाते हैं, तब अवाछनीय एव अनुचित कामाग्नि प्रज्वलित हो गुण, कर्म, स्वभाव एव आयु आदि के बिना कामाग्नि प्रज्वलित हो जाना स्वाभाविक होने के कारण वह प्राय प्रदीप्त (उत्तेजित) होकर ही रहती है। इस कारण ५ से ७ वर्ष की आयु के बाद से ही बालक-बालिका एव युवक-युवतियो का साथ-साथ पठ्य-पाठन एव सम्भाषण अर्थात एकत्रित होकर निवास उठना-बैठना आदि का सर्व धर्म शास्त्रो मे एव ऋषि-मुनियो द्वारा भी सर्वथा निषेध किया गया है।

इसका पालन न होने से पश्चिमी देशों मे बराबर जो अनर्थ दुष्परिणाम हो रहे हैं, उनके समाचार प्राय नित्य ही पढने-सुनने मे आते रहते हैं। परिणामस्वरूप ऐसे लोगो के जीवन का आनन्द एव सुख मिट्टी मे मिलकर रह जाता है। ऐसे दुष्परिणामी उदाहरणो द्वारा देश के अन्य युवक-युवतियों के भी मन दूषित होकर नष्ट हो जाते हैं।

नपुंसकता

विवेचन व उपचार

वैद्य श्री दरबारीलाल आयु० भिषक्, अशोक भैषज्य भवन, फतेहगढ (फर्रुखाबाद) उ० प्र०

श्री वैद्य जी वयोवृद्ध सफल चिकित्सक हैं तथा आप आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा करते हैं। 'धन्वन्तरि' के प्रति आपकी सदैव ही कृपा रहती है तथा प्रत्येक विशेषांक आपके विद्वतापूर्ण लेखों से ओत प्रोत रहता है। प्रस्तुत लेख भी पाठको को अनेको सफल सिद्ध प्रयोग प्रदान करेगा जिनसे पाठक लाभान्वित होगे। भगवान से प्रार्थना है कि वैद्य जी शतवर्षायु हों।

—दाऊदयाल गर्ग

परम पिता परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति के लिये हर वस्तु का बीज बनाया है। जिस वस्तु का जो बीज होता है उससे वही वस्तु उत्पन्न होती है। यदि बीज उत्तम, रोगरहित, पुष्ट होता है तो उससे पौधा भी उत्तम स्वस्थ और पुष्ट पैदा होता है। यदि बीज उत्तम, स्वस्थ और पुष्ट नही है तो हमें उससे उत्तम, स्वस्थ और पुष्ट पौधे की प्राप्ति नहीं हो सकती। यही हाल मनुष्य के शरीर में वीर्य का है। सन्तान की उत्पत्ति के लिये परमेश्वर ने मनुष्य के शरीर मे वीर्य की रचना की है। वीर्य को शुक्र भी कहते हैं। वीर्य के बिना सन्तान की उत्पत्ति असंभव है। शुद्ध, स्वस्थ, पुष्ट, उत्तम वीर्य से सन्तान उत्तम, स्वस्थ और पुष्ट उत्पन्न होती है और दूषित वीर्य से प्रथम तो गर्भ स्थापन ही नही होता है, यदि गर्भ स्थापन हो भी जाय तो जो सन्तान उत्पन्न होगी वह रोगी, दुर्बल और अल्पायु होगी। जिन-जिन रोगों से वीर्य दूषित होगा वही-वही रोग अक्सर सन्तानो को होते हुये पाये जाते हैं। मैथुन द्वारा रज वीर्य का सयोग होकर सन्तान उत्पन्न होती है। यदि मनुष्य मैथुन करने में असमर्थ है तो वह सन्तान पैदा नहीं कर सकता है और बिना सन्तान के ससार सूना है। इसी लिये ऐसी दवाओं तथा विधियों का प्रयोग खोजा गया जो मनुष्य को मैथुन करने में समर्थ बनायें। इसीको वाजीकरण कहते हैं। जब वीर्य निर्दोष होगा, लिंगेन्द्री भी रोगरहित स्वस्थ होगी और शरीर तथा मन भी स्वस्थ होगा तभी मनुष्य भलीभाति मैथुन कर सकेगा और उत्तम सन्तान उत्पन्न कर सकेगा। इसीलिये ऋषि मुनियो ने वीर्य को निर्दोष बनाने व उसको बढाने व लिङ्गेन्द्रिय को रोगरहित स्वस्थ बनाने व शरीर को स्वस्थ, पुष्ट बनाने के लिये अष्टांग आयुर्वेद के एक अंग के रूप मे वाजीकरण का वर्णन किया है।

वाजीकरण शब्द वाजी और करण दो शब्दों से मिल कर बना है। वाजी का अर्थ घोड़ा और करण का अर्थ करना, अर्थात जो पदार्थ मनुष्य को घोडे के समान मैथुन करने मे समर्थ बनाये उसे वाजी करण कहते हैं। जो पुरुष मैथुन करने मे असमर्थ हों उसे नपुंसक या नामर्द या क्लीव या हिजडा या मुखन्नस कहते हैं।

नपुंसकता (नामर्दी) सात प्रकार की होती है जिसका विवरण नीचे लिखा जा रहा है—

(१) मानसिक नपुंसकता—मन सम्बन्धी नामर्दी।

(२) पित्तज नपुंसकता—पित्त वृद्धि के कारण हुई नामर्दी।

(३) वीर्य क्षयजन्य नपुंसकता—वीर्य के नष्ट होने के कारण हुई नामर्दी।

(४) रोगजन्य नपुसकता—रोग के कारण हुई नामर्दी।

(५) शिराछेदजन्य नपुंसकता—वीर्यवाहिनी नसों के कटने से हुई नामर्दी।

(६) शुक्र स्तम्भजन्य नपुंसकता—मैथुन न करने से हुई नामर्दी।

(७) सहज नपुंसकता–जन्म से या पैदायशी नामर्दी।

इनकी व्याख्या नीचे लिखी जाती है -

(१) मानसिक नपुंसकता—मैथुन करने वाले पुरुष का मन जब भय, शोक, क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या आदि विकारो से बिगड जाता है या अनचाही स्त्री से मैथुन करे या ऐसे विचार पैदा हो कि मैं उससे कुछ भी न कर सकूंगा या शर्मा जावे तो उसको चैतन्यता नही होती। शिश्न मे तेजी और सख्ती नही आती। जिससे वह मैथुन करने मे असमर्थ रहता है। इसको मानसिक नपुंसकता कहते हैं।

(२) पित्तज नपुंसकता—चरपरे, खट्टे, गरम और खारी, नमकीन आदि पित्तवर्द्धक पदार्थों के अत्यन्त खाने से पीने से पित्त बढ़ कर वीर्य को नष्ट कर देता है और वीर्य के नष्ट होने से नपुंसकता आ जाती है।

(३) वीर्य क्षय जन्य नपुंसकता—जो पुरुष मैथुन तो बहुत करता है पर वीर्य को पैदा करने वाली या बढ़ाने वाली वस्तुओं का सेवन नही करता उसका वीर्य नष्ट होकर नपुंसकता हो जाती है। उसको वीर्य क्षयजन्य नपुंसकता कहते हैं।

(४) रोगजन्य नपुंसकता—लिङ्गेन्द्रिय मे उपदश, सुजाक आदि भयङ्कर रोग हो जाने से या बहुत दिनों तक बीमार रहने से, आमाशय या यकृत के कमजोर हो जाने से दिमाग की कमजोरी से, गुर्दों की कमजोरी से मनुष्य मैथुन करने मे असमर्थ हो जाता है। उसको रोग जन्य नपुंसकता कहते हैं।

(५) शिरा छेद जन्य नपुंसकता—किसी कारण से वीर्य वाहिनी नसो के कट जाने से भी लिंग मे चैतन्यता नही होती है। ऐसी नामर्दी को शिरा छेदजन्य नपुंसकता कहते हैं।

(६) शुक्र स्तम्भ जन्य नपुंसकता—जो पुरुष अधिक दिनों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, स्त्री प्रसग की इच्छा होने पर भी मैथुन न करें और वीर्य को बाहर न निकलने दें तो उनका वीर्य शान्त हो जाता है और नपुंसकता आ जाती है। इसीको शुक्र स्तम्भजन्य नपुंसकता कहते हैं।

(७) सहज नपुंसकता—जो पुरुष जन्म से ही नामर्द होता है, उसे सहज नपुंसक कहते हैं। ऐसे बालक के जन्म से ही शिश्न नही होता है या यदि होता भी है तो वह निर्जीव या निकम्मा होता है जिससे वह मैथुन के अयोग्य होता है। इसी को सहज नपुंसक कहते हैं।

साध्यासाध्यता —

शिरा छेदजन्य तथा सहज नपुंसक असाध्य हैं। शेष पाचो नपुंसक उत्तम इलाज से ठीक हो सकते हैं।

नपुंसकता की चिकित्सा अर्थात् बाजीकरण विधि-

साध्य नपुंसको को जिन-२ कारणों से नपुंसकता उत्पन्न हुई हो उन-उन कारणो को दूर कर देना चाहिये तो अपने आप नपुंसकता दूर होकर पुरुषार्थ हो जाता है।

मनुष्य १६ वर्ष की आयु से लेकर ७० वर्ष की आयु तक वाजीकरण करता रहे और इसी आयु मे मैथुन भी कर सकता है। यदि मनुष्य आयु की वृद्धि चाहता है तो १६ वर्ष से कम आयु मे और ७० वर्ष की आयु के बाद मैथुन न करे। जो मनुष्य १६ वर्ष से कम आयु का हो और स्त्री से मैथुन करता हो या ७० वर्ष की आयु के बाद भी स्त्री से मैथुन करता हो तो उसको क्षय, वृद्धि रोग, उपदश आदि भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं और उसकी अकाल मृत्यु होती है। क्योंकि शास्त्रो में लिखा है कि—

मरण विन्दु पातेन जीवन विन्दु धारणात्।

अर्थात वीर्य की बूंद के पात होने से (निकलने से) मृत्यु और वीर्य की बूंद के धारण करने से (रोकने से) जीवन है। और भी कहा है कि—

मलायत्त बल पुंसा शुक्र मूल च जीवितम्।
तत सर्व प्रयत्नेन मले शुक्र च रक्षयेत॥

अर्थात् मनुष्य का बल मल के आधीन है और जीवन शुक्र (वीर्य) के आधीन है। इसलिये सभी उपायो से मल व वीर्य की रक्षा करनी चाहिये। इन उदाहरणो से स्पष्ट प्रकट होता है कि मनुष्य का जीवन वीर्य पर ही निर्भर है। अत उसकी रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। विद्वानो का कथन है कि मनुष्य जितनी सालो

तक ब्रह्मचर्य रखता है उसकी आयु उसकी चार गुनी होती है। यदि २५ साल तक पूर्ण ब्रह्मचर्य रक्खा जाय तो उसकी आयु १०० साल की होगी।

वाजीकरण किनको सेवन करना चाहिये —

जो पुरुष विलासी (ऐयाश) हों, धनवान हो, रूप यौवन से शोभित हो रहे हो तथा जिनके अनेक स्त्रिया हों, ऐसे पुरुषो के लिये वाजीकरण हितकारक है, अथवा जो बूढ़े हो रहे हों परन्तु मैथुन करने की इच्छा रखते हों, स्त्रियों के प्रिय बनना चाहते हो उनके लिये वाजीकरण विधि हितकर है। या जो स्त्रियो के साथ विषय भोग करने से क्षीण हो गये हो या जिनमें थोडा वीर्य हो ऐसे नपुंसक हों उनको भी वाजीकरण से लाभ होता है। वाजीकरण के प्रयोग से स्त्रियो मे प्रीति बढती है, बल बढता है तथा सन्तान प्राप्त होती है। वाजीकरण योग केवल ऊपर लिखे हुये व्यक्तियो को ही नही सेवन करने चाहिये अपितु पुष्ट देह वाले अन्य पुरुषो को भी यथासमय सेवन करने चाहिये। मनुष्य में वीर्य का ही पुरुषार्थ है। वीर्य नहीं तो पुरुषार्थ नही। इसीलिये वीर्य की रक्षा करना, वीर्य वर्द्धक आहार विहार का सेवन करना सदैव उचित है।

प्रकार भेद से नपुंसकता की चिकित्सा

मानसिक नपुसकता की चिकित्सा – आजकल इस प्रकार के नपुसक अधिक देखे जाते हैं। नपुसकता की चिकित्सा करते समय सर्व प्रथम यह देखना चाहिये कि किस प्रकार का नपुसक है। फिर उसी के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। आप अवश्य सफल होगे। मानसिक नपुसक की मोटी पहिचान यह है कि ऐसे पुरुष को स्त्री से अलग रहने की हालत मे चैतन्यता अवश्य होती है और स्त्री प्रसग की इच्छा होती है, पर औरत के सामने आते ही निकम्मा हो जाता है उसे चैतन्यता नही होती। इन लक्षणो से मानसिक नपुसक निश्चय करके उसकी मानसिक चिकित्सा करनी चाहिये। उसके वहम को मिटाना चाहिये। उसकी नाडी आदि देखकर उसे विश्वास दिलाना चाहिये कि तुम पूरे मर्द हो, नामर्द जरा भी नहीं हो। यह तुम्हारे मन का वहम है इसको निकाल दो। तुम्हे कोई रोग नही है। बार बार इस प्रकार से विश्वास दिलाने और हिम्मत बढ़ाने से रोग निर्मूल हो जाता है। इसके साथ ही दिल दिमाग और वीर्य को ताकतवर और पुष्ट करने वाली कोई अच्छी दवा भी देनी चाहिये। और साथ ही उस दवा की लम्बी चौडी तारीफ भी कर देनी चाहिये। बस इन उपायो से मानसिक नपुसक स्वस्थ हो जायेगा।

पित्तज नपुसक की चिकित्सा—ऐसे नामर्दों का वीर्य एकदम पानी जैसा पतला तथा दुर्गन्धित हो जाता। यह आदमी मैथुन करता है तो शीघ्र स्खलित हो जाता है और कुछ भी आनन्द नही आता है। किसी किसी को चैतन्यता आती ही नही और किसी को आती है तो जरा देर मे ही फिर सुस्ती आ जाती है मनोरथ पूरा नही होता है। ऐसे रोगी को लालमिर्च, खटाई, नमकीन, खारी और गरम तथा रूखे पदार्थों के सेवन करने से रोकना चाहिये। जिस प्रकार दूध में खटाई डाल देने से दूध फट कर खराब हो जाता है उसी प्रकार वीर्य भी अधिक खटाई के प्रयोग करने से फटकर बिगड जाता है। ऐसे रोगी को पित्तनाशन शीतल, स्निग्ध, वीर्य शोधक तथा वीर्यवर्द्धक पदार्थ या दवायें देनी चाहिये। नीचे लिखी दवायें ऐसे नपुसकों के लिये हितकारी हैं—

(१) विदारीकन्द के चूर्ण में विदारीकन्द के स्वरस या काढे की कम से कम ७ भावना देकर सुखा कर और समान भाग मिश्री मिलाकर ६ माशे से १ तोला तक प्रात. साय दूध से सेवन करें।

(२) आमलों के चूर्ण मे आमलो के स्वरस की सात भावना देकर और सुखा कर ३ माशे से ६ माशे तक घी शहद विषम भाग के साथ खिलायें। इसको आमलकी रसायन कहते हैं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन झासी से व गुरुकुल कागडी फार्मेसी हरिद्वार से बनी बनाई मिल जायेगी।

(३) विदारीकन्द और गोखरू के चूर्ण मे समान भाग मिश्री मिलाकर प्रात साय ६ माशे १ से तोला तक

गरम करके ठंडे किये हुये दूध से खिलाओ।

(४) आमला के मुरब्बे पर चांदी के वर्क लगाकर या प्रवाल पिष्टी लगाकर खिलाओ।

(५) शतावरी पाक या मूसली पाक या कूष्मांड पाक या बादाम पाक खिलाओ।

(६) ईसबगोल की भुसी में बराबर की मिश्री मिला ६ माशे से १० माशे तक पर्याप्त दूध के साथ खिलाओ।

(७) शतावर्यादि चूर्ण—शतावर, नागबला, बिदारीकन्द, गोखरू, आमला प्रत्येक समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण बनालें और इसमें से ३ माशे से ६ माशे तक चूर्ण घी, शहद तथा शक्कर मिलाकर प्रयोग करें या दूध के साथ प्रातः सायं सेवन करें।

वीर्यक्षयजन्य नपुंसकता की चिकित्सा—

ऐसे नपुंसक को चैतन्यता तो होती है पर बिना वीर्यपात हुये ही सुस्ती आ जाती है, लिंग शिथिल या ढीला हो जाता है। कभी-२ वीर्य गिरता ही नहीं। अगर गिरता है तो दो चार बूंद मात्र। ऐसे पुरुष स्त्री को सन्तुष्ट नहीं कर सकते इसलिये ऐसा मर्द भी नामर्द ही है। जब वीर्य कम हो जाता है तब प्रसङ्ग की इच्छा ही नहीं होती, क्योंकि चैतन्यता का कारण वीर्य ही है। वीर्य की कमी से शरीर दुबला हो जाता है। देह में बल नहीं रहता, रङ्ग पीला सा हो जाता है, भोजन की इच्छा कम होती है, तथा लिङ्गेन्द्रिय दुर्बल और सूखी सी रहती है। ऐसे नामर्दों की चिकित्सा करते समय उन्हें स्त्री के साथ प्रसङ्ग करने की सख्त मनाही कर दें और उनको हिदायत करदें कि किसी भी प्रकार से वीर्य नष्ट न करें। और निम्नलिखित बलवीर्यवर्द्धक, वायुनाशक, तर गरम पदार्थ सेवन करायें और जठराग्नि बढ़ाने का भी ध्यान रक्खें।

(१) दूध, घी, रबड़ी, मलाई, मोहन भोग, बंगाली मिठाई आदि।

(२) उर्द की दाल की खीर गोला गरी, किशमिश, चिरौंजी, छुआरा आदि मेवा डालकर बनाई हुई।

(३) उर्द के लड्डू।

(४) आम्र पाक, मूसली पाक, असगंध पाक, सौंठ पाक, बादाम पाक, गोखरू पाक, बादाम का हलवा, मलाई का हलवा, वानरी गुटिका आदि।

रोगजन्य नपुंसकता की चिकित्सा—

जिस रोग से नपुंसकता हुई हो उस का पूरा हाल मालूम करके वैद्य को सर्वप्रथम उसी रोग को दूर करना चाहिये। उस रोग के दूर होने पर नपुंसकता भी दूर हो जायेगी। यदि उपदंश से हो तो उसकी उत्तम चिकित्सा करनी चाहिये। यदि सुजाक के कारण हो तो सुजाक को नष्ट करने वाली लक्षणों के अनुसार उत्तम चिकित्सा करनी चाहिये। इसी प्रकार यदि दिल दिमाग की कमजोरी से या आमाशय और जिगर की कमजोरी से या गुर्दों की कमजोरी से या किसी अन्य रोग से नपुंसकता हुई हो तो भलीभांति परीक्षा करके रोग निर्णय करके तब उन उन अंगों को बलवान बनाने वाली और उन अंगों के रोगों को दूर करने वाली दवायें प्रयोग करनी चाहिये।

शिराछेदजन्य नपुंसकता का इलाज होना असम्भव है। शास्त्रों में लिखा है। इसीलिए उसका कोई इलाज नहीं है। परन्तु आजकल शल्य क्रिया ने बहुत प्रगति की है। सम्भव है कि भविष्य में शल्य क्रिया द्वारा इसका भी इलाज किया जा सके।

शुक्र स्तम्भजन्य नपुंसकता की चिकित्सा—

चेहरे पर खूब तेज, कांति होने पर भी, शरीर मजबूत और बलवान होने पर भी स्त्री प्रसंग नहीं कर सकता है।

तिब्बे अकबरी में लिखा है कि "बहुत समय तक स्त्री प्रसंग का मौका न पड़ने से वीर्य की पैदायश उसी प्रकार बन्द हो जाती है जिस प्रकार बालक का दूध छुड़ाने के बाद दूध की उत्पत्ति स्वतः बन्द हो जाती है अर्थात् जब स्त्री अपने हाल के पैदा हुये बच्चे को दस बीस दिन दूध नहीं पिलाती है तो फिर उसके स्तनों में दूध नहीं आता। ठीक उसी तरह अगर पुरुष बहुत दिनों तक स्त्री प्रसंग नहीं करता तो उसके शरीर में वीर्य की उत्पत्ति बन्द हो जाती है। ऐसा मनुष्य यदि मैथुन करना चाहता है तो लिंग चैतन्य नहीं होता। इससे वह नामर्द कहलाता

है। इस दशा मे चैतन्यता और उत्तेजना पैदा करने वाले पदार्थ काम मे लाना हितकारी है। ऐसे रोगी को नाच गाना देखना, हल्की बढिया शराव पीना, स्त्रियों को चुम्बन हसी, मजाक और मर्दन करना, मनोहर उपन्यास या शृङ्गार रस की कामोत्पादक पुस्तकें पढना, पशुओ को सम्भोग करते देखना, सुरीले गले वाली कोकिलकठी स्त्रियो के गीत सुनना, कामोद्दीपक पदार्थ खाना आदि। ऐसे कामो से वीर्य पतला होकर अपनी जगह से चलने लगता है और फिर चैतन्यता होकर स्त्री के पास जाने की इच्छा होने लगती है और इस तरह उसकी नामर्दी समाप्त हो जाती है।

सहज नपुंसक को शास्त्रकारो ने असाध्य माना है। इसलिये उसका कोई इलाज नही। जैसाकि आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे लिखा है कि—

असाध्यं सहज क्लैव्यभगच्छेदाच्चयदं भवेत्।

अर्थात् सहज (जन्म के नामर्द) और अङ्गछेदजन्य (नस कट जाने या लिंग या फोतों के पिस जाने आदि से हुये) नामर्द असाध्य हैं। उनका इलाज नही हो सकता है–

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत मे पाच प्रकार के नपुंसक कहे गये हैं जिनका विवरण नीचे दिया जारहा है–

(१) आसेक्य नपुंसक—माता पिता के बहुत ही कम वीर्य होने पर भी यदि गर्भ रह जाता है तो आसेक्य नपुंसक पैदा होता है। ऐसा पैदा हुआ लडका दूसरे पुरुष से अपने मुंह मे मैथुन कराता है। जब मैथुन करने वाले का वीर्य गिरता है तब वह नपुंसक उसे खा जाता है। उस वीर्य के खा लेने मे उस नपुंसक का लिंग चैतन्य होता है और तब वह अपनी स्त्री से मैथुन करता है। ऐसे नपुंसक को मुख योनि नपुंसक भी कहते हैं।

(२) ईर्ष्यक नपुंसक—जो मनुष्य अपने आप मैथुन नहीं कर सकता पर जब वह किसी दूसरे को मैथुन करते देखता है तब मैथुन करने लगता है। यानी दूसरे को मैथुन करते देख कर उसके लिङ्ग मे चैतन्यता होती है। उसे ईर्ष्यक नपुंसक या दृग्योनि नपुंसक कहते हैं।

(३) कुम्भीक नपुंसक—जो पुरुष विना स्वय गुदा मैथुन कराये अपनी स्त्री से मैथुन नही कर सकता उसे कुम्भीक नपुंसक कहते हैं। कुम्भीक नपुंसक इच्छा करने से अपनी स्त्री के साथ सम्भोग नही कर सकता। जब उसे मैथुन करना होता है तब वह पहले किसी दूसरे पुरुष से अपनी गुदा भजन कराता है। गुदा भजन से उसकी लिङ्गेन्द्रिय चैतन्य होती है। इसके बाद वह स्त्री से मैथुन करता है। कोई-२ यह भी कहते हैं कि जो पुरुष लौंडेबाज होते हैं वे अपने शिथिल लिङ्ग से पहले स्त्री से गुदा मैथुन करते हैं तब कही उनके लिङ्ग मे तेजी आत है। इसके बाद वह स्त्री से योनि मैथुन करते हैं। ऐसे पुरुषो को कुम्भीक नपुंसक और गुद योनि भी कहते हैं। कुम्भीक नपुंसक कैसे पैदा होते हैं इस बारे मे वश्यप ने लिखा है कि ऋतु काल मे श्लेष्म रेत (वीर्य) वाला पुरुष यदि अल्प रज वाली स्त्री से मैथुन करता है तो उस स्त्री की कामवासना शान्त नही होती तथा दूसरे पुरुष से मैथुन करने की इच्छा करती है। उसके जो पुत्र पैदा होता है वह कुम्भीक नपुंसक पैदा होता है।

(४) महापढ नपुंसक—जो पुरुष मैथुन के समय आप स्त्री के नीचे लेटता है और स्त्री को अपने ऊपर चढा कर मैथुन कराता है या आप नीचे से मैथुन करता है, उससे यदि गर्भ रह जाता है तो जो पुत्र पैदा होता है उसकी सारी चेष्टायें स्त्री की सी होती हैं। वह लडका स्त्री की तरह आप नीचे सोकर अपने लिंग पर दूसरे पुरुष से वीर्य गिरवाता है। ऐसे नपुंसक को महाषढ नपुंसक कहते है। महापढ नपुंसक दो तरह के होते हैं। उनमे से एक के सम्वन्ध मे ऊपर लिखा जा चुका है। दूसरा यह कि स्त्री ऊपर और पुरुष नीचे इस तरह से मैथुन करने से यदि गर्भ रह जाय और उससे कन्या पैदा हो तो उस कन्या की सारी चेष्टायें पुरुष के जैसी होती हैं। यानी वह दूसरी स्त्रियो को अपने नीचे लिटा कर मर्द की तरह अपनी योनि से उसकी योनि को रगडती है। ऐसी स्त्री को नारी षढ नपुंसक कहते हैं। अगर इस तरह दो स्त्रिया भग से भग को रगडकर मैथुन करती हैं तो दोनो का रज गिरता है और उससे यदि गर्भ रह जाता है तो पैदा होने वाली सन्तान के शरीर मे हड्डिया नही होती। वह पैदा हुई सन्तान अपने

हाथ पैर समेट नही सकती। दूसरा कोई उसके हाथ पैरो को चाहे जिस ओर झुका दे। ऐसे बालक जीते नही। कोई पैदा होते ही और कोई एक दो दिन जीवित रहकर मर जाते हैं।

(५) सौगन्धिक नपुंसक—जो पुरुष दुष्ट योनि मे पैदा होता है उसके लिंग मे दूसरे के लिंग और योनि सूंघने से चैतन्यता आती है। यानी जब वह दूसरे के लिंग और योनि को सूंघता है तब उसका लिंग चैतन्य होता है। ऐसे नपुंसक को सौगन्धिक नपुंसक और नासा योनि नपुंसक भी कहते हैं।

आसेक्य, सौगन्धिक, कुम्भीक और ईर्ष्यक इन चारों नपुंसको मे वीर्य होना है। केवल महाषढ मे वीर्य नही होता इसलिये महार्षढ नपुंसक असाध्य होता है।

कुछ वाजीकरण योग नीचे लिखे जाते हैं जिनके प्रयोग करने से नपुंसकता नष्ट होकर पुरुषत्व प्राप्त होता है—

(१) मुसल्यादि चूर्ण—सफेद मूसली एक भाग, ताल मखाना २ भाग, गोखरू ३ भाग लेकर चूर्ण कर समान भाग शकर मिलाकर ६-६ माशे प्रात साय गुनगुने दूध के साथ सेवन करें। वीर्य वृद्धि होकर नपुंसकता नष्ट हो। इस योग की प्रशसा मे आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे निम्नांकित श्लोक लिखा है—

त्रिगुण सप्तदिन परिभक्षयन्शत
वया अपि काक्षतिकामिनीम्।
किमिह चित्रमुदित्वर यौवन
शशि मुखी शयनान्न जिहासति॥

उक्त श्लोक का अर्थ यह है कि इस चूर्ण को २१ दिन खाने से १०० वर्ष का वूढा भी कामिनी की कामना करता है। तो नव यौवन वाला पुरुष तो यदि शय्या पर से चन्द्रमुखी रमणी को न छोडे तो आश्चर्य ही क्या है।

(२) वानरी गुटिका—कौच के बीज १ कुडव (१६ तोला) लेकर एक प्रस्थ (६४ तोला) गाय के दूध मे डाल कर धीरे धीरे आच दे कर स्वेदन करे। जब दूध गाढा हो जावे तो वीजों को निकाल छिलका दूर करके उन्हें सूक्ष्म करके पीस लेवे। फिर उस पीठी की टिकिया वा वडिया या गोलिया बनाकर घी मे तल लेवे। फिर उन वटिकाओं से दुगुनी अर्थात् दो कुडव (३२ तोला) खाड की चाशनी करके उन पर चढा देवे, फिर शुद्ध शहद मे वे सब खांड चढी हुई वटिकायें डाल दें। शहद इतना डालें जिसमें वे सब डूब जाय। फिर उनको पांच टक (१। तोला) भर लेकर प्रात साय खायें। इनके खाने से जिस मनुष्य का वीर्य शीघ्र ही द्रवित हो जाता हो या जिसकी इन्द्री उठती न हो वह मनुष्य भी घोडे समान मैथुन करने मे अत्यन्त सामर्थ्य को पाता है।

(३) शतावर्यादि योग—शतावर, गोखरू, असगन्ध, पुनर्नवा, नागवला, मूसली इन सवका चूर्ण घी तथा खाड से मिला कर खायें तो क्षीण मनुष्य भी हाथी के समान वलवान हो जाता है।

(४) विदारी चूर्ण—विदारीकन्द के चूर्ण को ६ माशे लेकर घी खाड मिलाकर मीठे दूध से खावे तो वूढा भी जवानों के समान आचरण करता है।

(५) गोक्षुर चूर्ण—गोखरू का चूर्ण बकरी के दूध में डालकर पकायें, उस दूध को शीतल कर मधु मिला कर पिलायें तो नपुंसकता नष्ट होती है।

(६) पौष्टिक रसायन—केशर असली ६ माशे, शु कुचला ३ माशे, कस्तूरी ४ रत्ती, दाना इलायची, लौंग, जायफल, जावित्री, अकरकरा, कालीमिर्च, कौंच के बीज, १-१ तोला बगला पान के रस मे घोट चना सम गोली बना प्रात साय १-१ गोली गाय के एक पाव दूध से प्रयोग करें। ये गोलिया पौष्टिक, शक्तिवर्द्धक, वाजीकरण तथा शीघ्रपतन नाशक हैं। जाडे के मौसम मे सेवन योग्य हैं।

(७) मूसली पाक—सफेद मूसली का कपडछन चूर्ण तीन पाव, बवूल का गोंद दरदरा कुटा डेढ पाव, लौंग, छोटी इलायची, नाग केशर, सोंठ, पीपल, मिर्च काली, तेजपात, जावित्री, जायफल प्रत्येक का कपडछान चूर्ण १॥-१॥ तोला, उत्तम वग भस्म १॥ तोला चादी के वर्क ६ माशे, सोने के वर्क ३ माशे, मिश्री ४ सेर, घी आधा सेर। निर्माण विधि—प्रथम कलई दार कढाही में डेढ पाव घी डाल कर मूसली के चूर्ण को

भूनो, आग मन्दी रक्खे। चूर्ण जलने न पावे। जब वह सुर्ख हो जाय उतार लो। फिर घी चढ़ाकर गोंद को भून लो। जब गोंद फूल कर लाल हो जाय उतार लो। अब मिश्री को कढ़ाही में डालकर पानी के साथ पकाओ। जब चाशनी पाक होने पर आवे उसमे खोवा तीन पाव और गोंद डाल दो और चलाओ। जब चाशनी पाक के लायक होने में १० मिनट की देर रहे तब दवाओं का चूर्ण व बंग भस्म तथा वर्क मिला दो और उतार कर घी लगी थाली में फैला दो। शीतल होने पर चाकू से बरफी काट कर अमृतवान में भरकर रख लो या चाहे तो २-२ तोले के लड्डू बनकर रख लो। इसकी मात्रा २ तोला की है। बलवान ३ तोला तक खा सकता है। पाक खाकर मिश्री मिला दूध पियो। इसके सेवन करने से वीर्य की कमी के कारण हुई नामर्दी आवश्य ही चली जायेगी। और वीर्य बढ़ेगा। इससे प्रमेह, धातुक्षीणता, निर्बलता नष्ट होकर मैथुनशक्ति खूब बढ़ती है। कामियो को हर जाड़े में यह पाक खाना चाहिये।

(८) चन्द्रोदय रस—४ तोला चन्द्रोदय, १६ तोला भीमसेनी कर्पूर, ६४ माशे जायफल, कालीमिर्च, लौंग ६४-६४ माशे, कस्तूरी ४ माशे इन सबको खरल में डाल कर घोट कर शीशी में रख लो। इसमें से १ माशे रस पान में रखकर कुछ दिन खाने से नामर्दी नष्ट होकर मनुष्य पूरा मर्द बन जाता है। जो एक वर्ष तक इस रस को सेवन करता है उसे स्थावर और जगम विष से कभी कोई तकलीफ नही होती है। इसके लगातार दस पाच वर्ष सेवन करने से बुढ़ापा और मृत्यु दूर भागते हैं।

(९) पूर्णचन्द्र रस—रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, शुद्ध शिलाजीत, वायबिडंग, स्वर्ण माक्षिक भस्म १-१ तोला लेकर इनको खरल में पीस कर मिला कर रख लो। इसमें से अपने बलानुसार १ से ४ रत्ती रस १ तोला घी और ६ माशे असली शहद में मिला कर खाने से अत्यन्त पुष्टि होती है और रति शक्ति बढ़ती है।

(१०) श्री मन्मथ रस—शु. पारा, शु.गन्धक आवला-सार १-१ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, भीमसेनी कर्पूर ८ माशे, बंग भस्म ८ माशे, लोह भस्म १ माशे, ताम्र भस्म, बिधारा के बीज, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाना, खिरेंटी, कौंच के बीज, गगेरन, जायफल, लौंग, जावित्री, भाग के बीज, सफेद राल, अजवाइन, जीरा ४-४ माशे। निर्माण विधि—प्रथम पारे और गन्धक की निश्चन्द्र कज्जली करो। फिर उसमें सारी भस्में मिला कर खरल करो ताकि एक दिल हो जाय। इसके बाद बिधारे के बीज से जीरा तक की कुल दवाओं के कपड-छन चूर्ण को मिला दो और पानों का रस दे देकर खरल करके २-२ रत्ती की गोलिया बनालो। एक-एक गोली खाकर ऊपर से गरम दूध पीने से नामर्दी आदि रोग नष्ट होते हैं। जिसके घर मे बहुत सी स्त्रिया हो वह अगर इसे खाये तो कभी भोग से न थके। इसके सेवन करने वाला १६ वर्ष के जवान के समान रूपवान और बलवान हो जाता है। ऐसा शास्त्र का वचन है।

(११) पुष्पधन्वा रस—शु पारा की भस्म या रस सिन्दूर, शीशा भस्म, लोह भस्म १ १ तोला, अभ्रक भस्म ३ तोला लेकर इनको खरल मे डाल कर एक दिन धतूरे के रस मे खरल करो और सुखालो। फिर एक दिन भाग के रस में खरल करो और सुखालो। फिर १ दिन मुलहठी के काढे में खरल करो और सुखालो। फिर एक दिन सेमल की छाल के रस में खरल करो और सुखालो। फिर एक दिन पानों के रस में खरल करो और सुखालो। यही पुष्पधन्वा रस है। सेवन विधि—इस रस में से १ या २ रत्ती लेकर मिश्री शहद और घी मे मिला कर चाटने और ऊपर से दूध पीने से वीर्य और अनेक स्त्री भोगने की सामर्थ्य होती है।

(१२) बस्ताण्डादि प्रयोग—बकरे के अंडकोषों से पकाये हुये दूध में तिलों को अनेक बार भावित करें। उन तिलों को खाने से सौ स्त्रियों के भोगने की शक्ति हो जाती है और हर बार भोग में नवीनता प्रतीत होती है। अथवा बकरे का अंडकोष दूध मे पकाकर फिर उस दूध को छान कर ग्लिसरीन सिरिंज द्वारा गुदा में चढ़ालें और जब तक रोक सकें रोकें। इससे अत्यन्त शक्ति उत्पन्न

होती है और नपुंसकता नष्ट होती है।

(१३) हस्त मैथुन आदि से सुस्त और निर्बल हुई पुरुषेन्द्रिय के लिये उत्तम तिला—मालकांगनी, काले धतूरे के बीज, गुंजा, जमाल गोटा की गिरी, सिंह की चर्बी, सूअर की चर्बी, लौंग, जायफल, जावित्री, मोम देशी, एरंड की मिंगी, दालचीनी, रीछ की चर्बी, बादाम की मींग २-२ तोला, बुरादा हाथी दांत, मुरगे के अंडे की जरदी, काला या सफेद संखिया, गन्धक आमलासार, हरताल वर्की, केंचुआ, बीर बहूटी, विष कुचिला, सिंगिया बिष, पारा १-१ तोला, भेड का घी १० तोला सबको घोटकर चना सम वटी बना पाताल यन्त्र से तेल निकालें। सीवन और सुपारी बचाकर लिंग पर मलें और ऊपर से बंगला पान में इसी तेल को मलकर पान को गरम कर बांधें। साथ में चन्द्रोदय रस या मन्मथ रस आदि का प्रयोग करें तो नपुंसकता नष्ट होती है। इन्द्री की सुस्ती, कमजोरी, ढीलापन, पूर्ण उत्तेजना न होना, पतलापन आदि नष्ट होकर दृढ़ता आती है। बहुत अच्छा तिला है। इसके अतिरिक्त श्री निर्मल आयुर्वेद संस्थान अलीगढ़ का बना हुआ नवशक्ति मलहम भी उत्तम लाभ करता है तथा मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत की बनी हुई टैस्टोविग क्रीम भी उत्तम लाभकारी है।

(१४) इनके अतिरिक्त इमली के बीज १ सेर लाकर जल में ४ दिन भिगोकर फिर उनके ऊपर का छिलका दूर कर लो और बीजो को सुखाकर कपडछन चूर्ण बना चूर्ण के बराबर मिश्री पिसी हुई मिला ३-३ माशे प्रात साय मिश्री मिले दूध के साथ खाने से ४० दिन में वीर्य गाढा होता और शीघ्र न का रोग शान्त हो जाता है।

(१५) समन्दर पाष, ताल मखाने के बीज, तुख्म रिहाँ तीनों को बराबर-२ लेकर कूट पीस छान कर ६-६ माशे सुबह शाम मिश्री मिले दूध से सेवन करने से पतला वीर्य खूब जल्दी गाढ़ा होता है और स्तम्भन शक्ति बढती है। ६० दिन सेवन करने से अच्छा लाभ होता है।

(१६) ताजा केंचुये सूखे १० तोला और अजवाइन २० तोला—इनको कूट पीस कर ४० तोले गुड़ मे मिला कर तोले तोले भर की गोलिया बना प्रात साय १-१ गोली दूध के साथ खाने से २१ दिन में खूब शक्ति बढ़ जाती है और नामर्द मर्द हो जाता है।

(१७) काले धतूरे के फूल सुखाकर पीस लो और शहद मिलाकर चना बराबर गोलिया बना लो। १ गोली रोज दूध के साथ खाने से ४० दिन मे वीर्य खूब बलवान होता है और स्तम्भन शक्ति बढती है।

(१८) मुर्गी के एक अण्डे की जर्दी, बताशे ३ नग और घी ३ तोले, इन तीनो को मिलाकर आग पर पकाओ और कलछी से चलाते रहो। जब पक जाय ठण्डा करके खालो। ४० दिन खाने से शरीर खूब पुष्ट और बलवान होजाता है। कामेच्छा बहुत बढ जाती है। नामर्दी नष्ट होकर पूर्ण मर्द बन जाता है।

इनके अतिरिक्त और बहुत सी औषधिया आयुर्वेदिक ग्रन्थों मे लिखी गई है जो बाजीकरण हैं, नामर्द को मर्द बनाने वाली हैं। जिनका पूरा विवरण लिखने से बहुत बडी पोथी तैयार हो जायेगी जोकि अभिप्रेत नही है। अत उनमे से कुछ के नाम मात्र नीचे लिखे जाते हैं। ये सब शास्त्रोक्त औषधिया हैं और आयुर्वेदिक ग्रन्थों से देखकर बनाई जा सकती हैं। फिर भी यदि किसी को इनमे से कोई दवा बनाने का योग विधि बनाने को न मिले तो लेखक से जवाब के लिए डाक टिकट भेजकर पूछ सकता है। इनका यथा बल-काल प्रयोग करने से पुरुष बलवीर्य युक्त होकर सासारिक सुख भोगने में समर्थ हो जाता है और नपुंसकता नष्ट होकर पुंसत्व प्राप्त होता है।

अमृत भल्लातक पाक, केशर पाक, च्यवन प्राश, रति वृद्धि कर मोदक, रति बल्लभ पुग पाक, कामेश्वर मोदक, आम्र पाक, कामाग्नि सदीपन मोदक, शतावरी घृत, चन्दनादि तेल, पंच बाण रस, वृद्ध पुष्प धन्वा रस, लघु पुष्प धन्वा रस, मदन कामदेव रस, महाराज वटी, पूर्णेन्दु नामा रस, वगेश्वर रस, वीर्य-स्तम्भन वटी, कपि कच्छू पाक, मकरध्वज वटी, मदनानन्द मोदक, बादाम

—शेषांश पृष्ठ ६३ पर देखें।

नपुंसकता (क्लैब्य)

चिकित्सीय ज्योतिष के संदर्भ में निदान-चिकित्सात्मक विवेचन

डा० ज्ञानचन्द्र जैन शास्त्री ए. एम बी. एस, एच. पी ए.' पी एच डी (आयुर्वेद-काय चिकित्सा)
रीडर काय चिकित्सा-स्टेट आयुर्वेदिक कालेज एवं चिकित्सालय, लखनऊ-२२६००४
स्थायी पता -A| 7/4, नेपियर रोड कालोनी, लखनऊ-२२६००३ (उ० प्र०)

रोग के संदर्भ में विचार करते हुये विदित होता है कि शारीरिक क्लैब्य की अपेक्षा मानसिक क्लैब्य के रोगी अधिक परिलक्षित होते हैं। ये रोगी मानसिक दुर्बलता के कारण अपनी स्थिति सामान्य रूप मे किसी पर प्रगट भी नहीं करते हैं। तथा अन्दर ही अन्दर घुटन का अनुभव करते हुये शारीरिक रूप मे भी अधिक ही दुर्बल होते जाते हैं। अतएव निदान-चिकित्सा के परिप्रेक्ष्य में व्याधि के विषय मे आवश्यकीय विवरण पर विचार अपेक्षित है। क्लैब्य के सदर्भ में विवरण निम्नानुसार है—

विभिन्न मनोविघातकर भावों के द्वारा सम्भोगेच्छा वाले मनुष्य के चित्त पर आघात पहुंचने से काम प्रसंग उपस्थित होने पर भी लिंगोत्थान न होने के कारण यह क्लैब्य मानस, पित्तज, शुक्रक्षयज, मेढ्रव्याधिज, उपघातज, शुक्रस्तम्भज तथा सहज भेद से सात प्रकार का माना गया है। यथा—

> तच्च सप्तविध प्रोक्त, निदानं तस्य कथ्यते।
> तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते ॥
> ध्वज पतत्यतो नृणां क्लैब्यं समुपजायते ॥
>
> —मै० र० ८२।३

मानस क्लैब्य—सम्भोगेच्छा रहित स्त्री के साथ मैथुन का प्रयास मानस क्लैब्यकारक होता है। शीघ्र-पतन का समावेश भी मानस क्लैब्य में करना उचित प्रतीत होता है।

पित्तज क्लैब्य—कटु, अम्ल, लवण एवं उष्ण रस प्रधान पदार्थों के सेवनाधिक्य से पित्त प्रकुपित होकर शुक्रस्थान को प्राप्त कर शुक्रक्षय द्वारा पित्तज क्लैब्य करता है।

शुक्रक्षयज क्लैब्य — अत्यधिक एवं दीर्घकालिक अनवरत सम्भोग के कारण क्षीण हुये वीर्य के फलस्वरूप तथा वाजीकर औषधियों के सेवन न करने के कारण कालान्तर में शिश्नोत्थान न होने से शुक्रक्षयज क्लैब्य होता है।

मेढ्ररोगज क्लैब्य—उपदंश या पूयमेह व्याधियां अथवा लिंग के मोटे या दीर्घ होने के कारण मेढ्ररोगज क्लैब्य होता है।

उपघातज क्लैब्य—वीर्यवाहिनी का छेद (आघातज) अथवा वीर्याशय सम्बन्धित मर्माग पर आघात होने से भी शिश्नोत्थान न होने से उपघातज क्लैब्य होता है।

शुक्र स्तम्भज क्लैब्य—ब्रह्मचारियों तथा व्यायाम से बलिष्ठ व्यक्तियों मे कामेच्छा उत्पन्न होने पर सम्भोग साधन न होने से वीर्यविरोधजन्य शुक्रस्तम्भ क्लैब्य होता है।

सहज क्लैब्य—जन्म से ही लिंग का अभाव होने से सहज क्लैब्य होता है। शुक्र मे शुक्राण्ड (स्पर्मेटोजोआ) का अभाव भी सहज क्लैब्यकारक होता है।

क्लैब्य के उक्त प्रकारों मे सहज तथा मर्मच्छेदज असाध्य तथा अन्य तात्कालिक साध्य एवं दीर्घकालिक याप्य माने जाते हैं। मर्मोपघातज तथा सहज के अतिरिक्त अन्य पांचों भेदों मे चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य निदान परिवर्जन अपनाना चाहिये। तत्पश्चात् वीर्यादिशोधन एवं स्तम्भन विधि सुकर हो जाती है।

चिकित्सा—

औषधि उपक्रम मे यथावश्यक निम्न योगों का उपयोग लाभकर होता है—

मदन कामदेव रस, राक्षस रस, बिलासिनी वल्लभ रस, कामदेव रस, कंदर्पसुन्दर रस, मदन तैल, वीर्य

स्तम्भक सूत, वीर्य स्तम्भक लेप।

उपर्युक्त औषधियों के अतिरिक्त वाजीकरणाधिकार में वर्णित कामाग्नि संदीपन रस, कामिनीदर्पघ्न रस, कामदीपक रस, वृहत् चन्द्रोदय, मकरध्वज, पुष्पधन्वा रस, पूर्णचन्द्र रस, सिद्ध शाल्मलीकल्प, मदनानन्दमोदक, अश्वगन्धाघृत, अमृतप्राश घृत, श्री गोपाल तेल आदि का प्रयोग भी लाभप्रद होता है।

चिकित्सोपचार की अवधि में रोग निदान तथा उचित चिकित्सा करते रहने पर भी यदाकदा ऐसी स्थिति परिलक्षित होती है कि योग्य उपचार के द्वारा भी रोगी को या तो पूर्ण लाभ प्राप्त नही हो पाता है अथवा न्यून मात्रा में लाभ होना देखा जाता है। चिकित्सा विधि एक जैसी रहने के अनन्तर भी कभी समुचित लाभ तथा कभी कम लाभ देखा जाता है। विचारणा के समय कल्पना होती है कि उचित निदान एव चिकित्सा के अतिरिक्त भी कोई ऐसी स्थिति हो सकती है कि जिसके उपयोग से पूर्ण लाभ मिल सके। उस समय ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता का विचार आता है।

अध्ययन करने पर पाया गया कि व्याधियो के साथ ज्योतिष विज्ञान का अटूट सम्बन्ध है। तदनुसार निदान चिकित्सात्मक विवरण प्रस्तुत है।

ज्योतिष शास्त्रानुसार—

यदि विषम राशि में सूर्य तथा सम राशि में चन्द्रमा हो और दोनों परस्पर एक दूसरे को देखते हों तो नपुंसक योग होता है।

शनि विषम राशि मे, बुध सम राशि में हो और परस्पर एक दूसरे पर दृष्टि हो तो क्लीव हो।

सम राशि मे सूर्य, विषम राशि मे मगल हो और परस्पर एक दूसरे पर दृष्टि हो तो क्लीव हो।

लग्न, शुक्र एव चन्द्रमा पुरुष राशि के नवांश में हों तो क्लीव योग होता है।

इस प्रकार वृहज्जातकोक्त ६ क्लीव योग पाये जाते हैं। यथा—

अन्योऽन्यं यदि पश्यतश्शशिरवी,
यद्यार्किसौम्यावपि।
वक्रो वा समगं दिनेशमसमे,
चन्द्रोवयो चेत्स्थितौ ॥
युग्मौजर्क्षगतावपितुशशिज्ञौ,
भूम्यात्मजेनेक्षितौ।
पुम्भागेसितलग्नशीतकिरणाः,
षट्क्लीवयोगाः स्मृता ॥

—वृहज्जातक ४।१३

इस प्रकार ग्रहों के प्रभाव से भी रोगोत्पत्ति के विषय में जन्मांग का अध्ययन करके जातक के रोग का विचार करते हुये चिकित्सा के साथ ही ग्रह शांति उपायों द्वारा रोग शमन विधि अपनाना लाभकर पाया जाता है। जोकि निम्नानुरूप है—

क्लैब्य व्याधि मे सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र, एव शनि ग्रहो का प्रभाव परिलक्षित होने से तन्त्र सारानुसार ग्रह शांति हेतु आवश्यकतानुसार मन्त्र जाप करना श्रेयस्कर होता है।

सूर्य हेतु—ॐ घृणि सूर्याय नम. मन्त्र का ७००० बार जाप।

चन्द्र हेतु—ॐ सों सोमाय नम. मन्त्र का ११००० बार जाप।

मंगल हेतु—ॐ आ अंगारकाय नम मन्त्र का १०००० बार जाप।

बुध हेतु—ॐ बु बुधाय नम मन्त्र का ८००० बार जाप।

शुक्र हेतु—ॐ शु शुक्राय नम मन्त्र का १६००० बार जाप।

शनि हेतु—ॐ श शनैश्चराय नम मन्त्र का २३००० बार जाप करना चाहिये।

उपर्युक्त मन्त्र जाप के साथ कविवर मनसुद्ध सागर जी कृत नवग्रह अरिष्ट निवारक विधान के अनुसार ग्रह शांति हेतु ईश्वर पूजा करना निश्चित फलप्रद होता है। यथा—

सूर्य—अरिष्ट निवारक श्री पद्मप्रभुजिनपूजा विधान।
चन्द्र—अरिष्ट निवारक श्री चन्द्रप्रभुजिनपूजा विधान।

—शेषांश पृष्ठ ८० पर पढ़ें।

पुरुष बंध्यत्व (बृहत्त्रय का वैज्ञानिक दृष्टिकोण)



डा० श्री देवेन्द्र नाथ मिश्र बी ए एम एम एस. एम डी. (आयु०)
पी एच डी., आई, एम; एस, सी. सी डी. वाई,
डिप, योग बी एच यू (वाराणसी) सी एम. एस
टी. एफ सी., एफ पी. ए. आई (बाम्बे)
विभागाध्यक्ष–प्रसूति तन्त्र एव बाल रोग विभाग,
बुन्देलखण्ड राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, झांसी (उ प्र.)

डा० महोदय आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित हैं। आप बाल रोग विशेषज्ञ हैं। डा० श्री मिश्र जी ने धन्वन्तरि का शिशु उदर रोग चिकित्साङ्क-लघु विशेषांक का सफल सम्पादन भी किया है जो बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। आपके लेख भी बार-बार प्रकाशित होते रहते हैं। 'धन्वन्तरि' डा० देवेन्द्रनाथ जी से विशेष अपेक्षा रखता है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

गर्भोत्पादन के लिये पुरुष शरीर से वीर्य की आवश्यकता पड़ती है। उसके गुणों का विवेचन करते हुए चरक लिखते हैं—

शुक्र तदस्य प्रवदन्ति धीरा यद्धीयते गर्भसमुद्भवाय।
—च. स शा २।४

स्निग्ध घन पिच्छिल च मधुर चाविदाही च।
रेतःशुद्ध विजानीयाच्छ्वेत स्फटिक सन्निभम्॥
—च चि ३०।१४५

जो शुक्र स्निग्ध, गाढा, पिच्छिल, मधुर, दाह न करने वाला, और स्फटिक मणि के समान श्वेत वर्ण का हो, वह शुद्ध माना जाता है। यदि यह शुक्र दूषित हो जाय तो गर्भधारण नहीं हो सकता।

यथा बीजमकालाम्बु कृमिकीटाग्नि-दूषितम्।
न विरोहति सदुष्ट तथा शुक्र शरीरिणाम्॥
—च चि ३०।१३४

शुक्रदूषित होने के कारण—

१. मैथुन—अति मैथुन, अकाल मैथुन, अयोनि मैथुन, मैथुन न करने से तथा मनोनुकूल स्त्री के न होने पर मैथुन, अति वीर्यस्राव कराने से।

२ श्रम—अत्यधिक व्यायाम।

३. वय—वृद्धावस्था एव बाल्यकाल।

४ आहार—प्रकृति विरुद्ध आहार विहार, विभिन्न रसो का अति सेवन।

५. मानसिक कारण—भय, चिन्ता, शोक, प्रेम-विश्वास की कमी।

६ क्षत–शस्त्रकर्म, क्षारकर्म या अग्निकर्म से, बीजवाही स्रोतसों के कट जाने पर।

७ व्याधि जन्य—अतिसार, क्षय, वेगावरोध आदि।

चरकोक्त वातादि दुष्ट वीर्य के लक्षण तथा अष्ट शुक्र दोष

१ वात दूषित शुक्र—फेनिल, तनु, रूक्ष, कृच्छ्रता एव अल्प।

२ पित्त दूषित शुक्र—वर्ण नीला या पीला (विवर्ण) अति उष्ण एव पूति गंधि। निकलते समय लिंग मे दाह होती है।

३ कफ दूषित शुक्र—अति पिच्छिल।

४ रक्त दूषित शुक्र—अति मैथुन, अभिघातज, क्षत

के कारण प्राय रक्त मिश्रित (अन्य धातु संसृष्ट) होता है।

५ ग्रन्थि युक्त शुक्र—अति अवसाद, वेग विधारण से कुपित वात मार्गावरोध करके ग्रन्थित शुक्र का कृच्छ्रता से स्राव कराती है।

[उपरोक्त कुल ८ लक्षण है। इन्हे ही अष्टशुक्र दोष के नाम से चरक ने वर्णित किया है।]

फेनिल तनु रूक्ष च विवर्णं पूति पिच्छिलम्।
अन्यधातूपसंसृष्टमवसादि तथाष्टमम्॥

—च चि. ३०।१३९

सुश्रुत ने भी आठ शुक्र दोषो का वर्णन किया है। परन्तु वर्णन चरक से भिन्न है—(शा २।३)

१ वात दुष्ट—वात का वर्ण एव लक्षण।

२ पित्त दुष्ट—पैत्तिक वर्ण एव लक्षण।

३. कफ दुष्ट—कफ का वर्ण तथा लक्षण।

४ रक्त दुष्ट—रक्त का वर्ण, लक्षण, कुणपगंधी तथा अल्प।

५ कफ तथा वात दुष्ट—ग्रन्थित।

६ पित्त एव कफ दुष्ट—पूतिपूय निभ।

७ वात एव पित्त दुष्ट—क्षीण।

८ त्रिदोषज—मूत्र पुरुष गंधी।

प्रायः वाग्भट ने भी सुश्रुत का ही समर्थन किया है। मात्र रक्त दुष्ट शुक्र के लक्षणों में कुणप गंधी ही कहा है। (अ हृ शा १।१०)। यदि इनका मिश्रित स्वरूप देखा जाय तो निम्न तालिकावत है—

वातादि दोष तथा दुष्ट शुक्र

दोष	लक्षण	दोष	लक्षण
एक दोषज			कुणप गंधी एव अल्प।
१ वातज–	फेनिल, रूक्ष, तनु, कृच्छ्र, अल्प एव वात वर्ण एव लक्षण युक्त।	द्विदोषज	
२ पित्तज–	वर्ण नीला या पीला या पैत्तिक वर्ण, अति उष्ण, पूति गंधी स्राव के समय लिंग मे दाह एव पैत्तिक लक्षण युक्त।	१. कफ+वात	ग्रन्थित, अति अवसाद, कठिनाई से स्खलन होता है।
३ कफज–	अति पिच्छिल, कफ वर्ण एव लक्षणयुक्त	२ पित्त+कफ	पूतिपूय निभ।
४ रक्तज–	रक्तमिश्रित, रक्त के लक्षण युक्त,	३ वात+पित्त	क्षीण।
		त्रिदोषज	मूत्र-पुरीष गंधी।

आचार्य सुश्रुत ने इनकी साध्यासाध्यता का भी वर्णन किया है—

तेषु कुणप ग्रन्थि पूतिपूय क्षीण रेतस कृच्छ्रसाध्या, मूत्र पुरीषरेत सस्त्वसाध्या (साध्यमन्यच्च) इति।

—सु शा २।४

१ साध्य–वातज, पित्तज, कफज

२. याप्य–शवगंधी (रक्तज), ग्रन्थित (कफ+वातज), पूतिपूय निभ (पित्त+कफज) एव क्षीण (वात+पित्त)।

३ असाध्य—मूत्र पुरीष गंधी (त्रिदोषज)।

आधुनिक वैज्ञानिक शब्दों में आयुर्वेदोक्त विवेचन का स्पष्टीकरण निम्न तालिका के अनुसार दे सकते हैं—

दोष	लक्षण	स्पष्टीकरण
वात जन्य	फेनिल, रूक्ष, तनु, कृच्छ्र, अल्प	अल्प (मात्रा मे अथवा शुक्राणु की संख्या मे, अर्थात् २ ५ सी०सी० से कम, संख्या ४० लाख से कम, अल्प होने से स्खलन मे कठिनाई, विभिन्न स्रावो के अधिक मिश्रण के कारण तनु तथा स्वाभाविक स्निग्धता का नाश। [Oligo-zoospermia]

दोष	लक्षण	स्पष्टीकरण
पित्त जन्य	विवर्ण, पूति गंधी, स्राव के समय दाह	शिश्न आदि जननांगो मे संक्रमण (पूति गंधी एवं दाह) [Chronic Prostetitis] रक्त शुक्रता (Haemospermia) या कामला आदि व्याधि जन्य अति मैथुन जन्य रक्तस्राव जन्य विवर्णता।
कफ जन्य	अति पिच्छलि	जब प्रोस्टेट, वीर्याशय आदि ग्रन्थि के स्राव किसी कारण से मिश्रित न हो सकें।
रक्त जन्य	कुणप गन्धी रक्त मिश्रित तथा अल्प	अभिघात जन्य, जो कुछ समय बाद ऊतक नाश (Necrosis) भी कर देता है।
कफ+वात	ग्रन्थित, कठिनता से	प्रोस्टेट आदि ग्रंथियो के स्राव से मिश्रण मे अधिक समय से बाधा।
पित्त+कफ	पूति पूय निभं	चिरकालीन संक्रमण।
वात+पित्त	क्षीण	अधिक व्यवाय एवं चिरकालीन संक्रमण जन्य मार्गावरोध जन्य

त्रिदोषज—मलमूत्र गन्धि—जैसाकि हम जानते हैं कि शुक्राशय तथा शुक्रवाहनियां पुरुष शरीर मे मूत्राशय एवं मलाशय के मध्य स्थित रहते हैं। चिरकालीन शोथ, संक्रमण आदि से क्षत इन आशय की भित्ति को कमजोर करती है, अति व्यवाय आदि से उनमे क्षत होने से Fistula का निर्माण होने के कारण मलमूत्र का मिश्रण वीर्य में होना स्वाभाविक है। यह अवस्था अधुना सूक्ष्म शल्यकर्म के अभाव मे असाध्य ही होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अष्ट शुक्र दोष या त्रिदोषज दूषित शुक्र के वर्णन मे प्राय अधुना वर्णित सभी द्वितीयक वंध्यत्व के कारण व लक्षण का स्पष्ट वर्णन है। प्राकृतिक वैकारिक वध्यत्व का वर्णन सभी आचार्यों ने विस्तृत रूप मे किया है। उनका विस्तृत वर्णन न देकर मात्र संकेत करना ही पर्याप्त होगा।

चरकोक्त नपुंसकता के लक्षण व भेद—

लक्षण—लिंग शैथिल्य-शुक्र हीनता के कारण असफलता होती है। —च० चि० ३०।१४५-१५७

भेद—

१ बीजोपघात—शुक्रनाश के कारण प्रतिलोम क्षय-व्याधिज।

२ ध्वजोपघात—अस्वच्छता, अयोनि में अकाल में, विकृत योनि मे मैथुन एवं अभिघात जन्य-लिङ्ग मे शोथ, पाक संक्रमण के साथ सम्पूर्ण जननांग प्रभावित हो जाता है। सुश्रुत ने इसे उपदंश के नाम से वर्णित किया है।
—सु० स० नि० १२

३ वृद्धावस्था जन्य।

४. शुक्रक्षय—व्याधि जन्य अनुलोम क्षय।

५ जन्मजात—इसे आचार्य चरक ने ८ वर्गों में बाटा है जिसमें ७ वर्ग पुरुष वर्ग से सम्बन्धित हैं। जिसमें कुछ ही अवस्थायें प्रजोत्पादन मे असमर्थ होती हैं।
—च. शा. २।१८-२९

(अ) द्विरेता—स्त्री पुरुष दोनो के लक्षण युक्त।

(ब) पवनेन्द्रिय—शुक्राशय विहीन।

(स) संस्कारवाही—संस्कार (चिकित्सा) द्वारा ही मैथुन मे समर्थ।

(द) नरषण्ढ—
(य) वक्री—
(र) ईर्ष्यारति—
] इन तीन भेदो के कारणों का ही वर्णन है लक्षणों का नही।

(ल) वातिक षण्ढ—वृषण विहीन।

सुश्रुतोक्त नपुंसक के ५ भेद—

१ आसेक्य—शुक्र सेवन करके ही ध्वजोच्छ्राय पाता है। (सशुक्र)

२. सौगन्धिक—योनिमेढ़ को सूंघकर मैथुन मे प्रवृत्त । (सश्रुक्र)

३ कुम्भीक—प्रथम गुदमार्ग पर प्रवृत्त हो फिर मैथुन करे । (सशुक्र) डल्हण इसे चरकोक्त वक्री मानते हैं ।

४ ईर्ष्यक—दूसरों को मैथुन में प्रवृत्त देखकर इच्छुक होना । (सशुक्र)

५ षण्ड (नरषण्ड)—स्त्री के समान हाव-भाव वाला । (शुक्रविहीन)

इस प्रकार उपरोक्त दोनो वर्णनों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि द्विरेता पवनेन्द्रिय, नरषण्ड, एव वातिक षण्ड नपुंसक प्रजोत्पादन में असमर्थ होते हैं । इसे दो वर्ग में बांटा जा सकता है—

१. सहज (Chromosomal & Genetic)—द्विरेता एवं नरषण्ड ।

२. रचनात्मक विकृति—पवनेन्द्रिय एव वातिकषण्ड ।

यह सभी बध्यत्व के कारणभूत विकार चिकित्सा में असाध्य होते हैं ।

दुष्ट शुक्र की चिकित्सा—

सिद्धांत—चरक सहिता मे दुष्ट शुक्र की चिकित्सा सिद्धांत रूप मे कही गई है । आचार्य सुश्रुत एव वाग्भट ने वातज, पैत्तिक, कफज, एव वातपैत्तिक की चिकित्सा का मात्र सिद्धान्त कहा है ।

१ वाजीकरण योगो का प्रयोग । (च०)

२ रक्त-पित्त नाशक चिकित्सा का प्रयोग । (च०)

३ योनि व्यापद नाशक चिकित्सा का प्रयोग (च)

४ धातुशोधक चिकित्सा । (च)

५ सामान्य योग —जीवनीय घृत । (च)

६ वातज, पैत्तिक, कफज में—यथादोष शोधन, रसायन आदि चिकित्सा करनी चाहिए । (सु. वा)

७ वात-पैत्तिक मे, शुक्रल, शुक्रवर्धक, दोष धातु मल क्षय वृद्धिविज्ञानीय सूत्रस्थान अध्याय १५ एव चिकित्सा स्थान अध्याय २६ क्षीणबलीय वाजीकरण मे वर्णित योगों का प्रयोग । (सु.वा)

सामान्य चिकित्सा—

१ रक्तज दोष—१ धातकी पुष्प, खदिर, अनार व अर्जुन साधित घृत । २ शाल शारादि सिद्ध घृत (सु.)
३ असनादि सिद्ध घृत (वा.)

२. कफ-वात जन्यदोष– १. शटी सिद्ध घृत (सु.)
२. पलाश भस्म सिद्ध घृत (सु)
३. पलास भस्म एव पाषाणभेद सिद्ध घृत (वा.)

३. पित्त-कफ जन्य दोष–१. परुषकादि एव वटादि घृत

४. त्रिदोषज–१. चित्रक, उशीर एव हिंगु साधित घृत का प्रयोग करना चाहिए । यह असाध्य होता है परन्तु अधुना सूक्ष्म-शल्य कर्म से ठीक किया जा सकता है ।

—✱—

— पृष्ठ ७६ का शेषांश —

मंगल-अरिष्ट निवारक श्री वासुपूज्यजिनपूजा विधान।
बुध–अरिष्ट निवारक श्री अष्टजिनपूजा विधान ।
शुक्र–अरिष्ट निवारक श्री पुष्पदतजिनपूजा विधान ।
शनि-अरिष्ट निवारक श्री मुनिसुव्रतजिनपूजा विधान

इनका आवश्यकतानुसार रूप उपक्रम करने से फलप्रद परिणाम उपलब्ध होता है ।

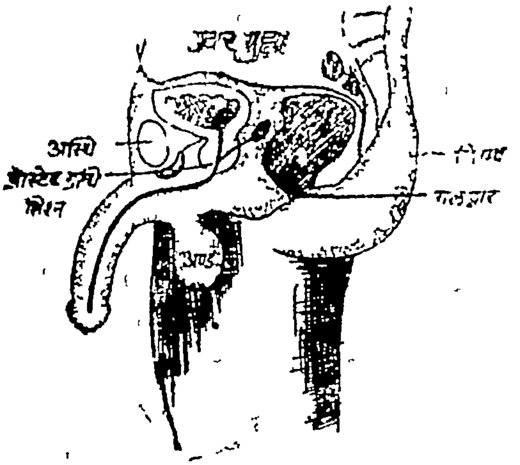
स्मरणीय है कि ग्रह प्रकोप मन्द या मध्यम स्वरूप का होगा तो सफलता मिल जाती है । उग्र स्वरूप का यह प्रकोप होने पर उपचार विधि से रोग मे मन्दता आकर लाभ होने की स्थिति बन सकती है तथा दीर्घकालीन उपचार से रोगशमन की सभावना पर भी विचार संभव हो सकेगा जो कि रोगी के जन्माग के विधिवत अध्ययन तथा उपचार पद्धति पर निर्भर करेगा ।

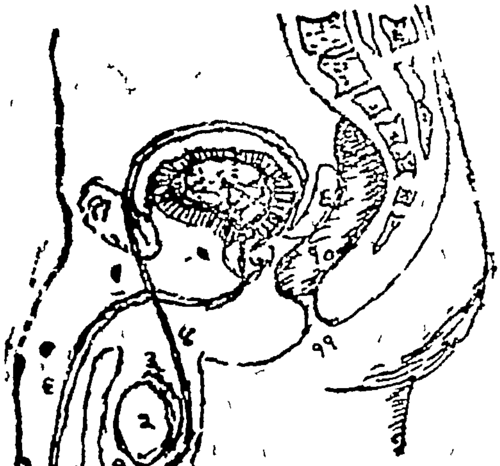
शुक्राणु समस्या

डा० श्री बी एन. गिरि शिशु रोग विशेषज्ञ ए. एम. वी. एस., एस. सी डी. मु. पो. डगरा (गया) बिहार

लेखक महोदय आयुर्वेद के विद्वान हैं। आपके लेख धन्वन्तरि पत्रिका मे बार-बार प्रकाशित होते रहते हैं। यहां डा० गिरि जी ने शुक्राणु समस्या पर विस्तृत विश्लेषण किया है। आजकल शुक्र सम्बन्धी अनेक रुग्ण मिलते हैं। आयुर्वेद समाज इस लेख से जरूर लाभान्वित होगा। इस तरह डा० गिरि जी 'धन्वन्तरि' द्वारा चिकित्सक समाज एवं पाठकों को भविष्य मे भी मार्गदर्शन देते रहेगे ऐसी आशा करता हूं।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज





सर्व प्रथम संक्षिप्त रूप मे अण्डकोष की संरचना एवं शुक्रोत्पत्ति के सम्बन्ध में थोडी जानकारी कर लेना आवश्यक है पश्चात मुख्य विषय पर दृष्टिपात किया जायगा।

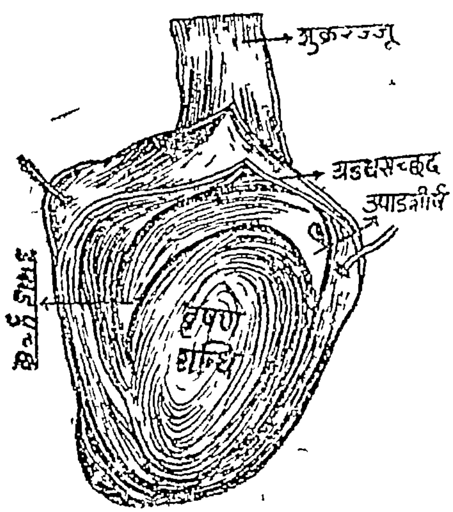
अण्ड कोष—

शिश्न की जडमूल के नीचे एक थैली के समान लटका रहता है। इसके दोनों ओर अण्डे के आकार की दो गाठे होती हैं। यही अण्ड कोष कहलाता है, जो पुरुष जननेन्द्रिय का प्रधान यन्त्र है। इसी मे शुक्र का उत्पादन होता है। जब बच्चा गर्भावस्था में रहता है, उस काल के पाच महीने तक दोनो अण्ड वस्ति गह्वर में छिपा रहता है। इसके पश्चात शिशु के भूमिष्ट होने अर्थात प्रसव होने के कुछ पहले दोनो अण्ड पूरी तरह से अण्ड कोष मे उतर आते हैं। इसके दो अंश होते हैं, प्रथम बाया दूसरा दाहिना। ये दोनों ही अंड लिंग मूल में एकत्र होकर लटका रहता है। अण्ड कोष की समूची त्वचा पर सिकुड़न सी दिखलाई देती हैं। इसका कारण यह है कि अण्ड कोष की त्वचा के नीचे अनैच्छिक मास का एक स्तर रहता है। इसी मास के परिणामस्वरूप अन्ड कोष बराबर सिकुडा रहता है। परन्तु कारण विशेष अथवा गर्मी आदि के कारण मांस की संकोचनशीलता घट जाती है। जिसके कारण थैली लटकी अथवा बडी मालूम पडती है। दोनो ओर के अण्ड कोष के बीच मे सीवनी रहती है जो लिङ्ग मूल से मल द्वार तक फैली रहती है।

अण्ड क्या हैं—

अण्ड कोष के अन्दर दोनो ओर अण्डे के आकार की

दो ग्रन्थिया है, इसे ही शुक्र ग्रन्थि कहते है। अण्ड के पिछले किनारे पर एक लम्बा और चिपटा पिण्डसार होता है। इसे ही उपाण्ड कहते हैं। यह कई नालियो द्वारा अण्ड से मिला अथवा जुडा रहता है। प्रत्येक अण्ड आवरक झिल्ली से ढका रहता है। यह दोनों अण्ड दो डोरी अथवा रस्सी जैसी नाडियो के सहारे अण्ड कोष मे लटके रहते है। इसी डोरी को अण्डधारक रज्जु कहते है। यह मोटी रज्जु कितनी ही नलियो तथा शुक्र प्रणालियो के सम्मिलन से बनी है। इसे शुक्र रज्जु भी कहा जाता है। प्रत्येक शुक्र ग्रन्थि कितने ही सौत्रिक तन्तुओ से बनी एक थैली है।



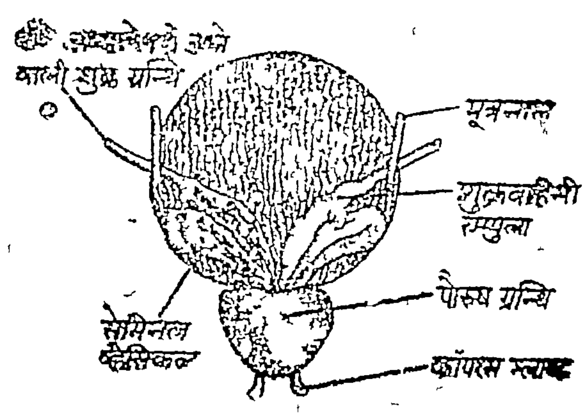
सौत्रिक झिल्ली द्वारा प्रत्येक शुक्र ग्रन्थि कितने ही कोष्ठो से परिपूर्ण है। प्रत्येक शुक्र ग्रन्थि मे शुक्र कोष है। एक-एक अण्ड में प्राय तीन-चार सौ शुक्र कोष पाये जाते हैं। प्रत्येक शुक्र कोष मे कुन्डली के आकार की मुडी हुई नालिया है ये लगभग आठ से नौसौ तक होती हैं। इनकी लम्वाई लगभग तीन चार हाथ तक होती है। इन्ही शिराओ अथवा नालियो के घुमाव से ही उपाण्ड का मस्तक वन जाता है। इन्ही सूक्ष्म शिराओ का नाम शुक्र प्रणाली है। इन सभी शुक्र अनु प्रणालियो से जो रस निकलता है वही शुक्र अथवा वीर्य कहलाता है। यही शुक्र अनुप्रणाली को चरक सहिताकार लिखते हैं—

शुक्र वहाना स्रोतसा वृष्णौमूलशेफश्च। च० वि० तथा सुश्रुत सहिताकार के अनुसार "शुक्रवहे द्वेतस्योर्मूल स्तनो वृष्णौ च। सु० शा०" शुक्र बहाने वाली स्रोतो का मूल स्थान दोनो अण्ड और मूत्रेन्द्रिय मार्ग है। उपर्युक्त वर्णन की गई शुक्र प्रणालिया घुम फिर कर एक नाली मे परिणत हुई हैं। इसे शुक्र नाली (Vasdeferens) कहते हैं। यह शुक्र नाली अत्यन्त ही सूक्ष्म एव इसकी लम्वाई प्राय ३ फिट तक होती है। यह घूम फिर कर अन्त मे मूत्राशय के नीचे और मलाशय के ऊपर समाप्त होगई है।

शुक्र नाली के नीचे और दोनो अण्डों के ऊपर एक अधिक लम्वी नाली जुड गई है। यही उपाण्ड अथवा उपकोष कहलाता है।

शुक्राशय—

यह वास्तव मे दो थैलियां है। शुक्र नाली के नीचे दोनो ओर दो शुक्राशय (Vesicula seminals) हैं। शुक्राशय लगभग ढाई इन्च चौडा है। इन्ही थैलियों से शुक्र प्रणाली सम्मिलित रहती है। यह शुक्र प्रणाली जिस स्थान पर शुक्राशय से मिलती है, उसी स्थान से एक सूक्ष्म पतली शिरा आरम्भ होती है। इसे ही शुक्र निर्गम नाली अथवा शुक्र स्रोत (Ejaculatory duct) कहते हैं। इसकी लम्वाई एक इन्च से कम होती है।



यही शुक्र स्रोत फिर पौरुष ग्रन्थि (Prostate gland) मे घूमकर दोनो ओर से शिश्न की जड, मूत्र मार्ग (Urethra) मे खुल जाता है। इसी मार्ग से शुक्र ग्रन्थि मे जो पदार्थ वनता है वह शुक्र प्रणालियो द्वारा आकर शुक्राशय मे एकत्र होता है। मैथुन के समय शुक्र स्रोत से होता हुआ मूत्र मार्ग मे आकर निकलता है।

काउपर ग्रन्थियां—

मटर के दाने के समान पीले रङ्ग की दो छोटी-छोटी ग्रन्थियां शिश्न की जड़ के निकट मूत्र नलिका के दोनो ओर पौरुष ग्रन्थि के शिखर से कुछ नीचे की ओर स्थित हैं। इन्हें ही काउपर ग्रन्थिया (Cowpers glands) कहते है। यौनोत्तेजना के समय इन ग्रन्थियो मे से एक प्रकार का विशेष रस स्रवित होता है जो मूत्र प्रणाली मे गिरता है। यह काउपर ग्रन्थियो का स्राव श्वेत, पतला एव चिकना होता है। शुक्राणु अम्लीय वातावरण मे जीवित नही रह सकता। इसलिए यह स्राव अथवा चिकना रस मूत्र मार्ग में कामोत्तेजना के समय स्रवित होकर मूत्राम्ल (Uric acid) की अम्लता को दूरकर के क्षारीय बनाता है जिससे कि शुक्राणु गर्भाशय तक जीवित पहुंच सकें।

आयुर्वेदिक संहिताओं मे शुक्र के आठ दोष बतलाये गये हैं—

फेनिलं तनु रूक्ष च विवर्णं पूति पिच्छिलम्।
अन्य धातु संसृष्टमवसादि तथाष्टमम् ॥च० चि०॥

(१) फेनिल अथवा झाग युक्त होना (२) पतला होना (३) रूखा (४) विवर्ण अथवा स्वाभाविक श्वेत वर्ण का न होना (५) दुर्गन्धित, पूति (६) पिच्छिल अत्यधिक चिपचिपा होना (७) अन्य धातु मिश्रित अर्थात रक्तादि धातुओं से मिश्रित (८) अवसादि—जल मे नीचे बैठने वाला। यह शुक्र के आठ दोष माने गये हैं। अष्टाङ्ग हृदयकार ने भी आठ ही दोष स्वीकार किये हैं। "वातादि कुणप ग्रन्थि पूयक्षीण मलाह्वयम्" वातादि तीनो दोष से एक-एक (वात, पित्त, श्लेष्म) (४) कुणप (५) ग्रन्थि (६) पूय (७) क्षीण (८) मलमूत्र से दूषित अर्थात वात, पित्त से एव कफ वात से दूषित एक-एक=३, रक्त से दूषित कुणप, कफ एव वात से दूषित ग्रन्थि, रक्त एवं पित्त से दूषित पूय शुक्र, वात एवं पित्त से दूषित क्षीण शुक्र होता है। मूत्र पुरीष गन्ध युक्त शुक्र सन्निपातज होता है अर्थात तीनो दोषो से दूषित होता है।

शुक्र विकृति के कारण—

अत्यधिक मैथुन, अति परिश्रम व्यायाम, दण्ड कसरत करना, शरीर के अनुकूल नहीं। इस प्रकार के परिश्रम करना, हस्त एव गुदा मैथुन करना, मन मे मैथुन इच्छा होने पर भी मैथुन नही करना अर्थात कामेच्छा का दमन करना, रूक्ष, तिक्त, कषाय अत्यधिक नमकीन, खट्टा, उष्ण वीर्य वाले द्रव्यों का सेवन, बुढापा, चिन्ता, अप्राकृतिक ढग से वीर्य स्राव, शोक, मैथुन के समय उदासीन रहना, शस्त्र कर्म, अग्नि कर्म, क्षार कर्म को अनुचित रूप से करने के कारण शुक्रवाही नलियों आदि की हानि होने के कारण, भय, क्रोध, अतिसार, शारीरिक कृशता, मल मूत्रादि के शुक्र के वेग को रोकना, क्षत एवं चोट लगने के कारण शुक्र विकृत हो जाता है। चरक संहिताकार लिखते है—

अति व्यवायाद् व्यायामादसात्म्याना च सेवनात्।
अकाले वाऽप्य योनौ वा मैथुन नच गच्छत ॥
रूक्षतिक्त कषायाति लवणाम्लोष्ण सेवनात् ।
नारीणाम रस शत्वात स्रवणाज्जरया तथा ॥
चिन्ता शोकाद विस्रम्भाच्छस्त्राक्षाराग्नि विभ्रमात् ॥
वेगाघातात्क्षताच्चापि धातूणा सम्प्रदूषणात् ॥
दोषा पृथक समस्ता वा प्राप्य रेतो वहा सिरा ॥
शुक्र सन्दूषयन्त्याशु —च० चि० अ० ३०

उपर्युक्त कारणों से रस रक्तादि धातुओं के अत्यधिक दूषित होने से एव वात पित्त कफ पृथक-पृथक अथवा तीनों दोष शुक्रवाही शिराओं में पहुचकर शुक्र को शीघ्र दूषित कर देते हैं। इसके अतिरिक्त दूषित योनि वाली स्त्री के साथ मैथुन करने से अर्थात् उपदश, सुजाक ससर्गज रोगो से ग्रस्त स्त्री के साथ मैथुन करने से एव स्वय जो पुरुष उपदश, सुजाक से ग्रस्त हो उनका शुक्र विकृत हो जाता है। पशु योनि मे मैथुन करने, स्त्री मे मैथुनेच्छा न रहने पर भी उसके साथ मैथुन करने, असमय अथवा रजस्वला स्त्री के साथ प्रसग करने, स्वप्न दोष आदि कारणो से शुक्र विकृत हो जाता है। इन कारणो से दूषित शुक्र सन्तानोत्पत्ति करने के योग्य नही रह जाता है। जिस प्रकार असमय मे जल बरसने, कृमि द्वारा अन्न बीज खाये अथवा घुन लगने के कारण एवं भुना हुआ अन्न बीज अकुरित नही हो पाता उसी प्रकार दूषित शुक्र से सन्तान उत्पन्न नही होती है।

यथा बीजम् कालाम्बु कृमि कीटाग्नि दूषितम् ।
न विरोहति सदुष्ट तथा शुक्र शरीरिणाम् ॥

(१) वात विकृत शुक्र—वात से दूषित शुक्र झाग (फेन युक्त) वाला, सूखा, कुछ गाढा, पतला, थोडी मात्रा मे एव क्षीण होता है।

फेनिल तनु रूक्ष च कृच्छ्रेणाल्प च मारुत ।
भवत्युपहत शुक्र नतद् गर्भाय कल्पते ।
—च० चि० ३०

रूखा, कष्ट से अल्प मात्रा मे तथा वायु विकृति के कारण कुछ श्याम एव अरूण वर्ण का होता है। और शिश्न मे थोडी वेदना भी होती है। 'तत्र तनु रूक्षं फेनिल-मरुणमल्प विच्छिन्न सहज चिराच्च निषिच्यते वातेन' वायु वर्ण हीन है परन्तु जब यह दूषित हो जाता है तब शुक्र के रग मे परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है।

(२) पित्त दूषित शुक्र—जब पित्त से शुक्र दूषित होता है तब नीला, पीला और अत्यन्त गरम होता है एव उसमें अत्यधिक दुर्गन्ध, मुर्दे के समान दुर्गन्धयुक्त होता है।

सनीलमथवा पीतमत्युष्ण पूति गन्धिच ।
दहल्लिगविनियोति शुक्रपित्तेन दूषितम् ।। —च चि

मूत्रेन्द्रिय में प्रदाह उत्पन्न करते हुए निकलता और चुभनें के समान पीडा भी होती है। 'किञ्चित्पीतम पिच्छिलमा नील वा दह दिव प्रवर्तते पित्तेन' अ स शा । साथ ही पित्त दूषित शुक्र में पूय समान दुर्गन्ध होती है। इससे गर्भोत्पत्ति नही होती है।

(३) कफ दूषित शुक्र—कफ से दूषित शुक्र अत्यधिक गाढ़ा हो जाता है। क्योंकि कफ से दूषित होने से वीर्यवाही नालियों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

मज्जोपससृष्ट प्रभूतं विवद्ध चाम्भसोच ।
किन्चन्मज्जति श्लेष्मण । —अ० स० शा०

श्लेष्मा से दूषित शुक्र का रङ्ग सफेद तो होता है किन्तु मन्द-मन्द वेदना होती है एव गाठदार होता है। 'श्लेष्मण वद मार्ग तु भवत्यत्यर्थ पिच्छिलम' श्लेष्मा के कारण गाढ़ा तो होता ही है परन्तु अत्यधिक चिपचिपा होने के कारण ही वीर्यवाही स्रोत अवरुद्ध हो जाते हैं और वीर्य का कम मात्रा मे क्षरण होता है।

(४) जब शुक्र वात पित्त से दूषित होकर दूषित होता है तब क्षीण शुक्र कहा जाता है। इसमें वीर्य के कीटाणु अत्यधिक कम सख्या मे पाये जाते हैं। और शुक्र की मात्रा भी अत्यधिक कम होती है। साथ ही वातजन्य एव पित्त जन्य के सम्मलित लक्षण भी होते हैं।

(५) पूति अथवा पूय निभ (रक्त एव पित्त से दूषित शुक्र)—पूय के ग्रन्थ के समान जिस प्रकार उपदश, सुजाक मे मवाद होता है। उसी के समान शुक्र होता है। इसे कई लोग पित्त से दूषित भी मानते हैं, तो कोई रक्त एवं पित्त से दूषित मानते हैं।

(६) रक्त से दूषित अर्थात् कुणप शुक्र—इसमें शुक्र का रङ्ग हल्का लाल एव चुभने के समान शिश्न मे पीडा होती है तथा मुर्दे की गन्ध केसमान दुर्गन्ध आती है। इस प्रकार के शुक्र मे शुक्राणु नही पाये जाते। प्राय शुक्रकीट नष्ट ही रहते हैं। इस वीर्य मे गर्भ की उत्पत्ति नही हो सकती। इसे कुणप गन्ध वीर्य भी कहते हैं।

(७) मूत्र पुरीष गन्ध युक्त (सन्निपातज) दूषित शुक्र—इसमें प्राय तीनो दोषों के लक्षण मिलते हैं और इसमे मल एव मूत्र के समान शुक्र मे गन्ध होती है। यह शुक्र अनुपयोगी और असाध्य माना जाता है।

(८) अवसादि शुक्र अर्थात् ग्रन्थि शुक्र के लक्षण—यह वात एवं कफ से दूषित शुक्र होता है। मानसिक रोगो के कारण अत्यधिक कष्ट से और गाठ के समान शुक्र निकलता है।

वेग सधारणच्छुक्र वायुना विहित पथि ।
कृच्छ्रेण याति ग्रन्थितमवसादि तथाऽष्टम ॥ च चि

वेगों को रोकने से वायु द्वारा मार्ग मे रोका गया वीर्य गाठदार होकर बडे कष्ट के साथ बाहर आता है। गाठदार होने के कारण स्त्रीडिम्ब से मेल नही हो पाता इसी कारण गर्भ स्थापित नहीं होता। क्योंकि इसमे शुक्राणु अर्ध मूर्च्छित रहते हैं।

(९) चोट से दूषित शुक्र—इसे रक्त से दूषित अथवा कुणप शुक्र के अन्तर्गत रखा जा सकता है। शस्त्र से कटने

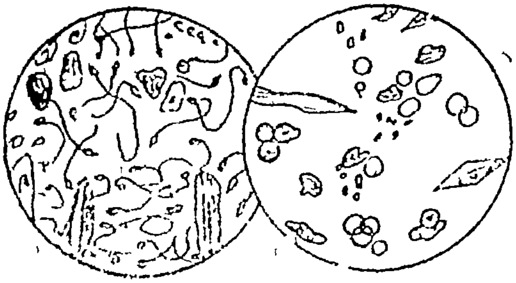
रक्त आदि के आघात लगने एव अत्यधिक मैथुन करने के कारण रक्त मिश्रित शुक्र निकलता है ।

साध्यासाध्यता—

उपयुक्त आठो प्रकार के शुक्र दोषों मे से कुणप, ग्रन्थि, पूय एव क्षीण शुक्र ये चार कृच्छ् साध्य हैं और मूत्र पुरीष वीर्य असाध्य है, शेष सभी साध्य माने हैं ।

शुक्र परीक्षा—

जिस पुरुष का वीर्य परीक्षा के लिए लेना हो उस व्यक्ति को सबसे पहले यह निर्देश देना चाहिए कि १० दिनो तक मैथुन नही करे । बाद ११ वे दिन इस व्यक्ति का वीर्य लेकर परीक्षा करवानी चाहिए । परीक्षार्थ वीर्य दो प्रकार से लिया जाता है। प्रथम हस्त मैथुन के द्वारा खुले मुख की काच की सीसी मे, दूसरा फ्रेन्च लेदर शिश्न पर चढा दिया जाता है और मैथुन कराया जाता है, बाद मे फ्रेन्च लेदर उतरवा कर खुले भाग को धागा से मुख बन्द कर शीघ्रातिशीघ्र लेबोरेट्री (प्रयोगशाला) में भेज दिया जाता है। इस प्रकार वीर्य में कीटाणु जीवित अवस्था मे मिलते हैं ।



अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखे गये
वीर्य जीवाणु (बाये) एव पौरुष ग्रंथि स्राव (दायें)

वीर्य कीटाणु परीक्षा भी दो प्रकार से की जाती है प्रथम भौतिक परीक्षा, दूसरी अणु वीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा । भौतिक परीक्षा में यह देखा जाता है कि वीर्य की मात्रा कितनी है और रक्त तो मिश्रित नहीं है तथा गाढापन एव चिपचिपापन गन्ध आदि । अणुवीक्षण परीक्षा में यह देखा जाता है कि वीर्य कीटों की सख्या कितनी है । इसमे वीर्य कीटों की चलनशीलता वीर्य के वक्र कीटाणु, गलित वीर्य कीटाणु, रक्ताणु एव पूयकण आदि देखे जाते हैं । अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने पर यह पता चलता है कि वीर्य कीट लम्वे आकार के हैं तथा वीर्य कीटो का शिर चपटा है, अगला भाग गोल एव चपटा, पुच्छ लम्वी, पतली एव सूत्राकार होती है । कीटो के शिर की लम्वाई एव चौडाई १/१०००,००० इञ्च होती है, पुच्छ की लम्वाई १/२००० से १/४००० इञ्च तक लम्बाई मे रहता है ।

स्वस्थ व्यक्ति के निकलने वाले वीर्य एक बार में वीर्य की मात्रा लगभग ४ से ५ मि० लि० अर्थात् एक छोटे चम्मच के वराबर होती है, तथा एक मि.लि वीर्य मे लगभग सात करोड से अधिक कीट पाये जाते हैं। वीर्य निकलने के उपराता ३ से ४ घण्टे ताक वीर्य कीटों मे गति करने की शक्ति वर्तमान रहती है पश्चात अगतिशील हो जाते हैं ।

चिकित्सा—

वायु आदि दोषो से विकृत वीर्य मे दोषों के अनुसार ही उपचार करने के निर्देश आचार्यों ने दिये हैं । वात दोष मे स्निग्धोष्णाम्ल लवणादि, पित्त विकार में मधुर शीत कषाय, एव कफ दूषित वीर्य में, कटु, रूक्ष, कषाय आदि देने का विधान है । साथ ही वात युक्त वीर्य विकृति मे निरूह और अनुवासन वस्तियां लाभकारी हैं । इसके अतिरिक्त स्नेह तथा उत्तर वस्ति देने से विशेष लाभ मिलता है ।

घृत च जीवनीयच्चच्यवनप्राश एवच ।
गिरिजस्य प्रयोगास्य रेतो दोषानपोहति ।।
—च. चि ३०

जीवनीय घृत, च्यवनप्राश एव शिलाजतु का प्रयोग सभी प्रकार की वीर्य विकृति को नष्ट करता है । इसके अतिरिक्त वीर्य दोषो मे घृत, गोदुग्ध, मांसरस, शालि चावल, जौ गेहूँ, उड़द छुहारा पथ्य एव लाभदायक हैं और वस्ति कर्म तो विशेष हितकर कहा गया है ।

वात दूषित वीर्यस्राव में—सिरका, सेंधानमक, बिजोरा निम्बु से सिद्ध किया हुये घृत में यवक्षार ५०० मि ग्रा.

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

से १ ग्राम तक डाल कर पिलाना विशेष लाभकर होता है। साथ ही विदारीकन्द, वेलगिरी से सिद्ध किया हुआ घृत एव दुग्ध की स्थापन वस्ति देनी चाहिए।

विल्व विदारी सिद्ध क्षीर युक्त मा स्थापनम्।
मधुक भद्रदारु सिद्ध तैलमनुवासनम्॥
—अ० स० शा०

मधु और देवदारु से सिद्ध तैल की अनुवासन वस्ति देने का विधान किया गया है।

पित्त से विकृत वीर्य मे—ऊख की जड़, गोखरू, गिलोय, मुर्वा मुलहठी से सिद्ध किया हुआ घृत दिन मे दो से तीन बार तक पिलाना चाहिए। यदि कोष्ठ बद्धता रहती हो तो निशोथ चूर्ण गर्म जल के साथ आवश्यकतानुसार देने मे उदर की शुद्धी हो जाती है। गम्भारी एव दुधी मे सिद्ध किया हुआ दूध से स्थापन वस्ति देनी चाहिए। पश्चात यष्ठी मधु, मुदगपर्णी के द्वारा सिद्ध किये हुए तैल की अनुवासन एव उदर वस्ति देना लाभकारी होता है।

कफ से दूषित वीर्य मे—यष्टी मधु एव पीपल मे सिद्ध किये हुए तैल की अनुवासन वस्ति और उत्तर वस्ति देनी चाहिए और मैनफल एव अमलतास के क्वाथ से आस्थापन वस्ति देनी चाहिए। इसमे मैनफल क्वाथ मिलाकर वमन कराना भी आवश्यक है। पाषाण भेद छिरहटा, आमला से सिद्ध किये हुए घृत मे पीपल एव मधुयष्टी का चूर्ण ५०० मि ग्रा. से १ ग्राम तक डालकर पिलाने से विशेष लाभ होता है।

पूय विकृत वीर्य मे—वटादिगण एव परुषादिगण द्वारा सिद्ध किया हुआ घृतपान कराना लाभदायक है।

क्षीण वीर्य में—वीर्य बढ़ा नेवाली औषधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

कुणप गन्धि वीर्य विकार—धायपुष्प, खैरसार, अनार एव अर्जुन की छाल से सिद्ध किया घृत पिलाये।

ग्रन्थि वीर्य मे—पलाश क्षार एव पाषाण भेद से सिद्ध किया हुआ घृत का पान कराये। इसके अतिरिक्त वाजीकरण योगो द्वारा वीर्य की वृद्धि एव पुष्टि कराना अति आवश्यक है।

(१) गोखरू बीज, त्रिफला, तेजपात, छोटी इलायची के बीज, रसौत, चव्य, धनिया, सफेद जीरा, तालीश पत्र, भूना हुआ सुहागा (टंकण भस्म) अनार बीज प्रत्येक १५-१५ ग्राम, शुद्ध गुग्गुलु ६ ग्राम, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक २०-२० ग्राम काष्ठ औषधियो को कूट पीसकर कपड़छन चूर्ण बना कर रखले और पारा तथा गन्धक की कज्जली बना ले। पश्चात अन्य भस्म डालकर एव चूर्ण डालकर अनार के स्वरस मे खरल करके सुरक्षित रखें।

मात्रा—२५० मि० ग्रा० से ५०० मि० ग्रा० तक अनार स्वरस अथवा बकरी के दूध के साथ दिन मे तीन बार तक सेवन करें। एक माह के सेवन से सभी प्रकार के वीर्य दोष, प्रमेह, वीर्य का पतलापन आदि ठीक हो जाते हैं। इसके साथ-साथ डाबर द्वारा निर्मित शिलाजीत कैपसूल सायं-सुबह १-१ कैपसूल दूध के साथ लेने से शीघ्र लाभ मिलता है।

(२) वृहद अश्वगन्धादि घृत—अश्वगन्ध तीन किलो लेकर १६ लिटर जल मे क्वाथ करें। चतुर्थांश रहने पर छान कर रखले। बकरे का मांस ६ किलो लेकर ३२ लिटर जल में पकावें। चतुर्थांश रहने पर छान कर रखले। गाय घृत १ किलो, गाय का दूध तीन किलो लेकर अलग रखें।

कल्क द्रव्य—काकोली, क्षीर काकोली, जावित्री, गोखरू, मेदा महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक, कौंच के बीज, छोटी इलायची, यष्ठीमधु, दाख बीज रहित, मुंगवन, माषवन, जीवन्ती, पीपल, बरेटी, सतावर एव विदारी कन्द प्रत्येक १५-१५ ग्राम लेकर रात्रि में भिगो दें। प्रात सिल पर पीस कर कल्क बनालें।

निर्माण विधि—उपर्युक्त काढ़े एवं दूध घृत तथा कल्क द्रव्य डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर पाक करें। जब दूध गाढा लगभग आधा जल जाय तब उतारकर छानलें। पश्चात पुन. चूल्हे पर चढ़ाकर पाक करें। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार कर ठंडा होवे पर १०० ग्राम मिश्री चूर्ण मिलादे और रख लें।

—शेषांश पृष्ठ ६१ पर देखें।

जातोत्तर क्लैब्य

श्री वैद्य पी०एल० अनुमान एच०पी०ए०, रीडर–काय चिकित्सा विभाग,
सेठ जी प्र सरकारी आयुर्वेद कालेज, भावनगर (गुजरात)

—✱—

श्री वैद्य अनुमान जी आयुर्वेद साहित्य के जाने-माने लेखक हैं एवं आयुर्वेद के विद्वान हैं। आप आयुर्वेद के स्नातकोत्तर (एच पी ए) हैं। आपने १९६६ से ६८ तक महर्षि दयानन्द आयुर्वेद कालेज टंकारा (गुजरात) मे अध्यापन कार्य किया, बाद मे १९६८ से आज तक आप भावनगर (गुजरात) मे अध्यापन सेवा दे रहे हैं। सामाजिक संस्था के निमन्त्रण से आप आयुर्वेद पर व्याख्यान देते हैं। आज तक आपने आयुर्वेद के पांच ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित किये हैं, एवं गुजराती तथा हिन्दी पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। आपने १५० शोध लेख तथा १०० से अधिक शोधपत्र तैयार किये हैं। आप विविध सेमीनारों में संयोजक तथा स्मारिका (सोवेनियर) के सम्पादक रह चुके हैं। धन्वन्तरि के कृपालु ग्राहक एवं विद्वान् श्री अनुमान जी के लेख ध्यानपूर्वक पढते हैं। यहां लेखक महोदय ने जातोत्तर क्लैब्य पर शास्त्रीय एवं संशोधनात्मक लेख दिया है जो उपयोगी होगा।—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

क्लीवत्व या क्लैब्य प्राचीन काल से ही एक ज्वलन्त समस्या रही है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थो मे इसके विविध पक्षों पर विचार किया गया है। आयुर्वेद के संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन आचार्यों ने इस समस्या का न केवल निज और आगन्तु रूप शारीरिक या मानस ही के रूप मे नहीं अपितु विस्तृत दृष्टिकोण से विचार किया है। उन्होंने इस विषय की सहज एवं जातोत्तर आहार क्षय-आघात, ब्रह्मचर्य अब्रह्मचर्य जरा एवं मानस तथा अभिचार आदि अनेक सुदूर प्रभावक घटकों के संदर्भ में विचार कर प्रस्तुत किया है। यहां हमने जातोत्तर क्लैब्य के कारण एवं उपचारों पर संक्षेप में विचार किया है।

हेतु—

क्लैब्य के सन्दर्भ मे जिन हेतुओ का उल्लेख मिलता है उनमें से प्रमुख नैदानिक हेतु निम्नानुसार हैं—

१ आहार—

अन्य रोगों की तरह ही क्लैब्य के लिये आहार प्रमुख हेतु रहा है। पंचभौतिक आहार पंचभौतिक शरीर पर विभिन्न रूप से प्रभाव कर सकता है। दोष वृद्धि एवं क्षय, धातु एवं मल की वृद्धि एवं क्षय अन्य रोगों की ही तरह क्लैब्य के लिये भी विषम स्वरूप मे निदान का कार्य करता है। विविध रस एवं गुण युक्त आहार से विभिन्न प्रकार से क्लीवता उत्पन्न कर सकता है।

(१) रस—अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय आदि विविध रस विविध ढंग से क्लीवता उत्पन्न करते है यथा—

(क) अम्ल—दाहक एवं पित्त प्रकोपक होने से आहार जन्य एवं ध्वजोपघातजन्य क्लीवता उत्पादक है।

(ख) लवण—यह पित्त प्रकोपक रस पुंसत्व नाशक माना गया है। इसके अति सेवन से नपुंसकता आना माना गया है यथा पुंसत्वमुपहन्ति (च सू २६।६१) अति लवण रस सेवी देश मे इस प्रकार के विकार को चरकादि ने स्वीकार भी किया है। (च. चि २।४४)

(ग) कटु—कटु रस को भी पुंसत्व उपहत-नाश करने वाला माना गया है (च सू २६।६२) आहार जन्य क्लीवता में यह भी एक प्रमुख कारण है।

(घ) तिक्त—तिक्त रस को शुक्र उपशोष कर माना है (शुक्रमुच्छोषयति च सू २६।६१) और इस प्रकार जहां इसमे स्तम्भन का लाभ मिलता है वहीं धातु शोष का कारण भी बन जाता है। शुक्र रूप एवं उत्पन्न

प्रमुख

कारक होने से तज्जन्य क्लीवता उत्पन्न कर सकता है।

(ङ) कषाय—इसको भी पुंसत्व उपघातक या नाशक माना गया है। (पुंस्त्वमुपहन्ति च. सू २६।६५) इसका अतियोग भी क्लीवत्व प्रदान करता है।

इस प्रकार मधुर रस के सिवाय सभी रस अति प्रमाण मे लेने से क्लीवताकारक माने गये हैं। मधुर रस भी संतर्पक होने से अतियोग कर क्लीवता कर सकता है। अत रसो का यथा प्रमाण मे ही सेवन किया जाना चाहिए। विविध रस युक्त औषधि एव आहार के अतियोग से बचना चाहिए।

(२) क्षार—क्षार को स्वय पुंस्त्वोपघातकर माना गया है(च. वि.१-५१) षण्डयत्व एव आहार एव वीजोपघातजन्य क्लीवता इसके प्रमुख दोष हैं।

(३) विभिन्न गुणयुक्तता—विभिन्न प्रकार के गुण यथा शीत, उष्ण, रूक्ष आदि से युक्त आहार भी इस सदर्भ में हेतु रहा है यथा—

(क) अति शीताहार वीजोपघात का कारण है।

(ख) उष्ण—इसे आहार जन्य क्लैव्य का कारण माना है।

(ग) रूक्षान्न—अति रूक्षान्न सेवन को क्षयज क्लैव्य का कारण माना गया है।

(घ) अतिगुरु—ध्वजोपघातकारक निदान मे पढा है।

(४) आहार सेवन सम्बन्धि कुछ बातें भी इस दृष्टी से ध्यानाकर्षक हैं यथा—

(क) संक्लिष्टाहार—बीज उपघात का कारक है।

(ख) विरुद्धाहार—वीज एव ध्वज उपघातकर है।

(ग) असात्म्याहार—वीज एव ध्वज उपघात के साथ यह धातुक्षयकर भी है।

(घ) अल्पाहार—वीज उपघात एव धातु क्षयकर है।

(ङ) अनशन—निराहार रहना—या भोजन त्याग करना शुक्रोपघात एव क्षयकर है।

(च) व्रतानुष्ठान—इसका अतियोग क्षयकारक है।

(५) पिष्ठान्न का अति सेवन दूध दधि एव आनूप मांस का अधिक सेवन भी ध्वजभज का कारण माना गया है। इसी प्रकार अति अम्बुपान भी क्लीवकर है।

२ विहार सम्वन्धि कारण—

विहार सम्बन्धि कारणों में निद्रा, ब्रह्मचर्य एव व्यायाम, श्रम आदि घटक विचारणीय हैं—

[१] निद्रा—अति निद्रा एव अनिद्रा दोनों का ही अतियोग क्लीत्वकारक है। इसका समयोग पुरुषत्व प्रदाता है।

[२] ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य का अतियोग अनेक पुरुष रोगों के साथ क्लीवता को भी उत्पन्न करने वाला माना गया है। इसमें शुक्रदोष एवं अनभ्यास एवं मनोविकारों की मिलीजुली प्रक्रिया होती है।

[३] अति व्यायाम—बीज उपघात एवं क्षयजन्य क्लैव्य से इसका विशेष सम्बन्ध हैं। यह अनेक रूप से क्लीवता उत्पादक है। ध्वजभग मे भी यह कारण बनता है।

[४] विस्रंभ—क्लीवता का कारण माना गया है।

[५] अज्ञान—काम एवं रति सम्बन्धि अज्ञान भी मानसिक आदि क्लीवता कर सकता है।

(३) बाल स्वभाव—बाल्यावस्था एवं वृद्धावस्था इस दृष्टी से विचारणीय हैं। जराजन्य क्लैव्य रोगावस्था के रूप में स्वीकृत है जबकि बाल्यावस्था में यह प्रश्न अप्रस्तुत है।

(४) कुछ उपक्रम भी ऐसे हैं जो क्लीबता को उत्पन्न करते हैं। यहां कर्म विभ्रम या अतियोग आदि इसमें कारण हैं यथा—

(i) अतिसंतर्पण—अतिसंतर्पण से क्लीवत्व होने को चरक ने स्वीकारा है (च०सू० २३।५) इसके लिये मधुर, गुरु, द्रव गुण युक्त आहार आदि का अति सेवन कारण बन सकता है।

(ii) अपतर्पण—इसके अति योग से शुक्र एवं बल क्षय को स्वीकारा गया है (च०सू० २३।२६)। धातुक्षयकर भाव होने से क्षय एवं उपघातकारक स्थितियों को उत्पन्न कर तत् प्रकार से क्लैब्य उत्पादक हो सकता है।

(iii) मिथ्यापचार—बीज उपघातकर है।

(iv) शस्त्र कर्म—विभिन्न रोगों में शस्त्र कर्म विशेषत अर्श, भगन्दर में पौरुष छेदन पूर्वक क्लीबता की

सभावना प्रगट की गई है। पौरुष ग्रन्थि एवं अश्मरी के शस्त्रकर्म भी क्लीवता उत्पन्नकारक माने गये हैं। इन विभिन्न रोगों के शस्त्रकर्म के अतिरिक्त शुक्रवह स्रोतों के छेदन से भी क्लीवता होना स्वीकारा गया है। शिश्न एव फलकोश पर किये गये छेदन, वेधन (शिरावेधन) आदि कर्म मिथ्या पूर्वक क्लीवता उत्पन्न होना स्वीकारा गया।

(v) क्षार कर्म—पानीय क्षार का अतियोग पण्डत्व उत्पन्न करता है एवं पुंस्त्व नाशक भावों मे स्वय क्षार को पढ़ा गया है। प्रतिसारणीय क्षार का मिथ्या प्रयोग (विशेषतया पुरुष जननांग के उपदंश आदि रोगों मे) भी क्लीवता करता है।

(vi) अग्नि कर्म—अग्नि कर्म के मिथ्या योग से शुक्रवह स्रोत या उसमे सम्बन्धित शिरा स्नायु आदि मे उत्पन्न दोष से क्लीवता उत्पन्न हो सकती है।

(vii) मर्माघात—विविध मर्म का आघात क्लीवता करता है यथा—हृदयाभिघात को मानस क्लैब्य का कारण माना गया है। विटप मर्म के छेदन से पण्डत्व एव शुक्र कृच्छ्रता कहा है। (सु० शा० ६।२४)

(viii) वमन, विरेचन का अतियोग अति अपकर्षण पूर्वक तथा धम्ति का मिथ्या प्रयोग भी क्लैब्य उत्पादक हो सकता है।

(ix) उत्तर वस्ति का मिथ्या प्रयोग

(x) अभिचार कर्म द्वारा बीज उपघात की सभावना चरक ने स्वीकारी है।

(५) मानसिक कारण—

मानसिक भाव विविध रूप से क्लीवता उत्पन्न करते है। इनमें से कुछ सीधे मन पर प्रभाव कर क्लीवता करते है और कुछ अप्रत्यक्ष रूप से धातु क्षय आदि कर क्लैब्य करते हैं यथा—

(i) प्रत्यक्ष कारण—हृदयाभिघात-मन टूट जाना, शोक, भय, स्त्री दोष दर्शन, स्त्री का अरसज्ञ होना, अविश्वास आदि कुछ ऐसे कारण हैं जो सीधे मन में विषाद-दैन्य निष्क्रियता उत्पन्न कर क्लैब्य करते हैं। इसी प्रकार चिन्ता, विषाद, भयरोग, मद आदि भी क्लैब्य करते हैं।

(ii) अप्रत्यक्ष कारण—कुछ मानसिक भाव शरीर पर धातु आदि पर प्रभाव कर क्लीवता करते हैं यथा—भय, शोक, चिन्ता, ईर्ष्या, त्रास, क्रोध आदि भाव धातु क्षय एव बीज का उपघात कर क्लीवता उत्पन्न करते हैं जबकि अन्य उत्कण्ठा, मद, उद्वेग आदि भी धातु क्षय का कारण बनकर क्लैब्य करते हैं।

(६) विविध रोग—

कुछ रोग भी ऐसे है जिनमे क्लैब्य उत्पन्न हो सकता हैं। यथा—

(क) निम्न शारीरिक रोग आंशिक क्लैब्य उत्पन्न करते हैं—

(१) ज्वर
(२) पाण्डु कामला, हलीमक
(३) कास श्वास
(४) छर्दि अतिसार ग्रहणी
(५) शूल एव ऊर्ध्ववात
(६) अर्श भगन्दर
(७) मूत्रकृच्छ्र (अश्मरी) मूत्राघात (अष्ठीला)
(८) क्षय (शुक्र-ओजक्षय)

(ख) निम्नलिखित पुरुष रोग क्लैब्यकारक कहे गये हैं—

(१) निरुद्धप्रकश आदि शिश्न चर्म के रोग
(२) लिङ्गार्श, अर्बुद आदि अंकुर-ग्रन्थि उत्सेद युक्त रोग
(३) उपदंश आदि पाक प्रधान रोग
(४) वृषण सम्बन्धि विविध वृद्धिया एवं उनके उत्सेद प्रधान अन्य विकार

(ग) वृषण ग्रन्थि दौर्बल्य तथा उनके सुख सम्बन्धी, हार्मोन्स सम्बन्धी विकार

(घ) जीवतिक्ति इ की कमी से उत्पन्न विकार

विकृतियां—

सम्प्राप्ति की दृष्टि से भी विभिन्न प्रकार के क्लैब्यों में विभिन्न विकृतिया उत्पन्न होकर क्लैब्य उत्पन्न करती हैं। इन वर्णित क्लैब्यों में उत्पन्न कतिपय प्रमुख

विकृतिया निम्नलिखित हैं—

१. धातु प्रमाण न्यूनता-(क) रसादि धातु अनुत्पत्ति पूर्वक, अति व्यवाय पूर्वक या वातादि दोष द्वारा बीज का उपघात होकर प्रमाण न्यूनता या सर्वथा अभाव होने सम्बन्धी विकृति क्लैव्यकारक प्रमुख विकृति है।

(ख) क्षय रसादि धातु का शुक्रपर्यन्त अनुलोम या प्रतिलोम क्रम से क्षय होना भी क्लैव्यकारक विकृति है।

यह हृदयस्थ रस की क्षीणता के रूप मे क्षयज क्लैव्य में, रसादि शुक्रपर्यन्त धातु क्षीणता बीज उपघात में, वीर्य के क्षय के रूप में, वीर्यक्षय जन्य मे विकृत रूप होकर क्लैव्य करते हैं।

२ ग्रन्थित वीर्य—ब्रह्मचर्यजन्य क्लैव्य मे यह विकृति कठिन बीर्य के रूप मे वर्णित की गई है।

३. धातु पाक एव स्रोतो वैगुण्य—जरा जन्य में अग्निमांद्यपूर्वक धातु पाक एवं स्रोतो वैगुण्य प्रमुख विकृतियां हैं।

४ इन्द्रिय क्षीणता—उपस्थेन्द्रिय की क्षीणता जरा स्वभाव जन्य विकृति में काल परिपाक के परिणाम के रूप मे वर्णित है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्यान्य कारणों से भी शिश्न की विभिन्न विकृतिया सम्बन्धित हैं यथा—

(१) वेगरोध (वीर्य वेगरोध)

(२) अभिघात एव पीडन आदि, शूकादि, मुष्टि

(३) दश-क्षत आदि व्रणोत्पादक कारण

(४) व्रणशोफोत्पादक निज एव आगन्तु कारण

(५) पुसत्व नाशक मेढ्र के रोग एव प्रजनन सबधि अनेक रोग

(६) अयोनि, वियोनि, त्रिर्यक योनि तथा गुद हस्त मुख मैथुन आदि विकृत सग से

(७) दीर्घ रोगिणी, रजस्वला, दुर्गन्धित, दुष्ट, परिस्रुत अस्वच्छ योनि गमन द्वारा, दोष ससर्ग द्वारा।

५. स्रोतोच्छेदन एव पुन्सोपघात-शस्त्र, क्षार, अग्नि द्वारा वीर्यवह स्रोत अथवा प्रजनन (शिश्न) वृषण आदि सम्बद्ध अवयवों को हानि पहुचना जैसाकि निदान मे पीछे कहा गया है।

६ पर, अपर वीर्य अभाव या हार्मोन्स की कमी, जो विविध प्रणालीविहीन ग्रन्थियो से सम्बन्धित है, भी क्लैव्य कारक प्रमुख विकृति मानी जाती ।

७ जीवतिक्ति इ की कमी से वीर्य क्षीणता

८. प्रजनन अवयव से सम्बन्धित मांसपेशी, धमनी, शिरा, वात नाडी सम्बन्धी विकृतिया भी मननीय हैं।

क्लैव्य लक्षण—

क्लैव्य के सामान्य लक्षण निम्नानुसार कहे गये हैं—

१ स्त्री सग की इच्छा ही न होना या स्त्रीद्वेष कामनाश आदि के रूप मे मिलता है।

२. इच्छा होने पर भी अप्रहर्ष

३ प्रिय एव वश्य स्त्री होने पर भी कार्य असिद्धि (मैथुनासमर्थता)।

४ अप्रहर्ष या अल्पहर्षण होकर इन्द्रिय की शिथिलता के बने रहने से कार्यासिद्धि।

५. प्रयत्न करने पर श्वास चढना, स्वेद आना और इस प्रकार कार्य न कर पाना।

६ इस प्रकार अनेक विध प्रयत्न करने पर भी मनोरथ पुरा न होना, चेष्टा विफल होना तथा अनेक प्रयास करने पर भी शिश्न प्रहर्षित न होना।

यह क्लैव्य के सामान्य लक्षण हैं। क्लैव्य मे विविध रोग आनुसगिक रूप मे देखे जा सकते हैं यथा—

१. दौर्बल्य, श्रम, उत्साहहीनता, अल्पहर्ष, लक्षणों के साथ हृद्रोग, पांडु, कामला, तमक, कास, वमन, अतिसार, शूल, ज्वर आदि बीज उपघात मे देखने में आ सकते हैं।

२ ध्वजभङ्ग लक्षण के साथ शिश्न के अन्य विकार पिडिका, स्फोट, व्रण, शोथ आदि ध्वजोपघात मे हो सकते हैं।

३ बलह्रास, वैवर्ण्य, विह्वलता, दैन्य जैसे लक्षणों के साथ शीघ्र गम्भीर रोगोत्पत्ति को क्षयज क्लैव्य में देखा जा सकता है।

प्रकार—

सुश्रुत ने समग्ररूप से मानस, आहारज, शुक्र क्षयज, पुंस्त्वोपघातज, सहज एव ब्रह्मचर्य जन्य आदि प्रकार कहे हैं। जबकि चरक ने सहज क्लैव्यो का अलग से वर्णन

कर वीजोपघात जन्य, ध्वजोपघातजन्य, जराजन्य एव क्षय जन्य क्लैव्यो का वर्गीकरण किया है। उनके मिले-जुले लक्षण ऊपर सक्षेप मे दिये गये हैं। सुश्रुत का वर्गीकरण हेतु आधारित है, जबकि चरक का वर्गीकरण विकृति पर या चिकित्सा पर आधारित प्रतीत होता है।

चिकित्सा—

क्लैव्य की समग्र चिकित्सा स्वय मे एक विस्तृत विषय है परन्तु उपक्रम के आधार पर सक्षेप मे निम्नानुसार चिकित्सा आयोजित की जा सकती है—

१ निदान परिवर्जन एव सात्म्य पथ्य सेवन तथा ब्रह्मचर्य धारण (ब्रह्मचर्य जन्य तिराण मे)।

२ सम्बद्ध व्याधि अनुसारी चिकित्सा।

३ अग्नि दीपन पूर्वक धातु वर्धक चिकित्सा बृहणकर्म

४ पचकर्मीय चिकित्सा—स्नेहन, स्वेदन पूर्वक ऊर्ध्व शोधनान्तर अनुवासनास्थापन बस्तियो द्वारा चिकित्सा, यापन वस्ति एव ग्रन्थित शुक्रादि मे उत्तर बस्ति, विप्लावन आदि भी वर्णित हैं।

५. व्रणशोथ, व्रण, ग्रन्थि, अर्बुद, अर्श आदि मे तदनुसार शस्त्रकर्मीय तन्त्रानुसारी चिकित्सा

६. आवश्यकतानुसार प्रदेह, परिषेक, व्रणक्रिया, रक्तमोक्षण आदि का प्रयोग

७. शोधन चिकित्सान्तर वृष्य एव जरूरत पडने पर जरादि में रसायन कल्पो द्वारा चिकित्सा की जानी चाहिए। क्षीरसर्पि कल्प विशेष उपयोगी है।

८. वृष्य कल्पों मे शुक्र स्नुति कर, शुक्र विवर्धन एव शुक्र स्नुति विवर्धन कर्म एव द्रव्यो द्वारा चिकित्सा अभीष्ट है। शुक्र वृद्धि के अतिरिक्त वीर्य शोधन एवं स्तम्भक कर्म भी यथावश्यक प्रयोग किये जाते हैं।

९. शिश्न एव प्रजनन सम्बन्धि विकारों में प्रहर्षक एव दृढिकरण प्रयोग, पुष्टी एवं प्रलम्बिकर योग एव स्थूल कर योगो द्वारा चिकित्सा की जानी चाहिए।

१० मानस विकार में सत्वावजय रूप मनोचिकित्सा तथा अभिचारज मे दैव्य व्यपाश्रय चिकित्सा करें।

कुछ प्रसिद्ध कल्प—

यद्यपि प्रत्येक प्रकार के क्लैव्य के लिये विशिष्ट चिकित्सा व्यवस्था, उपक्रम एव कल्पो की आवश्यकता रहती है तथापि कुछ सर्वत्र प्रयुक्त कल्प नीचे दिये हैं—

चूर्ण—गोक्षुरादि चूर्ण, अश्वगन्धादि चूर्ण, शतावर्यादि चूर्ण, नारसिंह चूर्ण, चाण्डालिका योग

वटी—लक्ष्मणालोह वटी, त्रिफला वटी, वानरी वटी

मोदक—कामाग्नि सदीपन मोदक, शतावरी मोदक, गोक्षुरादि मोदक, कामेश्वर मोदक, विजया मोदक, रतिवल्लभ मोदक

रस—हेमसुन्दर रस, मकरध्वज रस, कामदेव रस, कामिनीदर्पघ्न रस, पुष्पधन्वा रस, अनङ्गसुन्दर रस, मन्मथाभ्र रस

आसवारिष्ट—दशमूलारिष्ट, मृतसजीवनी सुरा

घृत—गोधूमाद्य घृत, अमृतप्राश घृत, छागलाद्य घृत, शतावर्यादि घृत, जीवन्त्यादि घृत

तैल (वाह्य प्रयोगार्थ)—पल्लवसार तैल, भल्लातक तैल, अश्वगन्धा तैल, अर्क तैल, विषगर्भ तैल, वातव्याधि मे प्रयुक्त तैल

सामिष कल्प—वृषण, अण्ड (वीर्यभाग में), मास कल्प यथा बस्ताड प्रयोग।

—०✱०—

— पृष्ठ ८६ का शेषांश —

मात्रा—६ ग्राम से १२ ग्राम तक खाकर ऊपर से गोदुग्ध १ पाव से आधा किलो दिन मे २ बार पीजाय। प्रभा वटी २५० मि० ग्रा० + शिलाजित्वादि वटी २५० मि० ग्रा० दिन मे दोवार दूध के साथ देने से समस्त वीर्य विकार प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि दूर हो जाते हैं।

(३) शुक्रवल्लभ रस १२५ मि० ग्रा०, पूर्णचन्द्र रस १०० मि० ग्रा०, मकरध्वज वटी १२५ मि० ग्रा० ये सभी एक मात्रा हुआ। इसी प्रकार दिन मे तीन बार मधु के साथ चाटकर ऊपर से १ पाव का गाय दूध पान करें। यह भी सभी प्रकार के विकृत वीर्य को नष्ट करता है।

(४) वृहद् वगेश्वर रस १२५ मि०ग्रा०, शुक्र मातृका वटी १२५ मि० ग्रा० दिन में ३ वार दूध के साथ सेवन करने से विकृत वीर्य मे अच्छा लाभ मिलता है। ★

मर्द को बंग, घोड़े को तंग

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, मकराना मोहल्ला, जोधपुर (राजस्थान)

—*※*—



वैद्य श्री अम्बालाल जोशी राजस्थान के विद्वान वैद्य हैं। राजस्थान की आयुर्वेद प्रणाली जीवित रखने मे आपका महत्व का योगदान रहा है। "धन्वन्तरि" के आप स्थायी आधार स्तम्भ हैं। वयोवृद्ध होते हुए भी आप निरन्तर लिखते रहते हैं। आप आयुर्वेद के विकास मे सदा तत्पर है। आप आयुर्वेद के सफल चिकित्सक हैं। धन्वन्तरि' के सभी विशेषांको मे आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। हाल ही मे आपने 'धन्वन्तरि' औषधि प्रतिक्रिया एव निवारण अङ्क (दो भागो) का सम्पादन किया है। भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना है कि आप शतायु बनें और आपसे आयुर्वेद की सेवा होती रहे। आपके लेखों से वैद्यो को मार्गदर्शन मिलता है। अत 'धन्वन्तरि' आपसे गौरवान्वित है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

उपरोक्त शीर्षक एक लौकिक कहावत है जो अत्यन्त सारपूर्ण है। वङ्ग भस्म मर्द (पुरुष) को मर्दानगी (पुरुषत्व) देती है अर्थात इसका सेवन पुरुषत्वदाता है। इसी प्रकार घोडे पर तङ्ग याने लगाम, काठी, दुमची आदि की कसावट कर देने से घोडा दौडने मे तत्पर या समर्थ हो जाता है। सभव है इस कहावत का पूर्वार्ध रस शास्त्र के इस उद्धरण के आधार पर ही कहा गया हो 'वङ्ग भक्षय यो नरस्य न भवेत्तस्य शुक्र क्षय'। अर्थात् वङ्ग का सेवन करने वाले मनुष्य का वीर्य कभी नाश नही होता। तात्पर्यंत वङ्ग अजस्र वीर्यवर्धक एव प्रमेहनाशक रसायन है, यदि इसकी भस्म विधिवत् बनी हुई हो।

वग ग्रहण—वग दो प्रकार का बाजारों में उपलब्ध होता है। (१) खुरक (हाथी पगा) तथा मिश्रक (ककई का वण) इनमे भस्म निर्माण के लिये हाथी पगा या खुरक ही लेना चाहिये।

शोधनाभाव—बग को यदि शुद्ध किये बिना भस्म करवाया जाय या कच्ची भस्म का प्रयोग करने पर निम्न रोग हो जाने सम्भव हैं। (१) कुष्ठ, (२) गुल्म, (३) प्रमेह, (४) क्षय, (५) पाण्डू, (६) शोथ, (७) हृदय रोग, (८) भगन्दर, (९) शुक्राश्मरी, (१०) रक्त विकार, (११) श्लेष्म ज्वर।

इसका अशुद्ध प्रयोग देह सौंदर्य को भी नष्ट कर देता है। कच्ची भस्म सेवन से भी ये ही दोष सभाव्य हैं।

वङ्ग शुद्धि—

उत्तम जाति का वग लेकर उसकी शुद्धि की जानी चाहिये। यों तो वग चादी के समान उज्वल, शुद्ध है। यह २३२ डिग्री सेण्टीग्रेड पर पिघलता है, तथा २२७० डिग्री सेन्टीग्रेड पर उडने लगता है। इसका गुरुत्व मान ११८७ होता है। फिर भी आयुर्वेदीय मतानुसार इस शुद्ध वग के धातु सस्कार किये जाने आवश्यक हैं। ये सस्कार निम्न प्रकार से किये जाने चाहिये—

(१) तैल (तिलका), छाछ, गोमूत्र, काञ्जी तथा कुलथी के द्रव या क्वाथ मे पृथक-पृथक सात-सात बार बुझाने देने से यह शुद्ध होता है।

विधि—सभी द्रवो को अलग से बर्तन में डालकर ऊपर एक ढक्कन जिसमे छोटा खड्डा किया गया हो रख दे। फिर लोहे की कलछी मे वग डालकर अग्नि पर रखकर उसे पिघाले। फिर इस पिघले हुए वंग को उस

ढक्कन में थोडा-थोडाकर डाले तथा ढक्कन पर दबाव रखे, जिससे ढक्कन उछले नहीं तथा अन्दर का द्रव भी उछलकर वाहर नहीं आवे क्योकि इससे शोधन कर्ता के जलने का भय रहता है। इसी प्रकार ७ ७ वार प्रत्येक द्रव मे करें।

(२) अन्य शोधन विधि– अर्क दुग्ध को इसी प्रकार पात्र मे स्थित कर वग को पिघालकर उसमे वुझावे। यह विधि भी ७ वार करनी आवश्यक है।

(३) चूने के पानी को पात्र मे रखकर उसी प्रकार वग को पिघालकर उसमे वुझावे। यह क्रिया भी ७ वार करनी चाहिये। प्रत्येक बार काले टुकडों को दूर कर देना उत्तम है।

(४) निर्गुण्डी का रस निकालकर उसमे निशा चूर्ण (हल्दी) मिलाकर पूर्व प्रकार से वग को उसी विधि से सात बार बुझावें।

(५) खट्टा मट्ठा तथा कुमारी स्वरस मे प्रथक-प्रथक सात-सात वार वुझा देने से वग शुद्ध होता है।

इस प्रकार से संस्कारित किया गया वग भस्म के लिये ग्रहणीय है। अब नीचे इसकी मारण विधि लिखेंगे—

मारण विधि —

(१) सर्व प्रथम शुद्ध सस्कारित वग के कटकवेधी पत्र बनाले। फिर उन पत्रो को भस्म वनाने मे प्रयोग करें। भाग (विजया) को साफ कर एक टाट के टुकडे पर बिछालें, फिर उस पर, वग पत्र को एक-एक कर जमा लेवें। फिर उसे गोलकर (गोल तकिये की तरह) बनाले तथा डोरा लपेटकर रख दें। फिर उस पर कपडमिट्टी लगाकर चारों ओर से बन्द करदें। सूखने पर इसे अरण्य-कण्डो की अग्नि दें। जल चुकने पर गोले को अलग कर खोलें। स्थान-स्थान पर वङ्ग की राख के साथ सफेद सफेद दाने लगे निकलेगे। उन्हे सुरक्षित एकत्रित करलें। फिर इन्हे खरलकर साफ वस्त्र से छान लें, नीचे वतन मे वग भस्म तथा वस्त्र के ऊपर वग के टुकडे मिलेंगे। इसी प्रकार पुनरावृत्ति करें। वंग भस्म एकत्रित होने पर उसे कडाई या कलछी में डालकर तीव्र अग्नि दे। फिर गर्म लाल होने पर नीचे उतार-कर ठडा होने दें। पुन एक वार छान कर सुरक्षित रखलें। यह वाजीकरण पयोगार्थ उत्तम भस्म है।

(२) ऊपर लिखे अनुसार ही वग के कटक वेधी पत्र बनाकर टाट पर साफ अजवायन बिछाकर उस पर पत्रों को जमाकर गोला बनाकर पूर्वविधि से अग्नि दे। शीतल होने पर उसी प्रकार वंग भस्म छानकर निकाल लें। यह भस्म उदर रोगो मे उपयोगी है।

(३) एक कडाही मे शुद्ध सस्कारित वग डालकर उसे अग्नि पर तपाकर पिघला लें। इसके वाद अश्वत्थत्वक (पीपल की छाल) का चूर्ण चिमटी चिमटी डालता रहे तथा लोहे के कलछे से हिलाते रहें। धीरे धीरे वग की श्वेत भस्म वन जावेगी। इस भस्म को भी छानकर एक बार पुन तीव्र अग्नि दे। फिर छानकर भस्म को सुरक्षित रखले। यह कब्ज, रक्त विकार, श्वास आदि मे लाभ करती है।

(४) उपरोक्त प्रकार से वग को गलाकर उसमे इमली, तिल तथा हल्दी को चूर्णित कर चिमटी-चिमटी डालते रहे और लोह दण्ड से हिलाते रहे-इस प्रकार भी वग की भस्म वन जावेगी। इसे भी पुन तीव्र अग्नि देकर छान ले। यह भस्म प्रमेह मे लाभ करती है।

(५) लोहे की कढ़ाही मे वग को पिघलाकर उसमे सोलहवा भाग शुद्ध पारद डाल दे; पिघले हुए में हरताल चूर्ण थोडा थोडा डालता रहे तथा जगली कपास की हरी डाडी से चलाता रहे। भस्म हो जाने पर इसे इकट्ठा कर/उस पर कटोरी उल्टी, ढक कर तीव्र अग्नि देवे। लाल हो जाने पर नीचे उतारकर ठण्डा होने पर कपडे से छानकर भस्म सुरक्षित रख ले। इसे वगेश्वर (पारद योगेन) कहा जाता है।

(६) वग को लोहे के पात्र मे डालकर पिघला ले, फिर उसमे अपामार्ग चूर्ण थोडा थोडा बुरककर लोह दण्ड से चलाता रहे। भस्म तैयार होने पर इसे भी ढककर तीव्र अग्नि देकर शीतल होने पर छानकर वग भस्म प्राप्त करे। यह श्वास रोग मे लाभ करती है।

(७) वग को पात्र मे पिघलाकर उसका चौथाई भाग पारद मिलाकर अर्ध भाग हरताल मे मर्दन कर टिकिया

बनावे। फिर एक बर्तन मे नीचे पीपल की छाल की राख का चूर्ण जमाकर ऊपर इन टिकियाओ को अलग-अलग रखे तथा ऊपर फिर पीपल की छाल की राख जमादे। फिर पुट देवे। बग भस्म बन जावेगी। यह बग भस्म हरताल योगेन कहलाती है।

(८) कढाही मे बग को पिघला कर उसमे पीपल की छाल का चूर्ण बुरकता रहे तथा लोह दण्ड से घोटता जावे। इस प्रकार बग की भस्म तैयार हो जाने पर उसे एकत्रित कर, ऊपर कटोरी से ढक कर तीव्र अग्नि दे। लाल हो जाने पर इसे ठण्डा कर कपडे से छान ले तथा भस्म को सुरक्षित रखे। यह श्वास रोग मे उपयोगी है।

विशेष—बग भस्म निर्माण करते समय हर बार शुद्ध सस्कृत बग लेना चाहिये। भस्म तैयार होने पर उसकी पूर्ण परीक्षा करले। उसमे धातु कठिनता (मैटलिक लस्चर) नही रहनी चाहिये। मुलायम (मृदु) भस्म रेखा पूरित होनी आवश्यक है। कच्ची रहने पर देह विकृति तथा उपरोक्त लिखे सभी रोगों को उत्पन्न कर देती है। अत भस्म को पूर्ण सावधानी के साथ प्रयोग करना चाहिये जिससे देह विकृति न हो।

बङ्ग भस्म के गुण धर्म—

वङ्ग भस्म लघु सर शीतल, रूक्ष होती है। इसका रस तिक्त, कषाय तथा लवण युक्त होता है।

यह बुद्धि वर्धक, मेद नाशक, रुचिकर, कफ शामक है। यह वमन के वेग को शान्त करती है। प्रमेह नाशक औषधि है तथा व्रणो पर उपयोगी है। यह दृष्टिवर्धक है। यह शुक्र वर्धक, क्षय नाशक, वर्ण शोधक, काम शक्ति वर्धक, स्वप्न दोष निवारक तथा वीर्यस्राव निरोधक है।

विशेष गुण—यह श्वासावरोध तथा कफ जन्य विकृतियों को शान्त करती है। उत्साहवर्धक है। बहुमूत्र, शुक्रमेह को नियन्त्रित करती है। इस प्रकार इसका प्रभाव ग्राही है। यह स्वेदाधिक्य कम करती है। विशेषत यह उत्पादक अगों की शोधक तथा पुष्टि दाता है। शुक्र क्षय, स्वप्न प्रमेह में उपयोगी है। यह विचर्चिका को भी नष्ट करती है। नवीन अनुसन्धान के अनुसार गन्धक रसायन के साथ इसका प्रयोग इस रोग मे अति प्रभावकारी सिद्ध हुआ है।

मात्रा—इसकी मात्रा १-२ रत्ती की है। सामान्य अनुपान 'मधु' है।

चिकित्सा मे बङ्ग भस्म का प्रयोग—

(१) वङ्ग भस्म तथा सफेद मूसली शुक्रोत्पादक है।

(२) वङ्ग भस्म तथा तुलसी पत्र स्वरस प्रमेह नाशक है।

(३) वङ्ग भस्म सेमर मूसली तथा हरिद्रा के मिश्रण को मधु के साथ सेवन करने से शुक्र वृद्धि होती है।

(४) वङ्ग भस्म तथा अभ्रक भस्म व काली मूसली शुक्रोत्पादक होती है।

(५) वङ्ग भस्म तथा अपामार्ग चूर्ण का मिश्रण नपुसकता नाश कर पुसत्व प्रदाता है।

(६) वग भस्म तथा समुद्र फेन का मिश्रण दुग्ध के साथ सेवन करने से धातु वृद्धि करता है।

(७) वग भस्म तथा जातिफल चूर्ण मधु के साथ लेने से शुक्र पुष्टि करता है।

(८) वग भस्म व कस्तूरी मिश्रण वीर्य स्तम्भक है।

(९) वग भस्म, रस सिन्दूर रजनी रस मे औपसर्गिक प्रमेह को नष्ट करता है।

(१०) वग भस्म तथा शिलाजीत शुक्र क्षय को रोक कर शुक्रोत्पादक अवयवो को बल देता है।

(११) वग भस्म तथा अमृतासत्व मधु के साथ सेवन करने से सभी प्रमेहो को एक मास मे मिटाता है।

(१२) वगेश्वर (पारद योगेन) का प्रयोग मक्खन के साथ करने से नपुसकता हटकर पुसत्व बढ़ता है।

(१३) उपदश जनित शुक्र दोषो मे वग भस्म हरताल योगेन कार्यशील होती है।

(१४) पौरुष ग्रन्थियो की वृद्धि द्वारा मूत्राघात होने पर वग भस्म शिलाजीत तथा गडूची सत्व मिश्रण मधुसह लाभदायक है। साथ मे चदनासव भी देवें।

(१५) वंग भस्म तथा इसबगुल मिलाकर दुग्ध के साथ सेवन करने से स्वप्न प्रमेह मिटता है।

(१६) सितोपलादि चूर्ण व मधु के साथ वग भस्म का

कुछ काल तक सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट होता है ।

(१७) औपसर्गिक प्रमेह मे वग भस्म, मुक्ता पिष्टी इलायची वशलोचन तथा सत्व विरोजा मिलाकर देने से लाभ होता है ।

सामान्यत वंग भस्म शुक्रोत्पादक अवयवो को पुष्ट करती है । सामान्यत अत्यधिक स्त्री प्रसग तथा विपरीत तरीकों से शुक्र स्राव होने पर पुरुष की पुंसत्व शक्ति तथा शुक्र सरोधक शक्ति का ह्रास होजाता है और स्त्री का काम दृष्टि से स्मरण करने मात्र से वीर्य स्राव होकर शिथिलता आ जाती है। ऐसी स्थिति में बङ्ग भस्म अपना कार्य करती है । स्वप्न प्रमेह तथा अन्य सामान्य प्रमेहो में वग भस्म कार्य करती है ।

वग भस्म का वात वाहिनी नाडियों पर भी उत्तेजक प्रभाव होता है । स्नायुमण्डल के दौर्बल्य पर वग भस्म बल प्रदाना है ।

पौरुषिक नपुंसकता पर वग भस्म उत्तम कार्य करता है । जैसा कि शीर्षक कहावत में कहा गया है । कस्तूरी के सहयोग से यह शीघ्र कार्यकारी होता है । आवश्यकता होने पर इसे अहिफेन के साथ भी दिया जा सकता है परन्तु अधिक दिन नही । शुक्र का अधिक क्षरण होने के कारण देह मे शिथिलता आकर शिर शूल, निरुत्साह तथा क्लैव्य दोष आजाते हैं । ये सभी उपरोक्त प्रयोगो से मिटाये जा सकते हैं ।

वृद्धावस्था मे होने वाले मूत्र पिण्ड तथा पौरुष ग्रन्थि से होने वाले मूत्राघात में वग भस्म मूत्रवह स्रोतों को शुद्ध कर मूत्राशय मे मूत्र विसर्जन की शक्ति पैदा करती है। इसका उपयोग वरुणादि गण के क्वाथ के साथ किया जाता है । जीर्ण तथा कठोरतम रोग स्थिति मे शल्य क्रिया करनी उचित रहती है ।

प्रमेह रोग की अवस्था में पुरुष अज्ञात कारणो से दिन प्रतिदिन शिथिलता का अनुभव करता रहता है । धीरे-धीरे वह साधारण प्रमेह मधु प्रमेह मे बदल जाता है । पूर्वावस्था मे बङ्ग भस्म अकेले में या नाग भस्म के मिश्रण से लाभ करती है । प्रमेह की अवस्था मे कोई भी रोग उग्र रूप धारण कर लेता है। देह के सभी पोषक घटक शिथिल हो जाते हैं और देह का पोषण सम्यग् रूप से नही हो पाता । इन सभी अवस्थायो मे वङ्ग भस्म अन्य रासायनिक औषधियों जैसे शिलाजीत, गडूची सत्व, अभ्रक भस्म, नाग भस्म आदि सयुक्त रूप से स्वस्थ करती है ।

धातु तारल्य की स्थिति भी अत्यन्त वीर्य स्राव अथवा उष्ण द्रव्यों के अति सेवन से आजाती है । ऐसा होने पर वीर्य निस्सरण होता है । किसी कारण के बिना स्राव हो जाता है । ऐसी अवस्था मे बट दुग्ध के साथ अथवा अन्य धातु पौष्टिक औषधियों के साथ इसका सेवन उपयोगी रहता है ।

धातुस्राव जो अधिकतर मानसिक अपवित्रता के कारण या अत्यन्त उत्तेजना या मनोद्वेग के कारण होता है, उसमे भी वग भस्म का सेवन वानरी गुटिका के साथ उत्तम रहता है । सकोचनार्थ यदि अहिफेन जल या तिजारे के डोडे के जल के साथ सेवन कुछ ही दिनों तक किया जाय तो लाभप्रद होता है । अधिक दिन तक इसका सेवन कदापि नही करना चाहिए ।

अत्यधिक शुक्रपात अथवा कुटेव के कारण पुरुष निरुत्साहित तथा रक्ताल्पता का शिकार होजाता है । इसी के द्वारा अन्य धातुओं का भी क्षय निरन्तर होने लगता है । इस प्रकार के क्षय रोग अथवा पाडु रोग में वग भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म आदि के साथ लाभ देती है । पाडु की अवस्था में वग तथा स्वर्ण माक्षिक, रससिंदूर, मुक्तापिष्टी के साथ रक्त बढ़ाती है।

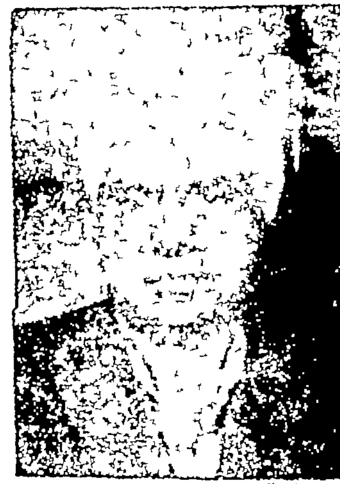
बङ्ग भस्म उत्तेजक औषधि नहीं है परन्तु यह शक्तिदायक अवश्य है । अपने इसी गुण के कारण यह वृष्य अथवा बाजीकर औषधियों मे मानी गई है । अति वीर्य पात के कारण आने वाले नपुसकत्व में यह लाभ करती है । शीघ्र प्रभाव के लिये इसमें कस्तूरी, जायफल, केशर आदि द्रव्य मिलाये जाते हैं जिससे यह शीघ्रकारी हो जाय । कई मनुष्य केवल मानसिक परिताप से ही मैथुन या स्त्री प्रसग से उदासीन होजाते हैं। उनके इस मानसिक परिताप को दूर करने के लिये वङ्ग भस्म अच्छी औषधि

—शेषांश पृष्ठ १०१ पर देखें

नपुंसकता की चिकित्सा

वैद्य मोहरसिंह आर्य, स्थान मिसरी जि० भिवानी (हरियाणा)

—००—



श्री वैद्य मोहरसिंह आर्य आयुर्वेद जगत के विद्वान लेखक एवं चिकित्सक हैं। आप जिस विषय पर भी अपनी लेखनी उठाते हैं उस पर पूरी खोज-बीन करके सभी जगह से सग्रहकर विषय को परिपूर्ण करते हैं जिससे पाठक को अन्यत्र न खोजना पडे। लेख यद्यपि लम्बा होता है लेकिन छोटे लेख मे विस्तृत जानकारी का समावेश शक्य भी तो नहीं है। 'धन्वन्तरि' से आप लगभग ३५ वर्षों से जुड़े हुए हैं और कोई बृहद् विशेषाङ्क आपके लेख से अछूता नहीं। लेखनी के धनी इस आयुर्वेद विद्वान के हम अत्यन्त आभारी हैं। भगवान धन्वन्तरि आपको दीर्घजीवी बनायें। —दाऊदयाल गर्ग

परिचय—जिस पुरुष की शिश्नेन्द्रिय रचना की दृष्टि से तो पूर्ण हो किन्तु क्रिया दृष्टि से पूर्ण रूपेण व्यर्थ तथा शिथिल होता है। लिंगेन्द्रिय की शिथिलता के कारण जो पुरुष मैथुन करने मे असमर्थ हो उसे नपुंसक तथा उसके भाव को नपुंसकता कहते हैं।

पर्याय—(वैद्यक)-क्लीव, नपुंसक, (यूनानी)-नामर्दी (एलोपैथी)-इम्पोटेन्ट (Impotent)

नपुंसकता के भेद

१ चरकानुसार—महर्षि चरक ने नपुंसकता के चार भेद लिखे हैं। यथा - १ बीजोपघात, २ ध्वजोपघात, ३ जराजन्य, ४ शुक्रक्षय।

२ सुश्रुत मतानुसार—सुश्रुत ने छ प्रकार की नपुंसकता मानी है। यथा—१ मानस क्लैव्य, २ पित्तज क्लैव्य, ३ शुक्रक्षयज क्लैव्य, ४ मेढ्ररोगज क्लैव्य, ५ सहज क्लैव्य, ६ शुक्रास्तम्भज क्लैव्य।

ये छ भेद चिकित्सा स्थान मे वर्णित किये हैं। किन्तु शारीर स्थान मे निम्न भेदो का उल्लेख किया है—१ आसेक्य, २ सौगन्धिक, ३ कुम्भीक, ४ ईर्ष्यक, ५ षण्ढ।

३ भावप्रकाश के अनुसार—आचार्य भावमिश्र ने नपुंसकता के सात भेद माने हैं—१ मानस क्लैव्य, २. पित्तज क्लैव्य, ३ शुक्रक्षयजन्य, ४ मेढ्ररोगजन्य, ५ उपघातजन्य, ६ शुक्रावरोधजन्य, ७ सहज क्लैव्य।

४ प्रत्यक्षतया नपुंसकता के पाच भेद माने गये है। यथा—१ सहज २ रोगजन्य, ३ जराजन्य, ४. मानसिक, ५ वीर्यक्षयजन्य।

१ सहज नपुंसकता—

कारण—१ लिंगेन्द्रिय रोग, २ अण्डकोष विकार, ३ पैत्तिक रोग।

लक्षण—जिस मनुष्य का जन्मकाल ही से मूत्र विसर्जन स्थान में लिंग का केवल छोटा सा चिह्नमात्र हो उसे सहज क्लैव्य कहते है।

यदि जन्मजात नपुंसकता का कारण अण्डकोषो का अविकसित होना है तो इनकी परिगणना हीजडो मे होती है। ये असाध्य होते हैं।

२ रोगजन्य नपुंसकता—

कारण—१ शिश्नेन्द्रिय सम्बन्धी रोग, यथा—उपदंश, पूयमेह, लिंगक्षत, लिंगनाश, २ शारीरिक रोग, यथा—तीव्र ज्वर, जीर्ण मधुमेह, रक्ताल्पता आदि।

विमर्श – रोगजन्य नपुंसकता दो प्रकार की होती है। १ स्थायी तथा २ अस्थायी। अस्थायी नपुंसकता के कारण भी ऐसे रोग होते है जो ठीक हो सकते हैं। किन्तु स्थायी नपुंसकता उत्पन्न करने वाले रोग भी असाध्य होते हैं। यथा जीर्ण एव उग्र मधुमेह और लिंगगत दीर्घकाल स्थायी रोग।

३. जरासम्भव नपुंसकता —

कारण—१. वृद्धावस्था, २ शुक्रधातु क्षीणता, ३ इन्द्रिय शक्ति तथा बलक्षय, ४ आयु की क्षीणता, ५ अनशन, ६ परिश्रम, ७ क्लम (अनायास थकावट), ८ वृष्य पदार्थ सेवन न करना।

वृद्धावस्था मे मनुष्यो का शुक्र स्वभावत क्षीण हो जाता है। इस अवस्था मे रस आदि धातुओं के क्षीण हो जाने से, वृष्य पदार्थो का सेवन न करने से क्रमश बल, वीर्य तथा इन्द्रियो मे क्षीणता आने से, आयु क्षीणता से, अनाहार, काम, क्लम से जरासम्भव नपुंसकता हो जाती है।

लक्षण—उपर्युक्त हेतुओ से वृद्ध पुरुष अत्यन्त क्षीण धातु, अति दुर्बल, विवर्ण, विह्वल (अपने अगो के धारण मे भी असमर्थ) और दीन होकर रोगग्रस्त हो जाता है। रमणियो के साथ रमण नही कर सकता। यदि पुरुष वाजीकरण औषधियो का सेवन करे तो इस क्षीणता को बहुत समय तक रोक सकता है।

४ मानसिक नपुंसकता—

कारण—१ अधिक भावुक होना, २ मानसिक आघात, ३ चिन्ता, ४ शोक, भय, लज्जा, ७ स्त्री के साथ वैमनस्य।

स्त्री के साथ मैथुन करने की इच्छा रखने वाला पुरुष जब स्त्री के साथ रमणोद्यत हो, किन्तु स्त्री के द्वेषपूर्ण व्यवहार से, तिरस्कार से यदि पुरुष के मन का मैथुन वेग नष्ट हो जाय तो यह मानस क्लैव्य कहलाता है। मैथुन के समय कर्कश स्वभाव के कारण अथवा सयोगवश स्त्री के साथ मनोमालिन्य हो जाए तो उस समय पुरुष मैथुन नही कर सकता। स्त्री के द्वेषपूर्ण व्यवहार से पुरुष का उत्तेजित शिश्न शिथिल हो जाता है। चिन्ता, शोक, भय, क्रोध आदि आवेग से ग्रस्त व्यक्ति मे कामवासना का विचार ही नही आता फिर रत होने की प्रवृत्ति कहा? जिस स्त्री के प्रति पुरुष को घृणा हो या मातृवत्, भगिनीवत् श्रद्धा हो उनके प्रति कामवासना उत्पन्न नही होती।

५ वीर्यक्षयजन्य नपुंसकता—

कारण १ स्वप्नदोष, २. प्रमेह, ३. वीर्यस्राव, ४ हस्तमैथुन, ५ अप्राकृतिक गुद मैथुन, ६ अत्यधिक स्त्री प्रसग, ७ अत्यधिक चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या, उत्कण्ठा ग्लानि से सदैव ग्रस्त रहना, ८ दुर्बल व्यक्ति रूक्ष अन्न तथा औषधि सेवन करे, ९ दुर्बल व्यक्ति अल्पाहार या निराहार रहे, १० असात्म्य भोजन करे। ऐसे व्यक्ति की रक्तादि शुक्र पर्यन्त धातुए क्षीण हो जाती हैं। क्षीण धातु युक्त पुरुष मन के अति कामाभिभूत होने से अत्यधिक मैथुन करता है, उसका वीर्य क्षीण हो जाता है।

चिकित्सा सिद्धान्त—

रोगी को रोग के कारणो से बचावें। ब्रह्मचर्य का पालन करावे। भोजन सुपाच्य, सादा एव पौष्टिक हो। पथ्य—दूध, मलाई मक्खन, फल, हरी तरकारी का प्रचुर मात्रा मे सेवन करें। कामोत्तेजक आहार प्रयोग न करें। भोजन सोने से ३ घटे पूर्व करें। व्यायाम—नियमपूर्वक व्यायाम करें। व्यायाम खुली हवा मे करें। यौगिक आसन करें। काम प्रेरक चल चित्र-नाटक, कहानिया त्याग दें।

स्थानीय उपचार—

स्थानीय उपचार मे सर्व प्रथम मर्दन की आवश्यकता है। मर्दन से जननेन्द्रिय के स्थानीय विकार दूर होकर रक्त सचार मे, शक्ति मे वृद्धि होती है। लिंग मे कोमलता उत्पन्न होती हैं। हस्त मैथुन से उत्पन्न विकार दूर होते हैं।

१. मर्दन विधान – रात्रि को सोते समय २-४ लिटर उष्णोदक से पेडू, जननेन्द्रिय, शिश्नमूल, अण्डकोष, रान, जघा तथा सीवन आदि स्थान अर्थात् नाभि से लेकर गुद पर्यन्त तरेरा दें। पश्चात् मोटे कोमल वस्त्र से पोंछ कर शरीर का समस्त जल शुष्क करें और इस स्थान को धीरे

धीरे-२ रगड कर लाल वना दे कि इस स्थान् से मल दूर होकर त्वचा के छिद्र खुल जायें। तत्पश्चात् मर्दनार्थ औषधि लेकर किञ्चित उष्ण करें और, उपरोक्त स्थानो पर शनै शनै आधा घन्टा तक मलकर रमा दें।

पथ्यापथ्य—मर्दनकाल मे शिश्न आदि अवयवो पर शीतल जल न लगने दें। सम्भोग भी न करे। अम्ल पदार्थ सेवन न करें। सुपाच्य पौष्टिक भोजन करे।

(१) मर्दनार्थ योग—१–मोमदेशी, वतक पक्षी की वसा, कुक्कुट वसा, सावर वसा, वकरी की पिंडली की वसा, नरगिस तैल, सोसन तैल सम भाग लेकर मृदु आच पर रखें। जव मोम पिघल कर सब द्रव्य मिल जाए तो चौडे मु ह की शीशी मे रख लें। इसमे से यथावश्यक औषधि लेकर गर्मकर नाभि से निचले भाग से लेकर गुदापर्यन्त मर्दन करें। मर्दन धीरे-२ आधे घन्टे तक करें।

२–जुफ्तरूमी, कुपीलु चूर्ण, केशर २-२ ग्रा., गोपिंडली वसा, मालकागनी तैल, सर्षप तैल १२-१२ ग्राम लें। सब द्रव्यो को धीरे-धीरे खरल कर श्लक्ष्ण वस्त्रपूत चूर्ण वना लें, फिर तैल मिला खरल करें। फिर मोटे खादी के वस्त्र से नाभि के निचले भाग से लेकर गुदा पर्यन्त-पेडू, जघा शिश्न-सीवन आदि स्थानो को रगडकर लाल करें। तत्पश्चात् यह औषधि मल मल कर रमा दें।

मर्दन से शिश्न के विकार दूर होते है। मृत प्राय शिराओ मे नवीन रक्त का सचार होने लगता है। शिश्न का टेढापन दूर होता है। कोमलता आकर लिंग मे चेतना उत्पन्न होती है।

२ पोटली सेंक—मर्दनोपरान्त सेक की आवश्यकता होती है। सेक से स्थानीय विकार दूर होते हैं। शिश्नेन्द्रिय मे विजातीय द्रव, लिंग मे सुस्ती-ढीलापन तथा पक्षवध'को दूर करता है। शिश्न तथा स्थानीय अवयवो मे चेतना उत्पन्न करता है।

विधि—पोटली द्रव्य को मलमल के वस्त्र मे ६-६ ग्रा की ढीली-२ पोटलिया वनालें। रात्रि को सोते समय २-४ लिटर उष्ण जल से पेडू जननेन्द्रिय शिश्न मूल, अडकोप, जघा तथा सीवन (नाभि के नीचे से सीवन गुदपर्यन्त) समस्त को तरेडा देकर खादी के मोटे तथा कोमल वस्त्र से रगडकर समस्त स्थान को लाल वना दें कि छिद्र खुल जाए। तत्पश्चात् एक छोटी सी कटोरी आच पर रखकर इसमे भेड का दूध या तिल तेल डाल दें और एक पोटली भी छोड़ दें। जव पोटली गरम हो जाए तो निकाल कर इस पोटली से उक्त सम्पूर्ण स्थान की सिकाई करें। दूसरी पोटली को दूध या तेल मे डाल दें। जव पहली पोटली ठडी हो जाए और दूसरी गरम हो जाये तो इस ठड़ी पोटली को कटोरी मे डाल दें ताकि गरम हो जाये और गरम पोटली को निकाल कर इस से सिकाई करें। इस प्रकार १ घटे तक सेक करें। तत्पश्चात् दोनो पोटलिया खोलकर गरम-२ शिश्नेन्द्रिय पर वाध कर लिंग को सीधा नाभि की ओर रख कर लगोट कस कर वाधे और सो जावे।

सूचना—सेक करते समय पोटली पर २ मि लि सुरा लगाकर सेक करें तो शीघ्र लाभ होता है। पोटली इतनी गरम हो कि जितनी शरीर सहन कर सके। सिकाई मे अन्तर न पडने दें। सेक १ घटे से लेकर २-३ घन्टे तक कर सकते हैं। सेक काल मे शिश्न पर शीतल जल न लगने दे। मैथुन न करें। ठडे तथा अम्ल पदार्थ सेवन न करें। भोजन सुपाच्य पौष्टिक सेवन करें।

पोटली योग—१. हाथी दात का चूरा, आंवा हल्दी मालकागनी नारियल पुरानी प्रत्येक २५-२५ ग्राम लेकर कूट-पीस कर छान लं। फिर ६-६ ग्राम की पोटलिया वना लें। विधिवत् प्रयोग करें। अर्थात् रात को पोटली मेक विधान से प्रयोग करें।

२ कैंचुवे, वीरवहूटी मालकागनी, एरड वीज मज्जा, काले तिल, पीली सरसों ३६-३६ ग्राम, मेढक वडा पीला ३ नग लें। सबको कूट-पीस ६-६ ग्राम की पोटली वना पूर्ववत् प्रयोग करें।

३ भाग पत्र, आंवा हल्दी ५०-५० ग्राम, शुद्ध कैंचुवे, हाथी दात का चूरा, काले लित, मालकागनी, कनेरमूलत्वक्, श्वेत अर्कमूलत्वक, भागमूलत्वक्, कालादाना बीज गिरी, ४०-४० ग्राम, अकरकरा, धतूरा के वीज काले, तज, मैदा लकडी ३०-३० ग्राम, वीर वहूटी २० ग्राम, जायफल लौंग १०-१० ग्राम लें। सबको पृथक-२ कूट पीस कर

मिलालें। फिर बकरे की वसा मिलाकर १०-१० ग्राम की पोटलिया बना कुपीलु तैल मे विधिवत प्रयोग करें।

३ लेप—१ एक बडा मारू बैंगन जो पौधे पर पक कर पीला हो गया हो, इस मे चारो ओर ५० बड़ी पीपल प्रविष्ट करदें और देशी मोम से चिन्हो को बन्द करदें कि इसका रस नष्ट न हो और उसे पौधे पर ही लगा रहने दें कि वह लगा हुआ शुष्क हो जाए, फिर इसको तोडकर सूक्ष्म पीस कर वस्त्रपूत करलें। पीछे एक लोहे की कडाही मे ५०० मि लि धुली हुई तिली का तेल डाल दें। इस पर उक्त चूर्ण डालकर मन्द आच पर पकावें। जब चूर्ण जल जाये तो नीम के ताजा गोल डडे से जिसमे ताम्बे का पैसा लगा हो उसे घोटें। जब दोनो मिलकर एकजीव जाए तब वीरबहूटी उत्तम, केंचुवे सूखे, लशुन १ पुतिया प्रत्येक २ ग्राम डालें। जब ये द्रव्य जल जाए तो सिंह वसा ६२ ग्राम डालकर उतार लें और डडे से खूब घोटें। जब सब द्रव्य एकरस हो जाए तब लौग का तेल, दालचीनी का तेल २४-२४ मि लि. मिलाकर रख लें। इसमे से २ ग्राम लेकर लेप करें, ऊपर से पान बाध दें।

२ जयपाल बीज मज्जा, सोमल श्वेत, वत्सनाभ जायफल समभाग लेकर सूक्ष्म पीस लें इसमे १ ग्राम लेकर कुक्कुटाड की पीतता मे भली प्रकार खरल कर शिश्न पर लेप करें। इसके कुछ दिन के लेप से लिंगेन्द्रिय पर शोथ तथा फु सिया निकल आएगी। जब शोथ कष्टकर हो जाये या व्रण बन जाए तो लेप बन्द करदें और घी गरम कर लगावें। इस लेप से सुस्त रग एव पठ्ठो मे पुन रक्त सचार होकर चेतना आजाती है।

३ वीरबहूटी, श्वेत घु घची, अकरकरा, हरमल बीज ३-३ ग्राम, श्वेत सोमल १ ग्राम लें। सबको सूक्ष्म पीस कर थ्री एक्स रम मे खरल कर शिश्न पर लेप करें। इसके लगाने से ३-४ दिन मे शिश्न पर फुन्सिया तथा छाले पड जायेंगे। इन छालो को काट कर पानी निकाल दें और शिश्न पर गरम घी लगावें। इस क्रिया से पक्ष-वध पेशिया भी चैतन्य हो जाती हैं।

अन्त. प्रयोज्य भेषज—

१ खिरनी बीज २४० ग्रा, घु घची श्वेत २४० ग्रा, रूमी शिगरफ ६० ग्रा लें। शिगरफ को खूब खरल कर खिरनी तथा घुघची को सूक्ष्म पीस कर तीनो को मिला लें। फिर आतशी शीशी मे भर कर पाताल यन्त्रवत तैल निकाल लें। इसमे से १ या २ सीख भर कर पान मे लगाकर खाने से नामर्द मर्द और मर्द जवा मर्द बन जाता है। जराजन्य नपु सक भी लाभान्वित होता है। पथ्य मे सुपाच्य पौष्टिक भोजन दें। परम अनुभूत है।

२ शिगरफ रूमी ६० ग्राम की डली लेकर इस पर कच्चे धागे के २-४ लपेट लगावें और फिर निम्नलिखित द्रव्यों का कल्क बनावें—

भल्लातक १ किलो, तिल १ किलो, अखरोट की गिरी ५०० ग्रा, घु घची श्वेत २५० ग्रा, कनेर मूल २५० ग्रा. कुचला चूर्ण १२५ ग्रा, वत्सनाभ चूर्ण ६२ ग्रा, श्वेत सोमल १२ ग्राम।

प्रथम तैलीय द्रव्यो को कूट पीस लें। अन्य द्रव्यों का भी चूर्ण बना लें। फिर दोनो द्रव्यो को मिलाकर कल्क बना, तीन भाग कर लें। पीछे शिगरफ की डली को एक भाग के कल्क मे रख कर गोला सा बना लें, एक लोहे की कडाही मे ६० मि लि तिल तेल डाल कर इसमे गोला रखकर कडाही को आच पर रखे, आच तीव्र जलावें कि गोला तथा तेल मे आग लग जाए और गोला जलकर कोयला बन जाए। फिर स्वाग शीतल होने पर सावधानी से गोले को तोड कर शिगरफ की डली निकाल लें। फिर दूसरे भाग मे रख गोला बनावें और कढाही मे रख कर जला दें। तीसरी बार भी यही क्रिया करें। फिर इसीको निकाल खरल कर रख लें।

मात्रा—१२५ मि ग्रा से २५० मि. ग्राम तक। अनुपान—मक्खन या मलाई। ऊपर से दूध पीवें। यह दुर्बल नपु सको के लिए अमृत तुल्य है।

३ दारचिकना भस्म—दालचिकना की १ डली १२ ग्राम, कुक्कुटाड २०० नग, गोघृत २ किलो, माष का चूर्ण ५ किलो।

निर्माण विधि—एक अ डा लेकर इसमे से श्वेतता निकाल दें और केवल पीत द्रव रहने दें। अब इसमे दालचिकना की [illegible]

लेकर इसमे से भी श्वेतता निकाल दें और इसका पीला द्रव पहले अ डे मे जिसमे दाल 'चिकना की डली डाली गई है, डाल दे अब एक अंडे के खोल मे दो अ डो की पीतता तथा एक दालचिकना की डली होगी। अब इस अ डे के मु ह पर दूसरे अ डे का खोल इस भांति चढावे कि दोनो खोल मिल जावे। फिर उडद के गू थे हुए आटे का इस पर १ अ गुल मोटा लेप करदें। तत्पश्चात् गोघृत १ किलो कडाही मे डालकर आच पर रखें। जब तेल खूब गरम हो जाये तव अ डे का खोल इसमे छोड दें। जब आटा लाल हो जाये तो गोले को निकाल लें। गोला ठडा होने पर तोडकर दारचिकना की डली निकाल ले, इस डली को पूर्ववत् दो अ डों की पीतता मे डाल, दूसरे अ डे के खोल से मुँह वन्द कर माप का गू धा लेप चढा दें और घी मे छोड दें। फिर निकाल पूर्ववत् क्रिया करें। इस प्रकार २०० अ डो की पीतता मे १०० वार पकावें। जितना घी कम हो और डाल दें। यह क्रिया निर्वात स्थान मे करें। वस दालचिकना की भस्म तैयार है।

मात्रा—१ चावल। अनुपान—६० ग्राम मक्खन प्रात काल दें। यदि रोगी मक्खन न खाये तो हलुआ मे दें।

गुण धर्म— आश्चर्यजनक वलवर्धक है, हर प्रकार की नपु सकता को दूर करने मे अद्वितीय है। शिश्नेन्द्रिय के ढीलापन को दूर कर भरपूर शक्तिप्रद है। वर्षों के नामर्दों को मर्द वनाने वाली वेजोड भस्म है। परीक्षा करें।

स्वानुभूत चिकित्सा—

क्लीवान्तक तरल—कपूर, यवानीसत्व, लवङ्ग तैल, जैतून तेल, मछली तेल, दालचीनी तेल तथा नीलगिरी तेल समभाग लेकर मिला लें। इसमे से १०-१५ विन्दु तरल एक गिलास शीतल जल मे डालें। फिर इस गिलास मे अ डकोषो को १५ मिनट तक डुवायें। तदोपरान्त अ ड कोष निकाल हल्के हाथ मे कुछ देर मर्दन करें। इस क्रिया से अ डकोष विकार नष्ट होते हैं। लिंग की शिथिलता दूर होती है। यह क्रिया अ डकोषो मे रक्त सचार वढाती है।

२ ध्वजामृतलेप—श्वेत कनेरमूलत्वक्, रक्तार्कमूलत्वक्, भागपत्र तथा वीर वहूटी समभाग ले, कूट पीसकर वस्त्र पूत चूर्ण वना लें। फिर इस चूर्ण को काले धतूरे के पत्र स्वरस मे ७ वार भावित कर रखें।

इसमे से आवश्यकतानुसार औषधि लेकर अपने मूत्र के साथ अच्छी तरह घोटकर रात्रि को सोते समय लिंग पर लेपकर ऊपर से पान, धतूरा, एरण्ड या वरगद का पत्ता लपेट कर पट्टी वाध लगोट कस कर सो जावें। प्रात काल खोलकर गर्म जल से धो लें, शीतल जल का स्पर्श न हो।

सूचना—लिंगमु ड, सुपारी, सीवन तथा अ डकोषो पर लेप न करें। इन दोनो प्रयोगो का १५ दिन तक प्रयोग करें। तत्पश्चात—

३ आनन्द तिला—मालकागनी मिलित तेल (मालकागनी १ किलो, श्वेत घु घची, श्वेत कनेरमूलत्वक्, सौंठ, असगन्ध, शतावर, कुचला, अकरकरा प्रत्येक १२५ ग्राम वत्सनाभ ६२॥ ग्राम लें कूटकर १६ लिटर पानी मे औटावें। जव ४ लिटर पानी शेष रहे तव उसे नीचे उतार कर खूब मलकर छान लें। अव रस मे तिल तेल १ लिटर मूर्च्छित और अर्कक्षीर १२५ ग्राम डालकर आच पर चढा दे और इसमे वीर वहूटी तथा केंचुवे १२५-१२५ ग्राम डाल दें और पकावें। जव तेल मात्र रह जाए और पानी जल जाये तो इसे छान कर सुरक्षित रखना) ६ भाग मछली का तैल, लौंग का तैल, दालचीनी तैल ३-३ भाग, जयपाल तैल १ भाग मिलालें।

प्रयोग विधि—रात्रि को सोने से पूर्व इस तिला को अ गुली से जननेन्द्रिय के ऊपर तथा दोनो ओर पार्श्वों पर हल्के हाथ से शनै शनै मलना चाहिए। एक बार मे ८-१० बू द तैल पर्याप्त है जो ५ १० मिनट के मर्दन से लिंग में रम जाता है। ऊपर से पान पत्र बाध लगोट कस कर सो जावें।

सूचना—सीवन तथा सुपारी पर तेल न लगने पावें।

लाभ—हस्त मैथुन, पर मैथुन एव अति मैथुन आदि से लिंगेन्द्रिय मे जो विकार पैदा होजाते हैं अर्थात लिंग की शिथिलता, दुर्बलता, ढीलापन, टेढापन, पतलापन लिंग पर नीली-नीली नसें उभर आना आदि विकारो को दूर करता है। इसके प्रयोग से शिश्नेन्द्रिय की वारीक-२ रगो मे रक्त का सचार होकर चेतना आ जाती है।

सूचना—इस तिला के लगाने से यदि फुंसी निकल आए तो तिला लगाना बन्द कर दिन मे २-३ बार घी लगायें। जब फुंसी ठीक होजावें तो फिर तिला लगावे। इस प्रकार ३ से ६ सप्ताह तक तिला लगावें।

४ मल्ल तैल—सोमल ६ भाग, दालचीनी, लौंग, जायफल, काली मिर्च ये सब ८-८ भाग, गुग्गुलु ३ भाग, गन्धक आमलासार-३ भाग, मुलतानी मिट्टी १६० भाग लेकर सोमल के अतिरिक्त इन सबका चूर्ण बनाकर गहरे चीनी मिट्टी के सकोरे पर बन्धे मलमल के कपड़े पर रख दें और कटोरे को धरती मे गाढ कर जमा कर रखदें। सोमल के चूर्ण को उक्त द्रव्यों के चूर्ण के मध्य मे रख उसके ऊपर एक श्वेत अभ्रक के पत्र को अच्छी तरह रख कर उसके ऊपर चिकनी मिट्टी का ५ अगुल ऊंचा आलवाल (थाल जैसा) बना उस पर कोयला की अग्नि रखकर २ घंटा आंच दें। नीचे कटोरे मे तेल गिरेगा उसे शीशी मे सुरक्षित रखें। इसके इन्द्रिय पर अभ्यङ्ग से शैथिल्य, टेढ़ापन दूर होता है।

५ कस्तूर्यादि वटी—कस्तूरी, केशर ४-४ ग्राम, लौंग जायफल, अकरकरा सूक्ष्मेला बीज, दालचीनी, रूमीमस्तङ्गी, शीतल चीनी, सफेद मूसली, तेजबल, बीजबन्द बड़ा गोखरू, पीपलामूल, गुडूचीसत्व शतावर, गोरखमुंडी अजवायन, वनफसा, समुद्रफल, उटगन बीज, खुरासानी अजवायन, हरीतकीदल, इन्द्रयव, पुनर्नवामूल, मालकांगनी कुपीलु १२-१२ ग्राम का चूर्ण, गुड २९६ ग्राम को लेकर सबको एकत्र घोटकर १-१ ग्राम की गोली बनावें। मात्रा १-२ गोली दुग्ध से। शुक्रवर्धक बल्य पौष्टिक है।

६ कस्तूर्यादि बिन्दु—कस्तूरी, अहिफेन, केशर ३-३ ग्राम, कौडियालोबान ३ ग्राम, वीरबहूटी ६ ग्राम, मालकांगनी ६ ग्राम, कपूर देशी ६ ग्राम, जावित्री, जायफल, लौंग ३-३ ग्राम, मद्यसार या संजीवनी सुरा ५०० मि. लि. कुपीलु ३ ग्राम लें, सब द्रव्यों को कूट पीस वस्त्रपूत कर मद्यसार में मिला गर्दन तक सन्धान करे। प्रति दिन खूब हिला दिया करें फिर छानकर रखना। मात्रा ५ से १० बूंद तक. अनुपान—दुग्ध। गुण—वृष्य तथा हृद्य है। शुक्रक्षीणता में लाभप्रद है शक्तिवर्धक है।

७ मकरमुष्टि योग—सिद्ध लौह भस्म, मकरध्वज शतपुटी, शुद्ध कुपीलु, कपूर देशी समभाग लेकर ३ दिन खरल करें। मात्रा—१२५से २५० मि.ग्रा. मक्खन से। सहपान—दुग्ध। नपुंसकता-नाशक, शुक्रवर्धक है।

— शेषांश पृष्ठ ८५ का —

है। वीर्य प्रणाली सक्रिय बनाकर पुरुषत्व प्रदान करती है।

रसायन के तौर पर बंग भस्म का सेवन करने से यह मानव देह के वीर्याङ्ग, मूत्र प्रजनन अङ्गो के सिवाय शरीर के अङ्गों की पुष्टि करता है। इसके सेवन से उत्साह बढ़ता है, बल बढता है, धातु वृद्धि होती है साथ ही मनोबल बढ़ता है, बुद्धि बढती है, नेत्रो की दृष्टि बढ़ती है—इस प्रकार यह एक उत्तम रसायन है,

वङ्ग भस्म पौरुषीय शक्ति के सिवाय पुरुप अग्निमांद्य, चर्मरोग, मुखदुर्गन्ध गुल्म रोग, कफ प्रधान रोग, रक्तपित्त, प्रजामरोग, पित्त वृद्धि रोग, दाह, अजीर्ण, अस्थिगत ज्वर, कुष्ठ, वात रोग, उदर रोग, नाड़ीक्षीण तथा क्रमि रोग पर भी कार्यशाली है। स्त्री रोगो पर भी अपना अनुपम प्रभाव दिखाती है, योनि च्युति, गर्भाशय शोथ आदि।

बङ्ग का एक योग स्वर्णबङ्ग भी है जो क्षारीय है। जिसके गुण तो शास्त्रों बहुत लिखे हैं परन्तु व्यवहार मे वह बंग भस्म की अपेक्षा हीन गुण वाली होती है। यों इसके सभी गुण वङ्ग भस्म के समान ही होते हैं। यह वृष्य, कांति तथा मेधावर्धक, प्रमेह नाशक, मधुमेह नाशक, धातुवर्धक तथा वृष्य है। बङ्ग भस्म की अपेक्षा यह रङ्ग मे स्वर्ण के समान आकर्षक दीखती है। यह औपसर्गिक प्रमेह, उपदंश, रक्तविष में लाभ करती है। अपने रसायन गुणो के कारण बल प्रदाता भी है। औपसर्गिक प्रमेह की जीर्ण अवस्था में स्वर्ण बङ्ग, प्रवालपिष्टी शिलाजीत, विरोजा तथा अमृतासत्व का मिश्रण देने से रोगी स्वस्थ हो जाता है तथा प्रमेहज विष शमन होते हैं। उपरोक्त आधारों पर यह सत्य प्रमाणित होता है कि—

"मर्द को बङ्ग और घोडे को तङ्ग"

पुरुष के पौरुषत्व की रक्षा

वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र आयुर्वेदाचार्य, वैद्य वाचस्पति, आयु० शिरोमणि (श्रीलंका)
श्री सरस्वती सदन, नई शुक्रवारी, नागपुर–२ (महाराष्ट्र)

-※※-

श्री वैद्य गुलराज जी शर्मा आयुर्वेद जगत में महाराष्ट्र क्षेत्र के ही नहीं अपितु भारतवर्ष के स्तम्भ हैं। आप आयुर्वेद संगठन के अनेकों पदों को सुशोभित कर चुके हैं तथा कर रहे हैं। आपने श्रीलंका से आयुर्वेद शिरोमणि उपाधि प्राप्त की है। "पुरुष के पौरुषत्व की रक्षा" शीर्षक से आपने यह लेख प्रस्तुत किया है जिसमे आपने आजकल लुप्त "जलौका विधान" की ओर इंगित किया है। इसे रस रत्न समुच्चय से उद्धृत किया है। लेकिन वैद्य समाज को सावधान भी रहना है कि यह प्रयोग दुराचारियों के हाथों न पड़े। श्री मिश्र जी से आयुर्वेद जगत को अनेकों अपेक्षायें हैं। आशा है कि आपके विद्वतापूर्ण लेख हमें अनवरत प्रकाशनार्थ प्राप्त होते रहेंगे। —दाऊदयाल गर्ग

धन्वन्तरि के सचालकों ने 'पुरुष रोग चिकित्सा' प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। उसमें पुरुष की महानता शीर्षक लेख भी रखा है। प्रस्तुत लेख में पुरुष की महानता बताई गई है। क्योंकि यह चिकित्सा प्रधान है अत पुरुष की महानता की रक्षा का उपाय भी इसमे होना अनिवार्य है। नारी ही वह शक्ति है जो पुरुष की महानता को चुनौती दे सकती है। यही कारण है कि पुरुष सदैव शक्ति का गुलाम रहा है वह उसकी प्राप्ति में दिन रात वेचैन रहता है जब उसका उसके साथ सबध हो जाता है तभी वह अपने को कृतकार्य समझता है किन्तु वह सदैव अपने महत्व को प्रस्थापित करने के लिए अनेक प्रयोग करता है जिससे उसके वर्चस्व की मानमर्यादा सुरक्षित रह सके। यही एक वह प्रयोग है जिससे पुरुष लज्जा की रक्षा करता है। स्त्री यह शक्ति का स्वरूप है उसके सामने पुरुष सदैव कमजोर ही रहता है किन्तु कमजोरी पर आवरण डालना चाहता है। जलौका स्त्री-स्राव के लिये ही प्रायश उपयुक्त है पुरुष जब मैथुन करता है तब स्त्री का वीर्य स्खलित होने से पहले ही पुरुष स्खलित हो जाता है, तो स्त्री को काम शान्ति न होकर उसमें उत्पन्न उत्तेजना का आंशिक दमन होता है। वह सर्वथा असन्तुष्ट और निराश हो जाती है। उत्पन्न वेग की अशान्ति से अनेक प्रकार की अपस्मारादि दु साध्य व्याधिया होती हैं और उस पुरुष के प्रति एक प्रकार की घृणा और झुझलाहट पैदा होती है। अत इन सबसे बचने के लिये जलौका का प्रयोग उपयुक्त होता है। मैथुन के समय मे स्त्रियो को पुरुषों से पूर्व शीघ्र ही स्खलित करने के लिये पारद को विभिन्न औषध से घोटकर जलौका बनाई जाती है। जलौका की आकृति भी जोंक के समान ही होती है। जोंक का प्रयोग प्राचीन काल में बहुत हुआ करता था। यही कारण है कि प्राचीन रस ग्रन्थो-रसार्णव, आनन्द कन्द, रसरत्न प्रदीप, रसराज लक्ष्मी, रसरत्नसमुच्चय आदि मे जलौका के लक्षण, स्वरूप, निर्माण-विधि, प्रयोग विधि और उसके प्रशस्तगुण स्पष्टत: प्रतिपादित हैं। जलौका योनि मे रखने से मदोन्मत्त स्त्रिया भी पुरुष से प्रथम ही स्रवित हो जाती हैं अत-एव जलौका का दिग्दर्शन आगे कराते हैं—

जोंक का विधान—बालावस्था, मध्यमावस्था और वृद्धावस्था इन तीन अवस्था वाली स्त्रियो को जानकर क्रमश जलौका का प्रयोग करें। जोंक के प्रयोग के प्रभाव से नीरस पुरुषो में भी स्त्रिया सगमोत्सुक बन जाती हैं। बाला स्त्री की योनि मे ६-८ अंगुली की, जवान की योनि में ८-१० अंगुल की, और प्रौढ की योनि में

दश-बारह अगुली की जोंक का प्रयोग करें। जो जैसी योनि मे उपयुक्त हो वैसी प्रयोग करना। इस प्रकार जलोका के तीन भेद हैं।

बाला, तरुणी और प्रगल्भा में तीन भेद अवस्थानुसार स्त्रियों के बताये हैं। १६ वर्ष की उमर तक स्त्री बाला कहलाती है, १६ से ३२ वर्ष तक उसकी तरुणी संज्ञा रहती है और ३२ से ५० वर्ष तक प्रगल्भा तरुणी अथवा प्रौढ़ा होती है। पचास के पश्चात वृद्धा सज्ञा हो जाती है। इस प्रकार अवस्थानुसार ३ भेद हैं उसी प्रकार जोंक के अगुल के हिसाब से भी तीन भेद कहे हैं। इसको जलोका कहने का तात्पर्य स्पष्ट है कि यह जोक के आकार प्रकार की ही बनाई जाती है और करीबन करीबन कार्य भी वैसा ही करती है। जोंक जिस प्रकार से खून का स्राव (अर्थात खीचकर बाहर निकालती है) करती है उसी प्रकार यह भी स्त्री योनि मे रखने से वीर्य का शीघ्र स्राव कराती है और कामना-शक्ति को उत्तेजना देती है।

जोंक बनाने की विधि तन्त्रान्तरों मे अनेक प्रकार की हैं उनके अनेक प्रयोग उपलब्ध हैं। रसरत्न समुच्चय मे जलोका बनाने की आठ नौ विधियां दी हैं। प्रस्तुत लेख में केवल एक ही प्रयोग दिया गया है जो निम्न प्रकार है—

जलोका बनाने की विधि—अगस्तिया के पत्तो का स्वरस, सेमल के डठल का स्वरस, जाई (चमेली) के मूल का स्वरस और सीसम के पत्ते का स्वरस तथा लिसोड़ा के फल, त्रिफला और तालमखाने इन तीनों का चूर्ण। सर्व प्रथम खरल में चूर्ण पारद के समभाग डालकर अगस्तिया आदि के स्वरस मे पारद को घोटे और उसकी जोंक बना लें। यह जोक बहुत ही उत्तम और प्रभावी होती है। स्त्रियो के मनो पर इसका इतना सुन्दर और आकर्षक असर होता है कि कुछ कहा नहीं जाता। उसका रति समय मे स्त्री की योनि मे प्रयोग किया जावे तो दु साध्य स्त्री भी तत्काल स्खलित हो जाती है। इस योग में यदि स्वर्णजारित अथवा नाग-जारित पारद का प्रयोग किया जावे तो अधिक प्रभावी काय होता है। जिन स्त्रियों को रज. स्राव होता ही नहीं है अथवा कष्टार्तव है उनके लिये भी यह प्रयोग सद्य फलदायी है।

जिन स्त्रियों में काम वासना का असर नहीं अर्थात उसमें एक प्रकार की उदासीनता है ऐसी स्त्रियो मे काम-वासना का सचार कर उनमे कामातुरता उत्पन्न करके रति के लिये प्रवृत्त करना और पुरुष से प्रथम ही शीघ्र वीर्य का स्राव कराना तथा मदोन्मत्त प्रमदाओं के काम को रतिकाल मे उनकी इच्छा-पूर्ति के साथ शान्त करना और मन, बुद्धि तथा शरीर मे उत्साह और उमग का सचार करना प्रधानत जोक का कार्य है।

ऊपर जो जोंक का प्रयोग दिया है इस प्रकार के विभिन्न रस ग्रन्थों मे अनेकों प्रयोग उपलब्ध होते हैं जिनको यथास्थान देखा जा सकता है। विस्तार भय से हमने उनका सग्रह यहा नहीं किया है।

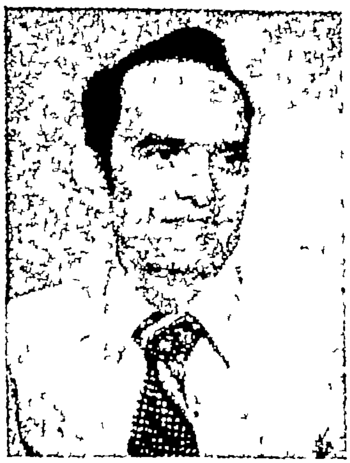
बृहत्कामचूडामणि रस

मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, कपूर, जावित्री, जायफल, लौंग, वङ्गभस्म प्रत्येक १ भाग, रजतभस्म आधा भाग, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर प्रत्येक आधा भाग, इन्हें एकत्र शतावर के रस से सात बार भावना दें और एक रत्ती प्रमाण की वटिका बनावें। अनुपान—शीतल दूध। अनुपान भेद से यह रस विविध रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से रतिशक्ति बढती है। यह वीर्यवर्द्धक तथा लिङ्गदार्ढ्यकर है। इसके प्रयोग से ध्वजभग, प्रमेह, मूत्ररोग, मन्दाग्नि, शोथ तथा स्त्रियों के आर्तव सम्बन्धी रोग नष्ट होकर पुष्टि होती है।

विशेष वचन—यह रस शुक्रमेह में लाभकर है। यह वीर्य का पोषक होने से स्तम्भन करता है। पौरुष-ग्रन्थिशोथ और वृक्कशोथ में भी लाभ करता है। —भैष० रत्ना० प्रमेहाधिकार।

नपुंसक विवेचन

वैद्य एम॰ एच बारोट एच. पी ए, प्राचार्य-जी प्र शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय, भावनगर (गुजरात)



वैद्य श्री एम एच बारोट जी हमारे पांच वर्षो तक आयुर्वेदीय विद्या गुरु रहे हैं। श्री बारोट जी क्रान्तिकारी विचारों से युक्त हैं। आप शुद्ध आयुर्वेद के पक्षधर हैं। आप अनेक वर्षो तक अखण्डानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय, अहमदावाद में प्राध्यापक रहे। दोष-धातु-मल विज्ञान पर आपने उस समय सशोधन किया था। विविध विभागो के अध्यक्ष पद पर रहकर छात्रो को सिखाते रहे। वर्तमान में आप भावनगर के सबसे पुराने आयुर्वेद कालेज के प्राचार्य हैं। आप गुजराती मे लेख लिखते हैं। आपकी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान पत्रों मे आप बार-बार लेख लिखते है। उन पर अनेक बुद्धिजीवी विद्वान विचार भी करते हैं। जब गुजरात में कामला फैला हुआ था तब सर्वप्रथम आपने ही इसके बारे मे जानकारी दी। इसी तरह कैन्सर, एड्स पर भी लिखा जो आपकी विद्वता का द्योतक है। कैन्सर पर आपने-भल्लातक उपयोगी है, ऐसा सशोधन किया है और विश्व स्वास्थ्य सगठन द्वारा जेनेवा मे शोध-प्रबन्ध भी पढ़ा है। मुझे अपेक्षा है कि यहां आपका मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

—वैद्य अशोक भाई तलावियो भारद्वाज

हेतु विज्ञान की दृष्टि से आयुर्वेद में दो प्रकार के नपुंसक बताये गये हैं, आदिबल प्रवृत्त नपुंसक और दोष-बल प्रवृत्त। आदिबल प्रवृत्त का मतलब है बीजदुष्टि गर्भ निर्माण पहले हो और दोषबल का मतलब है, हम सब जानते है इस तरह जन्म के बाद विकृति होना। आदि बल प्रवृत्त फिर दो विभाग मे विभाजित है।— एक तो 'कर्मात्मक बीज दुष्टि' जन्य और दूसरा प्रकार केवल बीजदुष्टि जन्य। 'कर्मात्मक बीजदुष्टि जन्य' विकृति में माता-पिता दोनों का प्रज्ञापराध और बालक के पूर्वकर्म हेतुभूत होते हैं। जब 'दोष दुष्टि जन्य' प्रकार मे या तो माता का प्रज्ञापराध होता है या पिता का।

कर्मात्मक बीज दोष से आठ नपुंसक बनते हैं, (१) द्विरेतस (२) पवनेन्द्रिय (३) सस्कारवाही (४) नरषण्ढ (५) नारी षण्ढ (६) वक्री (७) ईर्ष्याभिरति और (८) वातिक षण्ढ। द्विरेतस का मतलब है जिस नपुंसक में स्त्री और पुरुष दोनो के प्रजनन अङ्ग हो। इसको हरमोफ्रोडिटीझम कहते हैं। पवनेन्द्रिय मे मैथुन के समय शुक्र की बजाय केवल वात प्रवृत्ति ही होती है। तीसरा सस्कार वाही का मतलब है सस्कार करने से वह पुरुषवत् मैथुन कर सकता है। यहां सस्कार से वाजीकर द्रव्यो का सेवन, शुक्रप्राशन, गुद मैथुन करवा के और योनि को बारबार सूंघ के वह मैथुन कर सकता है। इसका तीन प्रकार है जो आसेक्य या मुखयोनि, सौगन्धिक या नासायोनि और कुम्भिक या गुदयोनि नाम से आयुर्वेद मे ज्ञात है। चौथा और पाचवा प्रकार 'षण्ढ' है। इसमे एक है 'नरषण्ढ' और दूसरा 'नारीषण्ढ' है। [illegible] ण्ढ को दाढ़ीमूंछ नहीं होती और नारी षण्ढ को आत [illegible] त्ति, स्तन, कक्षा और योनि प्रदेश पर बाल नहीं ह[illegible]। हैं। फिर भी वे दोनो प्रकार रतिस्पृहा रखते हैं। नर षण्ढ स्त्री की तरह निम्न रहकर दूसरो के पास गुदा मैथुन

करवाता है। उसकी हर चेष्टा स्त्री जैसी होती है। नारी षण्ढ की हर चेष्टा पुरुष जैसी होती है। वह अन्य स्त्रियों को नीचे रखकर पुरुषवत् मैथुन करता है, अपनी योनि दूसरी योनि के साथ रगडता है। 'वक्री' छठा प्रकार है। इस विकृति मे नपुसक जननेन्द्रिय होती है, पुरा कदकी पर 'वक्र' रहती है, खासकर अधो निम्न होती है। और उसमे उत्तेजना नही आती। सातवा प्रकार है 'ईर्ष्याभिरति' इसका मतलब है यह नपुंसक दूसरो का रतिकर्म देखकर 'रतिस्पृहा' जाग्रन होती है। इसलिये ऐसे नपुसक अपने मित्रो के साथ 'समूह मैथुन' करता है। सामान्यत मैथुन एकान्त मे लोग पसन्द करते हैं तब यह विपर्यय वाली विकृति है। पशुओ का मैथुन देखकर भी इसको रतिस्पृहा होती है। इसका दूसरा पर्याय है 'दृग्योनि'। अन्तिम या आठवा प्रकार है वातिक षण्ढ। इसमे वात प्रकोप से वृषण अविकसित रह जाता है। हम जानते हैं कि युवावस्था तक वृषण का कद बढता ही रहता है और उसमे 'पु बीज' बनता रहता है। वातिक षण्ढ में वृषण का कद ज्यादा से ज्यादा आठ साल के बच्चे जितना ही होता है क्योंकि उसमें शुक्रवह स्रोतस होता ही नही।

ये आठ प्रकार में से दो प्रकार में शुक्र नहीं होता, पवनेन्द्रिय मे और षण्ढ में। बाकी सबमें मैथुन के समय शुक्रस्राव जरूर होता है। याद रखें शुक्रस्राव सजीव हो तभी सतान प्राप्ति होती है अन्यथा नही। इन सब सशुक्र नपुसकों में शुक्र 'निर्बीज' होता है। इसलिये वे सब बन्ध्य होते हैं।

आदि बल प्रवृत्त विशेष प्रकार भी है। जिसमे मातृज विकृति स्त्री बालक में आती है। और पुरुष बीजदुष्टि से आने वाला पुरुष बालक मे यौन विकार 'पुरुष व्यापत्' कहलाती है यह केवल 'बीजदुष्टि जन्य व्याधि' है। स्त्री बीजदुष्टि की विविधता हैं-स्त्री बालक बन्ध्य, पूत्ति और स्त्रीवार्ता नामक यौन विकृति वाले पैदा होते हैं। पुरुष बीजदुष्टि से बन्ध्य, पूतिप्रजा और तृण पुलिक नाम के नपुसक पैदा होते हैं। पुरुष बीज विविधता इस प्रकार है, यदि पु बीज का प्रजननाङ्ग उत्पादक बीज भागावयव दूषित हुआ हो तो पुरुष बालक युवा होकर अपना बालक उत्पन्न नहीं कर सकता। वह निर्बीज या अल्पबीज वाला होता है। हा, यदाकदा उसकी 'रतिस्पृहा' बनी रहती है, शुक्रस्राव भी होता है, बालक नही पैदा कर पाता। यह विकृति ज्यादा बलवान हो तो पुरुष बालक जन्म मे विस्फोट जैसा विकार लेकर जन्म लेता है और मर जाता है। पु बीज मे प्रजननाङ्ग के साथ साथे (जेनो टाइप) यदि शरीर की आकृति का अश भी दूषित हुआ हो तो बालक पुरुष जैसा लगता है मगर उत्तरकाल भावि (सेकन्डरी सेक्स केरेक्टरीस्टीक्स) से रहित होता है। यहा बीज भागावयव से 'जीन' समझना चाहिए।

दूसरा प्रकार 'दोषज नपुसक' है। यह 'रेतोदोषज' करके आचार्य चरक ने वर्णित की है। यहां दोषज (एक्वायर्ड) से मतलब पुरुष जन्म से कोई विकृति लेकर नही आया हो पर बाद मे आहार-विहार, मनोभिघातादि से वह नपुसक हो गया हो। आयुर्वेद में इसका ४ प्रकार बताया गया है। बीजोपघातज नपुसक, ध्वजोपघातज नपुसक, जरा जन्य नपुसक और शुक्रक्षयज।

बीजोपघातज नपुसकत्व में प्रधान रूप से साक्षात् शुक्र का क्षय होता है, जिसमे बीजोत्पादक अङ्ग वृषण, बीज और उसके साथ सबधित अन्य स्राव (गोनेडोट्रोपीन होर्मोन सहित) बनाना कम कर देता है या बन्द कर देता है। मगर यह परिस्थिति सामान्यत. अस्थायी होती है, चिकित्सा करने पर ठीक हो जाती है। इसमे अपूर्ण आहार और शोक चिन्ता, भय और त्रास प्रधान कारण हैं। रतिस्पृहा मन्द से लेकर नाश होने तक पहुच जाती है। साथ साथ रक्तक्षय, दौर्बल्य, उत्साह और प्राण अल्प हो जाता है, हृद्रोग, पाण्डु रोग, तमकश्वास, कामला, क्लम, छर्दि, अतिसार, शूल, कास और ज्वर जैसे लक्षण मिलते हैं।

इसमें दूसरा प्रकार है ध्वजभग नपुसक। ध्वजभग का अर्थ है जननेन्द्रिय का रोग की वजह से पक जाना और बाद मे सडन होके गिर जाना। इसके प्रमुख हेतु-अति लवण क्षार और अम्लरस का भोजन, अगमन योनि में मैथुन करना-जैसे बालिका गमन, दीर्घरोगी स्त्रीगमन,

बहुत काल के बाद–चिरोत्सृष्टा स्त्री मे गमन, रजस्वला गमन, दुर्गंन्ध वाली योनि में गमन, गाय, भैंस, बकरी आदि मे गमन करना और मैथुन के बाद लिङ्ग को साफ नहीं करना, या दूषित जल से साफ करना वगैरह हैं। इससे लिंग में विविध पाक और बाद मे स्राव होता है। साथ ही ज्वर, तृषा, भ्रम, मूर्छा, छर्दि, पाक में तीव्रदाह और वेदना होती है। और अन्त मे कृमि होकर वहा बडी सडन होकर मणि, मध्य या सारा लिंग टूटकर गिर जाता है। कभी कभी तो वृषण तक सडन हो जाती है। यह रोग उपदश करके भी व्यवहृत है। उसका पाच प्रकार है। अमेरिका मे जो बहुत बढता जा रहा है, वह 'हर्पिस सिम्पलेक्स' ध्वजभग का ही अश हैं। यह वायरल व्याधि है। स्वय आचार्य ने जो हेतु दिये हैं वे सब वायरल सक्रमण में हेतु बनते हैं जैसे रजस्वला गमन, दूषित योनि गमन, चिरोत्सृष्टा गमन वगैरह।

तीसरा प्रकार जराजन्य क्लैब्य-नपुंसकत्व। इसको हम स्वाभाविक भी कह सकते हैं। पर कभी कभी यह प्रौढावस्था में आ जाता है, तब मुश्किल होती है। इसमे दो प्रधान हेतु हैं। स्वाभाविक शुक्रक्षय और वाजीकर द्रव्यों का असेवन। रतिस्पृहा अल्प या नाश होती जाती है। साथ साथ वैवर्ण्य, व्याकुलता, दीनता और जल्द व्याधि वाला बन जाता है। बल (ओज) नाश होने से व्याधि प्रतिरोध और व्याधि क्षमत्व नाश हो जाता है। रोगी जल्द व्याधि क्रान्त हो जाता है।

चौथा प्रकार शुक्र क्षयज नपुसकत्व का है। जिसमें ईर्ष्या और चिन्ता जैसे मानसिक हेतु और रूक्ष, अल्प, निराहार तथा असात्म्य भोजन जैसे शारीरिक हेतु हैं। रसक्षय कर प्रति अनुलोम गति अन्त में शुक्रक्षय बनता है। याद रखें बीजोपघात मे भी शुक्रक्षय होता है और शुक्रक्षयज प्रकार मे भी शुक्रक्षय होता है। इन दोनों मे फर्क सिर्फ इतना ही है कि बीजोपघात मे शुक्र का वृषण में उत्पन्न अश–जिसमें पु बीज के साथ थोडा स्राव और अन्त स्राव कम होजाता है या नाश हो जाता है। जबकि शुक्रक्षयज नपुसकत्व में पूरा शुक्र का कम हो जाना या नाश हो जाना सभव है। पहले प्रकार को हम प्रतिलोम भी कह सकते हैं। क्योकि वहा सब हेतु प्रत्यक्ष रूप में शुक्रक्षय बनता है। जबकि दूसरे प्रकार को अनुलोम कह सकते हैं। शुक्रक्षय बीजोपघात से ज्यादा बलवान है। इसमें शुक्रक्षय के साथ साथ अन्य धातुओं का भी क्षय होता है। यह शुक्रक्षय नपुसक में प्रथम कोई भी 'घोर व्याधि' (एड्स जैसा) होता है और व्यक्ति बाद में मृत्यु को प्राप्त करता है। याद रहे आगन्तुक करके दो अन्य प्रकार भी हैं। जो बाह्य हेतु बनता है। जैसे सजा या अभिघात से लिंग कट जाय तो और (हिजडा आदि बनाने के लिये) वृषण काट दिया जाय तब ये दोनो प्रकार असाध्य हैं।

असाध्य प्रकार

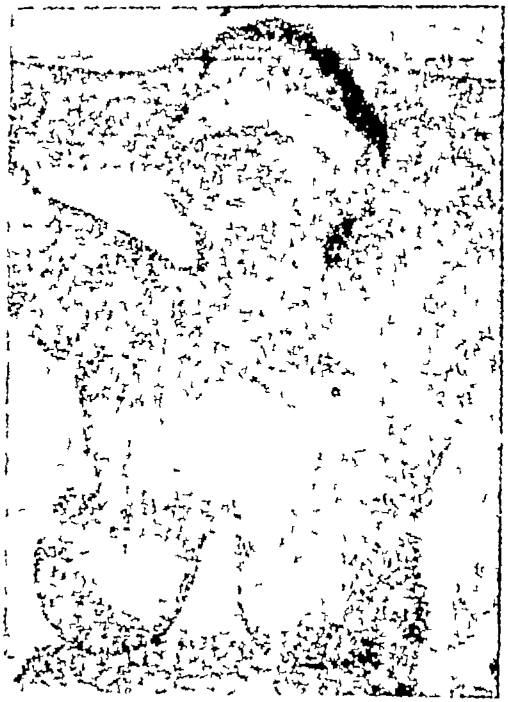
आदि बल प्रवृत्त प्रकार असाध्य है चाहे वह कर्मात्मक बीजदुष्टि जन्य हो या केवल बीजदुष्टि जन्य हो। दोषज चार प्रकार में से ध्वजभगज नपुसकत्व और शुक्रक्षयज नपुसकत्व असाध्य हैं।

चिकित्सा

ऊपर बताये १४ प्रकार मे से केवल दो साध्य हैं, बीजोपघातज और जराजन्य नपुसक। आप केवल दो की ही चिकित्सा कर सकते हैं। हा व्यवहार मे आपके पास हर तरह के नपुसक चिकित्सा कराने के लिये आयेंगे। रोगी के सम्बन्धी को यह बात जरूर बता देनी चाहिए कि यह बीमारी मिटने वाली नहीं है।

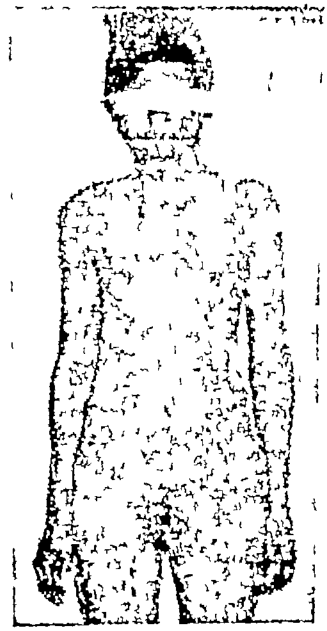
ध्वजभग नपुसक चिकित्सा—दोषो को नजर मे रख के लिङ्गनाश होने से पहले प्रदेह करवाना चाहिए। वात कफज में उष्ण और पित्त रक्तज मे शीत कषाय परिषेक करना चाहिए। रक्त मोक्षण, स्नेहपान और सस्नेह विरेचन देना चाहिए। बाद मे अन्नपान देके स्नेह बस्तिया देनी चाहिए। लिंग पर पडे व्रण की व्रणवत् चिकित्सा करनी चाहिए।

जराजन्य नपुसक चिकित्सा—इसमे स्नेहपान, स्वेद और सस्नेह विरेचन देना चाहिए। जरूरत हो तो पहले वमन भी करवा सकते हैं। दूध मे से निकाला घी, जिसको 'क्षीरसर्पि' कहते हैं देना चाहिए। अश्वगन्धा जैसी औषध क्षीरपाक या हलुवा में डालकर देनी चाहिए। क्योंकि अश्वगन्धा का क्लैब्य में भी सेवन कर सकते हैं।



—मातृज आदिबल प्रवृत्त वन्ध्या—

उम्र ५५ साल बचपन से ऋतुस्राव नहीं। उसकी दूसरी बहनों की ऐसी ही फरियाद। हर जगह संतान प्राप्ति के लिये घूमते फिरे। गर्भाशय की कक्षा और भगप्रदेश में रोम का सम्पूर्ण अभाव। स्तन ज्यादा स्नायुमय। मानसिक स्थिति मध्यम, बहुत उर्मिशीला बारबार रूदन, मनो दौर्बल्य बहुत।



—वातिक षण्ढ—

उम्र २५ साल। निस्संतानत्व की फरियाद लेकर आया। शुक्र परीक्षण में पुबीज शून्य (निर्वीज)। जिसको 'एमुस्पर्मिया' कहते हैं, बारबार बिमारी आना, आलस +++ बुद्धिमत्ता अल्प। रतिस्पृहा अल्प। शिश्न की लम्बाई बहुत कम। शुक्र स्राव जलीय, शीघ्रपतन, ऊंचाई ६ फीट। बस्ति प्रदेश स्त्री की तरह बहुत चौडा, मूछें अल्प, दाढ़ी बिलकुल नही। कक्षा और भग प्रदेश के केश अल्पतम। वृषण–४ साल के बच्चा जितना।

निदान कैसे करेंगे ?

आदिबल प्रवृत्त रोगी अपनी नपुंसकत्व फरियाद लेकर नहीं आता। श्वास, कास, हृद्रोग दौर्बल्य या ज्यादा से ज्यादा निःसंतान की फरियाद लेकर आता है, यदि वह परिणित "। दोषज नपुंसक सीधा रतिस्पृहा की फरियाद लेकर आता है। आपकी आंखें और कान शिक्षित हैं तो आप आदिबल को तुरन्त पहचान सकते हैं। युवा होने पर भी दाढी मूंछ नही होती और आवाज निर्बल या स्त्री जैसी होती है। मूंछ तो कभी कभी साधारण रूप में आ जाती हैं, पर दाढी नही होती, अल्पतम होती है। यदि आप उसको निवस्त्र करके वक्ष, कक्षा और जननेन्द्रिय प्रदेश देखेंगे तो वहा बाल नही होते या अल्प प्रमाण मे होते हैं। लिङ्ग अल्प या प्राकृत हो सकता है पर वृषण बहुत अल्प विकसित होता है। दोषज नपुंसक में रतिस्पृहा के सिवा सब कुछ प्राकृत होता है। ऊपर मातृज आदिबल प्रवृत्त स्त्री वन्ध्या का फोटो और कर्मात्मक आदिबल प्रवृत्त बीज दोष वाले वातिक षण्ढ के फोटो दिये हैं जो ध्यान से देखें।

शुक्राणु की अनुपस्थिति में शुक्राणु उत्पादन

डा० धर्मदास मनसोरिया आयु० रत्न, पो० सिवनी-मालवा (होशगाबाद) म० प्र०

शुक्राणु उत्पादन व वर्धन के लिये लेखक ने यहा आधुनिक आयुर्वेदिक पेटेन्ट योग का प्रयोग दर्शाया है। उनका तात्पर्य है कि दो रुग्णों का इलाज किया गया और सफलता मिली है। मगर हम और सभी पाठकवर्ग चाहते हैं कि—जिन रुग्णों पर प्रयोग किया है इनका पूरा नाम व पता एव शुक्र परीक्षा की रिपोर्ट अवश्य देनी चाहिए। ताकि चिकित्सा जगत मे हम विश्वास से कह सकें कि आयुर्वेद पद्धति से ही शुक्राणुवर्धन हो सकता है। हम आशा करते हैं कि 'धन्वन्तरि' के किसी सामान्य अङ्क में सफलता का पूरा विवरण भेजेंगे। लेखक से अपेक्षा है। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शुक्राणुओं की कमी के अनेक कारण हैं—

१. अडग्रन्थि-शिराओं मे फैलाव आना—अण्डग्रन्थि शिराओं में फैलाव आने से रक्त-प्रवाह बढ़ जाता है। इससे तापमान बढ़ता है, तापमान बढने से अडग्रन्थि पर दवाव बढता है। इससे शुक्राणु उत्पादन कम हो जाता है। व्यक्ति संतानोत्पत्ति मे अक्षम हो जाता है।

२ प्रोस्टेट ग्रन्थि का बढना—इस ग्रथि के बढने से मूत्रमार्ग रुक जाता है, कामक्षमता पर बुरा असर पडता है। व्यक्ति नपुंसक हो जाता है।

३ सक्रामक रोग—कुछ सक्रामक रोग जैसे सिफलिस, हाथीपाव, कुष्ठ, क्षय होने पर भी शुक्राणुउत्पादन बन्द हो जाता है।

४. एक्स-रे का प्रभाव—एक्स-रे से भी शुक्राणु-उत्पादन क्षमता कम हो सकती है।

५ विटामिन 'ई' की कमी—विटामिन 'ई' की कमी से व्यक्ति शुक्राणु की कमी से पीडित हो सकता है।

६ अधिक औषधिया खाने से—अनेक एलोपैथिक पेटेन्ट टेवलेट मनमाने ढग से खाने पर शरीर में उष्णता पैदा हो जाती है। व्यक्ति नपुसक हो जाता है।

७. अति मैथुन से एव अप्राकृतिक मैथुन (सम लैंगिक, गुदा एवं हस्तमैथुन आदि) से शुक्राणुओं का क्षय होता है।

शुक्राणु उत्पादन के उपाय—

इन्हें १ प्राकृतिक २ आयुर्वेदीय एव ३ आपरेशन साध्य (सर्जिकल) में बांटा जा सकता है—

[१] प्राकृतिक चिकित्सा में (क)—इसमें हम रोगी के भोजन में सुधार कर सकते हैं—धारोष्ण कच्चा दूध गेहूँ और मूंग को अकुरित करके खाना—विटामिन 'ई' की कमी दूर हो जाती है। (ख) प्राकृतिक चिकित्सा के दूसरे उपाय—इसमे अण्डकोषो एव जननेन्द्रिय को प्रतिदिन १० मिनट तक ताजे ठण्डे पानी मे डुबो कर रखना—इससे शरीर की उष्णता कम होकर शीतलता आ जाती है शुक्राणुओं का उत्पादन बढने लगता है।

[२] आयुर्वेदीय (क)—इसमे सर्व प्रथम रोगी के संक्रामक रोग का जो भी हो उनका इलाज करना चाहिए।

(ख) इसमे निम्न क्रम अपनाया जाना चाहिए—

(१) इन्जेक्शन—पुन्सवीन (सिद्धि फार्मेसी ललितपुर) १० इजेक्शन १ दिन छोडकर कमर या बाहु मे मासान्तर्गत लगाने चाहिए।

(२) टेवलेट—वगशिल और फोर्टेन (अलारसिन) दोनों की दो-दो गोलिया सुबह-शाम दूध या सादे पानी से ४२ दिन तक खिलायें।

(३) वाह्य प्रयोग—इन्द्रिय पर (सुपारी को छोडकर) श्रीगोपाल तैल (वैद्यनाथ) की एक ओर से मालिश करें।

(३) आपरेशन साध्य—(क) अण्ड ग्रन्थि शिराओं मे फैलाव को रोकने हेतु शिराओ को बाध दिया जाता है। (ख) प्रोस्टेट ग्रन्थि की वृद्धि में यदि शुरू से ही चिकित्सा की जाये तो ग्रन्थि का बढना रुक सकता है अन्यथा आपरेशन ही एकमात्र उपाय है। इस आपरेशन के बाद व्यक्ति नपुसक हो जाता है।

अनुभव—चिकित्सा के पैरा १ और २ में उल्लिखित उपायो से २ रोगियों का इलाज किया और सफल रहा।

—✤—

जातीय सुखवर्धक कुछ औषधि योग

लेखक—वैद्य श्री वत्सल वसाणी एम० एस० ए० एम०, एन० डी०, आयु० क्लिनिक, हरिसिद्ध चेम्बर्स, दूसरा मजला, इन्कमटेक्स सर्कल, आश्रम रोड, अहमदाबाद
अनुवाद—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज बी० एस० ए० एम०, आयुर्वेदाचार्य
भारद्वाज औषधालय, स्वामी नारायण मदिर, सावर कुण्डला (गुजरात)

-※※-

गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान युवा वैद्य श्री वत्सल भाई आयुर्वेदज्ञ तो हैं ही साथ साथ उत्तम साहित्यकार भी हैं। गुजराती मे आप पत्र साहित्य विषय मे लिख रहे हैं। गुजरात समाचार दैनिक' श्री साप्ताहिक तथा अनेक मासिकों मे आपके साहित्य विषयक एव आयुर्वेद विषयक लेख प्रकाशित होते रहते हैं। कुछ ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। श्री वसाणीजी क्रान्तिकारी विचारधारा से युक्त है। हमारे सहाध्यायी श्री वत्सल जी से मैं आग्रह करूगा कि आप समय-समय पर 'धन्वन्तरि' को अपना सहयोग प्रदान करें। आशा है यहा आपका लेख मार्गदर्शक विचारणीय एव उपयोगी होगा।—वैद्य भाई अशोक तलाविया

वाजीकरण का अर्थ और प्रकार—

'वाजि' का अर्थ अश्व। अश्व हमारे यहा शक्ति का प्रतीक है। 'होर्स पावर' शब्द आज भी हमारे यहां शक्ति के मापदण्ड के लिए उपयोग मे आता है। अश्व मे सभोग शक्ति भी अत्यधिक मात्रा में होती है। वह अनेक बार अथक रहकर समागम कर सकता है। 'वाजि' का एक अर्थ वीर्य भी होता है। जिस द्रव्य के सेवन से वीर्य की वृद्धि हो और व्यक्ति अश्व की तरह अथक रहकर अनेक बार मैथुन करके स्त्री को तृप्त कर सके उस द्रव्य को आयुर्वेद में 'वाजीकरण' कहते हैं। वाजीकरण शब्द के साथ वीर्य की वृद्धि, स्तम्भन शक्ति और कामेच्छा का प्राबल्य अपने आप सलग्न हो जाता है।

शास्त्र मे वाजीकरण को कुल मिलाकर चार भागो मे बाट दिया गया है—

(१) जनक—जिस द्रव्य के सेवन से रसादि सात धातुओं की वृद्धि होती है, उनको जनक या 'शुक्रल' कहते हैं। जिसमे वीर्य अल्प हो, मैथुनावस्था मे उत्तेजना तो हो सकती हो, मगर शुक्र स्खलन जो होता है वह मात्रा मे अल्प और पतला हो तो उस व्यक्ति को शुक्रजनन औषधिया देनी चाहिए। जिस लोग को नियमित तथा अपने आहार मे घी, दूध, गेहू और शर्करा (सक्कर) का उपयोग करता है, वह जाने अनजाने मे भी वीर्य वृद्धि कर वाजीकरण द्रव्य का ही सेवन करता है। सामान्यत. हम जो आहार लेते हैं, उसका पाचन होकर वीर्य में रूपान्तर होने मे एक मास लग जाता है। (ऐसा विद्वानों का मत है) मगर शुक्रल द्रव्यो के सेवन से सीधे ही अल्प समय मे वीर्य बन जाता है। असगन्ध, शतावर, विदारी कन्द, सालम-पजा, कवाच बीज, मूसली, शर्करा, ताजा मक्खन—यह सब त्वरत वीर्योत्पत्ति करने वाले (औषध आहार) द्रव्य हैं।

(२) प्रवर्तक—इस प्रकार की औषधिया और आहार द्रव्य व्यक्ति मे कामोत्तेजना की वृद्धि करके स्खलन करते हैं। उनके सेवन से शुक्र की वृद्धि नही मगर (मात्र) स्रुति (च्युति) होती है। उडद (माष), अकरकरा, कवांच बीज, कस्तूरी, मकरध्वज इत्यादि इस प्रकार के द्रव्य हैं। कामेच्छा सहित स्त्री स्पर्श को भी शुक्र प्रवर्तक (और वाजीकरण) कहा गया है।

(३) जनक-प्रवर्तक—शुक्रोत्पत्ति, वृद्धि और कामोत्तेजना सहित शुक्रच्युति-यह सब कार्य सयुक्ततया कराने वाले द्रव्य को 'जनक-प्रवतक' कहते हैं। गाय का घी-दूध, उड़द, भल्लातक फलमज्जा, आमलक, कवाच बीज इत्यादि

इस प्रकार मे आते हैं। अत इस प्रकार के द्रव्य क्षति और पूर्ति दोनो कार्य एक साथ करते हैं।

(४) शुक्र स्तम्भन—मैथुनावस्था मे जल्दी स्खलित न हो, लम्बे समय तक समागम सुख हो सके ऐसे द्रव्य को शुक्र स्तम्भक कहते हैं। जातिफल अफीम, नागवल्लभाद्य चूर्ण इत्यादि इस प्रकार में आते हैं।

आजकल 'शीघ्र स्खलन' यह व्यापक मात्रा मे देखा जाता है, विवाहित दम्पत्ति के लिए प्राणप्रश्न है। सम्भोगावस्था में शुक्रस्खलन होता है, तब पुरुष को अत्र ज्यादा सुख मिल जाता है। मगर शीघ्रपतन वाले पुरुष के साथ स्त्री सम्पूर्णतया तृप्ति का अनुभव नही कर सकती। सकोच से एव लज्जावशात् स्त्री यह बात नही कह सकती मगर उनका मन सभोग सुख के अभाव मे शायद तडफता रहता हैं। ऐसी स्थिति मे स्तम्भन शक्ति की वृद्धि हो, शिश्न अन्त समय तक दृढ रह सके, स्त्री भी तृप्ति का अनुभव कर सके, ऐसी औषधिया आयुर्वेद मे देते हैं। और अनेक दम्पत्ति का सघर्षमय टूटे हुए जीवन मे कभी आशीर्वाद रूप बन जाता है—

शीघ्रस्खलन की व्यथा वाले दम्पत्ति कभी-कभी तो कामकला की सर्व सामान्य बात से अनजान होने से मन से ही मन मूझवण अनुभवते हैं। उनको मालूम नही है कि पुरुष और स्त्री की उत्तेजना एक ही साथ नहीं होती। पुरुष प्रथम उत्तेजित होता है, तथा स्त्री धीरे-धीरे। ऐसी स्थिति में जल्दी करके स्त्री की इच्छा की तत्परता देखे बिना ही लगभग बलात्कार जैसा व्यवहार करता पुरुष स्त्री को सुख नही दे सकता। इनके लिए योग्य समय, वातावरण, उभयपक्षीय प्रेम, शरीर के खास अगों का स्पर्श, सभोगावस्था का आसन, चुम्बनादि विधि और कामकला का ज्ञान अत्यन्त जरूरी होता है।

सुखी दाम्पत्य तो लगभग एक साधना ही है। और इनके लिए पति पत्नी दोनों आनन्द की खोज के लिए यात्री बनकर एक दूसरे की मदद करें तो उनको सफलता मिल सकती हैं।

श्रेष्ठ वाजीकरण—स्त्री

औषधियों की बात करने से पहले एक बात ये भी जान लेनी चाहिए कि मात्र औषधो के आधार पर दाम्पत्य जीवन सुखमय नही हो सकता। इनके लिए स्त्री और पुरुष दोनो को अपनी ओर से तैयार और लायक भी होना चाहिए।

महर्षि चरक ने चिकित्सा स्थान के दूसरे अध्याय मे भारपूर्वक कहा है कि कुछ गुणो से युक्त हो तो भी स्त्री स्वय ही वाजीकर है। ऐसी स्त्री के सहवास और स्पर्श मात्र से ही पुरुष मे कामेच्छा प्रदीप्त होती है। और एक दूसरे को तृप्ति मिलती है, और इस तरह दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

कुछ वाजीकर औषधियां

(१) विदारीकन्द के चूर्ण मे विदारीकन्द के स्वरस की २१ भावना देकर, उसमे से पाच ग्राम चूर्ण असमान मात्रा मे घृत और मधु मिलाकर लेने से सुश्रुत (चि० स्था० अ० २६।२३) कहते हैं कि एक रात मे अनेक वार सम्भोग का सामर्थ्य प्राप्त होता है। यह प्रयोग लम्बे समय तक करना चाहिए।

(२) कवाच बीज गरम करके उसकी छाल उखाड़कर कपडछन चूर्ण बनाकर, उसमे से ५ ग्राम चूर्ण सुबह-शाम लेकर ऊपर से मीठा दूध पीना चाहिए। यह प्रयोग चलता हो तब उस समय दरम्यान हर दिन या सप्ताह में तीन बार उड़द की दाल लेनी चाहिए। यह प्रयोग नियमित सेवन करने से पुरुष अथक रहकर स्त्री समागम कर सकता है।

(३) श्रेष्ठ, बडा पक्का आमला का चूर्ण बनाकर उनमे आमलक के स्वरस मे २१ बार घोटकर सुखाकर बारीक चूर्ण बनाकर बोतल मे भर दें। इसमे से एक चम्मच चूर्ण मधु, मिश्री और घृत में मिलाकर सुबह शाम लेकर ऊपर से एक गिलास मीठा दूध पीवें। नियमित तथा यह प्रयोग करने से वृद्ध पुरुष भी युवा पुरुष की तरह सम्भोग कर सकते हैं।

(४) सुश्रुत कहते हैं कि विदारीमूल का १० ग्राम चूर्ण लेकर ऊपर से २०० ग्राम जातिफल युक्त मीठा दूध पीवे से वृद्ध पुरुष में भी युवा जैसी सम्भोग शक्ति आती है।

(५) पीपल (अश्वत्थ) का फल, मूल की छाल और

अकुर (शृंग) यह तीन समान मात्रा मे लेना, सूख जाय तब चूर्ण बना लेना। इसमे से ४ गाम चूर्ण २०० ग्राम दूध और २०० ग्राम जल मे मिलाकर उबालें। सिर्फ दूध रहे तब तक उबालना बाद मे नीचे उतारकर छान लेना, बाद में जरूरत मात्रा मे मिश्री और ठण्डा होजाय तब मधु मिलाकर पीना। सुश्रुत कहते हैं कि इस प्रयोग से पुरुष चटक की तरह हर्षान्वित होकर स्त्री समागम कर सकते हैं। और तृप्ति के समय से पहले वीर्य का स्खलन नही होता है। (चटक पक्षी बार-बार सम्भोग करते हैं, अत पुरुष को यहा चटक के साथ दर्शाया है।)

(६) कवाच बीज और रूखरा (इक्षुरक) का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उसमें से ५ ग्राम चूर्ण लेकर उतनी ही मात्रा मे मिश्री मिलाकर धारोष्ण दूध के साथ सुबह-शाम पीने से वीर्य का क्षय नही होता और अनेक बार स्त्री सुख ले सकता है।

(७) एक अनुभवी का कहना है कि--रूखरा, गोक्षुर, गोरखमुण्डी (मुण्डी), सौंठ (सुण्ठी), शतावर और निर्गुण्डी यह ६ औषधियां समान मात्रा मे लेकर चूर्ण बनावें। उसमें से ५ ग्राम चूर्ण सुबह-शाम दूध के साथ लेन से कभी लिङ्ग शैथिल्य नही होता है। अर्थात् अथक रहकर सम्भोग सुख मिलता है।

(८) श्वेत दूर्वा का चूर्ण सुबह-शाम दूध के साथ लेना। यह सुश्रुत मतानुसार वाजीकर है।

(९) दूध की मलाई (सन्तानिका) मे मिश्री, मधु, मरिच, वंशलोचन और एला का चूर्ण मिलाकर वस्त्र मे डालकर छान लें। यह सुन्दर रसाला (श्रीखण्ड) खाना भी सर्वोत्तम वाजीकर है।

(१०) सालम पजा के चूर्ण मे बराबर की मात्रा मे मिश्री मिलाकर सुबह-शाम १० ग्राम तक लेना। ऊपर से जातिफल, जावित्री, केसर और एला और एक चम्मच शुद्ध घृत डालकर गर्म किया हुआ दूध पीने से कामशक्ति एव वीर्य की वृद्धि होती है और नपुसकता दूर हो जाती है।

(११) असगन्ध, शतावर, श्वेत मूसली, आमलक और गोक्षुर समान मात्रा मे चूर्ण बनाकर ५ ग्राम चूर्ण लेकर ऊपर से गर्म मीठा दूध मे एक चम्मच घृत मिलाकर पीने से धातु पुष्ट होती है। और स्त्री समागम सुखपूर्वक हो सकता है।

(१२) गेहू और कवाच बीज दोनो को दूध मे उबालना सम्पूर्ण उबल जाय तब नीचे उतार कर ठण्डा होने दें। बाद मे एक ग्लास में लेकर उसमे घी मिश्री मिला कर ऊपर से एक ग्लास दूध पीना। यह प्रयोग उत्तम वाजीकर है।

(१३) महर्षि चरक कहते हैं कि चन्द्र किरण जैसा श्वेत साठी चावल बहुत घी डालकर दूध, मिश्री और मधु के खाने से वाजीकरण के गुण प्राप्त होते हैं।

(१४) वैद्य जीवन के कर्ता लोलिम्बराज कहते हैं कि—ऊटिंगन को दूध मे पकाना, ऊपर की छाल दूर करके, बाद में सुखा लेना। सुखा हो जाने के बाद सूक्ष्म चूर्ण बना लेना। यह चूर्ण शहद, मिश्री (सिता) के साथ लेकर ऊपर से दूध पीने से सम्भोग शक्ति बढती है।

(१५) नील और श्वेत कमल के पुकेसर को लाकर मिश्री एव शहद के साथ मिलाकर खरल करें। लेप तैयार हो जाय तब शिश्न पर लगाने से लिङ्ग की शिथिलता दूर होती है।

(१६) वैद्य मनोरमा के मतानुसार श्वेत कोयल (गरणी-गोकणी) के पत्ते को दूध में उबाल कर-वह दूध सुबह-शाम मिश्री डालकर पीने से अनेक बार स्त्री समागम हो सके इतना बल प्राप्त होता है।

(१७) ३० नग पीपर का चूर्ण बनाकर उसमें ४-४ तोला घी और तिल का तैल लेकर अग्नि पर पकावें। उसके बाद सानुकूल मात्रा मे चूर्ण, मिश्री और मधु के साथ लें। ऊपर से धारोष्ण दूध पीवें। इस समय में साठी चावल दूध और घी के साथ लेना चाहिए। कहते हैं कि यह विधि करने से पुरुष समग्र रात्रि स्तब्ध लिङ्ग के साथ भोग सकते हैं।

(१८) पान (नागर वेल) के डठल, बलामूल, मयूर-शिखा के मूल (मोरवेल), जावित्री, जातिफल, मुरामासी

(अभाव मे जटामासी अपामार्ग बीज, काकोली, क्षीर-काकोली, ककोल (कवावचीनी), खस (उशीर), मुलैठी (यष्टीमधु) और वच (वचा), यह सब द्रव्य समान भाग मे लेकर चूर्ण बनावें। सुबह-शाम गर्म दूध के साथ लेने से वीर्य का स्तम्भन होता है। जाती अङ्गो की शिथिलता एव शीघ्रपतन की फरियाद दूर हो जाती है। मन्द हुई कामशक्ति पुन प्रज्वलित होती है और भी इसमे 'रसायन' गुण होने से सप्त धातु सहित वीर्य की वृद्धि होती है। प्रौढावस्था एव युवावस्था की कुटेवों की वजह से होती जातीय अशक्ति, एव कामतृप्ति शिथिलता, औषधि के सतत सेवन से घट जाती है।

(१९) गोक्षुर, इक्षुरक (एखरो), उडद, कवाचबीज, शतावर, और मिश्री यह सब द्रव्य समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर सुबह शाम दूध के साथ पीने से क्षीण कामशक्ति वाले प्रौढपुरुष को पुन' पौरुष प्राप्त होता है। अर्थात् युवा की तरह स्त्री सुख भोग सकते हैं।

(२०) कवाच बीज,कर्कटशृङ्गी, मुलेठी और इक्षुरक बीज समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर, यह चूर्ण ४ ग्रा सुबह शाम धारोष्ण दूध के साथ पीने से शुक्र का स्तम्भन होता है। अर्थात् शीघ्र स्खलन दूर होता है और मैथुन शक्ति भी प्रवल होती है।

(२१) श्वेत गुंजा, कवाचबीज और गोखरू के चूर्ण में मिश्री तथा दूध डालकर उनका पाक करना। इस पाक (अवलेह) का नियमित सेवन करने से पौरुष शक्ति बढती है तथा शुक्रस्राव एव शीघ्रपतन दूर होता है।

(२२) शेमल गोंद, कवाच बीज, शालमली निर्यास, श्वेत मूसली, मिश्री समभाग लेकर चूर्ण बनाकर सुबह शाम एक-एक चम्मच (३ से ५ ग्राम) लेना, ऊपर से एक ग्लास गाय का मीठा दूध, एक चम्मच शुद्ध घी मिलाकर पीने से शुक्र सहित सप्त धातु की वृद्धि होती है। कामेच्छा प्रवल होती और धातु का तात्कालिक स्खलन नही होता है।

(२३) मिश्री, असगध और सैंधानमक (सिंधव) २५-२५ ग्राम औषधि लेकर खरल में चटनी जैसा बना लें। उनसे चारगुना (अर्थात ३०० ग्राम घी, घी से चार गुना-१२०० मि० लि० घेटी का दूध मिलाकर अग्नि पर रखकर धीमे आच से उबालना। अन्त मे जब घृत शेष रहे तब नीचे उतार कर छान लें। युवावस्था मे जब शिश्न का सम्पूर्णत विकास न हुआ हो—या शिश्न की शिथिलता होती हो तो प्रतिदिन इस घृत का अभ्यङ्ग (मालिश) करने से शिश्न की पुष्टी एव वृद्धि होती है। तथा शीघ्र स्खलन भी दूर होता है।

(२४) पंजाबी सालम २०० ग्राम, पिस्ता, बादाम १००-१०० ग्राम, चिरौंजी (चारोली), अखरोट और श्वेत मूसली ५०-५० ग्राम, गोखरू २५ ग्राम, असगध, इक्षुरक के बीज, सतावर, रूमी मस्तङ्गी और कवाचबीज १०-१० ग्राम, केशर, जातिफल, जावित्री, लवङ्ग, कवाबचीनी, बशलोचन, त्वक् (तज), बलाबीज (बलदाना), ये सब द्रव्य ५-५ ग्राम लेकर चूर्ण बनालें। इसके बाद इस चूर्ण को १०० ग्राम घी मे और पिस्ता, बादाम, चिरौंजी (चारोली) और अखरोट के कल्क को अलग से दूसरे १०० ग्राम घी में अल्पाग्नि पर भून लेवें। उसके बाद ७०० ग्राम मिश्री की चासनी बनाकर उसमे यह भुना हुआ मावा तथा जातिफल इत्यादि शेष द्रव्यो का चूर्ण मिला दें। ठण्डा हो जाने लगे तब मध्यम प्रकार के लड्डू बना लें। सुबह शाम एक से दो लड्डू खाकर ऊपर से ३०० ग्राम दूध पीना। यह पाक (मोदक) अत्यन्त वीर्य-वर्धक एव पौष्टिक है। इनको नियमित सेवन करने से दौर्बल्यता, मस्तिष्क की दौर्बल्यता, शुक्राल्पता, नपुंसकता यह सब दूर हो जाते हैं।

इस तरह लिखना चाहू तो आयुर्वेद मे सहस्रो वाजीकर प्रयोग हैं। मगर यहा हमारे पास समय और स्थल की मर्यादा है। अतः अवकाश मिलते समय कभी इस विषय पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार है। यहा तो प्रतिदिन में प्रयोगार्थ जैसा अनुभूत औषध योग देता हूँ।

—शेषांश पृष्ठ ११८ पर देखें।

आयुर्वेदीय औषधि द्वारा
शुक्राणु वृद्धि

—※—



← लेखक—वैद्य शोभन वसाणी,
२१२–सर्वोदय कामोर्सियल सेन्टर,अहमदावाद

अनुवादक—वैद्य भानुप्रताप मिश्रा वी एस ए एम →
विवेचक–वाला हनुमान आयु० महाविद्यालय
लोदरा (महेसाना) उत्तर गुजरात



गुजरात के सुप्रसिद्ध एव सर्वमान्य विद्वान वैद्य श्री शोभन भाई वसाणी हमारे आयुर्वेद विद्या गुरू हैं। श्री वसाणी जी आयुर्वेद के प्रति स्वप्नदृष्टा हैं। आज तक आपने गुजरात मे आयुर्वेद विकास हेतु अपना अमूल्य सहयोग दिया है। जनसमाज मे आयुर्वेद की पुनः प्रतिष्ठा का यश आपको मिलना जरूरी है क्योंकि वर्षो से आप निरन्तर आयुर्वेद विकास हेतु कार्य करते हैं। आज तक आपके ६० ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। भूतकाल मे आप द्वारा आयुर्वेद डायजेस्ट मासिक प्रकाशित होता था जो कुछ ही समय मे जन समाज और वैद्यो मे अति प्रिय वन गया था। मगर दुर्भाग्य है कि यह मासिक वन्द हो गया। आप सदेश दैनिक में लिखते थे। आजकल आप गुजरात समाचार दैनिक एव अन्य प्रतिष्ठित मासिको में आयुर्वेद विषयक लिखते हैं। जीवक वैद्य पर आधारित "अलुप्त झखना" गुजराती मे नवल कथा लिखी है। इसके सिवा वाल काव्यो में लिखा है। मैं शोभन जी से अपेक्षा करता हूँ कि आप 'धन्वन्तरि' के माध्यम से देशवासियो को अपना मार्गदर्शन दें। 'धन्वन्तरि' परिवार आपसे अनेको अपेक्षा करते है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

श्री सुधीर भाई तारीख १३-१०-७६ के दिन शुभ मुहूर्त देखकर हमारे चिकित्सालय मे आये। देरी से शादी की थी। शादी के भी आठ वर्ष निकल जाने पर भी सतान प्राप्ति न होने के कारण श्री सुधीर भाई काफी चिंतित थे। आज दिन तक अपरपार जगह पर महगी, सस्ती, नियमित-अनियमित दवा कराने पर भी कोई शुभ परिणाम न मिला था। अब वे आशा का अतिम हेतु भी गवा दिया था। पत्नी के पक्ष से वध्यत्व का कोई कारण न था। अपने ही पक्ष में मात्र शुक्रदोष का स्पष्ट कारण था। सुधीर भाई को कॉलेज के समय वृषण पर वॉल (गेंद) लगने से सूजन आ गया था। इसके अतिरिक्त शुक्राणु अल्प और दुर्वल होने का अन्य कोई दूसरा कारण न था। अनेक वार अनेक डाक्टरों द्वारा जाच किया गया था। अच्छी से अच्छी दवा देने पर भी एक ही वार मात्र

आठ लाख शुक्राणु दिखाई देकर पुन बाद मे कम हो गये थे । अन्त में थककर पत्नी को डायरेक्ट सीमेन देने का प्रयोग निष्फलता के साथ किया गया था । अन्त मे अब कुछ नही करना है ऐसी गाठ बाधकर विषाद के बादल ऊपर मडराने लगे थे । इसी समय कलकत्ता के उनके एक सम्बन्धी डाक्टर श्री महेश भाई देसाई का उन पर एक पत्र आया । उसमें उन्होने इस तकलीफ को दूर करने के अतिम इलाज के रूप से मुझसे मिलने की सलाह दी थी। सम्पूर्ण अनिच्छा और परिपूर्ण अश्रद्धा के साथ सुधीर भाई मिलने आये । तब इस रोग में परिणाम मिलना कितना कठिन और अशक्यवत् है 'यह बात मैं समझाया । फिर भी प्रयत्न करने से शुक्राणु न हों तो भी किसी तरह ४० लाख तक बढाया गया था । इसके साक्षी स्वरूप पांच केस मैंने उनके सामने लेबोरेटरी के रिपोर्ट के साथ रखा । तब सुधीर भाई चिकित्सा कराने के लिए सहमत हुए । परन्तु मैंने उन्हे कोई गारन्टी न दी थी । उस दिन उन्हे तीन महिना स्थिर होकर दवा का कोस कराने की सलाह दी थी । दवा अर्थात् औषध व्यवस्था निम्नलिखित थी—

(१) आत्मगुप्ता चूर्ण २ ग्राम, वरधा चूर्ण २ ग्रा और वग भस्म १ ग्राम प्रात शाम दूध मे खाने के लिए दिया ।

(२) च्यवनप्राशावलेह (मूल पाठ में थोडे वृष्य और शुक्रशोधक एव शुक्रवर्धक द्रव्यों को मिलाकर बनाया था) एक-एक चम्मच प्रात. शाम शीतल दूध के साथ खाने को दिया ।

(३) अश्वगन्धा तेल वृषण पर प्रतिदिन दो बार मालिश करने के लिए दिया । सम्भव हो तो उसकी मात्रा बस्ति लेने को भी निर्देश दिया था ।

(४) चन्द्रप्रभावटी २-२ गोली प्रात शाम चबा-चबाकर खाकर ऊपर से पानी या दूध पीने का निर्देश दिया था ।

आठ दिन के बाद उपरोक्त औषधियो के साथ शुक्र-मातृका वटी १-१ गोली दी गई थी। तारीख २७ ११-७६ के दिन शीघ्रपतन के अनुसधान मे दो-दो सशमनी वटी दोपहर तथा रात को लेने के लिए दी गई थी । वह १८-१२-७६ के दिन बन्द कर दी गई थी ।

तारीख २०-२-७७ के दिन सुधीर भाई दवा लेने आये तब रोगी काफी बेचैन, हारा हुआ और हिम्मत हार गया था । इसलिए मैंने तुरन्त धातु की जाच का निर्देश दिया ।

तारीख २२-२-७७ के दिन सुधीर भाई अपनी पत्नी के साथ हमारे चिकित्सालय मे हमारे केबिन मे आये । तब दोनो का अंग प्रत्यग आनन्द से नाच उठा था । हर्षोल्लास मे वे कह रहे थे । कि "साहब रिपोर्ट देखकर खुद लेबोरेटरी वाला भी आश्चर्यचकित हो गया । तीन ही महिना मे स्पर्म काउण्ट मे इतना अधिक वृद्धि उसने कभी देखा ही न था ।" पत्नी को समाचार देकर सर्व-प्रथम माताजी का चरण स्पर्श करके आया । आश्चर्य की बात तो यह है कि अश्रद्धा के कारण मैंने पूरी दवा नियमित और प्रमाणसर ली ही न थी । 'टॉनिक' तो कभी लेता ही न था । परन्तु अब तो मैं सारी दवायें नियमित रूप से लूगा । आपने प्रारम्भ मे कहा था कि तुम पत्नी को तीन महिना के लिए मैके भेज दो । जो सयम से शीघ्र परिणाम आ जाता हो तो अब उसे भेजने की भी व्यवस्था करूगा ।

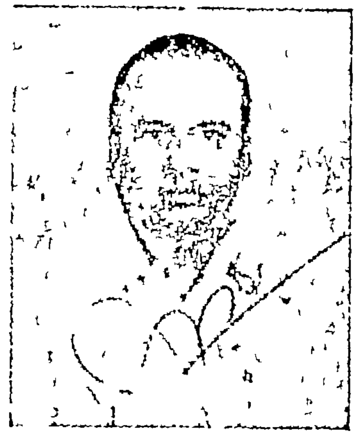
रिपोर्ट वास्तव में काफी आश्चर्यजनक थी । धातु का वाह्य और आतर दोनो वधारण सुधरा था । शुक्राणुओं की सख्या बढकर ५० लाख पहुची थी तथा सजीवता (मार्टिलेटी) तो ७० प्रतिशत बढ गई थी ।

—✦✦—

अल्प शुक्राणुत्व तथा अशुक्राणुत्व की चिकित्सा

वैद्य धीरेन्द्र त्र्यम्बकलाल जोशी डी. एस. ए. सी, बी ए.
सिन्डीकेट सदस्य—गुजरात आयु• युनि•, जामनगर
महामन्त्री—अखिल गुजरात वैद्य मण्डल
६६–मालवीय नगर, राजकोट—४ (गुजरात)

सहायक मण्डल—१ वैद्य पुष्पा धीरेन्द्र जोशी, राजकोट
२ डा० ए० जे० डबावाला एम बी बी एस, अमरेली (गुजरात)
३ डा• राजेश पटेल बी एस ए. एम., चित्तल (अमरेली)
४ डा० ऊषा बहन पटेल बी एस ए. एम, चित्तल (अमरेली)
५ श्रीमती एम पी. गोहिल एम एस-सी., (Micro)



गुजरात आयु० बोर्ड के भूतपूर्व अध्यक्ष एव लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान वैद्य महोदय श्री त्र्यम्बकलाल जोशी के सुपुत्र वैद्य श्री धीरेन्द्र भाई जोशी। गुजरात के जाने-माने प्रतिभा सम्पन्न वैद्य हैं। आप गुजरात की अनेको आयुर्वेद सस्थाओं से सलग्न हैं। गुजरात आयुर्वेद स्नातक मडल, गुजरात आयु• वैद्य मडल, अमरेली जिला वैद्य मडल इत्यादि सस्थाओं मे आप पदाधिकारी थे। वर्तमान मे आप गुजरात आयु० विश्व विद्यालय जामनगर की सेनेट के सिन्डिकेट सदस्य हैं एवं अखिल गुजरात वैद्य मडल के महामन्त्री है। आप भूतकाल मे गुजरात के विभिन्न राजकीय आयु० औषधालयो में चिकित्साधिकारी एव विभिन्न आयुर्वेद अस्पतालो में निवासीय वैद्यकीय अधिकारी पद पर रहकर आयुर्वेद की सेवा की। वर्तमान में आप राजकोट, अहमदाबाद एव अमरेली मे चिकित्सा व्यवसाय करते हैं। आज तक आपके अनेक लेख गुजराती में प्रकाशित हुए हैं। आप शुद्ध आयुर्वेद के प्रधान पक्षधर हैं। गुजरात के आयुर्वेद जगत मे डी टी के नाम से जाने जाते हैं और यही आपकी लोकप्रियता है। आयुर्वेद के विकास मे आप सतत चिन्तित और तत्पर हैं।

विशेष आग्रह पर समय के अभाव में भी आपने गभीर विषय पर शोध लेख भेजा है यही आपकी विद्वता का द्योतक है। आशा है कि लेख से पाठक जगत एव चिकित्सक परिवार अवश्य ही लाभान्वित होंगे। वैद्य श्री जोशी से धन्वन्तरि परिवार सर्वाङ्गीण अपेक्षा रखते हैं। भविष्य में भी आपके अमूल्य सहयोग की धन्वन्तरि को अपेक्षा है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आयुर्वेदीय चिकित्सा मे शुक्रजनन, शुक्रवर्धन, शुक्रशोधन तथा शुक्रस्तम्भन के लिये कई औषधियों के प्रयोग बताये गये हैं जिनका उपयोग चिकित्सक अपने अपने विचार से करते रहते हैं। कई चिकित्सकों को पर्याप्त परिणाम भी मिलता है। रसायन वाजीकरण प्रकरणों में ऐसी औषधियों का निर्देश और वर्णन विस्तृत रूप से पाया जाता है।

इस अध्ययन के लिए हमने निम्न औषधियों का एक योग बनाकर अशुक्राणुत्व तथा अल्प शुक्राणुत्व के रोगियो पर प्रयोग किया। यह योग इस प्रकार है —अश्वगधा,

शतावर, विदारी, मकरध्वज, जुन्द-वे-दस्तर, चित्रक, विष तिन्दुक, उदम्बर घन। इस योग के प्रयोग से हमे मिला हुआ परिणाम आगे प्रस्तुत किया है—

इस अध्ययन के लिए चुने गये रोगियो की परीक्षा आयुर्वेदीय पद्धति द्वारा की जाती थी। शुक्राणु की सख्या आदि का परीक्षण पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के अनुसार पैथोलोजीकल लेवोरेटरी द्वारा किया जाता था। साथ मे रोगी की सामान्य परीक्षा भी पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति अनुसार की जाती थी। इस प्रकार की परीक्षा उक्त प्रयोग चिकित्सा पूर्व तथा चिकित्सा पश्चात की जाती थी। इस प्रयोग चिकित्सा की अवधि तीन मास की तय की गई थी। हर १५ दिन पर पुनः परीक्षण होता था।

प्रयोग के लिए पसन्द किये गए रोगियो का उपर्युक्त परीक्षण के साथ एक खास अवस्था पर अधिक ध्यान दिया गया था। यह है साम-निराम परीक्षण। प्रयोग से पूर्व साम-निराम के सिद्धान्त से परीक्षण किया जाता था। यदि रोग की अवस्था साम होती तो लघनादि से प्रथम उसे निराम करते थे। वाद मे ही औषधि योग प्रयुक्त किया जाता। क्योंकि आयुर्वेद में कहा है कि "निराम देहस्य ही भेषजानि युक्तानि अमृतोपमानि।" इस सूत्र मे 'ही' शब्द पर जिस प्रकार जोर दिया गया है उसका अत्यधिक महत्व समझा गया है।

इस अध्ययन के दौरान शुक्राणुओं की अनुपस्थिति दो प्रकार देखी गई थी। (१) शुक्राणु की उत्पत्ति न होने से शुक्राणुओ की सम्पूर्ण अनुपस्थिति (२) शुक्राणुओं की उत्पत्ति होने पर भी स्रोतसों के अवरोध से शुक्राणुओ की गर्भ रचनाकार्य मे अनुपस्थिति। अनुमान से इन दोनो अवस्थाओ का निर्णय किया जाता था।

इस अवस्था के लिये चुने गये रोगियों को उपर्युक्त योग की २५० मि ग्रा की २-२ कैपसूल दिन मे तीन वार लगातार तीन मास तक दी गई थी। अल्प शुक्राणुत्व (Oligospermia) के ५० रोगियों पर यह प्रयोग किया गया था। अशुक्राणुत्व के ३० रोगियों पर यह प्रयोग किया गया था। इन रोगियों की शुक्राणुओ की सख्या परीक्षण हर एक मास के वाद किया जाता था।

इस प्रयोग के पूर्ण होने पर अल्प शुक्राणुत्व के ५० रोगियों में से ९२ प्रतिशत रोगियों में प्रचुर संख्या में शुक्राणुओ की उपस्थिति पायी गई थी जो ८०-९० मिलियन से अधिक देखी गई थी। शेष ८ प्रतिशत रोगियों मे शुक्राणुओ की सख्या पर्याप्त सख्या में वढ़ गई थी जो ६० मिलियन तक देखी गई थी। दूसरी ओर ऐसे रोगियो की २१ पत्नियो को गर्भाधान हुआ था।

इस औषधि योग के प्रयोग से यह भी देखा गया कि इस योग के उपयोग से शुक्राणुओं के नाप तथा आकार पर कोई प्रभाव नही पडा था। प्रयोग के लिए तय किए गए रोगियों मे से ६ प्रतिशत रोगी की शुक्राणु परीक्षण में प्रयोग पूर्व विकृत (एवनार्मल) शुक्राणु देखे गये थे। जो प्रयोग के वाद भी वैसे ही रहे थे।

इस प्रयोग में इस योग से ३ रोगियों के पेट मे गड-वडी (हृल्लास) तथा अल्प मात्रा मे छर्दि का अनुभव हुआ था। उन रोगियो को दूध शक्कर देने से उक्त लक्षणो का प्रशमन पाया गया था।

इस योग के उपयोग से यकृत, वृक्क, अस्थिमज्जा, तथा मासपेशियो पर कोई विकृत असर नही देखा गया है। कोई विषजन्य असर भी नहीं देखा गया। इसका परीक्षण पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञ द्वारा किया गया था।

इस औषधि योग के उपयोग का परिणाम यह मिला कि इस योग के सेवन से शुक्राणुओं की वृद्धि होती है। वीर्य की प्रजनन शक्ति (Virility) वढ़ती है। परिणाम स्वरूप नपुसकत्व दूर होता है और व्यवाय शक्ति भी बढ़ती है। यह भी सिद्ध होता है कि इस योग के सेवन से कोई विकृत असर नही होता। यह योग निर्दोष है। अल्प शुक्राणुत्व के इस प्रयोग से हमे अशुक्राणुत्व के रोगियो पर भी इस योग का प्रयोग करने की प्रेरणा प्राप्त हुई और ऐसे ३० रोगियों पर इस योग का प्रयोग किया था। प्रयोग से १८ रोगियों मे क्रमश शुक्राणु की उत्पत्ति तथा सख्या की वृद्धि हुई थी। ३ मास के अन्त मे इन रोगियो के वीर्य में ८०-९० मिलियन शुक्राणु की सख्या पायी गई थी। ३ मास के अन्त मे

५ रोगियो में शुक्राणुओं की संख्या क्रमश वृद्धि होते हुए ५५-६५ तक हुई थी और शेष ३ रोगियों मे शुक्राणुओं की संख्या वृद्धि १० मिलियन से अधिक नही हुई थी। तथा शेष ४ रोगियों में कोई परिणाम नहीं मिला था।

इस अध्ययन से हम इस निर्णय पर पहुच सके थे कि औषधीय योग के प्रयोग से शुक्राणु पैदा हो सकते हैं। जिन रोगियों की अवस्था साम थी उनको लघनादि से निरामीकरण करने पर लाभ प्राप्त होना शुरू हो गया था। ऐसे रोगी के शुक्राणु परीक्षण पर अत्यधिक संख्या में शुक्राणु वृद्धि होते हुए देखा गया था। जिन रोगियों में परिणाम प्राप्त नही हुआ है ऐसे रोगियों मे शुक्राणु की उत्पत्ति ही नही होती होगी, ऐसा अनुमान है। किंतु जिन रोगियो में परिणाम मिला है उन रोगियो मे प्राय स्रोतोरोधजन्य अशुक्राणुत्व था। जोकि मार्गावरोध दूर करने पर तथा योग के प्रयोग मे शुक्राणुओ की संख्या की वृद्धि होती गई थी। तथा पर्याप्त मात्रा मे शुक्राणु की वृद्धि हो गई थी।

इस प्रकार इस औषधि योग का प्रयोग शुक्राणुओं की वृद्धि करने में लाभदायी सिद्ध हुआ है तथा इसके प्रयोग से कोई विषजन्य विकृति या अन्य कोई भी विकृति शरीर में पैदा नही होती है। इस के अधिक दिन तक सेवन से भी कोई विकृति पैदा होने की सम्भावना नही।

परिणाम स्वरूप मैसर्स किरण फार्मास्युटिकल्स-अमरेली (गुजरात) जिसने इस अध्ययन का पूरा बोझ उठाया था के द्वारा इस औषधि योग को पेटेण्ट कर विटेक्स कैपसूल (Vtex Capsule) के नाम से उपलब्ध कराई गई।

अल्प शुक्राणुत्व रोग के परीक्षण निर्देशक तालिका

तालिका—१—आयु निर्देशक तालिका

आयु वर्ग	रोगी संख्या	प्रतिशत
२८ से ३५	१७	३४ प्रतिशत
३६ से ४५	२३	४६ प्रतिशत
४६ से ५०	१०	२० प्रतिशत
कुल	५०	१०० प्रतिशत

तालिका—२

मेदस्विता के रोगी निर्देशक तालिका

सामान्य	१३	२६ प्रतिशत
मेदस्वी	३७	७४ प्रतिशत
कुल	५०	१०० प्रतिशत

तालिका—३

वीर्य परीक्षण निर्देशक तालिका

परीक्षण		संख्या	प्रतिशत
१. कन्सीस्टन्सी	थिन	४३	८६ प्रतिशत
Consistancy	थिक	७	१४ प्रतिशत
२ (गधर) ओडर	नोर्मल	३९	७८ प्रतिशत
	दुर्गन्धित	११	२२ प्रतिशत
३ वोलयुम	५-१० सीसी	४१	८२ प्रतिशत
Volume	४-सीसी	९	१८ प्रतिशत
४ माईक्रोस्कोपिक—		प्रयोग पूर्व	
अ शुक्राणु संख्या			
५०-६० मिलियन हर एक मि लि पर		९	१८ प्रतिशत
४०-५० मिलियन हर एक मि लि पर		२१	४२ प्रतिशत
४० से कम मिलियन हर एक मि. लि पर		२०	४० प्रतिशत
कुल		५०	१०० प्रतिशत
ब सजीवता			
०-४० प्रतिशत		१०	२० प्रतिशत
४०-६० प्रतिशत		४०	८० प्रतिशत
६०-से अधिक		००	०० प्रतिशत
कुल		५०	१०० प्रतिशत
क जीवाणु का सूक्ष्मदर्शन			
नोर्मल		४७	९४ प्रतिशत
एबनोर्मल		३	६ प्रतिशत
कुल		५०	१०० प्रतिशत

ड. उपघर सैल

लिम्फोसाइट	४	८ प्रतिशत
पोलीमिरन्यूक्लीअर सैल	११	२२ प्रतिशत
इओसीनोफील	००	०० प्रतिशत

तालिका—४

पुन परीक्षण निर्देशक तालिका—

प्रथम	३३	६६ प्रतिशत
द्वितीय	४४	४८ प्रतिशत
तृतीय	७	१४ प्रतिशत

तालिका—५

वीर्य परीक्षण

औषधि प्रयोगोत्तर परीक्षण निर्देशक तालिका

काउन्ट १०० मिलियन हर एक एम एल पर	३७	७४ प्रतिशत
१००-६० एम एल पर	६	१८ प्रतिशत
६० ,,	४	८ प्रतिशत
कुल	५०	१०० प्रतिशत
सजीवता ०-४० प्रतिशत	६	१२ प्रतिशत
४०-६० प्रतिशत	१२	२४ प्रतिशत
६० से अधिक	३२	६४ प्रतिशत
कुल	५०	१०० प्रतिशत

जीवाणुओं का सूक्ष्म दर्शन

नोर्मल	४७	९४ प्रतिशत
एब्नोर्मल	३	६ प्रतिशत
कुल	५०	१०० प्रतिशत

गर्भोत्पत्ति निर्देशक तालिका—

पोजीटिव	२१	४२ प्रतिशत
निगेटीव	२९	५८ प्रतिशत
कुल	५०	१०० प्रतिशत

—✱—

— पृष्ठ ११२ का शेषांश —

(२५) एक अनुभूत औषधि योग—कवाच बीज, शतावर, मुलहठी, आमलक, विदारी कन्द, गोखरू, श्वेत मूसली, सालम पजा और जातिफल इन दस द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर उतनी ही मात्रा मे मिश्री मिला कर चूर्ण बना लें। सुबह शाम इसमे से ५-७ ग्राम चूर्ण दूध के साथ पीवें। इसके सेवन से प्रवल काम शक्ति, वीर्यवृद्धि और सम्भोग समय मे ताकत मिलती है।

कुछ अन्य वाजीकरण—

लेख की समाप्ति करने से पहले सुश्रुत की निम्नोक्त सलाह पर भी ध्यान देना आवश्यक है—यह कहते हैं—यह वाजीकर प्रयोग सिर्फ अकेला ही उपभोग सुख के प्रदाता है, ऐसा नही है। इसके सिवा और भी ऐसे योग हैं; जो पुरुष को हर्षोल्लास वनाकर वाजी (अश्व) जैसी शक्ति देते हैं। जोकि जाति-जाति के भोजन विविध प्रकार के वीणा करण प्रिय आवाज, स्पर्श मे सुख दे ऐसी त्वचा शीतल चांदनी युक्त रात्रि, नवयोवन स्त्री, कर्ण और मन के प्रिय सगीत, ताम्बूल, मद्य-आसव, सुगन्धी, पुष्पो की मालाए और प्रफुल्लित मन। यह औषधि विना भी वाजीकर गुण देने वाले हैं।

वाजीकर औषधि और आहार द्रव्य—

कुछ आहार द्रव्य और बाजार में प्राप्त औषधियों का नाम भी यहा प्रस्तुत होगा। इसमे उडद, दूध घी, मक्खन, लहसुन (रासोन), गेहूँ, मिश्री, मासरस अण्डा जगली मुर्ग का मास, चकला (चटक) का मास साठी चावल, अडदिया, शीरा मोदक इत्यादि आहार द्रव्यों और कौंचपाक (वानरीवटी) सालमपाक, केसरादि अव-लेह, बृहद् असगन्धा घृत, पूर्ण चन्द्रोदय, सिद्ध मकरध्वज, नागवल्लभाद्य चूर्ण, नारसिंह चूर्ण, असगन्धादि चूर्ण, कस्तूरी गुटिका, कामिनी विद्रावण रस, नारीमत्तगजाकुश, मदनमजरी वटी, मन्मथाभ्ररस, शक्रवल्लभ रस, काम-सजीवनी गुटिका, मदनानन्द मोदक, श्रीगोपाल तैल, रसायन चूर्ण इत्यादि औषधियां वृष्य, वाजीकर और रसायन गुणों से युक्त हैं। ✤

नपुंसकता निवारण योग संग्रह

वैद्य श्री चन्द्रशेखर व्यास आयुर्वेद विशारद, चूरू (राजस्थान)

—• •—



वैद्य श्री चन्द्रशेखर जी व्यास पीयूषपाणि अनुभवी चिकित्सक हैं। आप कई भारत प्रसिद्ध औषधालयों मे प्रधान चिकित्सक रहे हैं। आप भी अपनी कुशाग्रबुद्धि से जटिल रोगो की चिकित्सा कर अत्यन्त यश प्राप्त कर रहे हैं जो वस्तुत सर्वोपरि है।

'धन्वन्तरि' की स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी का आप ही उत्तर दे अपनी अनुभवपूर्ण चिकित्सा द्वारा रोग निवारण प्रेषित कर अनुभूत साहित्य में श्रीवृद्धि करते रहते हैं। सम्प्रति नपुंसकता निवारण योग संग्रह पर सारगर्भित लेख प्रस्तुत है जोकि आयुर्वेद साहित्य में श्रीवृद्धि करेगा। —दाऊदयाल गर्ग

'धन्वन्तरि' के स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी स्तम्भ के लिये अधिकांश पत्र शीघ्रपतन, ध्वजभग, नपुंसकता निवारणार्थ ही आते हैं। इन सबका उत्तर भी देता रहता हूँ। इस हेतु आयुर्वेदिक शास्त्रीय योगों, का सग्रह करके 'धन्वन्तरि' के माध्यम से एक लेख लिखने की इच्छा हुई थी। इस हेतु एक लेख भेज भी चुका था पर वह प्रकाशित नही हो सका।

अब जब पुरुष रोग चिकित्सा का सम्पादन ही हो रहा है तो इसी अङ्क में यह लेख प्रकाशित होना अत्युत्तम होगा। आशा है मेरे इस प्रयास से चिकित्सक बन्धु तथा जन साधारण लाभान्वित हो सकेंगे। यत्र तत्र कोई अशुद्धि रह जाय तो विद्वान वैद्य सुधार लेवें तथा सूचित भी करें। सेवाभाव से ओतप्रोत यह सग्रह किया गया है।

अनङ्ग मेखला गुटिका (वृ०यो०त०)

घटक द्रव्य—शु० कुचला १ भाग, समुद्र शोष २ भाग, अफीम, अकरकरा १-१ भाग सबको भाग के रस में घोट कर मूंग प्रमाण वटी बनावें और साय काल सेवन करें। यह गुटिका—वीर्य स्तम्भक और कामवर्द्धक है।

अनङ्ग मेखला मोदक (वृ०यो०त०)

घटक द्रव्य—अफीम ५ तोला को २० तोला दूध मे पकावें, फिर जायफल, चातुर्जात, जावित्री, लवग, त्रिकुटा, अकरकरा, अजमोद, पतग, ककोल, चन्दन, केशर प्रत्येक १-१ तोला, कस्तूरी, कर्पूर प्रत्येक २-२ माशे, चीनी ४० तोला यथाविधि वटी बनावें। गुण—बलवर्द्धक, कामशक्ति वर्द्धक, स्तम्भक, पाण्डु, कामलानाशक, खांसी, क्षय, शूल, प्रमेह, भ्रम और अग्निवर्द्धक है।

अर्जकादि वटिका (भै० र०)

घटक द्रव्य—सफेद तुलसी की जड, शखाहोली की जड, निर्गुण्डी और भांगरे की जड, जायफल, लौंग, वायविडग, गज पीपल, चातुर्जात, वशलोचन, अनन्तमूल, मूसली, शतावरी, विदारीकन्द, गोखरू सबको कीकर की छाल के रस में खरल करके १-१ माशे की वटी बनावें। यह गोली वीर्य स्तम्भक और वृष्य है।

कस्तूरी गुटिका (नपुंसकामृतार्णव)

घटक द्रव्य—स्वर्ण भस्म १ भाग, कस्तूरी २ भाग, चांदी भस्म ३ भाग, केशर ४ भाग, छोटी इलायची ५

भाग, जायफल ६ भाग, वंशलोचन ७ भाग, जावित्री ८ भाग लेकर ३-३ दिन तक बकरी के दूध और पान के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की वटी बनावें ।

इन्हे मलाई के साथ सेवन करने से शुक्रक्षय, शहद के साथ सेवन करने से प्रमेह, और पान मे रखकर खाने से शैथिल्य (सुस्ती) नष्ट होती है । मात्रा-१ से २ गोली

यह वटी मैंने सन् १६३७ मे रंगून (वर्मा) मे श्री गजानन्द लखोटिये के लिये तैयार की थी इससे आशातीत लाभ हुआ । श्री जोधराज पोद्दार को दी गई वर्षो पुराना पीनस रोग था वह ठीक होगया । श्री महादेवजी जलेबी चोर को दी उनके प्रेशर लो था जिन्दगी भर ठीक रहे ।

कामदेव वटी (वृ० यो० त०) १४७ त०

घटक द्रव्य—कूठ, कायफल, सेंधानमक, सोठ, मिर्च, पीपल, मैथी, अजवायन, अजमोद, वासा, मोचरस, विदारीकन्द, मूसली, जायफल, चित्रक, जीरा सफेद, काला जीरा, गजपीपल, दाख, हर्रे, कौंच का वीज, तालीसपत्र, दालचीनी, इलायची, तेज पत्ता, सेंधा, काला, विडनमक, बहेडा, काकडासीगी, केले की मूसली, शतावर, असगन्ध, कपूर काचरी, मुलेहठी, पियाल, गिलोय, जावित्री, लवग, केशर, सुगन्धवाला, गोखरू, सेंमल, आवला, उडद, पुनर्नवा, धतूरे के शु० वीज, सिहाडा, मस्तगी, जटामासी, बला, अतिवला, नागवला, नजद, भारगी, हस्ति कर्ण, तिल, कंकोल, अकरकरा, भाग, वेल, वच, काहू, कमलगट्टा प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला, भाग सवके वजन से चौथाई, अभ्रक भस्म भाग से आधी, अभ्रक भस्म से आधी वग भस्म, वग से आधी लोह भस्म, लोहे से आधा रस सिन्दुर एव सबके वजन से २ गुनी खाड़ । सबको शहद और घी में मिलाकर आधे-आधे पल की गोलिया वनालें । इन्हें अग्निवलानुसार सुवह और रात को दूध के साथ सेवन करें । यह जरा नाशक, अत्यन्त वाजीकर, वीर्य, क्षुधा, तेज, कान्ति और स्थूलता वर्धक तथा चित्तविभ्रम आदि मानसिक रोग नाशक, मदमस्त कामिनियो का मद भञ्जन करने वाली एव मनोविनोदकारी हैं । यह औषधि महाराजा हम्मीर के लिये वनाई गई थी । व्यवहारिक मात्रा १ माशे से २ माशे तक है ।

कामसुन्दरो मोदक । वृ० यो० त० । १४७ त०

योग घटक—मैंथी, गिलोय, मूसली, कचूर (मूल पाठ मे शठी पाठ है । टीकाकार ने कपूरकाचरी लिखी है) विदारीकन्द, तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची, सेंधानमक, आमला, लौंग, तालमखाना, गोखरू, शतावर, मोचरस, शालपर्णी, पृष्णपर्णी, मुद्‌गपर्णी, मासपर्णी, पीपल, असगध, केले की मूसली, नागकेशर, जायफल, जावित्री, काकडासीगी, धनिया और कायफल, सब चीजों का चूर्ण समान भाग, अभ्रक भस्म सवके दो गुनी, भाग सबसे चौथाई और इस सवसे दुगनी खाड मिलाकर शहद और घी के साथ मोदक बनावें । मात्रा २ माशा

कामाग्नि संदीपनो मोदक । यो० र० वाजी०

घटक द्रव्य—शुद्ध पारा, शु० गन्धक, अभ्रकभस्म, जवाखार, सज्जीखार, चित्रक, पाचोनमक, अजवायन, अजमोद, वायविडग, तालीशपत्र, शु० विष, जीरा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागकेशर, लोग और जायफल-प्रत्येक १-१ तोला, विधारा और त्रिकुटा ३-३ तोले, धनिया, मुलहठी और कसेरू ४-४ तोला, विदारीकन्द, दन्ती, पीपल, गंगेरन, कौंच के वीज और गोखरू प्रत्येक ५-५ तो०, विजौरा और इन्द्र जौ का चूर्ण सवके वरावर खाड और शहद प्रत्येक सव चूर्ण के वरावर, कपूर का चूर्ण १ तोला लेकर यथाविधि मोदक वनालें । यह मोदक अत्यन्त कामवर्धक और वृष्य है । इसके अजवायन के चूर्ण के साथ सेवन से अत्यन्त सभोग शक्ति प्राप्त होती है ।

कामेश्वर मोदक । भै० र०

घटक द्रव्य—अभ्रक की उत्तम भस्म, कायफल, कूठ असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मूसली, गोखरू, तालमखाना, केले की मूसली, शतावरी, अजमोद, जटामासी, तिल, धनिया, कपूरकचरी, गंगेरन, कचूर, मैनफल, जायफल, सैंधा नमक, भारङ्गी, काकड़ासीगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, कालीजीरी, चित्रक, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागकेशर, पुनर्नवा, गजपीपल, दाख, कचूर, सुगन्धवाला, सेमल की मूसली, त्रिफला,

कौंच का बीज, सब औषधिया समान भाग लेवें। शु० भाग सबके बराबर, और खाड सबसे दुगुनी, शहद और घी मिलाकर १-१ माशे या आधे-२ माशे की गोलिया बनावें। यह कामी पुरुषो के सेवन करने योग्य, स्तम्भक, वशीकरण अत्यन्त सुखदायक कामिनीविद्रावक, पौष्टिक, क्षत और क्षयनाशक, खासी, श्वास, घोर अतिसार नाशक, कामाग्नि सन्दीपक, ववासीर, सग्रहणी, प्रमेह और कफ नाशक, वाक् वर्द्धक हैं। एव इसके सेवन से अकाल मृत्यु और पलित आदि रोग नष्ट होते हैं। यह सबके लिये हितकारी, वृद्धों के लिये कामोत्तेजक, और जवानों के सेवन करने योग्य हैं। मात्रा १-१ वटी दूध से।

कामेश्वर मोदक (भं० र०)

घटक द्रव्य—आमला, सेंधानमक, कूठ, कायफल, पीपल, सोंठ, अजवायन, अजमोद, मुलहठी, जीरा, काला जीरा, धनियां, कपूर कचरी, काकडासींगी, वच, नागकेशर, तालीसपत्र, दार चीनी, इलायची, तेजपत्ता, मिर्च, हर्रे वहेडा। प्रत्येक का चूर्ण समान भाग, बीज सहित भुनी हुई भाग का चूर्ण सबके समान, चीनी सबसे दुगुनी, खाड की चाशनी करके उसमे सब चीजो का चूर्ण मिला घी तथा शहद मिलाकर यथाविधि मोदक तथा उसके ऊपर कर्पूर तथा भुने तिलों का चूर्ण लगावें।

यह पाखण्डियों और अल्प बुद्धि वाले मनुष्यो से छिपाने योग्य, आदि व्याधि हर क्षय नाशक, कुष्ठ नाशक, वृहण, स्त्रियों को सन्तुष्ट करने वाला, सौंदर्यवर्द्धक, कामाग्निदीपक, खासी, श्वास और कफ रोग नाशक है। इसके सेवन से ग्रह दोष नष्ट होते हैं एव मनुष्य सर्व शास्त्रों में प्रवीण, कीतिवान, कामदेव तुल्य सुन्दर, निडर, रति वाद्यादिक में निपुण हो जाता है। यह मोदक अनेक रोग नाशक है।

मात्रा—वैद्य अपनी वुद्धि के अनुसार देवें।

जातिफलादि वटी

(यो०त०।त० ८०, वृ०या०त०।त० १४७)

घटक द्रव्य—जायफल ४ ग्राम, अफीम ४ ग्रा०, अजमोद ४ ग्रा०, कर्पूर भीमसेनी ४ ग्रा०, वंशलोचन १२ ग्रा०, गुड २० ग्रा०। सबका महीन चूर्ण करके गुड़ मे मिलाकर सबकी १२ गोलिया वना लीजिए। इसमें से १-१ गोली खाने से वीर्य स्तम्भन होता है। व्यवहारिक मात्रा आधी वटी।

जातिफलादि वटी

(यो०त०।त० ८०, वृ० यो०त०।त० १४७)

घटक द्रव्य—जायफल, आक की जड की छाल, अकरकरा, लौंग, सोंठ, ककोल, केशर, पीपल, सफेदचन्दन का चूर्ण १-१ भाग, अफीम ६ भाग, निश्चन्द्र अभ्रक भस्म १८ भाग और खाड ३६ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर महीन करके शहद के साथ ४ ४ माशे की वटी बनावें।

त्रिफलादि वटी (आ०वे०वि०।रसायन, अ० ८५)

घटक द्रव्य—त्रिफला, पित्त पापडा, कुटकी और त्रायमाणा का चूर्ण समान भाग तथा सबके समान शु० कुचले का चूर्ण लेकर सबको पानी मे घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। इनके सेवन से शुक्रतारल्य दूर होता है, और रक्त शुद्ध होता है तथा अग्नि और शारीरिक वल की वृद्धि होकर इन्द्रियों की शिथिलता नष्ट होती है। यह हस्तमैथुनजन्य कमजोरी को उत्तम है।

वल्लभा गुटिका (न०मृ०।त० ५)

घटक द्रव्य—वहुफली, मोचरस, सफेद मूसली, काली मूसली, अकरकरा, वशलोचन, कौंच के वीज, ताल मखाना, उटङ्गण के वीज, गोखरू, गिलोय सत, जपा पुष्प, लिसौडा, मस्तगी, जावित्री, लौंग समान भाग लेकर चूर्ण वनावें। तदनन्तर सबसे २ गुनी खाड की चाशनी बनाकर उसमें यह चूर्ण डालदें और ७।।-७।। माशे की गोलिया वनालें। इनमें से १-१ गोली सायकाल के समय खाकर दूध पीना चाहिए। यह गुटिका नपुंसकतानाशक और उत्तम वाजीकरण हैं।

वाजीकरण गुटिका (न०मृ०।त० ५)

घटक द्रव्य—अर्जुन के वीज, कटेली के फल, बिधारे के बीज, कौंच के वीज और कौच की जड समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावें। और उसे पान के रस में

घोटकर ६-६ रत्ती की गोलिया बनालें। इनके सेवन से नपुंसकता का नाश और वीर्य पुष्टि तथा बल की वृद्धि होती है। यह गुटिका का वाजीकरण हैं।

वानरी गुटिका (यो० र०)

घटक द्रव्य—२० तोले कौंच के बीजो को २ सेर गोदुग्ध में मन्दाग्नि पर पकावें, जब दूध गाढा होजाय तो बीजों को बारीक पीसलें। तदनन्तर उस पिट्ठी की छोटी-छोटी (१-१ तोले की) टिकिया बना उन्हें गाय के घी मे तल लें, एव उन्हे २ गुनी खाड की चाशनी मे डाल बालूशाही की भाति टिकियो पर चाशनी चढायें। जब उन पर खाड अच्छी तरह चढकर सूख जाय तो उन्हे काच आदि के पात्र मे शहद मे डुबाकर रक्खें।

इनमें से २ टिकिया नित्य प्रति प्रात साय सेवन करने से शीघ्रपतन और नपुंसकता नष्ट होती है।

तेल प्रकरण

श्री गोपाल तेल (भै० र०)

घटक द्रव्य—(१) शतावर का रस ८ सेर, पेठे का रस ८ सेर और आवलो का रस ८ सेर,

(२) ६। सेर असगन्ध को ३२ सेर जल मे पकावें। ८ सेर शेष रहने पर उतार लें।

(३) सहचरी मूल ६। सेर लेकर ३२ सेर पानी मे पकावें और ८ सेर शेष रहने पर छानलें।

(४) खरैटी की जड ६। सेर लेकर ३२ सेर पानी में पकावें और ८ सेर शेष रहने पर छानलें।

(५) बेल छाल, अरलु की छाल, खम्भारी छाल, पाढल छाल, अरणी, कटेली की जड, मूर्वामूल, केवडे की जड, खद्दाशी (जुन्दवेदस्तर) और पारिभद्र (कटहर) की छाल ५०-५० तोले लेकर सबको कूटकर ३२ सेर पानी में पकावें और ८ सेर शेष रहने पर छानलें।

कल्क—असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्माख, कटेली, खरैटी अगर, नागर मोथा, खद्दाशी, शिला रस, अगर, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, हर्र, बहेडा, आवला, मूर्वा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, केशर, कस्तूरी, दारचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागकेशर, छैरछरीला, नखी, नागर मोथा, कमलनाल, जीमोफर, रास, जटामासी, मुरामासी, देवदारु, वच, अनार की छाल, धनिया, ऋद्धि वृद्धि, दमनक और छोटी इलायची प्रत्येक २॥-२॥ तोले लेकर कल्क बनायें।

८ सेर तिल के तेल मे उपरोक्त सम्पूर्ण द्रव पदार्थ और कल्क मिलाकर पकावें। जब पानी जल जाय तो तेल को छानलें।

इस तेल के मर्दन से वातज, पित्तज तथा कफज सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं। एव स्मृति शक्ति, मेधा, धृति तथा बुद्धि बढती है। इसके सेवन से वात रोग तथा विशेषत: बीसो प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। यह तेल गर्भस्थापक है तथा शूल, मूत्र कृच्छ्र, अपस्मार, उन्माद प्रभृति रोगों को नष्ट करता है। इस तेल के प्रयोग से जराजीर्ण वृद्ध पुरुष भी १०० स्त्रियों से रमण करने मे समर्थ हो जाता है। इस तेल की दो तीन बूंद लिङ्ग पर मर्दन करने से ध्वजभङ्ग नष्ट होता है। जिस गृह में श्रीगोपाल तेल हो वहा भूत, पिशाच तथा राक्षस आदि नही आते एव दरिद्रता तथा कोई विघ्न नही होता। यह तेल जगत् के कल्याण हेतु अश्विनी कुमारों ने निर्माण किया था।

अजयपाल तेल (न० मृ०।त० ६)

घटक द्रव—१० तोले चमेली के तेल मे १। तोले जमाल गोटे का तेल मिलाकर इन्द्री पर (सीवन तथा अग्रभाग छोडकर) मालिश करने से नसों का दूषित पानी निकल जाता है।

अर्क तेलम् (न० मृ०।त० ६)

घटक द्रव्य—स्वच्छ सफेद वस्त्र को आक के दूध मे भिगो कर छाया मे सुखावें। इसी प्रकार सात बार आक के दूध मे भिगो वे और सुखावें। फिर उसे नवनीत (मक्खन) मे तर करके उसकी वत्ती बनालें और इसके एक सिरे को चिमटे आदि से पकडकर दूसरे सिरे में आग लगादें तथा उल्टा लटकादें, उससे जो तेल टपके उसे कांसे के पात्र मे एकत्रित करलें।

शिश्न पर (सीवन और अग्रभाग छोडकर) यह तेल

लगाकर अरण्ड का पत्ता बाध दें। इसी प्रकार कई दिन प्रयोग करने से हस्त मैथुन, गुद मैथुन जनित विकार नष्ट होते हैं।

अश्वगन्धादि तेल (भा०प्र०। म० ख० २, च० द०)

घटक द्रव्य—कल्क-असगन्ध, शतावर, कूठ, जटामासी और कटेरी के फल ४-४ तोले लेकर पानी के साथ पीसलें।

२ सेर तिल तेल में यह कल्क और ८ सेर दूध मिला कर पकावें। इसकी मालिश से शिश्न, स्तन और कर्ण पाली की वृद्धि होती है।

दाडिमाद्य तेलम् (रा० मा०)

घटक द्रव्य—क्वाथ-अनार की छाल २ सेर, पानी १६ सेर, शेष क्वाथ ४ सेर।

कल्क—कटेली के फल और शुद्ध भिलावा प्रत्येक ३ तोला ४ माशे। क्वाथ और कल्क को १ सेर सरसों के तेल में मिलाकर पकावें।

इसकी मालिश से लिङ्ग वृद्धि होती है।

पलाश बीज तेलम् (नपु० मृ०)

घटक द्रव्य—ढाक के बीज, कुचला, मालकागनी और जगली कवूतर की बीठ प्रत्येक ७।।-७।। तोला, लौंग, अकरकरा और दालचीनी १।-१। तोला। सबको बकरी के दूध में घोटकर सुखाकर पाताल यन्त्र से तेल निकाल लें।

इसे सीवन और सुपारी छोडकर इन्द्री पर मलकर ऊपर से बगला पान बाध देना चाहिये।

इसे २१ दिन लगाने से हस्त क्रिया से उत्पन्न हुये दोष नष्ट हो जाते हैं। (नोट-इसके प्रयोग काल मे इन्द्री को ठण्डे पानी से बचाना चाहिए।)

पानी नाशक तेलम् (न० मृ०।त० ६)

घटक द्रव्य—मालकांगनी २० तो०, जमाल गोटा १० तो०, जायफल, जावित्री, दारचीनी और लौंग ५-५ तो० लेकर पताल यन्त्र से तेल निकाले। इसे अग्रभाग और सीवन को बचाकर इन्द्री पर लगाना चाहिये। जब फुन्सिया निकल आवें तो तेल लगाना बन्द करके रोपणी क्रिया करनी चाहिये। (चमेली का तेल लगाना चाहिये) इस प्रकार इस तेल के प्रयोग से इन्द्री की नसों का पानी निकल कर नपुंसकता दूर हो जाती है।

यह अत्युत्तम प्रयोग हैं।

बृहती तेलम् (नपु०मृता०।त० ६)

घटक द्रव्य—बडी कटेली के पञ्चाङ्ग को कूट छान कर कई दिन तक बकरी के दूध मे घोटे, और फिर उस की गोलिया बनाकर सुखाकर पाताल यन्त्र से उनका तेल निकाल लें। इसकी २१ दिन इन्द्री पर मालिश करने से हस्तदोष जनित विकार (इन्द्री की शिथिलता आदि) नष्ट हो जाती हैं।

रति बल्लभाख्य तेलम् (वृ०यो०त०। ता० १७४)

घटक द्रव्य-कल्क-सफेद चन्दन,अगर, केसर, देवदारू, सिल्हक, शारिवा, कस्तूरी, लाल चन्दन, सुगन्ध वाला, नागर मोथा, कुन्दरू, धनिया, तगर, एलबालुक, बोल, कूठ, पतङ्ग काष्ठ, दारचीनी, लबग, कर्पूर, खस, पीला-चन्दन, मजीठ, तेजपात, नागकेशर, जावित्री, मुरामासी, कचूर, इलायची, नख, सुपारी, खट्टासी (जुन्दवेदस्तर) जटामासी, बच, पीली खस और जायफल प्रत्येक २-२ तोला लेकर सबको पीसकर बारीक कल्क करें।

८ सेर तिल तेल मे यह कल्क ३२ सेर दही और ८-८ सेर नागरमोथा का क्वाथ तथा लाख का रस (लाख का पानी) मिलाकर पकावें। जब जलांश शुष्क हो जाय तो तेल को छानलें।

इसकी मालिश से पुरानी नपुंसकता नष्ट हो जाती है और काम शक्ति भी अत्यधिक बढ जाती है।

राल तेलम् (नपु० मृ०। त० ६)

घटक द्रव्य—सफेद चन्दन का चूर्ण २० तो०, राल ४० तो०, लोवान १० तो०, लौंग २।। तो० लेकर सबको एकत्र पीसकर पाताल यन्त्र से तेल निकालें।

इसे वृक्क (गुरदों) तथा शिश्न पर लेप करने से नपुंसकता नष्ट होती है।

।। लेप प्रकरण ।।

नागरादि लेप (नपुंसका मृत ०। त० ६)

घटक द्रव्य-सोंठ, लबग,अकरकरा समान भाग लेकर अत्यन्त महीन पीसकर शहद मे मिलाकर मल्हम बनालें।

रात्रि को सोते समय इन्द्री पर लेप करके ऊपर से पान बांध दीजिये। इस प्रकार १ मास तक करने से नपुसकता नष्ट हो जाती है। (नोट—पान के ऊपर कपडे की पट्टी लपेट कर कच्चे सूत से ढीला बाधना चाहिये। यथा सम्भव ठण्डे पानी से इन्द्री को बचाना चाहिये।)

भल्लातकादि लेप ।धन्व०।

घटक द्रव्य—भिलावा, सुगन्धवाला, कमलिनी के पत्ते और काला नमक समान भाग लेकर सबको मिट्टी के बर्तन मे बन्द करके भस्म करें। लिङ्ग को भैंस के गोबर से अच्छी तरह रगडने के बाद कटेली के पके हुये फलो के रस में मिलाकर उपरोक्त भस्म का लेप करने से लिंग अत्यन्त पुष्ट और वृहत् हो जाता है।

मरिचादि लेप

काली मिर्च, सेंधा नमक, पीपल, तगर, कटेली के फल, चिरचिटे की जड, तिल, कूठ, जौ, उडद, सरसो और असगन्ध सबका समान भाग मिश्रित चूर्ण शहद मे मिला कर लेप और मर्दन करने से लिंग वढता है, स्तन पुष्ट (मोटे) होते हैं और भुजा तथा कान मासल हो जाते हैं।

महाराष्ट्र्यादि लेप । र० चि०

घटक द्रव्य—जलपीपल और कपूर के समान भाग मिश्रित चूर्ण को इमली के फल के रस मे घोटकर लेप करके स्त्री-समागम करने से स्त्री शीघ्र द्रवित होजाती है।

वज्रवल्ली लेप (धन्व० वाजीकरण)

घटक द्रव्य—हडजोड वच असगन्ध सिवाल और कटेली के पके फलों का चूर्ण समान भाग लेकर सबको पानी के साथ पीसकर लेप करने से लिंग अत्यन्त स्थूल हो जाता है।

अरिष्टकादि लेप (न०मृ० । त० ६)

घटक द्रव्य—रीठे का छिलका और अकरकरा बराबर-२ लेकर दोनों तीक्ष्ण मद्य में पीसकर शिश्न पर लेप करें और ऊपर से पान बाधे। इस प्रकार २१ दिन लेप करने से अयोनि जनित नपुसकता नष्ट हो जाती है।

अर्कक्षीरादिलेप (न० मृ० । त० ६)

घटक द्रव्य—गाय का घी आक का दूध और शहद समान भाग लेकर तीनों को कासे के पात्र मे डाल कर मर्दन करें। नित्यप्रति शिश्न पर इसकी मालिश करने से १ मास में शिश्न की शिथिलता और हस्त व्यभिचार जनित रोगों का नाश होता है।

एलादिलेप (न०मृ० । त० ६)

घटक द्रव्य—इलायची जावित्री सफेद कनेर की जड़ सेंमल की छाल और अफीम ६-६ माशे लेकर सबको वारीक पीस लें और १ तो० तेल मे मिलाकर गर्म करके शिश्न पर लेप करें। ऊपर से पान लपेट कर कच्चे सूत से बाध दें। रोज इसी प्रकार २१ दिन लेप करें। शिश्न पर शीतल पानी न लगने दें और मैथुन से परहेज करें। इससे नपुसकता अवश्य नष्ट होती है।

करवीरत्वगादि लेप (न० मृ० । त० ६)

घटक द्रव्य—२॥ तोला कनेर की जड को पीसकर २ सेर दूध में मिलाकर पकावें और फिर उसका दही जमाकर मक्खन निकालें। तदनन्तर जायफल जमालगोटा शु० वछनाग और सखिया समान भाग मिलित २॥ तो० को मक्खन मे मिलाकर अच्छी तरह खरल करें।

इन्द्री के अग्रभाग और सीवन को छोडकर शेष भाग पर यह लेप मलकर ऊपर से नागरवेल का पान बाध दें। इस प्रकार कुछ दिनो करने से नपुसकता नष्ट हो जाती है। यदि लेप लगाने से इन्द्री पर फुसिया निकल आवें तो उन पर धुना हुआ नवनीत लगाना चाहिए।

रात को लेप लगाकर नया पान बाधना और हर समय बधा रहना चाहिए। प्रयोगकाल में इन्द्री को ठडा पानी न लगने देना चाहिए।

—रस प्रकरण—

कामेश्वर रस (र च, वे र, यो र., न मृ । त ५)

घटक द्रव्य—जायफल, शुद्ध फिटकरी, शु० काले धतूरे के बीज, चमेली के फूल, अफीम, सीसा भस्म और शुद्ध हिंगुल समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर खस के क्वाथ में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। इन्हे मिश्री के साथ सेवन करने से कामशक्ति अत्यधिक बढ जाती है।

(कामेश्वर रस वृ० यो० त० । त० १४७)

घटक द्रव्य—अभ्रक भस्म ककोल, कूठ, असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारी कन्द, मूसली, गोखरू, तालमखाना, केले का कन्द, शतावर, अजमोद, उडद, तिल धनिया, मुलहठी, गगरेन, कचूर, शुद्ध धत्तूरा, भारङ्गी, काकडासिगी, सौंठ, मिर्च, पीपल, जीरा सफेद, कालाजीरा, चित्रक, दालचीनी इलायची तेजपत्ता, पुनर्नवा, गजपीपल, द्राक्षा, अडूसा की जड की छाल, कौंच छिलका रहित, सेंमल की मूसली, हर्रे, वहेडा, आवला–समान भाग लेकर चूर्ण करें, इसे सबके बराबर मिश्री की चासनी में मिला कर गोलियां बना लें या अवलेह ही रहने दें। मात्रा—७॥ माशे। अनुपान—मिश्री युक्त दूध, इसके सेवन से वीर्य वृद्धि होती है, क्षीण शरीर पुष्ट हो जाता है तथा क्षय, कास श्वास, अतिसार, अग्निमांद्य, अर्श, ग्रहणीरोग, प्रमेह, कफ विकार और रक्त विकारों का नाश होता है। इसे १ वर्ष तक सेवन करने से पलित रोग भी नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग स्तम्भक, स्त्री द्रावक और श्रेष्ठ रसायन है। इसके सेवन से काम शक्ति बढ़ती है।

कुसुमायुद्य रस (र० र० स० । उ० अ० २७)

घटक द्रव्य—शु० पारद १० तोला, शु० गन्धक २० तोला, हिंगुल द्वारा मारित स्वर्ण भस्म ३॥। तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १० तो, रौप्य माक्षिक भस्म १० तो., कान्तलोह भस्म, मण्डूर भस्म, अभ्रक भस्म १।-१। तो० लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें और फिर अन्य औषधिया मिलाकर सबको अच्छी तरह खरल करके खुले मुंहवाली मूषा मे भरकर उसे वालुका यन्त्र में रक्खे और नीचे अग्नि जलावें। जब रेत अच्छी तरह गर्म हो जाय तो मूषा मे थोडा-२ ब्राह्मी का रस डालना शुरू करें और औषधि को लोहे की सलाई से हिलाते रहे। इसी प्रकार २४ घटे ब्राह्मी का रस डालते हुए पाक करें और फिर क्रमश. वासा (अडूसा) का स्वरस, हाथी शुण्डी का रस, त्रिकुटे का क्वाथ, मेढासिगी का रस, चित्रक का क्वाथ डालते हुये १ दिन प्रथक पकाकर। तदनन्तर स्वाग शीतल होने पर औषधि को निकाल कर उसे उपरोक्त समस्त औषधियो के रस मे पृथक-पृथक १-१ दिन घोटकर १-१ लघुपुट लगावें। इसमे समान भाग मोचरस मिलाकर ६ रत्ती की मात्रा में सेवन करने और मधुर आहार करने से ३ मास मे वलि पलित का नाश होकर बहुत सी स्त्रियो से रमण करने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है। व्यवहारिक मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक है।

मन्मन्थाभ्र रस

घटक द्रव्य—शु० पारद ४० ग्रा, शु० गन्धक ४० ग्राम, भीमसेनी कपूर १० ग्राम, वङ्ग भस्म ११ ग्राम, ताम्र भस्म ५ ग्राम, लोह भस्म १० ग्राम, विधारा, जीरा, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाना बीज, बला-मूल की छाल, कौंच बीज, अतीस, जावित्री, जायफल, लवङ्ग, भाग के बीज, श्वेत राल, अजवायन प्रत्येक ५-५ ग्राम। इनके चूर्ण को एकत्र मिश्रित कर जल से घोटकर २-२ रत्ती की वटिया बनावें। अनुपान—कवोष्ण दुग्ध-इसके सेवन से अत्यन्त सहवास करने वाले पुरुष का भी लिङ्ग शैथल्य को प्राप्त नही होता। इसके सेवन से बल तथा वीर्य का क्षय नहीं होता। वृद्ध पुरुष भी इसके सेवन से १६ वर्ष के तरुण पुरुष के समान काम रूपी होता है। यह रसायन वल्य वाजीकरण है। इसके सेवन से जाठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा ध्वजभग प्रभृति रोग नष्ट होते है। मात्रा—२-२ वटी सुवह तथा रात्रि मे।

मदन कामेश्वर (वृ० यो० त० । त० १८७)

घटक द्रव्य—शु० गन्धक, शु० पारद और अफीम समान भाग लेकर कज्जली बनावें और इसे पान के रस मे १ प्रहर (३ घटे) घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनावें। इसमे से एक गोली मिश्री के साथ खाकर उसके बाद किसी प्रकार का भोजन न करें और रात होने पर भैस का दूध पीवें। इस प्रकार यह गोली खाकर मैथुन किया जाये तो जब तक मिश्रीयुक्त नीबू का रस न पिया जायगा तब तक वीर्यपात नही होगा।

मदन मन्जरी गुटिका (वृ० यो० त० । त० १४७)

घटक द्रव्य—अभ्रक भस्म ४ भाग, वङ्ग भस्म २ भाग, रससिंदूर १ भाग, भांग का चूर्ण ७ भाग, तथा

दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नाग केशर, जायफल, काली मिर्च, पीपल, सोंठ, लवङ्ग और जाविश्री का चूर्ण २-२ भाग लेकर सबको एकत्र करके घोटकर उसमे सबसे दूनी मिश्री एव आवश्यकतानुसार घी और शहद मिला कर मोदक बनावें। इन्हे सेवन करने से कामशक्ति अत्यन्त प्रबल हो जाती है। मात्रा २-३ माशे।

मदन मुन्मद्रस (र र स । उ ख अ २७)

घटक द्रव्य—आधा माशा शुद्ध पारद को २१ दिन सेंमल की छाल के रस मे घोटें। इसी प्रकार गोघृत मे शुद्ध गन्धक को भी २१ दिन सेंमल की छाल के रस में घोटें और जब घोटते-घोटते दोनो सूख जायें तो दोनो को एकत्र घोटकर कज्जी बनालें और उसे काच के खरल में डालकर १ दिन पान के रसमें घोटकर सुखा लें। रात्रि के समय इसे केले की फली के साथ खाकर ऊपर से दूध पीने से कामशक्ति की इतनी बृद्धि होती है फिर एक पुरुष अनेको स्त्रियो के साथ रमण कर सकता है।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक

मदन सन्दीपन (चूर्णम् । र० र०)

घटक द्रव्य—गोखरू, तालमखाना, नागर मोथा, कोच का बीज, शतावर, मुलहठी, क्षीर काकोली, ताल मूली, गिलोय, सुगन्धवाला, सेमल की मूसली, लोह भस्म अभ्रक भस्म, विदारी कन्द, ताल मस्तक, हस्ति कर्ण (पलाश भेद) की छाल, बीज बन्द (खरेटी के बीज) आवला, जायफल, कसेरु, सिंघाडा, मापपर्णी, भागरा, केशर, वच, शु० शिलाजीत, शु० गन्धक, शु० पारद, स्वर्ण माक्षिक, वड की कोमल जटा, छोटी इलायची, (वासमती के चावल, साठी चावल, गेहूँ, उडद, छिलके रहित जो, समान भाग लेकर यथाविधि चूर्ण बनावें और उसमे सबके बराबर मिश्री मिलालें।

नोट—चूर्ण योग्य चीजो का पृथक-पृथक चूर्ण लेकर तोलना चाहिए और पारे गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें समस्त औषधिया मिलाकर अच्छी तरह घोटना चाहिए। इसमे नित्य प्रति १। तोला चूर्ण घी और शहद के साथ सेवन करने तथा ऊपर से शीतल दुग्ध पान करने से काम शक्ति की अत्यन्त बृद्धि होती है। इसके प्रभाव से वीर्यहीन व्याधि पीडित, प्रमेही, मूत्रकृच्छ्री, ८० वर्ष का वृद्ध पुरुष भी युवा के समान स्त्री समागम कर सकता है। स्त्री दोष से उत्पन्न हुई नपुसकता भी इसके सेवन से नष्ट हो जाती है। यदि इसे स्त्री सेवन करे तो वह वीर स्वस्थ और दीर्घायु पुत्र जन्म देती है। इस चूर्ण के होते हुये अन्य सैकडों पौष्टिक औषधिया बिलकुल व्यर्थ हो जाती हैं। केवल इसी प्रयोग के सेवन से शरीर दिनो-दिन इस प्रकार पुष्ट होने लगता है जैसे पानी से नवीन घास। यदि इसे ४० दिन तक सेवन किया जाय तो पुरुष सौ स्त्रियो के साथ रमण करने मे समर्थ हो सकता है। व्यवहारिक मात्रा—६ माशे।

मदन सुन्दर रस—र० र०

घटक द्रव्य—स्वर्ण माक्षिक भस्म, रौप्यमाक्षिक भस्म, लोह भस्म, शु० शिलाजीत, शु० पारद, वाय-बिडग का चूर्ण, शु० गन्धक। प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर उसे लोहे के खरल मे डाल घी के साथ मर्दन करें। इसे १० ग्राम की मात्रानुसार १ मास तक सेवन करने से काम शक्ति अत्यन्त तीव्र हो जाती है। व्यवहारिक मात्रा ४ से ६ रत्ती।

मदनानन्द मोदकम् । भैं० र०

घटक द्रव्य—शु० पारद शु० गन्धक लोह भस्म प्रत्येक १०-१० ग्राम, अभ्रक भस्म ३० ग्राम कपूर सेंधा नमक जटामासी, आवला छोटी इलायची सोंठ पीपल काली मिर्च जाविश्री जायफल तेजपत्ता जीरा काला जीरा मुलहठी बच कूठ हल्दी देवदारू हिज्जल बीज सुहागा भारङ्गी सोंठ नागकेशर काकडासिंगी तालीशपत्र द्राक्षा चित्रक दन्तीमूल बला अतिबला दालचीनी धनिया गज-पीपल कचूर सुगन्धवाला मोथा प्रसारणी विदारी कन्द शतावर आक की जड कौंच के बीज गोखरू बिधारे के बीज भाग के बीज प्रत्येक का चूर्ण १०-१० ग्राम इस सम्पूर्ण चूर्ण को शतावर के रस में मर्दन कर शुष्क करलें और पुन: बारीक चूर्ण करके उसमे इस चूर्ण से चतुर्थांश

सेमल की मूसली का चूर्ण मिलावें। एव इस सम्पूर्ण चूर्ण से आधा विशुद्ध भाग का चूर्ण डालकर एकत्र मिश्रित कर बकरी के दूध से सेवन करके शुष्क करलें। तदनन्तर सम्पूर्ण चूर्ण से दुगनी खाड, खाड से चौगुने दूध मे घोलकर मन्द मन्द अग्नि पर पकावें। चासनी हो जाये तव उपयुक्त चूर्ण का प्रक्षेप दें और अच्छी प्रकार आलोडन करें और नीचे उतार लें। पश्चात् दालचीनी तेजपत्र छोटी इलायची नागकेशर और सोठ मिर्च पीपल का समान भाग मिश्रित २० ग्राम चूर्ण मिला दें। अत मे उपर्युक्त मात्रा मे घृत मधु मिलाकर मोदक वनावें। मात्रा २ माशे से आधे तोले तक। पाक करने के वाद शिव इन्द्र कामदेव अग्नि गणेश प्रभृति देवो के लिए नैवेद्य दें तथा अग्नि के मूल मत्र द्वारा मोदक को अभिमन्त्रित करके अग्नि को समर्पण करें।

अभिमन्त्रित करने का मन्त्र—ॐ ह्री श स अमृत कुरु कुरु अमृते अमृतादभवाय नम ही अमृत कुरु कुरु अमृतेश्वराय स्वाहा—इस मन्त्र से आमन्त्रित करके स्वर्ण पात्र या चादी का पात्र या काच का पात्र अथवा मिट्टी के पात्र मे औषधि रख दें। अगले दिन प्रात काल शुद्ध होकर उमा महेश्वर का पूजन करें।

अनुपान—रुद्राक्ष तिल अथवा खीर। सम्भोग के लिए साय काल मोदक सेवन करना चाहिए। तीन सप्ताह तक इसका प्रयोग करने से मनुष्य कामान्ध हो जाता है। इसके सेवन से वीर्य वृद्धि होती है एव रति शक्ति वढती है। इसका सेवन करने वाले का रूप कामदेव के समान सुन्दर स्वर कोयल के समान मधुर तथा गरुड के समान दीर्घ दृष्टि होती है। इसके सेवन से वृद्ध पुरुष भी युवा के समान सामर्थ्ययुक्त होता है। एव १०८ मोदक सेवन करने से यह अमृत के समान गुण करता है। यह वीर्य वर्धक रसायन है। इसके सेवन से अपस्मार ज्वर उन्माद क्षय वात व्याधि—काम शोथ भगन्दर अर्श अग्निमांद्य अतिसार ग्रहणी बहुमूत्र प्रमेह शिरो रोग अरुचि तथा अन्य वातज पैत्तिक श्लेष्मिक रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन से जो स्त्री वन्ध्या मृतवत्सा अथवा नष्ट पुष्पा हो वह भी वहुपुत्रा तथा जीव वत्सा होती हैं। यह मोदक सूतिका रोग को नष्ट करता है और सम्पूर्ण रोगों की उत्कृष्ट औषधि है।

महालक्ष्मी विलास रस—रसे. सा. स

घटक द्रव्य—वज्राभ्रक भस्म ५० ग्राम शु० गधक २५ ग्राम वग भस्म १० ग्राम शु० पारद ७॥ ग्राम शु० हरताल ७॥ ग्राम ताम्र भस्म ३॥। ग्राम कपूर ७॥ ग्राम जावित्री ७॥ ग्रा० जायफल ७॥ ग्रा० विधारे के बीज धतूरे के शुद्ध वीज १०-१० ग्रा० एव स्वर्ण भस्म ५ ग्रा० लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली वनावें और फिर उसमे अन्य औषधिया मिलाकर सवको अच्छी तरह घोट कर २-२ रत्ती की गोलिया वनाले। इसके सेवन से भयङ्कर सन्निपात, गल रोग, आन्त्र वृद्धि अतिसार ११ प्रकार के कुष्ठ २० प्रकार के प्रमेह, पुराना और वशानुगत कफ वातज नाडीव्रण भयकर व्रण अर्श भगदर खासी पीनस क्षय स्थूलता रक्त विकार हर प्रकार का आमवात जिह्वास्तम्भ गलग्रह उदर रोग कर्ण नासिका अक्षि और मुख की जडता समस्त प्रकार के शूल शिर पीडा और स्त्री रोग नष्ट होते हैं। इसकी प्रात काल १-१ गोली खाकर उडद की पिट्ठी के पदार्थ दूध दही मांडयुक्त भात सुरा और शीधु सेवन करने से मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। वृद्ध पुरुष युवकों की प्रतिस्पर्द्धा करने लगता है। शुक्र क्षय और लिङ्ग शैथिल्य नही होता, केश सफेद नही होते तथा नित्यप्रति सैकडो स्त्रियो से समागम करने की शक्ति आ जाती है।

मधुयष्ट्यादि चूर्णम्-नपु० मृ०। त० ३

घटक द्रव्य—मुलहठी वशलोचन आवला गोखरू और कोच के वीज। इनका चूर्ण तथा वग भस्म और अभ्रक भस्म समान भाग लेकर सवको एकत्र घोटकर उसे आंवले के रस की भावना दें। इसे शहद और घी में मिलाकर चाटने और ऊपर से दूध पीने से वीर्य वृद्धि होती है और नपुन्सकता का नाश होता है। मात्रा—१ माशा।

मन्मथाभ्र रस (भै र, र र. स)

घटक द्रव्य—शु० पारद शु० गन्धक २५-२५ ग्राम

अभ्रक भस्म २ ग्राम, कपूर ७।। ग्रा० वंग भस्म ७।। ग्रा० ताम्र भस्म ३।।। ग्रा० लोह भस्म १० ग्रा० तथा विधारा मूल जीरा विदारीकन्द शतावर तालमखाना बीजबन्द कौंच के बीज अतीस जाविश्री जायफल लवग भाग के बीज सफेद राल और अजवायन सबका ५ ५ ग्रा० चूर्ण लेकर सबको एकत्र घोट लें।

इसे २ रत्ती मात्रानुसार खाकर ऊपर से मन्दोष्ण दूध पीना चाहिए। यह अत्यन्त बलकारक और वाजीकरण है। इसको सेवन करने वाला पुरुष सौ स्त्रियो के साथ समागम करे तो भी न तो लिङ्ग शैथिल्य ही होता है न वीर्य की कमी होती है और न बलह्रास होता है।

नोट—इसे जल के सयोग से घोट कर १-१ रत्ती की गोलिया बनानी चाहिये।

मल्ल चन्द्रोदय (रसायनसार सग्रह)

घटक द्रव्य—सखिया को ३-३ बार थूहर के और आक के दूध मे पृथक-२ घोटकर सुखा लें। तदनन्तर उसमें उसके बराबर बुभुक्षित पारद और दो गुना गधक मिलाकर कज्जली बना लें। इसे आतशी शीशी मे भर कर बालुका यन्त्र में ४ प्रहर तक तो शीशी का मुख खुला रखें और फिर डाट लगाकर १।। दिन तक बबूल की लकडी की तीव्र आच दें। तत्पश्चात् शीशी के स्वाङ्ग शीतल होने पर उसे सावधानी से तोड कर उसके गले मे लगे हुए चन्द्रोदय को निकाल लें।

अनुपान—कपूर जायफल, कस्तूरी अम्बर और इलायची का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर रखें। उक्त चन्द्रोदय को इस अनुपान मे मिलाकर शहद के साथ सेवन करने से शुक्र की क्षीणता नपुसकता नष्ट होती है। मात्रा २।। रत्ती।

पुष्पधन्वा रस (भै र, यो र, वृ यो त —त १४०)

घटक द्रव्य—रससिन्दूर सीसा भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, शु० धतूरे के बीज, विजयसार, मुलहठी सेंमलकी मूसली और पान समान भाग लेकर सबका यथाविधि चूर्ण करलें। इसे घृत मधु और मिश्री युक्त दूध के साथ सेवन करने से बल आयु की वृद्धि होती है। सैकडो स्त्रियों से रमण करने की शक्ति प्राप्त होती है।

नोट—पान के रस मे घोटकर २।।-२।। रत्ती की गोलिया बनावे। मात्रा—२ गोली।

महाराज वटी (भै. र, र च, रसे मा स)

घटक द्रव्य—शु० पारद शु० गन्धक १६-१६ ग्रा० विधारा का बीज वङ्ग भस्म और लोह भस्म ८-८ ग्रा० स्वर्ण भस्म ताम्र भस्म और कपूर ४-४ ग्रा० तथा भांग शतावर सफेदराल लबङ्ग तालमखाना विदारी कन्द मूसली पाक कौच के बीज जायफल जाविश्री बला नागबला प्रत्येक २-२ ग्रा० लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनालें और फिर उसमें अन्य औषधिया मिला कर सबको तालमूली के रस में घोटकर ४-४ रत्ती की गोली बनावें। इन्हे शहद के साथ प्रात काल सेवन करने से विषम ज्वर नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से धातुगत ज्वर, वातज पित्तज और सन्निपातज आदि अनेक प्रकार के ज्वर अवश्य नष्ट होते हैं। ये गोलिया खासी श्वास और क्षय को भी लाभदायक हैं। बल और पुष्टि कर वृद्धि करती हैं। इनके सेवन से मैथुन शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि नित्यप्रति स्त्री समागम करने पर भी बल वीर्य की हानि नही होती है। कामला, पाडु रोग और राजयक्ष्मा मे भी गुणकारी तथा राजाओं के सेवन करने योग्य है।

महाराज वटी—यो ग, वृ यो त। त १४७

घटक द्रव्य—१ भाग ढाक के बीजो के छोटे-छोटे टुकडे करके उन्हे बकरी के दूध मे भिगो दें और ३ प्रहर बाद निकाल कर छाया मे सुखा लें। अब इनमे १५ भाग शु० गन्धक मिलाकर सबको आतशी शीशी मे भरकर पाताल यन्त्र विधि से तेल निकालें। इसमे से ३ रत्ती तैल पान मे लगाकर खाना चाहिए। अथवा हथेली पर शु० पारद गन्धक की कज्जली रखकर उस पर ३ रत्ती यह तेल डाल कर दोनो को ऊङ्गली से अच्छी तरह मिला कर एक जीव होने से खाकर ऊपर से पान खावें। इसे ६ मास तक इसी प्रकार सेवन करने से और शाक तथा अम्ल रस का त्याग करने से नपुसक पुरुष भी अपूर्व

शक्तिशाली होकर सैकड़ों मदमस्त रमणियों से समागम करने में समर्थ हो जाता है। इसके सेवन से वलि पलित कुष्ठ क्षय वातज पित्तज और कफज रोग नष्ट होते हैं। सर्व श्रेष्ठ रसायन है।

मानिनी मान मर्दन रस—र स क। उल्लास ४

घटक द्रव्य—समान भाग पारे गन्धक की कज्जली ५० ग्रा०, शु० धतूरे के बीजों का चूर्ण ५० ग्रा० लेकर दोनों को एकत्र करें और धतूरे के तेल में घोटकर रखें। इसे ६ रत्ती की मात्रानुसार मिश्र युक्त दूध के साथ सेवन करने से समस्त प्रमेह नष्ट होते हैं। कामेच्छा उत्तेजित होती है और वीर्य स्तम्भन होता है यह उत्तम स्त्री द्रावक औषधि है।

नोट—६ रत्ती की मात्रा ज्यादा प्रतीत होती है अत २ रत्ती की मात्रा ही श्रेष्ठ है।

मृत कन्दर्प जीवन रस। र० न०

घटक द्रव्य—रस सिन्दूर अभ्रक भस्म वङ्ग भस्म लोह भस्म कस्तूरी स्वर्ण भस्म अकरकरा लवग शुद्ध हिंगुल जावित्री जायफल और शु० धतूरे के बीज समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर १-१ दिन पान और अद्रक के रस में घोट कर सुरक्षित रखें। मात्रा ३ रत्ती। इसे शहद और घी में चाटकर ऊपर से गर्म करके ठण्डा किया हुआ दूध पीना और फिर पान खाना चाहिये। इसे १ मास तक सेवन करने से सैकड़ों स्त्रियो से रमण करने की शक्ति प्राप्त होती तथा शरीर कामदेव के सदृश रूपवान हो जाता है। इसे दीर्घकाल तक सेवन करने से वृद्ध पुरुष भी युवा के समान हो जाता है। इस के सेवन से वलिपलित रहित १०० वर्ष की रोग रहित आयु प्राप्त होती है। इसे यथोचित अनुपान के साथ अनेक रोगों में प्रयुक्त कर सकते हैं। इस पर नित्य स्निग्धान्न सेवन करना और तेल खटाई का त्याग करना चाहिये।

वृहत् पूर्णचन्द्र रसः—र रा सु, र.च., र सा स

घटक द्रव्य—शु० पारद और शु० गन्धक २५।२५ ग्रा०, लोह भस्म, अभ्रक भस्म ५०।५० ग्रा०, चादी और वग भस्म २५।२५ ग्रा०, स्वर्ण भस्म, वग भस्म, ताम्र भस्म, कासीस भस्म, जायफल, लौंग, इलायची, भागरा, जीरा, कपुर, फूल प्रियगु और नागरमोथा १०।१० ग्रा० लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण महीन कपडछन करके मिलाकर सबको ग्वार के पाठे के रस मे त्रिफला और केमुक (कदम्ब) के रस की पृथक-पृथक १ १ भावना देकर अरण्ड के पत्तो मे लपेटकर अनाज के ढेर मे दबादें और फिर २४ घण्टे बाद पत्तो मे से औषधिया निकालकर खरल करके चने के बराबर गोलिया बनालें। इसे पान मे रखकर खाने से समस्त रोग नष्ट होते हैं। यह रस वल्य, रसायन और वाजीकरण है, तथा अष्ठीलिका खासी, श्वास, अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृच्छूल, पित्तज शूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, पुरानी सग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डु, प्रमेह और वात रक्त का नाश करता है। इसके सेवन से मेधा और वाक् शक्ति की वृद्धि होती है तथा मनुष्य अत्यन्त बलवान, कान्तिमान, रूपवान हो जाता है।

यह रस पुत्र हीन स्त्री तथा दुर्बल क्षीण अल्पवीर्य और वृद्ध पुरुषों के लिये अत्यन्त हितकारी है। ओज, तेज और कामशक्ति को बढाता है। इसके सेवन से पलित रोग नष्ट होता और वृद्ध पुरुषों मे तरुणो के समान शक्ति आ जाती हैं। यह श्रेष्ठ रसायन और शीघ्र फल देने वाला अनुभूत प्रयोग राजाओ के सदैव सेवन करने योग्य है।

भोग पुरन्दरी गुटिका—र स क, वृ यो त। त १४७

घटक द्रव्य—शु हिंगुल, दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची नागकेशर, पीपल, अकलकरा, लवग, सोठ, सफेद चन्दन जायफल, केशर, अफीम, कस्तूरी, कपूर १-१ भाग मिश्री ७॥ भाग भाग ७॥ भाग लेकर सबका महीन चूर्ण करके उसे शहद मे घोटकर बेर की गुठली के बराबर गोलिया बनालें। ये गोलिया शुक्र स्तम्भक बल मास वर्धक और अत्यन्त वाजीकरण हैं। इनके सेवन से मनुष्य चटक समान एक ही समय में अनेक वार स्त्री समागम कर सकता है।

वङ्गेश्वर रस — यो र, वृ नि र

घटक द्रव्य—वग भस्म, कान्त लोह भस्म, अभ्रक भस्म और धतूरे के फूलो का चूर्ण समान भाग लेकर सबको घृत कुमारी के रस की सात भावना देकर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। इसके सेवन से २० प्रकार का प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र सोमरोग, पाण्डुरोग तथा अश्मरी का नाश होता है।

वङ्गेश्वर रस।यो र।

घटक द्रव्य—शु पारद और वग भस्म १ १ तथा शु. गन्धक ४ ग्राम लेकर घृत कुमारी के रस मे घोटकर सुखालें और कपडमिट्टी की हुई आतशी शीशी मे भरकर उसे वालुका यन्त्र मे रखकर क्रमश. मृदु मध्य और तीव्र अग्नि दें। तदनन्तर यन्त्र के स्वाङ्ग शीतल होने पर उसमें से औषध को निकालकर पीसकर सुरक्षित रक्खें।

असगन्ध, गिलोयसत, मोचरस, शतावर, गोखरू, आंवला कुम्हडा, वाराहीकन्द, तेजपत्ता, पीपल, हर्र, वहेडा, सेमल के फल, नागरमोथा और मुलहठी का चूर्ण १-१ भाग तथा मिश्री सबके बरावर लेकर एकत्र मिलाकर रखें।

प्रात काल ४ रत्ती उपरोक्त रस और ७॥ ग्राम यह चूर्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करने से बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्र के साथ रक्त आना प्रमेह-मधुमेह-शुक्र ह्रास और गुप्त इन्द्री की शिथिलता आदि रोगो का नाश होता है। लवण और अम्ल पदार्थो से परहेज करना चाहिये। व्यवहारिक मात्रा २ रत्ती।

वृहद् वङ्गेश्वर रस

(रसे सा. स, र रा सु, र च, भै र)

घटक द्रव्य—वग भस्म, शु पारद, शु गन्धक, चादी भस्म, कपूर और अभ्रक भस्म १०।१० ग्रा० तथा स्वर्ण भस्म, मोती भस्म ३।।। ३।।। ग्रा० लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधें मिलाकर सबको भागरे के रस मे खरल करके २-२ रत्ती की गोलिया बनालें। इसके सेवन से २० प्रकार के साध्य अथवा असाध्य प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुस्थ ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातपित्त और कफजन्य ग्रहणी रोग, आमदोष, अग्निमान्द्य, अरुचि, सोमरोग, वहुमूत्र, अनेक प्रकार का मूत्रमेह, मूत्रातिसार का नाश होता है।

यह रस ओज, तेज, कामशक्ति, बल, वर्ण, रूचि और शुक्र की वृद्धि करता है। अनुपान–औषध के पश्चात् दोषों के अनुसार बकरी या गौ का दूध अथवा निर्मल दही पीना चाहिये।

यह औषधि वालक से लेकर प्रौढ़ मनुष्यों तक को सेवन कराई जा सकती है।

वृहत् कामचूड़ामणि रस (भै० र०)

घटक द्रव्य—मोती भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, कपूर, जावित्री, जायफल, लवग, वङ्ग भस्म प्रत्येक १ भाग, रजत भस्म आधा भाग, दालचीनी, इलायची तेजपत्र, नागकेशर प्रत्येक आधा भाग इन्हें एकत्र शतावर के रस में सात वार भावना दें और १-१ रत्ती की वटी बनावें। अनुपान–शीतल दूध। अनुपान भेद से यह रस विविध रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से रतिशक्ति वढती है। यह वीर्यवर्धक तथा लिङ्ग दृढ़ कर है। इसके प्रयोग से ध्वजभङ्ग, प्रमेह, मूत्ररोग, मन्दाग्नि शोथ तथा स्त्रियो के आर्तव सम्बन्धी रोग नष्ट होकर पुष्टि होती है। यह चिकित्सक को यश प्रदान करता है। यह आयु आरोग्य वर्धक है। मैंने इसे बनाकर व्यवहार मे लिया इससे आशातीत लाभ होता है।

निर्मल आयुर्वेद सस्थान अलीगढ द्वारा वृ० काम चूडामणि रस का निर्माण निम्न प्रकार होता है–

स्वर्ण भस्म १/४ ग्राम, स्वर्ण माक्षिक भस्म ३ ग्राम, मोती भस्म ३ ग्रा, वङ्ग भस्म २ ग्रा, स्वर्ण वङ्ग २ ग्रा; जायफल, जावित्री, लौंग, कपूर २-२ ग्रा, चादी के वर्क १/२ ग्रा, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, तेजपात, केशर १-१ ग्रा, सिद्ध मकरध्वज ३ ग्रा., शतावर, अश्वगन्धा क्वाथ की भावना। १-१ रत्ती की गोलियां। स्वर्ण वङ्ग का आवरण नही चढाया है। अपितु गोलियों मे ही निर्माण करते समय डाल दिया है। २-२ गोली प्रात. रात्रि को मलाई में चाटकर ऊपर से उष्ण गोदुग्ध पीवे, अपूर्व लाभ होगा। १ माह को पर्याप्त १२० गोलियों की शीशी का मूल्य १८० रु० है।

नारी मत्त गजाकुश रस (वृ यो त -त १४६)

घटक द्रव्य—रस सिन्दूर १ भाग, स्वर्ण भस्म २ भाग नाग भस्म ३ भाग, अभ्रक भस्म ४ भाग, वङ्ग भस्म ५ भाग, लोह भस्म ६ भाग, चादी भस्म ७ भाग, मन-सिल ८ भाग और स्वर्ण माक्षिक भस्म ९ भाग, तथा शुद्ध अफीम सबमे आधी लेकर सबको एकत्र खरल करके धतूरे और भांग के पत्तो के रस, लवग के क्वाथ, अकर-करा के क्वाथ, कचनार के स्वरस, पीपल के क्वाथ दोनो प्रकार की मुण्डी के रस, नाग वला (गगरेन) के क्वाथ और केशर के पानी मे ३-३ दिन पृथक-२ घोट कर ३-३ रत्ती की गोलिया वनालें। इनमे से प्रात काल १-१ गोली केशर और लोंग के चूर्ण के साथ खाने और अम्ल पदार्थो का त्याग करने से प्रमेहादि रोग नष्ट होने तथा अनेकों स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति प्राप्त होती है।

पञ्चवाणो रस (वृ यो. त -त १४७)

घटक द्रव्य—शु० पारा, अभ्रक भस्म, सीसा भस्म लोह भस्म, शु० गन्धक, वङ्ग भस्म और कोडी भस्म १-१ भाग तथा स्वर्ण भस्म १/२ भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली वनावें। तत्पश्चात उसमे अन्य औषधें मिला कर उसे ३ भावना गाय के दूध की, २१ भाग के रस की, ७ धतूरे के रस की, तथा ७-७ भावना लौंग, जायफल, केशर, ककोल, अकरकरा, गजपीवल और सफेद चन्दन के क्वाथ की १ भावना कस्तूरी की देकर सुरक्षित रक्खे। इसके सेवन से वीर्य वृद्धि होती और पुरुपत्व वढता है। यह इन्द्रियो की क्षीणता को नष्ट करता है तथा लिंग को प्रवृद्ध और दृढ करके अनेको स्त्रियो से रमण करने की शक्ति देता है। मात्रा—२-३ रत्ती।

पतग योग (वृ यो त — त १४७)

घटक द्रव्य—पतग का चूर्ण जाविश्री और-अफीम १-१ ग्राम, शु० शिगरफ २ ग्राम लेकर सबको घोटकर चूर्ण बनावें। इसे यथोचित मात्रानुसार थोड़े दूध से सेवन करने से वीर्य स्तम्भन होता है। शुक्र स्तम्भन के लिये यह एक महान योग है। मात्रा—२-३ रत्ती तक।

नोट—यह उत्तम तथा सरल योग है। इसे नित्य सेवन नही करना चाहिए।

पारद गुटिका (र र रसायन, वि)

कृष्ण धत्तूर तैलेन पारद घर्षयेद्दिनम्।
त्रिलोहैवेष्टिन वद्ध तत्कट्या वीर्य धारकम्॥

घटक द्रव्य—शु पारद को काले धत्तूरे के तैल मे घोटे। फिर उसमे समान भाग त्रिलोह(सोना चादी ताम्र) का वारीक चूर्ण मिला घोटकर गोली वनावें। इन्हें कमर मे वाधने से वीर्य स्तम्मन होता है।

प्रमोद चक्रम् (मोफरवा) भै र.

घटक द्रव्य—जाविश्री, नाग केशर, पीपल, शीतल चीनी माजूफल, श्याम लता, कायफल, अनन्त मूल अगर वच, मोथा कचूर, रूमी मस्तङ्गी, सेमल की मूसली, धाय के फूल कुटज, गोखरू, मेंथी के वीज, शतावर, तालमखाना, वेर की गुठली की मींगी, धत्तूरे के बीज, कमल, कूठ, पद्मकेशर,मुलहठी, चन्दन, जायफल, विदारी कन्द, श्वेत मूसली, केला, प्रियगु, जीवक ऋषभक, सोठ मिर्च, त्रिफला, छोटी इलायची, दालचीनी धनिया, चोब-चीनी, समन्दरशोष, लवग, अकरकरा, गन्धबाला, कपूर केशर, कस्तूरी अभ्रक भस्म स्वर्ण भस्म, चादी भस्म, नाग भस्म, बङ्ग भस्म, लोह भस्म, हीरक भस्म, ताम्र भस्म, मुक्ता भस्म, रस सिंदूर, शु० हरताल, प्रत्येक समभाग। इस चूर्ण से चतुर्थांश विशुद्ध भाग के पत्तो का चूर्ण, इस समुदित चूर्ण से आधी विमल खाड तथा खाड के समान मधु। किंचित् जल देकर अति मन्द आच पर पकावें जब लेह योग्य पाक हो जाय तब नीचे उतार लें। किंचित् शीतल होने पर घृत युक्त चूर्ण को डालकर कडछी से अच्छी प्रकार मिला दें। यह यवनोक्त मोफ-रवा लेह सर्वदा सेवन कर सकते हैं। यह काम वर्धक, रति शक्ति वर्धक तथा सम्पूर्ण रोग नाशक एव श्रीमानों और राजाओ के सेवन योग्य है। मात्रा १ ग्राम।

जहा हीरक भस्म का लेख हो वहा अभाव मे वैक्रात भस्म ग्रहण करें।

—★✿★—

शुक्राणु अल्पता

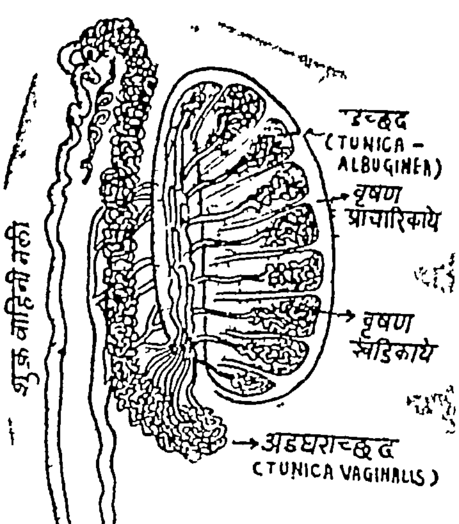
एक विवेचनात्मक विचार

डा० दिनेश कुमार एन. श्रीवास्तव एम डी (आयु०) आयुर्वेदोपचार केन्द्र
मदार मार्केट के सामने, पाणी गेट, वडोदरा (गुजरात)

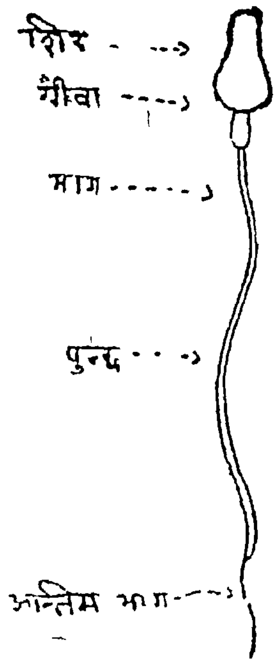
वैद्य श्री श्रीवास्तव जी आशास्पद युवा वैद्य हैं। आपने गुजरात आयु० विश्व विद्यालय द्वारा एम. डी उत्तीर्ण करके जो० श० आयु० महाविद्यालय नडियाद गुजरात मे अध्यापन कार्य किया है। बाद मे आप वर्तमान समय मे आयुर्वेदोपचार केन्द्र वडोदरा मे चिकित्सा व्यवसाय करते हैं। यहां आपके लेख मे क्रान्ति का दर्शन होता है। ऐसी हिम्मत अगर सभी वैद्य अपनायेंगे तो सचमुच ही आयुर्वेद का सच्चा स्वरुप समाज को मिलेगा और आयुर्वेद के प्रति दृढ विश्वास पैदा होगा। लेखक ने अभिनन्दनीय सेवा की है। आप से आशा की जाती है कि भविष्य मे भी आप धन्वन्तरि को सहायता करेंगे। लेख से अवश्य मार्गदर्शन मिलेगा।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शुक्राणु अल्पता का विचार करने से पूर्व शुक्र की उत्पत्ति, रचना तथा क्रिया को जानना आवश्यक है। सामान्यत ११ वर्ष से १४ वर्ष की आयु मे बालक के अन्दर अण्ड सबंधित सूक्ष्म-रस का प्रादुर्भाव होने लगता है जिसके परिणामस्वरूप युवावस्थाजन्य लक्षण प्रगट होने लगते हैं जैसे—जननाङ्ग-अण्ड-प्रोस्टेट ग्रन्थि को वृद्धि, आवाज मे भारीपन, चेहरे पर बाल आना इत्यादि। सूक्ष्म-रस के कारण अण्ड अण्डकोष मे उतरते हैं जिनकी सख्या दो होती है। अण्ड का निर्माण अनेक खण्डों (लोब्यूलस) से होता है। प्रत्येक खण्ड मे दो से तीन की सख्या मे सेमिलीफेरस नलिकायें होती हैं जिनमे शुक्राणु की उत्पत्ति होती है। आयुर्वेद मतानुसार शुक्र धातु स्वरूप मे है तथा स्रवित होने वाला शुक्र शरीर में गन्ने मे रस के समान विद्यमान रहता है जो सम्भोग-क्रिया के परिणामस्वरूप स्रवित होता है। अधिक मैथुन के कारण प्रतिलोम क्षय होता है तथा व्याधि संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। आधुनिक मतानुसार उत्पन्न हुए शुक्राणु इफरेन्ट नलिकओ द्वारा एपीडीडाइमस नामक भाग मे सचित होते हैं जिसका नियमन हाइपोथैलेमो-हाइपोफीजिएल सिस्टम द्वारा होता है जिससे फोलिकिल-स्टीमुलेटिंग-हारमोन (स्राव) निकलता है। शुक्राणु में टेस्टेरोन नामक श्वेत वर्ण का कोलेस्ट्राल मिलता है जिसका नियमन पिटयूटरी ग्रन्थि का ल्युटोनाइजिंग हारमोन करता है। मैथुन के समय एक बार मे ४-५ मि.ली. वीर्य का स्राव होता है जिसमें १००-४०० मिलियन/मि.ली शुक्राणु



संग्राही स्रोत (प्रणाली) दिखलाने हेतु
वृषण का चित्रीय अनुलम्ब काट



सजीव स्वस्थ शुक्रकीट

रहते हैं जिनकी गति (मोटिलिटी) ८०-९० प्रतिशत से ऊपर होती है। इसमे विकसित-अर्द्ध विकसित-अविकसित संक्रमण अथवा अन्य कारणो से पाये जाते हैं। यदि प्रयोगशाला परीक्षण में शुक्राणुओ की सख्या ६० मिलियन से कम हो तो इसे शुक्राणु अल्पता (ओलिगोस्परमिया) कहते है जिसके कारण सामान्यरूप से सन्तानोत्पत्ति की सम्भावना कम रहती है, ऐसा विचार है। शुक्राणु के प्रभाव को ऐजोस्परमिया कहा जाता है। शुक्राणु का उपस्थित होना अथवा न होना एवं मैथुन शक्ति का प्राबल्य अथवा ह्रास दोनों प्रथक प्रथक हैं। परन्तु सामान्यत इस सूक्ष्मता का विचार न करके दोनो क्रियाओं का एक ही मे समावेश करके बध्यत्व / पुंसत्वहीनता की सज्ञा दे दी जाती है। वस्तुतः शुक्राणु की अल्पता अथवा अभाव बध्यत्व (इम्पोटेन्सी) का लक्षण है जबकि मैथुन शक्ति की हीनता पुंस्त्वहीनता का लक्षण है।

शुक्राणुओं की बहुलता तथा गति को ध्यान मे रखा जाये तो भी वास्तविकता यह है कि स्त्री बीज को गर्भित करने के लिये मात्र एक सफल शुक्राणु की आवश्यकता होती है। अत. इतनी अधिक मात्रा में शुक्राणुओं का होना एक प्रश्न उपस्थित करता है ? परन्तु योनि मार्ग से गर्भाशय तक पहुचने तथा समागम में समय लगने के कारण शुक्राणुओं की सख्या तथा गति पर भार दिया जाता है। जबकि सामान्य से कम की सख्या में शुक्राणु होने पर भी गर्भ धारण देखा जाता है। आजकल शुक्राणु अल्पता को इतने विशाल रूप मे पीडित व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है कि वह व्यक्ति शारीरिक के साथ-साथ मानसिक रूप से भी टूट जाता है तथा लघुता ग्रन्थि का शिकार हो जाता है जो चिकित्सक के लिये निन्दनीय है। वस्तुत शुक्राणु अल्पता की स्थिति मे भी चिकित्सा के साथ मानसिक दृढता की आवश्यकता होती है। इसी अर्थ में बम्बई के प्रख्यात चिकित्सक डा० बी० पुरन्दर जो आधुनिक चिकित्सा के साथ-२ गर्भ धारण सम्बन्धित आयुर्वेद के प्रयोगो का भी गहन ज्ञान रखते हैं, अपने वक्तव्य मे शुक्राणु अल्पता के नाम पर बध्यत्व जैसी व्याख्या की तीव्र आलोचना करते हुए चिकित्सको, प्रयोगशाला कर्मियो को अपील करते है कि उक्त स्थिति मे भी गर्भाधान की सम्भावना रहती है। आवश्यकता है मात्र मानसिक रूप से पीडित व्यक्ति को बलवान करने की।

उक्त समस्या के लिए कुछ प्रयोग बता रहा हू जिनके दीर्घकालीन सेवन आहार-विहार का सम्यक् विचार करने से आशातीत लाभ की आशा रहती है—

(१) कौंच बीज, अश्वगधा, शतावरी, तालमखाना समान भाग कपडछन चूर्ण करके २ ग्राम चूर्ण २०० ग्रा दूध में क्षीर पाक विधि से प्रात रात्रि सेवन करावे।

(२) कृष्ण तथा श्वेत मूसली का कपडछन चूर्ण १ भाग, चीनी २॥ भाग की चासनी मे पाक करके बादाम, चिरौंजी, जायफल, मरिच, तालमखाना चूर्ण २-२ तोला का मिश्रण करके प्रात रात्रि १-२ तोला दूध के साथ सेवन करना।

(३) अश्वगधारिष्ट का भोजन पश्चात २० मि ली की मात्रा में सेवन करना।

(४) शुद्ध शिलाजीत का दूध के साथ प्रयोग करना।

नपुंसकता की आधुनिक चिकित्सा

डा० जहानसिंह चौहान एम एस सी, डी. एस सी ए, आयुर्वेद रत्न, डी ए एम एस

आधुनिक औषधियो मे नियोक्सीटोन से अधिकतर नपुसकता के रोगियों को लाभ होता है। इसके साथ ही फास्फोटोन निर्माता सिपला कम्पनी की योहिम्वीन की १ गोली का दिन मे ३ बार सेवन कराना चाहिए। मर्क क० का 'पासुमा स्ट्रान्ग' १ गोली दिन मे ३ बार सेवन करावें। इससे लाभ न मिलने पर एक दिन के अन्तर पर इस औषधि का मासपेशीगत सूचीवेध देना चाहिए।

उपरोक्त चिकित्सा के साथ ही साथ रोगी को विटामिन, लिवर ऐक्सट्रेक्ट, माल्ट ऐक्सट्रेक्ट तथा शरीर को पुष्ट करने वाली औषधियों में से—किसी एक को टानिक रूप मे देते रहना चाहिए।

इन्द्रिय में कठोरता उत्पन्न करने के लिए पेनेड्रीन मरहम की सुपारी पर मालिश करनी चाहिए। इसकी मालिश दिन मे २-३ बार आवश्यक है। नपुसकता की चिकित्सा में निम्न योग विशेष लाभकारी सिद्ध हुए हैं—

१ पासुमा स्ट्राग (ई मर्क) १ टिकिया, जैरियाटोन १ टिकिया, १ मात्रा है। ऐसी १ मात्रा दिन मे १ बार प्रात कालीन नाश्ते के १/२ घण्टे बाद जल से।

२ टेस्टोफास (मर्क) १ टिकिया, कैपसूल मल्टीविटाप्लेक्स फोर्ट १ कैपसूल, यह एक मात्रा है। ऐसी एक मात्रा प्रात भोजन के बाद तथा एक मात्रा सोते समय दूध के साथ।

३. टे० ऐण्ड्रस्ट २५ मि. ग्रा १ टिकिया, कै० ई० टॉपलैक्स १०० यूनिटस १ कैपसूल, योहिम्वीन हाईड्रोक्लोराइड १ टिकिया, गार्डीनल १/२ टिकिया, न्यूरोबियोन फोर्ट १ टिकिया पीस कर पुडिया बना लें। यह १ मात्रा है। ऐसी एक मात्रा प्रात और १ मात्रा सोते समय दूध से दें।

नोट—१५ दिन तक खिलाने से वीर्य खूब बनता है, कामवासना बढ जाती है। इन्द्रिय मे बहुत अधिक मैथुन शक्ति तथा जोश उत्पन्न होजाता है। वृद्ध तथा नपुंसक व्यक्ति इस योग से कुछ ही दिनों मे प्राकृत मैथुन शक्ति पा जाते हैं।

४ पासुमा स्ट्राग (ई० मर्क) १ टिकिया, ओकासा १ टिकिया, टेन्टेक्स फोर्ट १ टिकिया, एक्वाविरोन १ टिकिया यह १ मात्रा है। ऐसी एक मात्रा प्रात और रात सोते समय गाय के गर्म दूध के साथ। साथ ही सेक्सविगर (हक्सले) १ मि ली का सूचीवेध माग में प्रति तीसरे दिन लगावें।

हारमोन चिकित्सा—

नपुसकता मे हारमोन के उपचार का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके लिये टेस्टोस्टेरोन का उपयोग विशेष लाभकारी सिद्ध हुआ है। आजकल टेस्टोस्टेरोन का एक नया योग टेस्टोस्टीरोन ईनन्थेट (Testosteron Oenanthate) बाजार मे मिलता है। इसका मासपेशीगत इन्जेक्शन २५० मि०ग्रा० की मात्रा में प्रति दूसरे या तीसरे सप्ताह लगाया जाता है।

मुख द्वारा सेवन करने के लिए इसका एक नवीनतम योग फ्लु-आक्सीमेस्ट्रोन पेटेण्ट नाम अल्ट्रेन्डन (Ultrandon) है। इसकी १ मि ग्रा की टिकिया १-५ टिकिया की मात्रा मे प्रतिदिन एक ही बार मे सेवन करावें।

निर्देश—(१) टेस्टोस्टेरोन पहले-पहल एक महीने तक सेवन कराया जाता है। यदि रोगी को समुचित लाभ दिखाई न दे तो समझ लेना चाहिए कि उसे हारमोन चिकित्सा की अवश्यकता नही है। ऐसी अवस्था मे हारमोन देना बन्द कर देना चाहिए। यदि चिकित्सा से अच्छा लाभ हो तो अगले ४ ५ महीने तक इसी प्रकार चिकित्सा करते रहना चाहिए।

(२) हारमोन के इन्जेक्शन अथवा टेबलेट का सेवन प्रात नास्ता कर लेने के बाद ही करना चाहिये।

हारमोन युक्त अन्य पेटेन्ट औषधियाजो बाजारो मे उपलब्ध हैं—

१. टेस्टोफास टेबलेट (मैक लेबो०) मात्रा—१-२ गोली प्रतिदिन २ सप्ताह या अधिक समय तक।

२. सैन्सा टेब (विल्को फार्मा) मात्रा—२ टेब दिन में २ बार १५-२० दिन तक। आवश्यकता पडने पर कुछ समय रुक कर फिर दूसरा चिकित्सा क्रम दोहराया जाना चाहिए।

३. टेस्टोविन टेबलेट (ओरीकेम लैब) मात्रा—१-२ टेब० दिन में २ बार २ सप्ताह तक। कुछ अन्तर देकर पुन चिकित्सा क्रम दोहरावें।

४ ऐण्ड्रस्ट टेब० (जॉन-वाइथ) मात्रा—१ टेब० दिन मे २ बार। टेब० को जीभ के नीचे रखकर चूसें।

५ नरीसोन-एच कैपसूल (कैडिला) मात्रा—१ कैपसूल प्रतिदिन सुबह नाश्ते के बाद।

६ कैपसूल बी एण्ड्रो (यू एस विटामिन एण्ड फार्मास्युटिकल कार्पोरेशन) मात्रा—१ कैपसूल दिन में ३ बार १ मास तक। १५-२० दिन के अन्तर पर।

दूसरा कोर्स रोगी की अवस्था और औषधि के प्रभाव के अनुसार दिया जा सकता है।

७ टेस्टोवैक्स टेबलेट (मरकरी फार्मास्युटिकल) मात्रा—प्रतिदिन एक गोली नियमित रूप से।

८ जेरोनिल टेबलेट (राऊसल क०) मात्रा—१ गोली दिन मे एक बार नास्ते के १ घटे बाद।

९ जेरियाट्रिक इन्डोन टेबलेट (इण्डो फार्मा) मात्रा—१ गोली, नित्य नाश्ते के बाद।

१० जेरियाटोन (जॉन-वायथ) मात्रा—१ गोली नित्य नाश्ते के बाद।

११ प्रोवीरोनम टेबलेट (जर्मन रैमेडीज) मात्रा—१ टेब० दिन में ३ बार। सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त होने के उपरान्त १ टेबलेट प्रतिदिन।

इसके सेवन से शिश्न का उत्थान ठीक तरह से होने लगता है और पुरुष मानसिक रूप से अपने मे एक नवीन स्फूर्ति अनुभव करने लगता है। नपुंसकता के अतिरिक्त शुक्राणुओं की वृद्धि करने में इन टेबलेट का अद्वितीय स्थान है।

विशिष्ट चिकित्सा निर्देश—'टेस्टोस्टीरोन' के साथ 'ईस्टन्स सीरप' का प्रयोग किया जाये तो रोगी मे स्त्री के साथ समागम करने की चमत्कारी शक्ति आ जाती है। मैथुन की इच्छा जाग्रत करने मे स्ट्रिक्नीन के साथ योहिम्बीन हाइड्रोक्लोराइड और टेस्टोस्टीरोन का सम्मिलित प्रयोग जादू का सा असर दिखाता है।

नपुंसकतानाशक अन्य आयुर्वेदीय पेटेन्ट औषधियां

(१) फोर्टिज टेबलेट (एलार्सिन कम्पनी)—मात्रा-२ गोली दिन मे ३ बार ४-६ सप्ताह तक। तत्पश्चात नियमित रूप से २ गोली दिन मे १ या २ बार। अन्तिम मात्रा रात सोने से १ घण्टे पूर्व दें।

(२) अफ्रोडेक्स कैपसूल (धूतपापेश्वर) मात्रा—१-२ कैपसूल नित्य ६० दिन तक।

(३) हिमकोलिन क्रीम (हिमालय ड्रग्स क०) मात्रा-एव प्रयोग निर्देश—लिंगेन्द्रिय तथा प्यूबिक रीजन पर दिन में २ बार थोडी थोडी मात्रा मे क्रीम मलनी चाहिये।

(४) मुस्टोंग टेबलेट (ओरिएण्ट फार्मा) मात्रा—१ १ गोली दिन मे ४ वार २० दिन तक।

(५) स्पार्क कैपसूल (वायु फार्मास्युटिकल्स) मात्रा—एक-एक कैपसूल दिन मे २ वार दूध के साथ।

(६) अडीक्षुमा टेबलेट (चरक फार्मा०) मात्रा—दो टेबलेट दिन मे ३ बार दूध के साथ।

(७) पोटेन्जा टेबलेटम (गैम्बर्स लैबोरेटरीज) मात्रा-२ टेबलेट पानी या दूध के साथ भोजन के १ घण्टे बाद दिन मे ३ वार। नोट—यदि नपुंसकता मे चमत्कारी प्रभाव शीघ्र देखना हो तो मैथुन से १॥ घण्टे पहले ३ टिकिया।

(८) रॉयल एल्फा (गैम्वर्स लैबोरेटरीज) मात्रा—१ टिकिया दिन में ३ बार खाना खाने के एक घण्टे बाद दूध से।

(९) तिला सुल्तानी (गैम्वर्स लैबोरेटरीज)—प्रयोग

विधि—शिश्न पर १० बूंद डालकर धीरे-धीरे तब तक मलें जब तक सम्पूर्ण तिला शोषित न हो जाये। यह क्रिया दिन मे २ बार करनी चाहिये। विशेष—यदि इसके साथ 'रॉयल एल्फा' का उपयोग भी किया जाये तो रोगी की नपुंसकता दूर होकर रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है और उसे मैथुन मे अतुलनीय आनन्द प्राप्त होता है।

(१०) पावर पिल्स (गैम्बर्स लैबो०) मात्रा—२ गोली दूध के साथ सम्भोग के १ घण्टे पूर्व।

(११) मरहम विगोरानी (गैम्बर्स लैबो०) प्रयोग—इस मलहम को कमर पर मलने से शिश्न मे कठोरता आती है और रोगी सफलतापूर्वक सम्भोग कर सकता है। लगभग ६ सप्ताह तक इसको मलना चाहिये।

नोट—इसके साथ 'रॉयल-एल्फा' का मुख द्वारा सेवन कराया जाये तो कैसी भी नपुंसकता क्यो न हो अवश्य ही दूर होती है।

(१२) शक्तिराज (स्माल आयुर्वेदिक फार्मेसी) मात्रा-एक-एक चाय चम्मच १ कप दूध मे घोलकर सुबह नाश्ते से पहले सेवन करें।

(१३) स्वरजेन टेबलेट (गैम्बर्स लैबो०) मात्रा—१ टेबलेट भोजन से १ घण्टे पूर्व दिन मे ३ बार।

(१४) साहना तैल (गैम्बर्स लैबो०) प्रयोग विधि—सुपारी को छोडकर शेष शिश्न पर तब तक मलें, जब तक औषधि शोषित न हो जाये। एक बार मे ८-१० बूंद पर्याप्त होता है।

(१५) विरोजन-जी टेबलेट—यह नपुंसकता की सर्व श्रेष्ठ औषधि है। वृद्धावस्था अथवा अत्यधिक वीर्य स्खलन के परिणामस्वरूप एक अवस्था आती है जब इन्द्रिय में किसी प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न नही होती है। ऐसी स्थिति मे इसका प्रयोग विशेष लाभकारी होता है। इसके प्रयोग से वृद्ध तथा नपुंसको को युवकों की भांति मैथुन क्रिया मे प्रवृत्त होते देखा जाता है। मात्रा—एक से दो टेबलेट एक बडी चाय चम्मच मक्खन अथवा शहद में मिलाकर प्रात लें। और ऊपर से एक गिलास गरम दूध पियें। दिन से एक बार औषधि लेना पर्याप्त होता है।

नोट—विशेष जानकारी के लिये लेखक की "आयुर्वेद की पेटेन्ट औषधियां" नामक पुस्तक का अवलोकन करें।

आयुर्वेदीय-शास्त्र सम्मत चिकित्सा

निम्न चिकित्सा क्रम नपुंसकता में विशेष लाभकारी सिद्ध हुआ है—

१. कामाग्नि संदीपन रस ३६० मि० ग्रा०, शुद्ध मुलेठी चूर्ण १ ग्राम—१ मात्रा—

ऐसी एक मात्रा दिन में २ बार मधु एवं घृत मे खाकर ऊपर से मिश्री मिला दूध पियें।

२ कामेश्वर मोदक ३-३ ग्राम दिन मे २ बार भोजन के आदि और अन्त में समान भाग जल मिलाकर।

३ मृत संजीवनी सुरा १० मि० ली० दशमूलारिष्ट २० मि० ली०—१ मात्रा—

ऐसी एक मात्रा दिन मे २ बार भोजन के बीच मे सम भाग जल मिलाकर।

४ मृगमद तैल—इन्द्रिय पर मालिस।

५ श्री गोपाल तैल अथवा चन्दनादि तैल (यो० र०) शरीर पर मालिश।

नोट—नं० १ के स्थान पर 'मदन कामदेव रस' तथा नं० २ के स्थान पर 'वृद्ध पुष्पधन्वा रस' का उपयोग किया जा सकता है।

नपुंसकतानाशक कुछ विशिष्ट योग

१ वंग भस्म—अधिक मैथुन के कारण आने वाली नपुंसकता को दूर करती है। मात्रा तथा अनुपान→१२-२५ मि० ग्रा० प्रात सायं शहद में मिलाकर या मलाई मे रखकर खाना चाहिये।

२ त्रिवंग भस्म—यह भस्म सम्भोग या हस्तमैथुन द्वारा अधिक वीर्य निकल जाने के कारण उत्पन्न हुई नपुंसकता मे शीघ्र लाभ दिखाती है और पुंस्त्वत्व शक्ति मे वृद्धि करती है। मात्रा तथा अनुपान→१२-२५ मि० ग्रा० प्रात साय शहद या मलाई के साथ। शहद न मिलने पर घी मे मीठा मिलाकर उसमें भस्म मिलाकर चाटलें।

३ वसन्त कुसुमाकर रस (रस योग सागर)—अधिक स्त्री प्रसंग या अधिक हस्तमैथुन द्वारा वीर्य को नष्ट कर

जो व्यक्ति नपुंसक हो गये हैं उनके लिये यह बड़ी प्रभावशाली औषधि है। इसका सेवन ४० वर्ष से अधिक आयु के पुरुष को कराने से विशेष लाभ मिलता है। उनकी शारीरिक शिथिलता, उत्साह की कमी, चक्कर आना, सम्भोग शक्ति की कमी आदि दूर होकर बल वीर्य की वृद्धि होती है।

मात्रा एव अनुपान—१२ से ३६ मि ग्रा प्रतिदिन शहद या मलाई के साथ। रोगी को पीसकर दीजिये।

४ काम चूड़ामणि रस (रस योग सागर)—जो व्यक्ति अधिक वीर्य खर्च करने से कमजोर और नपुंसक होगये हैं उनके लिए यह अमृत के समान लाभकारी है। नियमित रूप से काफी समय तक सेवन करते रहने से यह जननांगों को पुष्ट करता है। वीर्य को गाढा बनाता है। शीघ्र पतन और स्वप्नदोष को दूर करता है।

मात्रा एवं अनुपान—१-२ गोली दिन में दो बार गुनगुने मीठे दूध के साथ। इस औषधि को लम्बे समय तक धैर्यपूर्वक सेवन करते रहने की सलाह रोगी को दी जानी चाहिए।

५ अश्वगंधादि लेह्य—इस अवलेह का प्रयोग हास्पिटल आफ इन्टीग्रेटिड मेडीसिन, मद्रास में रोगियो को कराया जाता है। यह योग भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'दि आयुर्वेदिक फार्मूलरी आफ इण्डिया' में सम्मलित है। मात्रा—६-१२ ग्राम दूध के साथ।

६ कामदेवघृत (सिद्ध योग संग्रह)—इसके प्रयोग से निर्बल से निर्बल और अशक्त व्यक्ति में कामवासना की चिनगारी भड़क उठती है और वे मदमस्त होकर बहुत समय तक विनास्खलित हुए समागम का आनन्द उठा सकते हैं। इसका प्रयोग कई मास तक नि संकोच किया किया जा सकता है। इसका निरन्तर प्रयोग पुरुष को कामदेव की तरह कामुक और रति की क्रिया में पूर्ण सफल बना देता है।

७ काम लक्षादि चूर्ण (सिद्ध योग संग्रह)—जिसका शरीर अत्यधिक वीर्य स्राव से कमजोर पड़ गया है और शिश्न का उत्थान ठीक तरह से नहीं होता है और रोगी उत्साहहीन हो जाता है उन रोगियो में यह पूर्ण चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। मात्रा—३-६ ग्राम चूर्ण को १२ ग्राम गाय के घी में भून कर मिश्री मिले गाय के दूध के साथ दिन में २ बार दें।

८. गोक्षुरादि चूर्ण (योग तरङ्गिणी)—इस योग के सेवन करने से कामवासना की कमी दूर होकर शिश्न में खूब कठोरता आती है जिससे व्यक्ति सम्भोग में पूर्ण लाभ उठाता है। इसमें कोई मादक औषधि नहीं है इसलिए निर्भय होकर लम्बे समय तक इसका प्रयोग कर सकते हैं। मात्रा– २-३ ग्रा० प्रात दूध के साथ।

९. वृहत वंगेश्वर रस (भैषज्य रत्नाकर)—इसके प्रयोग से धातुयें पुष्ट होती हैं और युवक पूर्ण स्वस्थ होकर नस-नस में पूर्ण स्फूर्ति अनुभव करने लगता है। मात्रा—१ १ गोली प्रात सायं मधु के साथ।

१० कामेश्वर मोदक (रसयोग)—यह योग अपने वीर्य स्तम्भक, वाजीकरण एवं कामोत्तेजक गुणो के आधार पर आयुर्वेद विज्ञान में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मात्रा—१ से ३ ग्राम प्रात दूध के साथ।

११ मूसली पाक—यह पाक नपुंसक पुरुषों के लिये वरदान स्वरूप है। इसके सेवन से कामवासना जाग्रत होकर लैंगिक शैथिल्य दूर होता है। इसके नियमित रूप में सेवन करते रहने से शरीर स्वस्थ कांतियुक्त एवं बलिष्ठ हो जाता है। शारीरिक, मानसिक और सैक्स सम्बन्धित कमजोरी को दूर करने में यह निस्सन्देह अपना अद्वितीय स्थान रखता है। मात्रा–६ से १२ ग्राम, दूध या जल से।

१२. वृद्ध पुष्पधन्वा रस (योग र०)–यह रति शक्ति को बढ़ाने के साथ साथ शरीर शैथिल्य एवं पाडु को भी दूर करता है। लघु पुष्पधन्वा भी लाभकारी औषधि है।

१३ मदन कामदेव रस (योग रत्नाकर)—पञ्चकर्म के बाद मधुर आहार करते हुए कल्प के रूप में २४० मि०ग्रा० प्रयोग करने से नपुंसकता अवश्य दूर होती है।

१४ वृहद पूर्ण चन्द्रोदय—यह उत्तम बलवर्धक वीर्य वृद्धिकारक तथा उत्तम नपुंसकतानाशक योग है।

मात्रा—१८० मि० ग्रा० पान के साथ।

१५. चन्द्रोदय रस (र० रा० स०)—१२० मि ग्रा पान के रस के साथ प्रात साय।

१६. शुक्र वल्लभ रस—उत्तम वाजीकरण तथा नपुसकता नाशक योग। मात्रा—१/२ ग्रा० दूध से।

१७ नारसिंह चूर्ण—इसके नियमित सेवन से वीर्य वृद्धि होकर रतिशक्ति प्रवृद्ध होती है। मात्रा २ ग्रा दूध से।

१८ मदनानन्द चूर्ण—इस चूर्ण का सेवन करने से स्त्री प्रसग की इच्छा वहुत अधिक होती है। धातु की क्षीणता और थोडे दिनो की नामर्दी जाती रहती है। इससे स्त्री प्रसङ्ग में बडा आनन्द आता है। काम को उत्तेजित करने में रामवाण है। जिनको स्त्री प्रसग की इच्छा कम होती है वे इसे कम से कम २ माह तक सेवन करें। पाठको की सुविधा के लिये इसका योग दिया जा रहा है—

सकाकुल मिश्री, सालम मिश्री, स्याह मूसली, सफेद मूसली, शतावर ४०-४० ग्रा, इन्द्र जौ, जावित्री, जायफल, कुलिजन, सुखाजी के बीज, सौंठ १०-१० ग्रा, वहमन सुर्ख, वहमन सफेद, तोदरी छोटी, तोदरी वडी २०-२० ग्रा०। इन सबको कूट पीसकर चूर्ण वनाले। मात्रा—१/२ ग्रा०, १० ग्रा० शहद मिलाकर चाट लें। साथ ही ऊपर से मिश्री मिला दूध पीवें।

१९ जातीफलादि वटी—यह मैथुन मे परमानन्द-दायनी शास्त्रीय औषधि है। मात्रा—रात को सोते वक्त १ गोली खाकर मिश्री मिला दूध पीने से मैथुन में बडा आनन्द आता है।

नपुंसकतानाशक सामान्य योग—

१—रजत भस्म, वग भस्म, अकरकरा, जायफल, छोटी इलाइची, केशर, कौंच के बीज, कुलथी के बीज, तालमखाना के बीज, सेमर की जड की छाल—प्रत्येक १०-१० ग्रा०। सबको कूट पीसकर छान लें। इस चूर्ण में बड का दूध डालकर कम से कम १२ घटे घोट कर १ ग्राम की गोली वना लें। मात्रा एव अनुपान—१ से ४ गोली गाय के धारोष्ण दूध के साथ दिन में २ वार।

विशेष—इस वटी के सेवन से समस्त प्रकार की नपुसकता दूर होती है।

२—शु० शिलाजीत, शु० कुचला, अकरकरा १०-१० ग्रा०, केशर, छोटी इलाइची के दाने, जायफल ५-५ ग्रा०, कस्तूरी आधा ग्रा०, जावित्री ५ ग्रा०—सबको वारीक कूट पीस कर सफेद मूसली के रस में घोट लें। कम से कम तीन भावनायें लगाकर जगली वेर के वरावर गोली वना लें।

विशेष—यह एक विशेष उत्तेजक वटी है। इसके सेवन से नपुसकता तथा निर्बलता मे विशेष लाभ होता है। मात्रा एव अनुपान—१-४ गोली गाय के दूध के साथ दें। आवश्यकतानुसार इसे रवडी, मक्खन मलाई के साथ भी दिया जा सकता है।

३—शु० भीगिया, भाग, शु० धतूरे के बीज, खुरासानी अजवाइन, शु० हिंगुल जावित्री, प्रियगु, सफेद मूसली ककोल—प्रत्येक १० १० ग्रा०, जायफल २० ग्रा०। सबको वारीक कूट पीसकर छान लें। तत्पश्चात् चूर्ण को खरल मे डालकर पोस्त की डोंडी के रस मे लगभग १२ घटे घोटकर मूग के बरावर गोलिया वना लें।

मात्रा एव अनुपान—१ २ गोली मिश्री मिले गाय के दूध के साथ दिन मे दो वार।

विशेष—यह औषधि कामशक्ति को दूर कर नपुसकता नष्ट होती है।

४—नपुसकतानाशक मल्ल तैल—सफेद सखिया ५० ग्रा, कागजी वादाम की गिरी ४०० ग्रा.। गिरी को पानी में भिगोकर उसका छिलका निकाल लें। तत्पश्चात् थोडा पानी डालकर चटनी की भांति बारीक पीस लें। इसके वाद इसमे सखिया का चूर्ण डालकर ३-४ वार खूब घुटाई करे। घुट जाने पर छोटी गोलिया वनालें। इसके बाद कपडमिट्टी की हुई आतशी वोतल मे इन गोलियों को डालकर वोतल के मुह को लोहे की डाट से वन्द कर पाताल यत्र से तैल निकाल लें।

प्रयोग—इस तेल को लिंग पर लगाने और मुख द्वारा सेवन करने से १५ दिन में सम्पूर्ण नपुंसकता नष्ट होती है।

५–शु० आमलासार गंधक ५० ग्रा०, सेमर की जड़ का चूर्ण ५० ग्रा० । दोनों को कूट पीसकर महीन चूर्ण बना लें । तत्पश्चात् इसमें सेमर की छाल के स्वरस की तीन भावनायें देकर छाया में सुखा लें और बोतल में कार्क लगा कर सुरक्षित रखलें । मात्रा—१-१॥ ग्रा० औषधि खाकर ऊपर से दूध पीवें । तीन-चार मास तक नियमित सेवन करने से नपुंसकता में अभूतपूर्व लाभ मिलता है ।

नपुंसकतानाशक परीक्षित योग—

बाबू हरिदास जी वैद्य लिखित 'चिकित्सा चन्द्रोदय' चतुर्थ भाग में अति महत्वपूर्ण योगों का वर्णन मिलता है जो पूर्ण परीक्षित हैं । उनका केवल नाम निर्देशन ही दिया जा रहा है । विस्तारभय से उनका पूर्ण वर्णन देना सम्भव प्रतीत नहीं होता है । योग निम्नवत् है—

कियमिणादि मोदक, वानरी चूर्ण, माषादि मोदक, कामिनी मदमञ्जन मोदक, महापौष्टिक योग, पुष्टिकर और स्तम्भनकारक योग (पृ स. २२३), कामेश्वर मोदक, नपुंसत्वारि तैल, नपुंसक रञ्जन अवलेह, महाकन्दर्प चूर्ण, रतिवल्लभ महारस, नपुंसक वल्लभ मास, नपुंसकत्व नाशक पाक, स्त्री मदभंजन अमृत रस, कूष्माण्ड पाक, मूसलीपाक, मुक्तादि वटिका, आम्रपाक, शतावरी पाक (वीर्य की कमी से उत्पन्न नपुंसकता) नपुंसकत्वहर योग ।

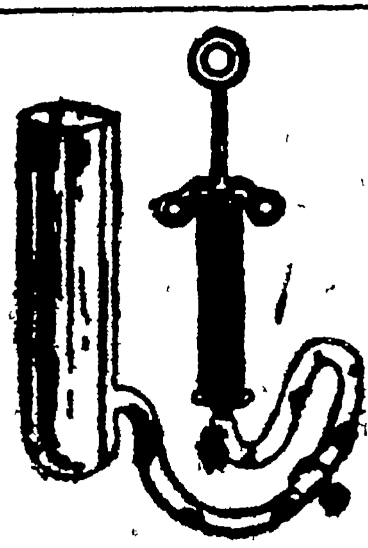
नपुंसकतानाशक शास्त्रोक्त आयुर्वेदिक योग

शास्त्रोक्त रस वटी	शास्त्रोक्त भस्म	शास्त्रोक्त चूर्ण	शास्त्रोक्त तैल घी आदि
कामाग्नि संदीपन रस, त्रैलोक्य चिन्तामणि रस, सोमनाथ रस, वसन्त कुसुमाकर, स्वर्णराज वगेश्वर रस, रससिंदूर, सूतराज रस, काम चूड़ामणि रस पुष्प धन्वा रस स्वर्णवंग, मन्मथ रस, तारकेश्वर रस; सि. मकरध्वज वसन्त तिलकरस, पचबाण रस	वंग भस्म, नाग भस्म, लौह भस्म, मल्ल भस्म, पारद भस्म, शिंगरफ भस्म, अभ्रक भस्म, मरकत भस्म, मुक्ता भस्म, माणिक्य भस्म, रौप्यमाक्षिक भस्म, वैक्रान्त भस्म आदि ।	मदनानन्द चूर्ण, धातु पौष्टिक चूर्ण, वीर्यशोधक चूर्ण, अश्वगन्धादि चूर्ण, अश्वगन्ध चूर्ण शतावर्यादि चूर्ण, गोक्षुरादि चूर्ण, माक्षिकादि चूर्ण आदि।	रतिवल्लभ तैल, अश्वगन्ध तैल मल्ल तैल, श्रीगोपाल तैल, वृ० अश्वगन्धा तैल, कामदेव घृत, महा कामदेव घृत, ब्राह्मी तैल चन्दनादि तैल ।

नपुंसकता का यान्त्रिक उपचार

नपुंसक पुरुषों के लिये आर्गन डेवलेपर या वैक्यूम मसाज पम्प नामक यन्त्र आता है । इसे छोटे शिश्नों को बड़ा बनाने के उद्देश्य से प्रयोग में लाते हैं । यह पूर्णतः सुरक्षित और अत्यन्त ही प्रभावशाली है । यह यन्त्र दाऊ मैडीकल स्टोर्स, अलीगढ़ से उपलब्ध हो सकता है । मूल्य लगभग १०० रुपया सभी खर्च मिलाकर होता है ।

इस उपकरण में एक कांच का गिलास और पिचकारी होती है जो ग्लास के अन्दर से वायु खींचकर बाहर फेंकती है । और इस प्रकार वैक्यूम पैदा करती है । कांच के गिलास को ढीले शिश्न पर चढ़ाकर पिचकारी को चलाते हैं जिससे वैक्यूम उत्पन्न हो जाता है । शिश्न के चारों ओर वायु हट जाने से शिश्न के स्पन्जी टिशू (Elastic tissues) फैल जाते हैं जिससे उनमें रक्त आता है और शिश्न कठोर होजाता है ।



व्यवाय शोष

डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह शास्त्री (वाराणसी) एम० ए० साहित्यालङ्कार
वेद मन्दिर (गीता आश्रम), अशोक सिनेमा, के सामने ज्वालापुर (सहारनपुर)

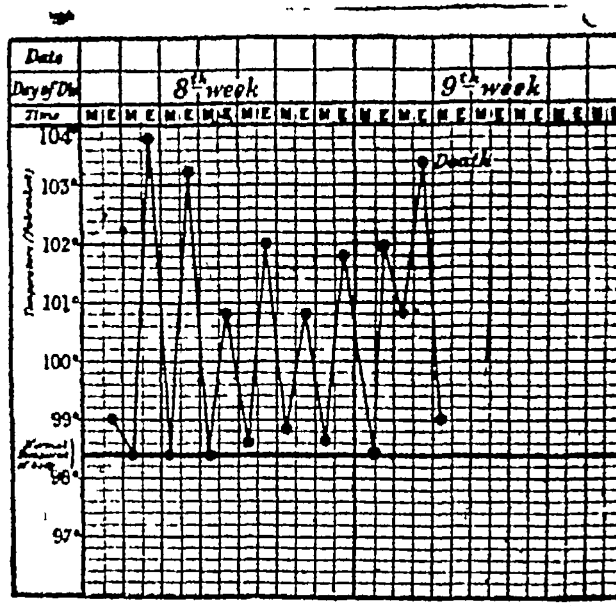
—oo—

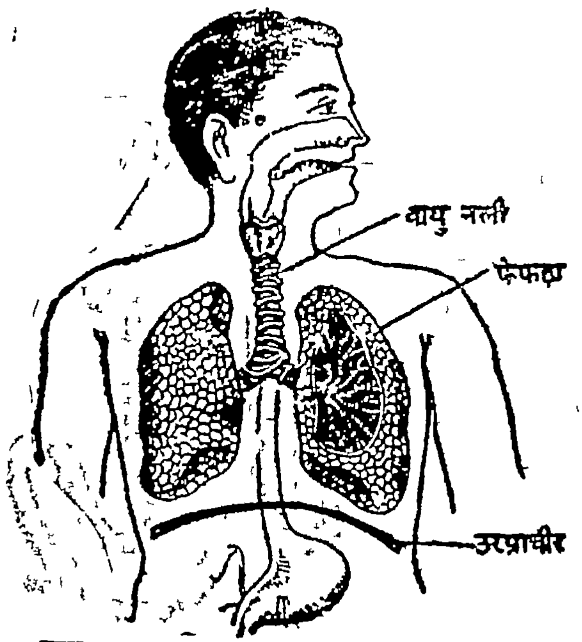
लेखक महोदय 'धन्वन्तरि' के जाने माने विद्वान लेखक हैं। सभी सामान्य अंकों एवं विशेषांकों मे आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। आप आयुर्वेद के ज्ञाता एवं विद्वान हैं। साथ-साथ आप वेदों के भी ज्ञाता हैं। यहा आपने "व्यवसाय शोष" लेख मे अथर्ववेद का आधार लिया है जो आपकी विद्वता का द्योतक है। हमारे विशेष आग्रह पर आपने यह लेख भेजा है। जो सभी वैद्यो एवम् पाठको को उपयोगी होगा। 'धन्वन्तरि' परिवार आपसे आशा रखते हैं कि और भी वेदों मे से खोजकर आयुर्वेद के विकास मे अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान करें। भविष्य मे भी हम आपसे अनेको अपेक्षा रखते हैं।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

व्यवाय शोष को क्षय, राजयक्ष्मा, तपेदिक, यक्ष्मा, दिक तथा आंग्ल भाषा मे थाइसीस (Phthisis) व ट्युबरकुलोसिस (Tuberculosis) कहते हैं।

प्रारम्भ मे रोगी को सन्ध्या समय-प्रतिदिन हल्की हरारत होती है। वह हर समय अपने को क्लान्त अनुभव करता है। धीरे-धीरे वह दुर्बल होने लगता है और उसको खासी आने लगती है। खासी के साथ कफ मे





रक्त आने लगता है। मन्द-मन्द ज्वर भी रहता है। रात्रि मे सोते समय पसीना आता है। हृदय की धड़कन बढ जाती है। खासते समय वक्षस्थल मे दर्द भी होता है। भूख नही लगती है, अजीर्ण, वमन, बार बार तृषा, सास लेने मे कष्ट होना ये लक्षण हैं।

पहचान — सदैव हल्का ज्वर रहना, रात्रि में पसीना आना, रक्त का दबाव घटना, हमेशा खासी रहना, खासी मे पीप जैसा कफ निकलना, वक्ष का चपटा

होकर पिचक सी जाना आदि लक्षणो से यह रोग पहिचाना जा सकता है।

कारण—

इस रोग के कई कारण हैं। वेदों मे इसका प्रमुख कारण 'स्त्री प्रसग' कहा गया है। वास्तव मे अति स्त्री सभोग ही कारण है।

य कीकसा प्रभृणाति तलीद्यमवतिष्ठति।
निर्हास्तं सर्वं जामान्यं य. कश्च ककुदिश्रित।

—अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त ७६ मत्र १

अर्थ—(य) जो (कोकसा) हसली के भागो को, हसली के साथ लगे फेफडो के सिरो को (प्रभृणाति) तोडता है—हिंसित करता है। अथवा 'प्रसृणाति' पहुचता है वहा फैलता है तथा (तलीद्यम्) फुफ्फुस मे—फेफडो में (अवतिष्ठति) बैठ जाता है (य कश्च) जो कोई (ककुदि) पृष्ठ वश के मूल मे (श्रित) आश्रित है (तं सर्वम्) उस सब (जायान्यम्) जाया अर्थात् स्त्री के अतिभोग करने से प्राप्त होने वाले रोग को (निर्हाति) निकालकर दूर करें।

स्त्री के अति प्रसग करने से उर क्षत नामक राज यक्ष्मा रोग हो जाता है। वह हसली के भागो, फेफडो और मेरुदण्ड मूल मे स्थिर होजाता है। उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

पक्षी जायान्य· पतति स आ विशति पूरुषम्।
तदक्षितस्य भेषजमुभयो. सुक्षतस्य च॥

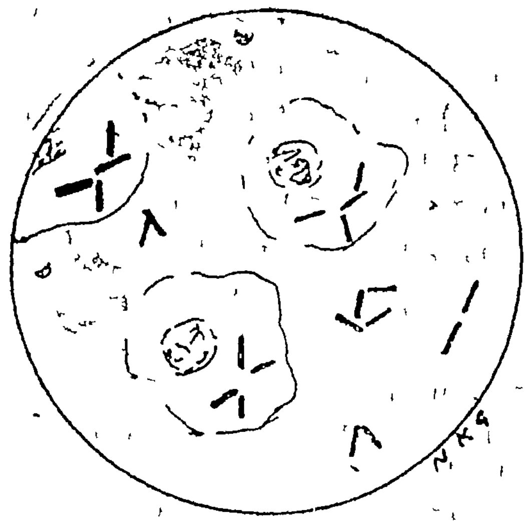
—अथर्ववेद का॰ ७ सूक्त ७६, मत्र २

अर्थ— (स,) वह (जायान्य) जाया के अति प्रसग से उत्पन्न होने वाला (पक्षी) पक्षो वाला—फुफ्फुसरूप पक्षों—पार्श्व भागो मे होने वाला होने से पक्षी की भाति (पतति) 'उत्पतति' मानो गुह्यस्थान घोसले से उडता है। और (पूरुषम-आविशति) पुरुष के प्रति मनुष्य के शरीर मे घुस जाता है। उस ऐसे पक्षो वाले फेफडो मे होने वाले (अक्षितस्य) अक्षीण हुए या 'अक्षतस्य' घाव रहित राजयक्ष्मा का। और (सुक्षतस्य) गहरे घाव वाले उर. क्षत रोग का (उभयो) उक्त दोनो रोगों का (तत—भेषजम) वह आगे कहा जाने वाला भेषज है।

—प० प्रियरत्न जी आर्य कृत "अथर्ववेदी चिकित्सा शास्त्र" पृष्ठ २०५–२०६ (सन १९४१ ई० प्रथम सस्करण, दिल्ली)

अन्य कारण—

अपनी शक्ति से अधिक कार्य करना, वात, मूत्र पुरीषादि वेगो का अवरोध करना, वीर्य का क्षय और विषमाशन ये चार कारण यक्ष्मा के प्राचीन महर्षियों ने बताये हैं। यक्ष्मा उत्पन्न करने वाले जीवाणु को यक्ष्मकवकवेताणु (माइक्रोबैक्टीरियम ट्यूबरक्युलोसिस)। कहा



जाता है ये क्षयाणु दण्डाकार या थोड़े मुड़े हुए होते हैं। दूसरे किनारे गोल होते हैं। 'यक्ष्मा' एक घातक रोग समझा जाता है। माधव निदान मे राजयक्ष्मा क्षतक्षीम निदान भी स्त्री के अति प्रसग से कहा है।

वैदिक चिकित्सा—

विघ्न वै ते जामान्य जान यतो जामान्य जायसे।
कथ हतत्रत्व हनो मस्यकृण्मो हविर्गृहे॥

—अथर्व काण्ड ७ सूक्त ७६ मत्र ३

अर्थ— (जामान्य) स्त्री के अति प्रसङ्ग से होने वाले हे उर क्षत राजयक्ष्मा रोग। (ते जानम्) तेरे जन्म को—उत्पत्ति कारण को (वै) अवश्य (विद्म) हम जानते हैं (जामान्य) हे जाया जन्य रोग। (यत जायसे) जैसे ही

तू उत्पन्न होता है वैसे ही तुरन्त (यस्य गृहे) जिसके घर मे (हवि' कृण्म) होम करते है (तत्र) वहा उस घर मे (कथह) देखें कैसे (त्व हन) तू मार सके।

उत्तम औषधियो के होम से उर क्षत राजयक्ष्मा नष्ट हो जाते हैं।

धृषत् पिवकलभे सोममिन्द्र वृत्रहा भूरसमरेवसूनाम्
माध्यन्दिने सवन आवृषस्वरचिष्ठानो रमिमस्मामुधेहि।

—अथर्व कां० ७ सूक्त ७६, मन्त्र ४

अर्थ—(इन्द्र) हे गृहस्थ मनुष्य ! (वसूनाम) वसुओ आपी के (समरे) सग्राम मे (वृत्रर्हाभूर) विघ्नों को हटाने वाला शूरवीर है (धृषत्) रोगो के धर्षण करने-नष्ट करने के हेतु (कलभे)कलभ मे स्थित (शोमम्र) सोम रस को (पिव) पी ! पुन (माध्यमन्दिने सवने) मध्य अवस्था वाल्य से ऊपर तरुणावस्था रूप सवन मे (आवृषस्व) वीर्य पराक्रम सम्पादन कर और (रमिष्ठान) ऐश्वर्य स्थानी होकर (अस्मासु) हम ऋत्विजो मे (रयिम्) ऐश्वर्य को (धेहि)) धारण करा।

उर.क्षत और राज यक्ष्मा रोग को दूर करने के लिये आत्मिकवल और सोमरस का पान इस मत्र मे महोपधि रूप मे बतलाया है। सोम पान से नूतन बल और जीवन आ आता है।

वेद मे यज्ञ चिकित्सा पर बल दिया है—गुग्गुल ४ भाग, श्वेत चन्दन चूरा २ भाग, रक्त चन्दन चूरा २ भाग अगर २ भाग, तगर २ भाग, चिरोजी १ भाग, नारियल १ भाग, जायफल १ भाग, लौग १ भाग, मुनक्का, किशमिश, छुहारा, वडी इलायची, गुलाब के फूल, हर्र वडी गुठली सहित, गुरुच, साठी चावल सब २-२ भाग, कपूर खाड सामग्री से चौथाई भाग नित्य मिलावें। सहदेवी, जटामासी, सतावर, कूठ, ब्राह्मी ये प्रत्येक २-२ भाग। इनसे प्रतिदिन रोगी को हवन करना चाहिए। एक समय कम से कम सवा पाव सामग्री तथा सवा पाव गोघृत होना चाहिए अधिक हो तो और अच्छा।

मुञ्जामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मादुत।
राजयक्ष्मात्। य.हिर्जग्राह यद्य तदेनतस्या इद्राग्नी प्रमुमुक्त मेनम्। —वेदअथर्व का० ३ सूक्त ११ मत्र १

अर्थ—(व) हे रोगी। तुझे (राजयक्ष्मात्) राजयक्ष्मा क्षय रोग से (उत) तथा (अज्ञातयक्ष्मात्) अज्ञात रोग से सदिग्ध रोग से (जीवनायकम्) जीवित रहने के लिए (हविषा) होम के द्वारा (मुञ्चामि) मे मैं कुशल वैद्य छुडाता हूँ (यदि) यदि (एनम्) इसको (ग्राहि) अङ्गो को पकडने, जकड़ने वाली वात व्याधि ने (एतत्) यह ऐसा (जग्राह) पकड लिया है, (तस्या) उससे (इन्द्राग्नी) हे विद्युत् और अग्नि तुम दोनो (एवम्) इसको (प्रमुमुक्त) छुडा दो।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषा हार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैन शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्॥

—अथर्व का० ३ सूक्त ११ मत्र ३

अर्थ—(सहस्राक्षेण) वहूत व्यापने वाले (शत वीर्येण) अत्यन्त वीर्य शक्ति देने वाले (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु तक ले जाने वाले (हविषा) होम के द्वारा (एनम्) इसको (आहार्षम्) मैं वैद्य वचा लाया हूँ (यथा) जिस प्रकार (इन्द्र) विद्युत् (एनम्) शरीर मे विद्यमान विद्युत् (विश्वस्य दुरितस्य) समस्त दुःख के (पारम्) पार (शरद जीवन के वर्षों को सर्व आयु को (अतिनयाति विताता है भलीभाति ले जाता है।

न त यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
य भेषजस्य गुल्गुलो सुरभिर्गन्धो अश्नुते॥

—अथर्व का० १९ सूक्त ३८ मत्र १

अर्थ—(गुल्गुलो भेषजस्य) गुग्गुल-गूगल औषधि की (सुरभि) उत्तम (गन्ध) गन्ध (यम्) जिस रोगी को (अश्नुते) प्राप्त होती है (तम्) उसको (यक्ष्मा) रोग (न) नही (अरुन्धते) फसाते हैं तथा (एनम्) इसको (शपथ) स्पृश्य रोग छूत रोग (न) नहीं (अश्नुते) प्राप्त होता है।

विश्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते।
यद् गुग्गुलु सैन्धवं मद् वाप्यसि समुद्रियम्॥

—अथर्व का० १९ सूक्त ३८ मंत्र २

अर्थ—(तस्मात्) उससे (यक्ष्मा) रोग (विश्वञ्च:) बिखर-बिखर कर (मृगा अश्वाइव) मृगों और घोड़ों की भांति (ईरते) भागते हैं (यत्) जो (सैन्धवम्) नदी पर

उत्पन्न हुआ (यद्वा) और जो (समुद्रियम) समुद्र तट पर उत्पन्न हुआ (गुल्गुलु) गूगल (असि) है ।

उभयोरग्रभ नाम अस्मा अरिस्टवातये ।

—अथर्व का० १६ सूक्त ३८ मन्त्र ३

अर्थ—(उभयो) उक्त दोनों 'सैन्धव' और समुद्रिय गूगल का (नभ्म-अग्रभम्) नाम लेता हूँ वर्णन करता हूँ । (अस्मै अरिस्ट वातये) इसके लिए स्वास्थ्य सम्पादनार्थ।

इन मन्त्रो मे गूगल की गन्ध देकर रोगी को स्वस्थ बनाने का आदेश है जोकि अग्नि मे डालकर उसका धूम्र दिया जाता है । अत यहा होम चिकित्सा का वर्णन है । साथ मे अग्नि द्वारा होम होने से अग्नि चिकित्सा तथा वह धूम वायु को शुद्ध एव पुष्ट बनाने के लिए किया जाता है वह वायु के आधार पर फैलता है अतएव वायु चिकित्सा भी है। गूगल औषधि का धूम वायु द्वारा अथवा उससे शुद्ध तथा गुण युक्त हुआ वायु श्वास नलियो फेफड़ो मे पहुँच कर कफ आदि दोष को स्थान च्युत कर देता है और रोग विषो को बाहर लाता तथा नष्ट करता है । रक्त को शुद्ध करता है, जीवन शक्तिप्रद रसायन है ।

आयुर्वेदिक औषधियां—

१ गाय, अश्व, हाथी, बकरी भेड इनके गोवर का रस, मूर्वा, हल्दी और खैर[खदिर] इनका क्वाथ,नवा दूध ये प्रत्येक समान भाग और दशवा घृत, यह भी एक भाग के समान लेकर त्रिफला चूर्ण, सम्पूर्ण मधुर वर्ग [जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि ये आठ । त्रिकटु, देवदारु इनका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे । यह घृत यक्ष्मानाश के लिए श्रेष्ठ है ।[सूश्रुत सहिता, उत्तर तन्त्रम् अध्याय ४१ श्लोक ४४-४५]

२ नागवला की जड के १ तोले से २ तोले चूर्ण को २ तोले घृत तथा १/३ तोले मधु मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से राजयक्ष्मा नष्ट हो जाता है । [भै. र १४ राजयक्ष्मा चिकित्सा प्रकरणम् श्लोक ६]

३ केवल काकजघा के १ तोले से २ तोले चूर्ण को प्रतिदिन दुग्ध के साथ सेवन से राजयक्ष्मा नष्ट होता है।

४ अग्निवल के अनुसार २ तोले से ४ तोले तक ताजा मक्खन लेकर या घी [मधु से दुना], १ तोला चीनी, १ तोला शहद मिलाकर प्रतिदिन सेवन करके वाद मे गो दुग्ध का अनुपान करना चाहिए । इस नवनीत के प्रयोग करने से मनुष्य क्षय रोग से मुक्त होकर शारीरिक व मानसिक पुष्टि को प्राप्त करता है । शहद व नवनीत विषम मात्रा मे मिलावें । [भै० रत्ना०]

५ यक्ष्मा की खासी के लिए वलादिचूर्ण, लवङ्गादि चूर्ण, शृङ्गमर्जुनाद्य चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण, तालीशाद्य चूर्ण, एलादि चूर्ण,कर्पूराद्य चूर्ण, वासाऽवलेह, च्यवनप्राश देना चाहिए ।

६ कौडी की भस्म २ रत्ती, मक्खन मे मिलाकर चाटें ।

७ प्रवालपिष्टी २ रत्ती, गुडूची सत्व ४ रत्ती, शितोपलादि चूर्ण २ माशा । इनको एक मे मिलाकर शर्बत अनार ५ माशा से चाटें । २ घटे के वाद इसका प्रयोग करे । इससे खासी मे रक्त आना बन्द होता हैं ।

८ आजकल रुदन्ती नामक एक क्षुप के फलो का व्यवहार यक्ष्मा मे विशेष सफलता के साथ किया जा रहा है। इसके गुण 'राजनिघण्टु' मे रुदन्ती कटुतिक्तोष्णा-क्षय क्रिमि विनाशिनी । रक्तपित्त कफ श्वास मेदहारी रसायनी=रुदन्ती कटु, तिक्त, उष्ण, क्षय के कीटाणु को नाश करने वाला, रक्तपित्त, कफ, श्वास, मेह को नाश करने वाला रसायन है ।

आजकल कैपीना (हिमालय ड्रग) नाम से इसकी गोलिया दी जाती है । निर्मल आयुर्वेद सस्थान अलीगढ मे रुदन्ती फल व चूर्ण मिलता है ।

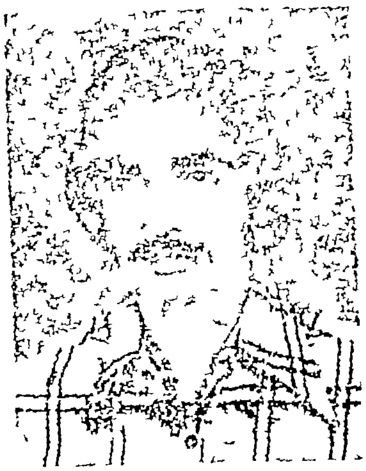
९ मृगाक रस, त्रैलोक्य चिन्तामणि रस, बसन्त कुसुमाकर रस, यक्ष्मान्तक लौह, राजमृगाङ्क रस, हेमगर्भ पोटली रस, मुक्ता पचामृत रस यक्ष्मा मे लाभदायक हैं ।

१० बकरी का दूध पान करना व उनके बीच मे रात दिन रहना भी उत्तम है । गो दुग्ध अमृत हैं ।

—✱—

शुक्र सम्बन्धी विकृतियां और उनका निराकरण

डा० प्रमोद मालवीय एम डी (आयु०)
२८८/६५ आर्य नगर, लखनऊ–२२६००४ (उ प्र)



शुक्र शरीर की अन्तिम एव प्रमुख धातु है। इसकी उत्पत्ति आहार रस मे विद्यमान शुक्रक्षय द्रव्यों पर वृषण में शुक्राग्नि की क्रिया से होती है। शुक्राग्नि द्वारा पाक स्वरूप प्रसाद पाक की ही उत्पत्ति होती है। वृषण मे उत्पत्ति के उपरान्त उसमे अधिवृषण, शुक्राशय, अष्ठीला ग्रन्थि एव काउपर की ग्रन्थियो का स्राव मिल जाता है। इस सम्मिलित द्रव्य को जो मैथुन के समय शिश्न से वाहर निकलता है शुक्र कहते हैं। इसकी मात्रा प्रत्येक च्यवन मे २-४ मि ली होती है। इसमे लगभग १ करोड से २ करोड शुक्राणु पाये जाते हैं। ये शुक्राणु स्त्री योनि मे पहुचकर ४५ मिनिट से ३ घन्टे तक सक्रिय रहते हैं। शुक्राणु गर्भोत्पत्ति मे बीज का कार्य करते हैं। इसी से इसके प्रजोत्पादन एव वलोत्पत्ति प्रमुख कार्य हैं। अन्य कार्यों में धैर्य, च्यवन, प्रीति, देहबल एव प्रहर्पण की उत्पत्ति कहा गया है।

शुक्र का संगठन—

शुक्र का विश्लेषण करने पर शुक्राणु के अतिरिक्त उसमें फलशर्करा, फास्फेटेज, स्परमीन, कोलीन, अर्गोथिएनीन, साइट्रिक अम्ल, वसा, प्रोभुजिन, हाइलुरोनिडेज, सारविटाल, फाइब्रिनोलाइसिन, प्रास्टेग्लेन्डिन्स एव अल्प मात्रा मे क्रियेटीन क्रिएटिनीन, इपीनेफ्रीन, नारइपीनेफ्रीन, आइनोसिटाल आदि पाये जाते हैं। इसकी पीएच ७ ३५ से ७-५० तथा आपेक्षिक घनत्व १०२८ रहता है। शुक्र शिश्न से वाहर निकलने पर उसमे स्थित फाइब्रिनोजिन प्रोभुजिन के फाइब्रिन मे परिवर्तित होने से जम जाता है परन्तु कुछ समय वाद उसमे स्थित फाइब्रिनोलाइसिन प्रकिण्व से निघटित होने से थक्का पुन घुल जाता है।

यौवनावस्था—प्रजनन जीवन चक्र के प्रारम्भ को यौवन कहते हैं। इस अवस्था मे लैंगिक ग्रन्थिया विकसित होकर लैंगिक कार्य का प्रारम्भ कर देती हैं। साधारणतः यह अवस्था १२ से १६ वर्ष के म०य प्रारम्भ हो जाती है तथापि सतानोत्पत्ति को पूर्ण परिपक्वावस्था प्रारम्भ होने पर ही स्वीकार किया है। सुश्रुत ने प्रजनन का प्रारम्भ २५ वर्ष की आयु से करने को कहा है, जिस काल मे लैंगिक अग प्रत्यग पूर्ण विकसित हो जाते हैं तथा नि स्रोत लैंगिक ग्रन्थियो के स्राव ठीक स्रवित होते हैं। सुश्रुत ने यौवनावस्था की उच्च अवधि ७० वर्ष कही है जिस काल तक पुरुष सतानोत्पत्ति कर सकता है। सतानोत्पत्ति ५०-५५ वर्ष की आयु के उपरात क्रमश क्षीण होने लगती है।

यौवनावस्था के कारण पुरुष का स्वर भारी हो जाता है उसके डाढी मू छ निकलने लगती हैं और शरीर पुष्ट होकर उसमे पुरुषत्व प्रतीत होने लगता है। द्वितीय लैंगिक चिन्हों के प्रगट होने से पुरुष के कक्ष प्रदेश एव जननेन्द्रिय प्रदेश मे वाल आ जाते हैं और उसमे कामेच्छा जाग्रत होने लगती है।

निःस्रोत ग्रन्थियो का प्रभाव—

मनुष्य के लैंगिक अगों की वृद्धि मे तथा नि शुक्रोत्पत्ति मे नि स्रोत ग्रन्थिया प्रमुख रूप से कार्य करती हैं। अवटुग्रन्थि पेशियो की सामान्य वृद्धि; अस्थियों की परिपक्वता एव लैंगिक अवयवों की वृद्धि को उत्तरदायी है। इस ग्रन्थि के हार्मोन की कमी से लैंगिक अगो की वृद्धि अवरुद्ध होकर द्वितीय लैंगिक चिन्ह प्रगट नही होते। अधिवृक्क प्रान्तस्था ग्रन्थि के लैंगिक हार्मोन गर्भावस्था मे लिंग की विभेदकता, लैंगिक ग्रन्थियो एव अगो की वृद्धि मे प्रमुख कार्य करते हैं। इससे यौवनावस्था में द्वितीय लैंगिक चिन्ह भी प्रगट होते हैं। इस हार्मोन की कमी से कामेच्छा अवसादित हो जाती है। वृषण निकाले गये मनुष्यों में कामेच्छा की स्थिति इसी हार्मोन से होती है। अग्रपीयूष ग्रन्थि के लैंगिक प्रेरक हार्मोन लैंगिक ग्रन्थियो की वृद्धि एव कार्य का नियन्त्रण करते हैं। इनके प्रभाव से लैंगिक अगों की वृद्धि, द्वितीयक एव सहायक लैंगिक चिन्हो की उत्पत्ति होती है। यह हार्मोन दो प्रकार का है प्रथम पुटक उत्तेजक हार्मोन वृषण ग्रन्थियो मे शुक्राणु के निर्माण एव विकास को उत्तेजित करता है। शुक्राणु का उत्पादन वृषण की शुक्रजनन नलिकाओ मे होता है। द्वितीय लूटिन प्रेरक हार्मोन द्वारा अन्त शुक्र के स्राव को उत्तेजना प्राप्त होती है। शुक्र के कार्यों को देखकर उसके दो रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम वहि शुक्र जिसमे शुक्राणु रहता है और जो मैथुन के समय पुरुष के शिश्न से बाहर निकलता है। द्वितीय अन्त.शुक्र इसे एन्ड्रोजन भी कहते हैं वृषण के अन्त कलाकोषों मे उत्पन्न होता है। अग्रपीयूष ग्रन्थि के हार्मोन की कमी से बच्चो में वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है तथा उनमें लैंगिक चिन्हो का विकास अवरुद्ध हो जाता है। वयस्क मे इसकी कमी से लैंगिक अगों का अपचय होकर नपुसकता उत्पन्न हो जाती है।

अन्त शुक्र जिसे एन्ड्रोजन भी कहते हैं वृषण के अन्तराल कोषो से स्रवित होता है। इसकी उत्पत्ति में अग्रपीयूष ग्रन्थि के लैंगिक प्रेरक हार्मोन सहायक होते हैं। अन्त शुक्र सहायक लैंगिक ग्रन्थियो-अधिवृषण, वृषण, शुक्रजनन नलिकाए, शुक्राशय, शुक्रप्रणाली, अष्ठीला शिश्न आदि की वृद्धि करता है और उनकी रचनात्मक एव क्रियात्मक इकाई का अनुरक्षण करता है। इससे पुरुषों मे यौवन के चिन्ह विकसित होते हैं जिससे कक्षा एव श्रोणिप्रदेश मे बालो का उगना, पुरुष सशक्त भारी स्वर उत्पन्न और पुरुषो के अनुरूप शारीरिक एव मानसिक क्रियाओ का सतुलन होता है। अन्त शुक्र से शुक्राणु का जीवन एव निषेचन शक्ति बढती है और मानस लैंगिक व्यवहार एव कामेच्छा के विकास मे मदद होती है।

शुक्र की विकृति—

सुश्रुत ने शुद्ध वाह्य शुक्र को स्फटिकमणि की आभा के समान श्वेत वर्ण, द्रवरूप, सान्द्रता युक्त चिपचिपा मधुररस युक्त मधुगन्ध युक्त माना है। कुछ आचार्य इसे तैल एव मधु के समान भी मानते हैं। इस प्रकार का शुक्र प्रजोत्पादक होता है। शुक्र द्रव रूप स्निग्ध होता है। स्निग्धता के कारण मैथुनोपरान्त योनि मे उत्सर्जित शुक्र वही अवस्थान करता है। शुक्र मैथुनजन्य घर्षण से उत्पन्न योनि की श्लेष्म कला को शान्त कर उसी में शोषित होकर स्त्री शरीर की पुष्टि भी करता है। स्निग्धता के ही कारण शुक्र के शुक्राणु गर्भाशय के भीतर निषेचन की दौड मे भाग लेते हैं और सबसे बलवान शुक्राणु द्वारा प्रजोत्पादन किया जाता है।

सुश्रुत ने शुक्र विकृति जो प्रजोत्पादन मे असमर्थ है के विषय मे कहा है कि वात पित्त एव कफ तथा शोणित से दूषित शुक्र अथवा इनके वर्ण एव लक्षणों वाला शुक्र तथा शव की गन्धवाला, गाठदार, दुर्गन्धयुक्त, पूययुक्त, मूत्र एव पुरीष की गन्धयुक्त और अल्प मात्रा मे निकलने वाला शुक्र प्रजोत्पादन की सामर्थ्य नही रखता। इनमें शवगन्धी, गाठदार दुर्गन्धित एवं क्षीणशुक्र चिकित्सा मे कृच्छ साध्य होते हैं। शेष शुक्र असाध्य हैं। शुक्र में इस प्रकार की विकृति निम्न प्रकार से हो सकती है—

१ अशुक्राणुता—यह वह अवस्था है जब शुक्र मे शुक्राणु विद्यमान नही होते।

२ नष्ट शुक्राणुता — इस अवस्था में शुक्राणु विद्यमान रहते हैं परन्तु वे मृत अवस्था मे पाये जाते हैं ।

३ अल्प शुक्राणुता—इस अवस्था मे शुक्राणुओं की सख्या अत्यधिक कम हो जाती है ।

अष्टाग सग्रह मे भी इसी प्रकार शुक्र दोषों को गिनाया है । चरक ने फेनिल, तनु, रूक्ष, विवर्ण, पूति पिच्छिल, अन्यधातूपसृष्ट एव अवसादि इन ८ दोषो को गिनाया है ।

नि.स्रोत ग्रन्थि जन्य विकार—

नि स्रोत ग्रन्थियो मे अग्रपीयूष ग्रन्थि, अधिवृक्क ग्रन्थि एव लैंगिक ग्रन्थियों की विकृति से द्वितीय लैंगिक चिन्ह प्रगट नही होते । साथ ही सहायक लैंगिक ग्रन्थियों का समुचित विकास नही होता । इस अवस्था को यूनूचोडिज्म (Eunuchoidism) कहते हैं । अग्रपीयूष ग्रन्थि की विकृति से फ्रोहलिच सिन्ड्रोम (Frohlichs Syndrome) मे लैंगिक अवयवों का विकास न होकर वे बालकों के समान रहते हैं । बाल्यावस्था मे कभी-कभी बच्चो मे जन्म से ही वृषण ग्रन्थिया अडकोष मे नही आने पाती । इस अवस्था मे युवावस्था मे इन पुरुषों की वृषण ग्रन्थियों मे शुक्राणु का उत्पादन नही होता है । ऐसे बालकों में १०-१२ वर्ष तक कोई चिकित्सा न कर प्रकृति को स्वय ठीक करने का मौका देना चाहिये । स्वय ठीक न होने पर अग्रपीयूष ग्रन्थि के हार्मोन का इजेक्शन ५०० यूनिट सप्ताह मे २ बार ६ सप्ताह देना चाहिये । ठीक न होने पर एक माह बाद पुन इसी प्रकार चिकित्सा करें ।

क्लीवता—विभिन्न मनुष्यो में विभिन्न प्रकार की क्लीबता पायी जाती है । अधिकांश व्यक्तियों में इस व्याधि मे कोई अगज विकृति नहीं पायी जाती । कुछ व्यक्ति शिश्नोत्थान मे असमर्थता, कुछ मन्द शिश्नोत्थान, कुछ असामयिक शुक्रच्युति, कुछ कामेच्छा का अभाव से व्यथित बतलाते हैं । पुरुषो मे समुचित लैंगिक सभोग के लिये पु स्त्व सहायक लैंगिक अगों का समुचित विकास एव एन्ड्रोजनिक हार्मोन्स का ठीक मात्रा में स्राव होना आवश्यक है । साथ ही सामाजिक एव मानसिक वातावरण का अनुकूल होना भी समुचित मैथुन को आवश्यक है । समुचित शिश्नोत्थान एव शुक्रच्युति के लिये अधो प्रजनन मूत्र पथ की ठीक रक्त आपूर्ति एव तन्त्रिका नियंत्रण होना चाहिये । इन अगों का तन्त्रिका नियंत्रण ऐच्छिक एव अनैच्छिक दोनों प्रकार की तंत्रिकाओ से होता है । शिश्नोत्थान शिश्न के प्रहर्षण ऊतक मे स्थित सिराघात की रक्त आपूर्ति से होता है । यह कार्य कामेच्छा की उत्तेजना से सज्ञावह आवेग त्रिक स्थित परानुकपी तन्त्रिका से पहुचकर शिश्न की धमनिकाओ को विस्फारित करते हैं । इससे शिश्न के हर्षण ऊतक रक्त से भर जाते हैं और उनमें दाब की वृद्धि होने से शिश्नोत्थान हो जाता है । पश्चात् अनुकपी तन्त्रिकाओ की उत्तेजना से शुक्र मूत्रमार्ग मे आ जाता है । इस अवस्था मे मूत्रमार्ग की पेशियों तथा श्रोणितल की पेशियों के क्रमबद्ध सकुलन से शुक्र मूत्रमार्ग से आगे गमन कर मैथुन की प्रहर्षणावस्था मे शिश्न से योनि मे पहुचता है ।

हार्मोन्स का लैंगिक जीवन पर प्रभाव—यद्यपि मनुष्य के लैंगिक जीवन पर हार्मोन्स का प्रभाव निश्चित है परन्तु मैथुन क्रिया की बारबारता तथा समय के लिये हार्मोन्स की उपयोगिता नही है । एन्ड्रोजन्स विशेष कर अन्त शुक्र पु स्त्व शक्ति के विकास तथा कामेच्छा के लिये आवश्यक है । तथापि एन्ड्रोजन्स की कमी मे भी कामेच्छा विद्यमान रहती है । मानसिक क्लीबता में एन्ड्रोजन स्राव की पूर्ति ठीक होती है परन्तु मानसिक उद्विग्नता के कारण मैथुनेच्छा अल्प हो जाती है । इसी प्रकार युवावस्था के पूर्व वृषण ग्रन्थियो को निकाल देने पर लैंगिक जीवन मे परिवर्त्तन हो जाता है जो टेस्टोस्टीरोन देने से पूर्ण लैंगिक जीवन प्राप्त करता है । युवावस्था उपरांत वृषण ग्रन्थियो को निकाल देने पर भी लैंगिक जीवन समाप्त नही होता किंतु अधिवृक्क प्रान्तस्था के हार्मोन के कारण अल्प कामेच्छा विद्यमान रहती है ।

क्लीवता प्रकार—

सुश्रुत ने क्लीव के छ प्रकार गिनाये हैं—आसेक्य, सौगन्धित, कुम्भीक, ईर्ष्यक, नारीषण्ढ एव नरषण्ढ । सुश्रुत के क्लीब के प्रकारों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आसेक्य, सौगधिक, कुम्भीक एव ईर्ष्यक प्रकार

पुरुष रोग चिकित्सा

लैंगिक विप्रकृति के कारण है जिसके मूलमें लैंगिक विपर्यास, समलिंग के प्रति आकर्षण, पुरुष मे कामुक अतिप्रवृत्ति, हस्तमैथुन आदि दोष, रात्रिस्वप्न, कामुक चिन्तन आदि प्रवृत्ति हैं जिनमे अकाल मे कामवासनाओ का उद्भव होता है। इनका प्रतिकार सभव है और इन्हे दूर किया जा सकता है। नर-नारीषण्ढ वास्तविक क्लीब हैं जो माता-पिता के बीज दोष के कारण अथवा अन्त स्रावी ग्रन्थियों के दोष के कारण उत्पन्न होते हैं। इनकी चिकित्सा असाध्य एवं कृच्छ साध्य है।

चरक ने शुक्र दोषों के साथ शुक्रगत बीज दोषो का विवेचन भी किया है। इसमें तीन अवस्थाओं का जिक्र किया गया है। पुरुषबध्य वह अवस्था है जब शुक्राणु का एक भाग दुष्ट होता है। पूतिप्रज वह अवस्था है जब शुक्राणु के एक भाग के अवयव दुष्टि को प्राप्त होते हैं। तृण पूलिक वह अवस्था है जिसमें शुक्राणु के एक भाग के अवयव की दुष्टि के साथ पुरुषकर बीज भाग का एक देश दुष्टि को प्राप्त होता है। चरकोक्त विकृतिया शुक्राणुगत क्रोमोजोम की प्रतीति होती हैं। इन विकृतियो मे क्रोमोजोम की विकृति जीन्स की विकृति एव लैंगिक क्रोमोजोम की विकृति सम्मिलित हैं।

शुक्र विकृति की चिकित्सा –

शुक्र विकृति जटिल होने से उसकी चिकित्सा में भी ऐकरूपता नहीं है। शुक्र विकृति की चिकित्सा के पूर्व विकृति का कारण जानने का प्रयत्न करना चाहिये। सस्थानगत अनेक व्याधियों के कारण क्लीबता एव मैथुन में अशक्ति आती है। इनमें मधुमेह एव हृदय रोग प्रमुख हैं। विभिन्न मस्तिष्क व्याधियो में भी मनुष्य का लैंगिक जीवन अवसादित हो जाता है। अधिकाश मनुष्यों में हस्तमैथुन आदि कुचेष्टाओं के कारण भय की हीन भावना उत्पन्न हो जाती है जिससे वे अपने सहयोगी को सतुष्ट नही कर पाते और उसी हीनभावना से उनका शिश्नोत्थान ठीक नहीं होता अथवा शुक्र स्खलन शीघ्र हो जाता है। ऐसे रोगियो में रोगी को पूर्ण सात्वना देकर तथा धीरे-धीरे क्रमश. उसमें उत्तरदायित्व एवं जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न कर चिकित्सा करनी चाहिये।

मानसिक उद्विग्नता, भय एव चिन्ता, क्लीबता अथवा मैथुन अशक्ति के प्रमुख कारण हैं। जिन्हे क्रमश: दूर करना एव विश्वास उत्पन्न करना आवश्यक है। अन्य कारणों मे मधुमेह, हृदय रोग अथवा नि स्रोत ग्रन्थियो के स्राव की अल्पता पायी जाती है तो उसकी लाक्षणिक चिकित्सा की जानी चाहिये। एन्ड्रोजन की प्रयोग टेस्टोस्टीरोन प्रोपिओनेट के रूप मे २५ मि ग्रा. की मात्रायें पेशी में इन्जेक्शन द्वारा दिया जा सकता है। चरक ने इस प्रकार के विकारों मे मानसिक व्यापार क्षुब्ध होने के कारण इनकी चिकित्सा ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि एव सद्वृत्त के द्वारा करने की सलाह दी है। औषधि प्रयोग मे एकल द्रव्यों में शुक्रजनन द्रव्यों मे जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, शतावरी, जटामासी एव कुलिग द्रव्यों का दुग्ध के साथ १ एव २-३ द्रव्यो के साथ उपयोग शुक्र की मात्रा मे वृद्धि करता है। शुक्र के दोषो से दूषित होने पर कूठ, एलवालुक, कटूफल, समुद्रफेन, कदब का निर्यास, ईख, काडेक्षु, तालमखाना, वसुक, खस इन औषधियो से साधित दुग्ध का प्रयोग हितकारी है। जीवनीय औषधिय मे जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती एव मधुक औषधियों से साधित दुग्ध एव घृत शुक्र की वृद्धि करने के साथ शुक्राणुओ की सख्या मे वृद्धि एव गति मे वृद्धि करते है।

सुश्रुत ने शुक्र सबधी विकृतियो मे स्नेहन स्वेदन पूर्वक पचकर्म द्वारा रोगी के निर्हरण करने को कहा है पश्चात् वाजीकरण औषधियों से सिद्ध घृत की उत्तरवस्ति देने को कहा है। शुक्र के पतला होने पर धाय के फूल, खदिर, अनार और अर्जुन से साधित घृत का प्रात साय पान करावें। शुक्र मे पूति गध होने पर पलास भस्म से सिद्ध घृत अथवा पिप्पल्यादि घृत, पुरुषादि और बटादि गण की औषधियों से सिद्ध घृत पान करावें। इसी प्रकार अश्वगधा पाक, कामदेव घृत, अश्वगधा घृत का प्रयोग उत्तम शुक्रस्तम्भक है।

—शेषांश पृष्ठ १४९ पर देखें।

शुक्रदोष में हरितक्यादि क्वाथ

(एक प्रायोगिक अध्ययन)

डा० (श्रीमती) मजुला वहन डी० श्रीवास्तव एम. एग. ए एम
व्याख्याता—स्त्री रोग एव कौमार्य भृत्य विभाग, स० आयु० कोलेज, वडोदा (गुजरात)
ए/३८-सरकारी वसाहत, सलाटवाडा, वडोदा (गुजरात)

—*※*—

डा० (श्रीमती) मजुला बहन शुद्ध आयुर्वेद की पक्षधर हैं। विद्वान अध्यापिका हैं। आयुर्वेद के विविध विषयो पर आप श्रद्धापूर्वक सशोधन करती हैं। संशोधित लेख प्रकाशित भी होते हैं। जगह जगह पर आप निदान यज्ञो मे नि शुल्क सेवा देती रहती हैं। शुक्र (वीर्य) दोष पर आपने संशोधन किया है, उसमें हरितक्यादि क्वाथ (चरकोक्त) का विशेष महत्व पाया गया है। यहा उस पर विचार किया है, वह उपयोगी होगा।

धन्वन्तरि द्वारा मजुला वहन और उनके पति डा० दिनेश कुमार से विनम्र निवेदन करूंगा कि आप दोनों अपनी विद्वता युक्त लेखनी द्वारा धन्वन्तरि मासिक की सहायता करें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शुक्र दोप का विचार करने के वाद चिकित्सार्थ "सम्प्राप्ति विघटनमेव ही चिकित्सा' के सिद्धान्त पर निम्न तथ्यो को ध्यान मे रखना चाहिए—

१ शुक्र की वृद्धि।

२ मैथुन शक्ति की प्रवलता।

३. शुक्र का वारम्बार प्रवर्तन होना।

कारण कि उक्त मे से एक या एक से अधिक विकृतियो के कारण शुक्रदोष होता है उक्त तथ्यो का समावेश चरक ने रसायन-वाजीकरण अध्याय मे किया है। एतदर्थ शुक्र दोप की चिकित्सा के लिये इस अध्याय मे वर्णित मलशुद्धि के रूप मे हरीतक्यादि क्वाथ (च चि १/२५) का प्रयोग करने का निश्चय किया गया जो सर्व सुलभ तथा सरल औषधि कल्पना है। वैसे शुक्रदोष चिकित्सा मे पचकर्म द्वारा शोधन तथा शमन चिकित्सा का निर्देश है।

औषधि निर्माण विधि—पाठ के अनुसार हरीतकी, सैधव, आमलकी वचा, विडङ्ग, हरिद्रा, पिप्पली, शुंठी इन आठ द्रव्यो को समान मात्रा मे लेकर यवकुट चूर्ण वनाया गया। इस पाठ मे गुड का समावेश आचार्य चरक ने किया है, जिसे क्वाथ करने के वाद मिलाने का निश्चय किया गया। गुड की मात्रा भी उक्त द्रव्यो के समान ही है। पाठ मे चूर्ण होने का निर्देश है, परन्तु चूर्ण लेने मे अरुचि, कठिनाई को ध्यान मे रखते हुए क्वाथ-कल्पना का विचार किया गया और गुड वाद मे मिलाने से औषधि सुस्वादु भी वन जाती है। क्वाथ निर्माणार्थ १० ग्रा० चूर्ण लेकर ४ कप पानी मे रात्रि को भिगोकर प्रात एक चतुर्थांश भाग शेष रहने तक उवाल कर गुड मिलाकर सेवन कराया गया। पश्चात वृष्य चिकित्सा आवश्यकतानुसार १-२ मास तक की गई।

परीक्षण-विधि एव परिणाम—कुल १० रुग्ण का चयन इस परीक्षण के लिये किया गया जिनको औषध सेवन कराने से पूर्व तथा पश्चात प्रयोगशाला मे शुक्र परीक्षणार्थ भेजा गया। ६ रुग्ण मे शुक्राणु सख्या अल्पता तथा गति अल्पता (ओलिगोस्परमिया) और ४ रुग्ण मे अशुक्राणु (एजोस्पर्मिया) की स्थिति थी। अशुक्राणु से पीडित समूह मे कोई परिणाम परिलक्षित नही हुआ जब कि अन्य समूह के व्यक्तियो मे १०% से २०% शुक्राणु

की वृद्धि परिलक्षित हुई तथा शरीर मे लघुता, मैथुन शक्ति मे इच्छा तथा वृद्धि रुग्णों द्वारा व्यक्त किया गया जिससे कुछ व्यक्तियों ने इस योग को अधिक समय तक लेने का विचार व्यक्त किया । औषधि सेवन काल मे मैथुन निषेध, अम्ल, उष्ण-तीक्ष्ण, विदाही पदार्थों का त्याग तथा लघु आहार सेवन करने का निर्देश दिया ।

विमर्श—हरितक्यादि क्वाथ के प्रयोग से अल्प समय मे जो परिणाम प्राप्त हुए हैं, उस से आशा बनती है कि लम्बे अधिक तक इसका सेवन कराया जाये तो इच्छित परिणाम की प्राप्ति हो सकती है । शुक्रदोष के विभिन्न हेतुओ मे से किस हेतु पर औषधि का स्पष्ट रूप से प्रभाव हुआ यह कहना कठिन है तथा अन्वेषण का विषय है । समदोष, सम अग्नि, सम धातु, मल क्रिया एव आत्मा-इन्द्रियों की सफलता का जो सूत्र आयुर्वेद ने स्वस्थता के लिए बताया है, इस को आधार मानकर हरितक्यादि क्वाथ की कार्मुकता निश्चित कर सकते हैं । जो उस इस प्रकार है कि हरीतकी दोषो का अनुलोमन करता है तथा दीपन, पाचन, बुद्धि एव इन्द्रिय को बल प्रदान करके स्रोतोवरोध तथा क्लैव्य को दूर करता है । आमलकी उत्तम रसायन है जिससे वय स्थापन गुण के कारण शुक्र तथा शुक्राणु का स्थापन करती है । विडग कृमिघ्न होने से सूक्ष्म-स्थूल कृमियों का नाश करके शुद्धता उत्पन्न करता है । हरिद्रा रक्तशुद्धि के लिए श्रेष्ठ द्रव्य है जिस मे सर्वशरीर को शुद्ध रक्त मिलकर स्थानिक शुद्धि का विचार कर सकते हैं । पिप्पली-शुठी दीपन-पाचन-अनुलोमन आदि गुणो के कारण योग की क्रिया मे वृद्धि करते हैं, क्षुधा वर्धन करते हैं तथा विबध को दूर करके लघुता उत्पन्न करते हैं । गुड उत्प्रेरक गुण होने से औषधि के पचन तथा क्रिया की वृद्धि करता है तथा मधुर गुण के कारण औषधि को स्वादिष्ट बनाता है । विस्तारभय से इस अध्ययन का वर्णन सूक्ष्म रूप से किया गया है । जिज्ञासु इस का प्रयोग करें और प्राप्त परिणाम अवगत करायें तो लेखिका आभारी होगी । ✤

—पृष्ठ १४७ का शेषांश—

कौंच बीज का प्रयोग भी दुग्ध अथवा घृत मे सिद्ध-कर उपयोग उत्तम पौष्टिक, वृष्य एव वाजीकरण है । कौंच बीज के कारण वानरी गुटिका का उपयोग उत्तम वाजीकरण करता है । शुक्र के अत्यधिक क्षीण होने पर आई अशक्तता में दोनो मूसली अथवा शतावरी का क्षीरपाक विधि से प्रयोग अथवा महाशतावरी घृत का प्रयोग दौर्बल्य का नाश करता है और वीर्य क्षीणता को रोकता है ।

शुक्रक्षय एव तज्जन्य ओजक्षयजन्य विकृतियो में स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, पुष्पधन्वा, शुक्रवल्लभ रस, वृहत् वगेश्वर, पूर्णचन्द्रोदय रसों का प्रयोग तथा कौंचपाक, सालवपाक, जीवन्त्यादि घृत, पचगव्य घृत का मात्रा में विधि पूर्वक प्रयोग लाभकारी होता है और व्यक्ति को पुंस्त्व प्रदान कर सक्षम बनाता है ।

नपुसकता में अन्त शुक्र के प्रयोग को दो दृष्टातों से प्रदर्शित किया जाता है । प्रथम रोगी दुर्बल अर्धं विकसित बालक था जिसमे वृषण ग्रन्थि के अन्त स्राव की कमी से द्वितीय लैंगिक चिन्हो का पूर्ण विकास नही हुआ था । इस बालक को कृत्रिम टेस्टोस्टीरान मुख द्वारा देने पर ४१ दिन में उसके भार मे ५-५ किलो की तथा ऊचाई मे १/४ इन्च की वृद्धि देखी गई । भार वृद्धि का कारण मासपेशियो का विकास था । बालक की शक्ति, ऊर्जा एव क्षुधा मे वृद्धि देखी गई । द्वितीय रोगी ३८ वर्ष का क्लीव था जिसके वृषण १९ वर्ष की आयु मे दुर्घटना के कारण नष्ट होगये थे । इस रोगी में कामेच्छा का अभाव था एव शिश्नोत्थान नही होता था । टेस्टोस्टीरान के इन्जेक्शन देने से एक माह बाद रोगी की कामेच्छा जाग्रत हो गई, शिश्नोत्थान होने लगा और व्यक्ति मैथुन क्रिया में प्रहर्षण अनुभव करने लगा । ★

वीर्य विकार उपचार

वैद्य श्री रामदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य एम. ए, फतेहपुर रोड, आनन्द नगर (सीकर) राज॰

शतावरी, नागौरी असगन्ध, सफेद लोध्र, ईसवगोल की भूसी–सब ५०-५० ग्राम, छोटी हरड १०० ग्राम। इन सवका महीन कपडछन चूर्ण करके इसमे १५० ग्राम मिश्री पीस छानकर मिला देवे। इसकी मात्रा प्रतिदिन प्रात सायम् ५-५ ग्राम धारोष्ण गाय के दूध के साथ या फिर गरम कर ठडे किये मिश्री मिले दूध के साथ १ महिने लेवें। आशातीत लाभ होगा।

नवयुवक व युवतिया किशोरो को पथ भ्रष्ट कर क्षीणता की ओर ढकेल रहे हैं। काम विज्ञान की उचित शिक्षा के अभाव मे धातु क्षीणता दिन प्रतिदिन बढ रही है। मयमित अनुशासित जीवनयापन करना भूल गए हैं। इसी कारण शुक्र क्षय के वाद ओज क्षय भी हो जाता है। ओज ही वह शक्ति है जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है। इसके अभाव मे सभी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं ज्ञान तन्तु ढीले पड जाते हैं। व्यक्ति चिन्तित शकालु व भीरु बन जाता है। जव कभी हृदय गति बढ जाती है इससे हृदयावसाद भी हो सकता है। शुक्र क्षय व ओज-क्षय के लिए निम्न प्रयोग हितकर व फलप्रद है—

कौच के वीज, गोखरू, उट गण के बीज, विदारी कन्द, नागौरी असगन्ध, विधारा, शतावरी–इन सभी को समान मात्रा मे लेकर कपडछन चूर्ण तैयार कर मिश्री मिले दूध के साथ प्रात, सायम् २ माह तक पथ्यपूर्वक लेवें। अवश्य लाभ होगा।

हस्त मैथुन जन्य विकृतियो पर इस ग्रन्थ मे वहुत कुछ लिखा जा चुका है। अधिक लिखना पिष्टपेषण मात्र है। इस कुटेव को दृढ निश्चयपूर्वक छोडकर जो व्यक्ति दर्शाये गए निर्देशो का पालन करते हुए औषधि सेवन करेगा अवश्य लाभान्वित होगा।

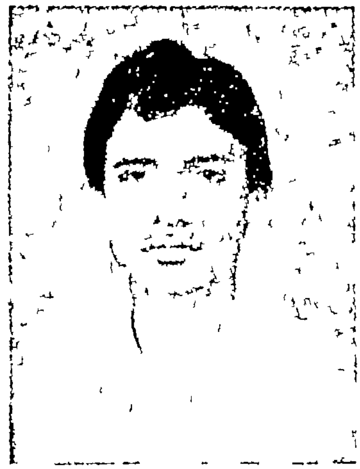
योग—(१)सफेद मूसली ५० ग्रा, तालमखाना १०० ग्रा., गोखरू १५० ग्रा०। इन सवको कूट पीस छानकर इनके वरावर मिश्री पीस मिलालें। प्रात साय ६-६ ग्राम मिश्री मिले दूध मे २ माह तक सेवन करें लाभ होगा।

योग—(२)शतावरी, कौच के वीज २५० ग्राम, दुध २ किलो, गाय का घी १ किलो, चीनी १ किलो, शहद १ किलो। सर्व प्रथम दूध मे कौच के वीज डालकर पकावे। जव दूध गाढा हो जाये वीज पक जाने पर उतार वीज छील लें पिष्टी वना लें। दूध का खोया तथा पिष्टी मिला कर रसगुल्ले समान वटी (वडी) वना लें। इनको गाय के घी मे अच्छी तरह सेकलें, फिर चीनी की चासनी वनाकर उसमे इनको डुवो देवे। जव ये अच्छी तरह चासनी शोख लें तव निकाल कर इन्हे किसी कान्च के वर्तन मे शहद मे रख देवें। नित्य प्रति इनमें से २ वटी प्रात साय मिश्री या चासनी मिले दूध के साथ लेवें। इस प्रयोग से शीघ्रपतन, शुक्र तारल्य, नपुसकता, धातु-क्षीणता आदि रोग दूर होते हैं। कई वार का अनुभूत परीक्षित प्रयोग है। १ माह तक सेवन करें। सयम नियम से पथ्यपूर्वक रहे।

नपुंसकता की सफल चिकित्सा

वैद्य रविकांत शास्त्री बी. ए एम एस., आयुर्वेद विशारद, आयुर्वेद रत्न; छीपीटोला, पजाबी सराय, आगरा

—✦✦—



पौष्टिक आहार तथा औषधि—मधुर एव स्निग्ध भोजन, मक्खन, मधु, दूध, अगूर, नासपाती, सेव, उडद की दाल, बादाम, अखरोट, काजू, किसमिस, छुहारा, सतरा, खीर, कौंच, शिलाजतु, कस्तूरी, अम्बर, प्याज, मूसली, कोकेन इलायची, शु० संखिया, वङ्ग, शतावर, असगन्ध, बीदाना, लाजवन्ती, चांदी गुडूची इत्यादि।

शिलाजत्वादि वटी—शु० शिलाजीत ५ तोला, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, वङ्ग भस्म १-१ तोला तथा अम्बर ३ माशे लेकर सबको मिलाकर त्रिजात के क्वाथ मे ३ दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लें। १-१ गोली दूध के साथ ४० दिन प्रयोग करें। यह वटी शुक्रक्षय, नपुसकता, पेशाब मे धातु गिरना एव हृदय को सबल बनाती है।

नव० चन्द्रोदय वटी–निर्मल आयु० सस्थान, अलीगढ यह वटी धातुस्राव, स्वप्नदोष, बहुमूत्र, नपुसकता एव इस वटी के साथ-साथ नवशक्ति तिला तथा पोटली का प्रयोग करना चाहिए। यह अनुभूत वाजीकरण योग हैं।

रति वल्लभ चूर्ण—सकाकुल मिश्री ८ तो०, बहमन सफेद, बहमन लाल, पजा सालम, सफेद मूसली, काली मूसली और गोखरू ये ६ औषधिया ४-४ तो०, छोटी इलायची के दाने, गिलोय सत्व, दालचीनी और गावजवा के फूल ये चार औषधियां २-२ तोले ले, सबको मिलाकर कपडछन चूर्णकर लें। मात्रा–४ से ६ माशा समान मिश्री मिलाकर मिश्री मिले दूध के साथ सेवें। यह चूर्ण उष्ण प्रकृति वाले को हानिकारक है। इससे कामोत्तेजना होती है, वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन नामर्दी दूर कर शरीर को पुष्ट और तेजस्वी बना देता है। यह कफ प्रकृति वालों पर विशेष कार्य करता है।

कामशक्ति केशरी वटी (निर्मल आयुर्वेद सस्थान, अलीगढ)—सब प्रकार के नपुसक एव वीर्य सम्बन्धी विकारो के लिए शानदार जीवन विताने के लिए इससे बढकर और कोई विशेष औषधि नहीं है। अनुभूत है।

बसन्त कुसुमाकर रस—१ से २ गोली दूध मिश्री, मक्खन इत्यादि के साथ। यह योग प्रसिद्ध है। जीर्ण नपुसकता, स्वप्नदोष, मधुमेह, इन्द्रिय शक्ति का क्षय, वीर्यपात और अनुपान भेद से अनेक रोगो मे लाभप्रद है।

रसेन्द्र चूडामणि रस—शु० पारद १ तो०, सुवर्ण भस्म २ तो०, नाग भस्म शतपुटी ३ तो०, अभ्रक भस्म ४ तो०, वङ्ग भस्म हरताल मारित ५ तो०, लौह भस्म मल्ल मारित ६ तो०, रजत भस्म ६ तो०, स्वर्णमाक्षिक भस्म ८ तो० लेवें। सबको यथाविधि मिला-धतूरे के पत्र और भागरे के रस में ३-३ दिन खरल करें, फिर पीपल गिलोय, भारङ्गी, अमरवेल, खस, नागरमोथा, सफेद वचछनाग, मुलहठी, शतावरी, कौंच और सर्पाक्षी इन औषधियों के रस एव क्वाथ की क्रमश ६-६ भावना देवें। तथा आठवा भाग अफीम मिला तुलसी की मजरी के रस में ६ घण्टे खरल करके आधी रत्ती की गोलियां बनालें। मात्रा—१ से २ गोली रात्रि को मिश्री मिले दूध के साथ।

उपयोग—नामर्दी, वीर्य की निर्बलता, स्तम्भन शक्ति का अभाव, वीर्य की कमी एव अधिक स्त्रियों के लिए राजा महाराजा उनके लिए ग्रन्थकारने निर्माण किया है। इस योग से वीर्य गाढा बनता है, २ मास के प्रयोग से जीवन सफल हो जाता है। यह सिद्ध सफल प्रयोग है।

वाजीकरण तिला—कुक्कुटाण्ड नग ५० तथा सोमल २ तोला लें। अडे के सफेद आवरण को दूर कर पीली जर्दी को कडाही मे निकाल कर उसमे सोमल का चूर्ण मिलाकर चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्नि से तैल (तिला) निकाल लें।

उपयोग—सुपारी सीवन को छोडकर लिंगेन्द्रिय पर १०-१५ मिनट मलें, ऊपर से पान का पत्ता बाध दें। इस प्रयोग से स्तम्भन शक्ति बढती है। लिङ्ग कडा एव सबल हो जाता है। ध्वजभङ्ग एव शीघ्रपतन मे लाभप्रद है।

चेतावनी—यहा लेखक ने वाजीकरण तिला का जो प्रयोग बताया है। उसमे सोमल द्रव्य आता है। सोमल विष द्रव्य है। अत कभी कभी नुकसान होना सम्भव है। इस तिला के प्रयोग से इन्द्रिय पर फफोले उत्पन्न होते हैं। यदि ऐसा हुआ तो तुरन्त ही तिला प्रयोग बन्द कर इन्द्रिय पर मक्खन, घृत या नारियल तैल लगाना। अन्त प्रयोग—नजदीक के आयुर्वेद निष्णात की देख रेख मे करना अत्यावश्यक होगा।

पारदादि लेप (गुप्त) [रस योग सागर]—शुद्ध पारद, मरिच, कूठ, तगर, भटकटैया, असगन्ध, तिल, मधु सैंधा नमक, पीली सरसो अपामार्ग, जव, उडद और पीपल ये सब सम्भाग लेकर जल मे पीसकर लिंग पर लेप करके मर्दन करे। एक महिने तक इसी तरह प्रयोग करने से स्थूलता और कठिनता आ जाती है। वराह की वसा और मधु मिलाकर लेप करने से एक महिने मे ध्वज की लम्बाई और स्थूलता यथेष्ठ हो जाती है।

विलासिनी वल्लभ रस (भै०र०)—शु० पारा, शु गंधक १-१ कर्ष, धतूरे के बीज ५ कर्ष, लेकर सबको एकत्र कर खरल कर लेवें। धतूरे के बीजो के साथ घोट कर तैयार करे। इसकी १ से २ रत्ती की मात्रा मिश्री में मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के नपुंसकों के लिये कामरूपी हाथी समान हो ऐसा मुनियो ने कहा है।

पुष्प धन्वा रस—रस सिन्दूर द्विगुण गन्धक जारित या पारद भस्म, नाग भस्म, लोह भस्म, और वङ्ग भस्म ये ५ औषधिया समभाग मिला धतूरा, भाग, मुलहठी सेमल की छाल और नागर वेल के पत्तो के रस की ११ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलिया बना लेवें।

मात्रा—१ से २ गोली २ बार दूध के साथ या शहद से।

उपयोग—यह रस अत्यन्त कामोत्तेजक है और नपुंसक के लिए इससे बढकर कोई योग नहीं. यह प्रथम श्रेणी का रस है। शैथिल्यावस्था लालामेह, शुक्रमेह पर उपयोगी है। अण्डकोषों पर शक्तिदायक है। कम मात्रा में देना चाहिए। इसका प्रयोग मैंने अपनी चिकित्सा प्रणाली द्वारा बहुत अनुभूत किया है और सफल पाया है।

वृ० काम चूड़ामणि रस—

मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, कपूर, जावित्री, जायफल, लोंग, वङ्गभस्म, प्रत्येक १ भाग, रजतभस्म आधा भाग, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर प्रत्येक आधा भाग, इन्हे एकत्र शतावर के रस से सात बार भावना दें और एक रत्ती प्रमाण की वटिका बनावें। अनुपान-शीतल दूध। अनुपान भेद से यह रस विविध रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से रतिशक्ति बढती है। यह वीर्यवर्द्धक तथा लिङ्गदार्ढ्यकर है। इसके प्रयोग से ध्वजभग, प्रमेह, मूत्ररोग, मन्दाग्नि, शोथ, स्त्रियो के आर्तव सम्बन्धी रोग नष्ट होकर पुष्टि होती है।

विशेष वचन—यह रस शुक्रमेह मे लाभकर है। यह वीर्य का पोषक होने से स्तम्भन करता है। पौरुष ग्रन्थिशोथ और वृक्कशोथ मे भी लाभ करता है।

पुरुष रोगों में फलप्रद एक आधुनिक आयुर्वेदिक पेटेन्ट योग

फोर्टेंज

वैद्य अशोक भाई तथा विद्या भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर,
सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात



प्राचीन चिकित्सा पद्धति-आयुर्वेद समग्र भारत में घर-घर में फैली हुई है। आयुर्वेद में चूर्ण, भस्म, काढ़ा, क्वाथ, गुटिका मूल स्वरूप में लेने से इनका स्वाद अच्छा नहीं लगता। लेने से-पीने से या चाटने से मुँह बिगड़ जाता है। अतः कुछ वर्षों से भारतीय आयुर्वेदिक फार्मेसी द्वारा आधुनिक ढंग से टेबलेट, कैपसूल, सीरप आदि निर्माण कर रही हैं। कुछ कम्पनियाँ औषध योग बनाकर पेटेन्ट स्वरूप में बनाकर समाज के सामने रखती हैं। इनमें बम्बई की अलारसीन कम्पनी आशास्पद कार्य कर रही है। इस कम्पनी के कुल मिलाकर बारह योग हैं। सभी योग टेबलेट के स्वरूप में है। और इसमें आयुर्वेद औषधि योग सम्मिलित हैं। सभी टेबलेट आधुनिक जैसी हैं। निगलने में कोई तकलीफ नहीं होती। यह फोर्टेंज टेबलेट पुरुष रोगों में अत्युपयोगी है।

फोर्टेंज टेबलेट—

निर्माता—अलारसिन

पता—बोरीकोन हाउस, मीना मंजिला, १२-के, दुभाष मार्ग-बम्बई-२३

फोर्टेंज योग में निम्नोक्त औषधियाँ सम्मिलित हैं—

कम्बोजी ५६ मि.ग्रा., कवच बीज ३० मि.ग्रा., शु. कचुरा (कुचला) ३० मि.ग्रा., समुद्र शोष बीज १५ मि.ग्रा., त्रिधारा बीज १५.० मि.ग्रा., अश्वगंधा १५.० मि.ग्रा., विधारा मूल १५.० मि.ग्रा., लवंग ७.५ मि.ग्रा., पीपल ७.५ मि.ग्रा., वचा ७.५ मि.ग्रा., मरीच ७.५ मि.ग्रा., शुण्ठी ७.५ मि.ग्रा., वनकाव ७.५ मि.ग्रा., अकरकरा ७.५ मि.ग्रा., चन्दन वेर ७.५ मि.ग्रा., जातिफल ७.५ मि.ग्रा., जावित्री ३.० मि.ग्रा. और जीवन्ती ५६.५ मि.ग्रा. इस तरह एक टेबलेट ३०० मि.ग्रा. की है।

गुण धर्म—

शीघ्रपतन, ध्वजभङ्ग, स्वप्नदोष, अल्प शुक्राणु, मृत शुक्राणु, शुक्र तारल्य, पौरुष ग्रन्थि शोथ इत्यादि पुरुष रोगों में फलदायी हैं।

शीघ्रपतन एवं ध्वजभङ्ग—पुरुष जब मैथुन क्रिया करने में तत्पर होता है, तब उनका शीघ्रपतन हो जाता है। अर्थात् जब उनका शिश्न योनि में जाता है—और एक-दो धक्का लगाता है—तब तुरन्त ही वीर्यपात हो जाता है। इसको शीघ्रपतन कहते हैं। और ध्वजभग का अर्थ है—ध्वज अर्थात् शिश्न, भग अर्थात् झुक जाना जिस तरह वायु में ध्वजा लहराती है—मगर वायु शांत हो जाती है तो ध्वजा झुक जाती है—लहरायेगी नहीं। उसी तरह पुरुष मैथुन की इच्छा से स्त्री के पास जाता है—मगर उसका शिश्न योनि में जाता है—तो तुरन्त ही उत्थान हुआ लिंग झुक जाता है—और ढीला पड़ जाता है, और योनि में प्रवेश कर नहीं सकता। इनको ध्वजभग कहते हैं। यह व्याधि मानसिक दोष से उत्पन्न है। इस दशा में पुरुष अपने को नामर्द समझने लगता है। निरुत्साह हो जाता है। वह खुद तो अतृप्त रहता है-साथ-साथ

स्त्री भी अतृप्त रहती है। दोनों को चरम सुख नही मिलता, और परिणामत सन्तानोत्पत्ति भी नही होती। अत. दोनों को मानसिक रोग भी हो जाता है। पुरुष की इस दयनिक स्थिति मे आयुर्वेदिक औषध देने से अवश्य-मेव लाभ मिलता है। पुरुष पुन' बलवान हो जाता है। फोर्टेज टेबलेट इस दशा मे देने से शीघ्रपतन और ध्वजभग मे फलदायी लाभ प्राप्त होता है। मैथुन शक्ति बढती है। देर से शुक्र स्खलित होता है, लिंग की उत्थान शक्ति बढेगी और काफी समय तक शिश्नोत्थान बना रहता है। फोर्टेज से मन की शक्ति बढ़ती है। चिकित्सा व्यवसाय मे अनेक ऐसे दर्दियो पर फोर्टेज का उपयोग कराया है, और आशातीत लाभ देखा गया है।

स्वप्न दोष— अधिकांश युवा और विधुर एव अविवाहित व्यक्ति को नीद मे स्वप्न आता है, तब स्वप्नदोष हो जाता है। यह क्रिया मानस दोष से पैदा होती है। बार-बार स्वप्नदोष होता है तब पुरुष चिन्ता करने लगता है—उनका वीर्य नष्ट होने लगता है, स्त्री के पास जायेगा तो क्या होगा ? इत्यादि। स्वप्नदोष मे अधिकाश पौरुष ग्रन्थि का स्राव भी होता है। दिन मे देखे गये, पढे गये, अश्लील चित्र-वार्तायें इत्यादि नीद मे फिर स्वप्न में देखे जाते हैं—और वह पुरुष स्वप्न में ही मैथुन करने लगता है—इस दशा मे फोर्टेज अत्युपयोगी है। फोर्टेज मे जातिफल और अमगध हैं—उनसे गाढी निद्रा भी आती है। ज्ञानतन्तु शान्त रहता है। अत गाढी निद्रा मे उत्तेजना नही होगी और स्वप्नदोष भी नहीं होगा।

शुक्र णु समस्या— शुक्रदोष मे फोर्टेज सिद्ध मानी गई है। शुक्र मे जब शुक्राणु अल्प होता है। उनमें मृत की सख्या अधिक हो और जीवित की सख्या अल्प हो तब फोर्टेज देने मे मृत की सख्या घटती है और जीवित शुक्राणु की सख्या बढ़ती है। कभी कभी शुक्र अल्प मात्रा मे पैदा होता है—तब फोर्टेज मे शुक्र की मात्रा बढ़ती है। फोर्टेज से शुक्र गाढा बनता है। शुक्राणु की सख्या बढती है। और जो भी शुक्रदोष होता है—उनमें फोर्टेज देने से लाभ पाया जाता है।

पौरुष ग्रन्थि शोथ— इस रोग मे फोर्टेज के साथ इस कम्पनी की ही वगशील टेबलेट देने से शोथ का शमन होता है। मूत्रस्राव या मूत्र प्रवृत्ति ठीक से होती है। हार्मोन की असन्तुलत अवस्था होने से पुरुषों में पौरुष ग्रन्थि मे शोथ आता है। फोर्टेज से हार्मोन तत्व की पूर्ति होती है और सन्तुलित बना रहता है। इनके साथ वगशील टेबलेट देना अनिवार्य है।

इस तरह देखें तो अलारसीन फोर्टेज सभी पुरुष-सैक्स सम्बन्धी प्रश्नो पर सही उत्तर देती है। मैं अनेक पुरुषों के अनेक सैक्स सम्बन्धी रोगों मे फोर्टेज देता हूं। लाभ मिलता है—साथ-साथ नामर्द पुरुष मर्द बन जाता है। ऐसे भी पुरुष देखे गये हैं कि जब वह पुरुष स्त्री सङ्ग के लिए जाता है—तो दो घण्टे पहले फोर्टेज की गोलिया (दो-चार) खा लेता है और आनन्दपूर्वक सम्भोग कर सकता है।

वृद्धावस्था या प्रौढ़ावस्था में शिश्न की उत्थान शक्ति अल्प हो जाती है, उस अवस्था मे जब प्रौढ पुरुष और वृद्ध पुरुष जब कामशक्तिवर्धक दवा मागते हैं—तब हम फार्टेज दे देते हैं। इनसे वृद्ध एव प्रौढ पुरुष भी ज्वान की तरह सम्भोग कर सकते हैं। इससे कोई नुकसान नही होता। निरापद औषधि है। अधिक दिनों तक लेने से भी नुकसान नही होता।

मात्रा व अनुपान—

सामान्यत —दो गोलिया तीन बार दूध से १ मास तक, बाद मे १-१ तीन बार, बाद में रात्रि को २ गोली।

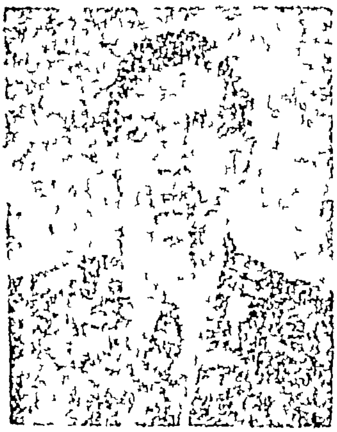
स्पष्टीकरण—फोर्टेज का उपयोग हम चिकित्सा व्यवसाय में वर्षों से करते आये हैं। अपना अनुभव यहा प्रेषित किया है। लाभ मिलता है। रोगी स्वस्थ हो जाता है। यश एवं धन प्राप्ति होती है।

अलारसीन कम्पनी १९४७ से "मन्थन" नाम से संशोधन करती है। सशोधन करके दवाबाजार में प्रेषित करती है। उसने भारतीय परम्परा बना रखी है। धन्यवाद के पात्र हैं।

कुछ शुक्र वर्धक पेटेण्ट आयु० औषधियां

वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र बी० एस० ए० एम०, आयुर्वेद मध्यमा
विवेचक-श्री बाला हनुमान आयु० महाविद्यालय, लोदरा ता० विजापुर (मेहसाना) उ० गुज०

—०※०—



विगोमाल्ट

(रीगल केमिकल वर्क्स, इन्दौर)

घटक द्रव्य—इसके प्रत्येक १५ ग्रा मे अश्वगधा ५०० मिग्रा., खारक २०० मिग्रा, शतावरी २०० मिग्रा सफेद मूसली २५० मिग्रा, विधारा ५०० मिग्रा., वग भस्म १०० मिग्रा, प्रवाल भस्म २५० मिग्रा., आमलकी १५ ग्रा, पिप्पली ६० मिग्रा, लोहासव १५ मिली, बला बीज २०० मिग्रा समाविष्ट हैं। इसे माल्ट के आधार पर बनाया गया हैं।

मात्रानुपान—इसे एक से दो चम्मच दिन मे दो बार दूध के साथ दें।

यह रसायन एव वाजीकरण कर्म हेतु उपयोगी है। यह शरीर मे कैल्शियम की पूर्ति करता है। स्नायु को मजबूत बनाता है एव धातुओं की वृद्धि करता है। पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि, स्वप्नदोष, मूत्र के साथ होने वाला शुक्रपात, असमय होने वाले वीर्यनाश मे यह विशेष प्रयोजनीय है।

अमीवीटा फोर्ट कैपसूल

(ऊझा फार्मेसी, ऊझा)

घटक द्रव्य—इसके प्रत्येक कैपसूल मे पूर्ण चन्द्रोदय १० मिग्रा, अभ्रक भस्म १० मिग्रा, लोह भस्म २५ मिग्रा, मुक्ता भस्म १० मिग्रा, प्रवाल पिष्टी १५ मिग्रा., सुवर्ण माक्षिक भस्म २० मिग्रा, केशर १ मिग्रा, जावित्री १० मिग्रा, सूर्यतापी शिलाजीत ३० मिग्रा, वग भस्म १० मिग्रा, शुद्ध विषतिन्दुक १५ मिग्रा, अश्वगधा ४० मिग्रा, गिलोय सत्व १० मिग्रा, अकरकरा १५ मिग्रा, कौंच बीज २० मिग्रा, वृद्ध दारूक २० मिग्रा, कर्पूर ५ मिग्रा, यष्टिमधु १५ मिग्रा, इलायची ३ मिग्रा, गोक्षुर २० मिग्रा, मूसली १५ मिग्रा, अष्टवर्ग १० मिग्रा, चौसठ पहरी पिप्पली १० मिग्रा, भाग का बीज १० मिग्रा, शतावरी २५ मिग्रा एव दुग्ध शर्करा २५ मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को एक से दो कैपसूल दूध के साथ प्रात शाम।

यह पौष्टिक, वाजीकर रसायन है। यह रोग प्रतिकारक शक्ति बढाती है। वीर्य स्राव, स्वप्नदोष धातु क्षीणता, मानसिक दौर्बल्यता, नपुसकता, हृदय दौर्बल्यता, क्षय, प्रमेह, मदाग्नि, अपस्मार इत्यादि रोगो को दूर कर के बल और वीर्य की वृद्धि करने मे यह सहायभूत है।

विटाटोन सीरप

(डूफ्लेक्स फार्मा, बम्बई)

घटक द्रव्य—इसके प्रत्येक ३० मिली में मूसली २०० मिग्रा, अश्वगधा ७५० मिग्रा, कौच ४५० मिग्रा, कोकिलाक्ष ६०० मिग्रा, विदारीकन्द ७५० मिग्रा, भृङ्ग-

राज ७५० मिग्रा, तमालपत्र ७५० मिग्रा, ककोल १५० मिग्रा., वंशलोचन ३०० मिग्रा, लवग ३० मिग्रा., जायफल ३० मिग्रा, कर्पूर १५ मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को २ से ४ चम्मच एव बालक को १ से २ चम्मच दिन मे तीन बार पानी के साथ।

यह रसायन एवं वाजीकरण योग है। यह सामान्य दौर्बल्यता, मदाग्नि, अल्प वजन, अपर्याप्त पोषण, लैंगिक दुर्बलता, थकावट, कमजोर पाचन क्रिया, नपुसकता, अक्षम रक्तपरिभ्रमण एव रक्तहीनता में लाभकारी है। यह शरीर एव मन को शक्ति प्रदान करता है। यह प्रसूति के पश्चात की अवस्था में स्थूलता एव शिथिल स्नायुओं के सामने रक्षण प्रदान करती हैं।

वीटास्यूल्स टिकिया

(डूपलेक्स फार्मा, वम्बई)

घटक द्रव्य—इसकी प्रत्येक टिकिया में अश्वगधा ४० मिग्रा, शतावरी ४० मिग्रा, शु शिलाजीत २० मिग्रा, मकरध्वज ५ मिग्रा, पिप्पली १० मिग्रा, शु. विषतिन्दुक १५ मिग्रा, नागर १० मिग्रा, विदारीकन्द ४० मिग्रा, गुडूची २५ मिग्रा, गोक्षुर २५ मिग्रा, तमालपत्र १५ मिग्रा आमलकी २५ मिग्रा, कालीमिर्च १० मिग्रा, मडूरभस्म १० मिग्रा, वगभस्म १० मिग्रा, अभ्रकभस्म १० मिग्रा, सुवर्णमाक्षिक भस्म १० मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को १ से २ टिकिया दिन मे तीन टिकिया दूध के साथ।

यह रसायन एव वाजीकरण कर्म करने वाली सर्वोत्तम औषधि है। यह वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, धातुक्षीणता, मानसिक दौर्बल्यता, नपुसकता हृदय दौर्बल्यता मे विशेष उपयोगी है। यह शरीर की रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाती है।

वानरी कल्प

(द क्र माण्डू ब्रादर्स प्रा लि, चेम्बूर, वम्बई)

घटक द्रव्य—इसके प्रत्येक ५ ग्राम मे कौंच बीज चूर्ण १॥ ग्राम समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को १ से २ चम्मच दूध के साथ प्रात. शाम।

यह एक अद्भुत पुन यौवनवर्द्धक औषधि है जो पुरुषत्व एव लैंगिक क्षमता वढाती है तथा इसका शक्तियुक्त स्पर्श मनुष्य शक्ति को अश्वशक्ति में परिवर्तित कर देता है (वाजीकरण योग) तथा कार्यशीलता को सुदृढ करता हैं। लैंगिक अक्षमता, लैंगिक नाडी दौर्बल्य, शुक्रमेह, मानसिक जातीय वाधाओं एव अन्य कामजन्य व्यतिक्रमों में हितकारी है।

विमफिक्स टिकिया

(द क्र. माण्डू ब्रदर्स चेम्बूर, बम्बई)

घटक द्रव्य—इसकी प्रत्येक चादी के वरख की आवरणयुक्त टिकिया में कपिकच्छू बीज एक्स २५० मिग्रा., कोकिलाक्ष एक्स २५० मिग्रा., गोक्षुर एक्स २५० मिग्रा, उटङ्गन बीज एक्स १२५ मिग्रा., विदारीकन्द एक्स २५० मिग्रा, श्वेतपुनर्नवा १२५ मिग्रा., शाल्मली १२५ मिग्रा, शतावरी २५० मिग्रा, गुडूची २५० मिग्रा, अश्वगधा २५० मिग्रा, अकरकरा १२५ मिग्रा, शुद्ध गन्धक २ ५ मिग्रा, केशर ० ५ मिग्रा, वशलोचन ५ मिग्रा., अभ्रक भस्म सहस्रपुटी ० ५ मिग्रा, शु शिलाजीत ७ ५ मिग्रा वग भस्म ६ मिग्रा, रससिन्दूर ६ मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को १-१ टिकिया दिन में दो बार दूध के साथ।

यह श्रेष्ठ पौष्टिक एव रोगप्रतिकारक शक्ति प्रदान करने वाली औषधि है। लैंगिक दुर्बलता, निर्बल कामेच्छा, सभोग हेतु शारीरिक तैयारी के अभाव, मूत्रान्तर्गत वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, ध्वजभग, शीघ्र स्खलन इत्यादि जातीय रोगों मे यह उपयोगी है। हस्तमैथुन या अतिमैथुन के कारण जो लैंगिक दौर्बल्यता होती है उसे दूर करने हेतु उत्तम पौष्टिक औषधि के रूप मे यह सर्वोत्तम उपाय है।

वाय सेक्स ड्रेगी

(भारतीय औषध निर्माणशाला, राजकोट)

घटक द्रव्य—इसके प्रत्येक ड्रेगी में अश्वगंधा ८० मिग्रा., कौंच बीज ८० मिग्रा; शु शिलाजीत १० मिग्रा., बला बीज ४० मिग्रा, केशर ० ५ मिग्रा., शु. विषतिंदुक

१५ मिग्रा., अकरकरा ४० मिग्रा., मकरध्वज १० मिग्रा, जुंदबेदस्तर ४५ मिग्रा, रस सिन्दूर १० मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को १-१ ड्रेगी दिन मे दो बार मिश्री मिश्रित दूध के साथ।

यह एक अद्भुत पुनः यौवनवर्द्धक औषधि है जो पुरुषत्व एव लैंगिक क्षमता बढाती है। नाड़ी दौर्बल्य-जनित ध्वजभग तथा शीघ्रस्खलन मे यह उपयोगी है। शुक्रमेह, मानसिक जातीय बाधाओ एव अन्य कामजन्य व्यतिक्रमों, तदुपरान्त स्त्रियो मे ठडापन मे यह हितकारी है। शरीर को स्वस्थ रखने, नष्ट जीवन शक्ति क्षमता एव गुणयुक्त वीर्य की पुनःप्राप्ति के हेतु तथा इस सुलगती हुई समस्या को हल करने के हेतु एक शक्तिपूर्ण उपाय के रूप में यह उपयोगी है।

वानोविट टिकिया

(भारतीय औषध निर्माणशाला, राजकोट)

घटक द्रव्य—इसकी प्रत्येक टिकिया मे कपिकच्छु ३० मिग्रा., शु. शिलाजीत १० मिग्रा, श्वेतमूसली २० मिग्रा., मुंजातक कन्द १० मिग्रा., बला बीज २५ मिग्रा, अश्वगन्धा १०० मिग्रा., गोक्षुर एक्स १० मिग्रा, मकरध्वज ५ मिग्रा., अभ्रक भस्म ३० मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को २-२ गोलिया एव बालक को १-१ गोली दिन मे तीन बार दूध या अश्वगन्धारिष्ट के साथ।

यह नाड़ी दौर्बल्य, उत्कट लालसापूर्ण लैंगिक स्थितियो, बल-स्फूर्ति, जीवन शक्ति व खाने की रुचि का ह्रास, स्नायु सम्बन्धी उदरशूल, रात्रि में शय्यामूत्र, वीर्य की धारणा-शक्ति का ह्रास, सामान्य दुर्बलता व शुक्रमेह मे प्रतिबध पैदा करने में हितकारी हैं। यह स्तम्भक, दीपन पाचन हैं। नपुंसकता एव वीर्य क्षय मे यह अति उपयोगी वाजीकरण औषधि है।

ह्विगोरिन फोर्ट कैपसूल

(आयुलेब फार्मास्युटिकल, बडोदरा)

घटक द्रव्य—इसके प्रत्येक कैपसूल मे मकरध्वज ६० मिग्रा., केशर १० मिग्रा, कपूर ५ मिग्रा, जायफल १० मिग्रा., रससिन्दूर ३० मिग्रा., बग भस्म ३० मिग्रा., अभ्रकभस्म १० मिग्रा., तगर १० मिग्रा., प्रियगु ५ मिग्रा., शु कुचला ३० मिग्रा., पिप्पली ११० मिग्रा, पिप्पली मूल १० मिग्रा, अकरकरा ३० मिग्रा., शुण्ठी ५ मिग्रा, कुलिजन १० मिग्रा, जटामासी १०० मिग्रा., कपूर कचरी १०० मिग्रा, अश्वगन्धा ५०० मिग्रा, कपिकच्छु ५०० मिग्रा, खसखस ५०० मिग्रा, सुवर्ण सूक्ष्मीकृत १ मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को १ से २ कैपसूल शाम को दूध के साथ।

यह उत्तम धातुवर्द्धक, शुक्रल तथा वाजीकर कल्प है। लैंगिक दुर्बलता, कामेच्छा की अल्पता या अभाव, शिश्नोत्थान न होना या ठीक से न होना (ध्वजभग), मूत्र मार्ग से वीर्यस्राव, स्वप्नदोष, शीघ्रस्खलन, स्तम्भन शक्ति की अल्पता, हस्तमैथुन इत्यादि जातीय विकारो में यह उत्तम लाभकारी है। यह कामेच्छा को बढाता तथा वीर्यदोष को दूर करता है। इसके नियमित सेवन से शुक्राणु सख्या भी बढती हैं।

आर बोटा फोर्ट टिकिया

(विकास फार्मा, लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली)

घटक द्रव्य—इसकी प्रत्येक टिकिया में सिद्ध मकरध्वज १० मिग्रा, मुक्ताशुक्ति भस्म १० मिग्रा, सुवर्ण माक्षिक भस्म १०मिग्रा, कुक्कुटाण्डत्वक भस्म १० मिग्रा., प्रवाल भस्म १० मिग्रा, अभ्रक भस्म १० मिग्रा., लोह भस्म २५ मिग्रा, तालमखाना २५ मिग्रा, जायफल २५ मिग्रा., बग भस्म ७० मिग्रा, शु. कुचला ७० मिग्रा., शु शिलाजीत ७० मिग्रा., अश्वगन्धा ७० मिग्रा. तथा केशर ५ मिग्रा. समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—वयस्क को २-२ गोली प्रातः शाम एव रात को सोने से एक घन्टा पूर्व दूध के साथ।

यह परम रसायन एव वाजीकरण कर्म करने वाली श्रेष्ठ औषधि है। इसके सेवन से वृद्धो में भी नई उमंग

—शेषांश पृष्ठ १६९ पर देखें

नपुंसकता निवारण

कविराज वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य, वसन्तपुरी, पीरपैंती (भागलपुर) बिहार

एकौषधि प्रयोग—

अश्वगन्ध का महीन चूर्ण बनाकर सेवन किया जाय तो इससे साधारण नपुंसकता ठीक होती है।

वरगद का दूध बतासे मे डालकर बतासा खावें। इससे भी नपुंसकता का विनाश होता है।

तुलसी का बीज खाया जाय तो इससे वीर्य पुष्ट हो कर नपुंसकता का नाश होता है।

श्वेत कनेर भीतर के महीन चूर्ण को १ रत्ती मक्खन के साथ सेवन करें और नित्य आधा रत्ती बढाते हुए सात रोज तक सेवन करें तो नपुंसकता चली जाती है।

पलाश के गोंद को खूब महीन पीसकर रखलें और प्रतिदिन ६ माशे से १ तोला तक गाय के ताजा दूध के साथ मिश्री मिलाकर सेवन करें। नपुंसकता खत्म हो जाती है।

वड (वरगद) की फली एवं पीपल के फलों को छाया मे सुखालें महीनकर एक तोला खाकर दूध पीवें तो वीर्य से हुई नपुंसकता मे काफी सुन्दर कार्य करता है।

सूखे विदारी को विदारीकंद के स्वरस मे २१ भावना देकर फिर आवले के स्वरस मे भी भावना देकर सेवन करें तो नपुंसकता दूर हो जाती है।

कुलिंजन का डेढ ग्राम बारीक चूर्ण १० ग्राम शहद मिलाकर गाय के दूध के साथ सेवन करे। गाय के दूध मे मधु मिलाकर पीने से भी नपुंसकता दूर होती है।

नपुंसकता नाशक तिला—गाजा अशुद्ध १ भाग लेकर जल मे सिल पर पीस लुगदी बनावें। फिर ४ भाग तिल तेल को कडाही मे चढाकर अग्नि पर गर्म करें। उसमें गाजे की लुगदी डाल इसे धीमी आच पर पकावें। तेल सिद्ध हो जाने पर उतारकर इन्द्री (शिश्न) पर धीरे-धीरे मालिश करें। इन्द्रिय शैथिल्यता दूर होकर नपुंसकता दूर हो जाती है।

शूकर (सुअर) की मेद और घी को एकदिल करके लिंग पर मलने से नपुंसकता में लाभ होता है।

अनुभूत एवं परीक्षित प्रयोग

नपुंसकताहर रस—(१) गंधक शु ६ ग्रा, शु पारद ४॥ ग्रा, सिंगरफ शुद्ध ४० ग्रा., सुहागा १० ग्रा, आक का दूध आवश्यकतानुसार, मुर्गी के खाली अण्डे २ नग, केशर कस्तूरी इच्छानुसार पहले ४ चीजो को ७ दिन तक आक के दूध मे स्वरस करे। फिर मुर्गी के खाली अण्डो मे भरकर छेद पर दूसरे अण्डा से वन्द करदें। अण्डे को कपड मिट्टी कर सुखा लें। फिर एक हाडी मे बालू भर कर उसी के बीच में अण्डे को रखदें। हाडी का मुख बन्द कर ४ घन्टे तक तीव्र अग्नि मे रखें। स्वांग शीतल होने पर अण्डा निकालकर औषधि निकाल ले। यदि आवश्यकता समझे तो केशर कस्तूरी भी मिलादें। २ चावल से १ रत्ती तक यह दवा मक्खन, मलाई से खावें। इससे नपुंसकता का नाश होता है।

यह नुस्खा श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा द्वारा प्रदत्त है।

(२) शु पारद ४० ग्रा, शु गंधक ४० ग्रा, अभ्रक भस्म ८० ग्रा, लौह भस्म २० ग्रा, भीमसेनी कपूर १० ग्रा, स्वर्ण वंग १० ग्रा, ताम्रभस्म, विधारा, श्वेत जीरा, विदारीकन्द, शतावर, ताल मखाना, बलामूल, कौंच के बीज, अतीस, जावित्री, लौंग, जायफल, भांग के बीज, सफेद राल, सालव मिश्री, अजवायन प्रत्येक ६-६ ग्रा। जल मे खूब मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें प्रात साय १-१ गोली दूध से लें।

—यह नुस्खा पं० भैरवदत्त शर्मा जी का है।

(३) पत्थर से कूटकर निकाला हुआ सफेद प्याज का रस २ किलो, शु शहद १ किलो दोनो को मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखकर मन्द अग्नि पर पकावें। प्याज का रस जलकर मधु शेष रह जाय तब सफेद मूसली आधा किलो मिलाकर चीनी या शीशा के बर्तन मे रखदें। सुबह-शाम १०-१० ग्रा. सेवन करें। नपुंसकता में काफी लाभ होता है।

—यह नुस्खा श्री जगदीश्वरानन्द सरस्वती का है।

(४) मालकागनी का तेल ४० ग्राम, घी १० ग्राम, शहद १२० ग्राम इसे काच के बर्तन मे रखदें। प्रातःसाय ६ ग्राम दवा सेवन प्रयोग करें तो नपुंसकता मे बड़ा लाभकर होता है।

—यह नुस्खा श्री जगदीश्वरानन्द जी का है।

(५) राधावल्लभ वैद्यराज जी का है—१ चन्द्रोदय १ तो०, कपूर, लौंग, मिर्च, जायफल प्रत्येक ४-४ तो०, कस्तूरी ६ माशे इन सबको घोटकर ३-३ रत्ती की पुड़िया बनालें। एक पुड़िया पान मे रखकर खावे। ऊपर से दूध मलाई, मक्खन मिश्री मिलाकर खावें।

२ मकरध्वज ४ तो०, स्वर्ण भस्म २ तो०, वंग भस्म, मोती भस्म, चांदी भस्म, कासे की भस्म, जायफल, जावित्री प्रत्येक १-१ तो० इन सबको पान के अर्क में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनादें। १-१ गोली सुबह शाम शहद से चाटकर दूध पीवें।

(६) स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती + शख भस्म २ रत्ती + मुक्ता शुक्ति भस्म १ रत्ती + प्रवाल पिष्टी १ रत्ती + नागभस्म १ रत्ती + ताम्र भस्म आधा रत्ती + स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती कुल मिलाकर ६॥ रत्ती इसको दो खुराक बनावें १ चम्मच आंवला स्वरस के साथ सुबह-शाम दिया जाय।

—यह योग श्री बी० एस० प्रेमीजी का है।

(७) राजवैद्य श्री लक्ष्मणदत्त कौशिक का नपुंसकता हर योग—कस्तूरी १ माशे, सिद्ध मकरध्वज २ माशा, स्वर्ण भस्म १ माशा, जायफल, जावित्री, शु० गन्धक ये सब ४-४ माशे, ब्राह्मी १० तोला, अदरख १५ तोला—सबको घोटकर एक माशे की गोली बनावें। १ गोली सुबह १ गोली शाम को दूध से लें।

(८) मुरारी दास आर्य ने एक नुस्खा बहुत सुन्दर दिया है—वसन्तकुसुमाकर रस १ गोली, वृ० पूर्णचन्द्र रस १ गोली, तुलसी के बीज १ ग्रा०, मोती पिष्टी १ रत्ती—यह दो मात्रायें हैं। इसे सुबह शाम घृत व मिश्री से सेवन करें। भोजनोपरान्त मृताजयासव १० तोला जल मिला कर पीवें।

(९) श्री प्रेम कुमार वसीतिया—१ अश्वगन्धा, *कौंच के बीज, सफेद मूसली, बहमन सफेद, सालमिश्री* ताल मखाना, कमरकस, गोखरु, सतावर, सकाकुल मिश्री क्षीर काकोली, रूमी मस्तगी, उटगन के बीज सिंघाड़ा क्षीर काकोली, बहमन सुर्ख, नागर मोथा समान भाग लेकर कूट पीस कपड़छन कर समभाग मिश्री मिलावें। ६ माशे से १ तोला तक गाय के दूध के साथ सुबह साम।

२ मीठे आम का रस ८ सेर लेकर उसमें २ सेर चीनी पीसकर मिलावें। उसके अन्दर आधा सेर घी डाल कर कलईदार वर्तन मे गाढा होने तक अग्नि पर पकावें। ठण्डा होने पर निम्न औषधियों को मिलावें, सोंठ, मिर्च, पीपल १० तोला, धनिया ४ तोला, जीरा २॥ तोला, चित्रक, दालचीनी नागकेशर, इलायचीदाना प्रत्येक २ तोला, लौंग, कस्तूरी, भीमसेनी कपूर २-२ माशा, शहद ४० तोला इन सभी द्रव्यों को यथावत मृतबान मे रख दें, २॥ तो की मात्रा में सेवन करें तो नपुंसकता नष्ट हो जाती एवं बल वृद्धि होती है।

(१०) डा० भागचन्द जैन—ध्वजभग पर सफल प्रयोग दर्शनीय है—

(1) लौंग २५ ग्रा०, अफीम १ तोला, भाग ३ तो०, शिलाजीत ३ तो०, कायफल १ तो०, छुआरा, बीजबन्द, विदारी कन्द मुलहठी, पान की जड ५०-५० ग्रा०, हिंगुल शुद्ध ३ तो०, शुद्ध कुचला १५ तो०, असगन्ध सतावर बादाम ५०-५० ग्रा०, केशर ३ तो०, समस्त द्रव्यों को कूट पीस कर मोती वगैर शुद्ध ५० ग्रा० लेकर एक

मिट्टी के घड़े मे रखकर कण्डों द्वारा भस्म करना चाहिए। उसमें लोह भस्म, प्रवाल भस्म, स्वर्ण भस्म, स्वर्ण वङ्ग १-१ तो० मिलाकर मोती भस्म में शक्कर की चासनी बनाकर समस्त द्रव्यो एव भस्मो को मिलाकर बेर के बराबर गोली बनावें। १-१ गोली सुबह शाम लगातार ४० तक सेवन करने से नामर्दी खत्म हो जाती है।

(ii) शिलाजीत १ तो०, बादाम, अकरकरा, शु० हिंगुल, अफीम आधा-आधा तो०, कस्तूरी १ रत्ती, दालचीनी चौथाई तो० समस्त द्रव्यो को पीसकर पान के रस एव अद्रक के रस मे गोली बनावें। सुबह शाम मक्खन के साथ सेवन करें। ४० दिन मे नपुंसकता दूर भाग जायेगी।

(११) शङ्करलाल गौड 'शम्भु कवि' ने एक नपुंसकता निवारक योग का नमूना दिया है—

वीर बहूटी, जावित्री २ रत्ती अनुपान,
६ माशे अदरख स्वरस खरल कर मन ध्यान।
वक्र क्षीण सुस्तीपन जाय योग प्रयोग,
स्वल्प काल लेपन शनैं इन्द्री दृढ सम्भोग॥

(१२) श्री गिरधारीलाल मिश्र का नपुंसकता पर स्वानुभूत योग देखें—

(i) वसन्तकुसुमाकर रस एक गोली, पूर्ण चन्द्रोदय रस १ गोली, शतावर्यादि चूर्ण १ माशा यह एक मात्रा हुई, प्रात साय दूध से सेवन करे।

(ii) मृत सजीवनी सुरा, द्राक्षारिष्ट ४-४ चम्मच बराबर जल से भोजन के बाद लें—

नपुंसकता मे व्यवहृत होने वाली शास्त्रीय दवायें—

रस भस्म प्रकरण मे—त्रिलोक चिन्तामणि रस, वृ० स्वर्ण माक्षिती, हिंगुल रस, सिद्ध मकरध्वज, रस सिंदूर, अमृता रसायन, मल्ल चन्द्रोदय, स्वर्ण बग, बसन्त कुसुमाकर रस, वृहत कामचूडामणि रस, कामेश्वर रस, कामधेनु रस, वृ० पूर्णचन्द्र रस, योगेन्द्र रस।

वग भस्म, त्रिबग भस्म, नाग भस्म, रौप्य भस्म, लोह भस्म, हीरक भस्म, पारद भस्म, वैक्रान्त भस्म।

चूर्ण— कामदेव चूर्ण, नारसिंह चूर्ण, अश्वगधादि चूर्ण।

वटी में—वानरी वटी, शिलाजित्वादि वटी, चन्द्रप्रभा वटी।

घृत—कामदेव घृत, वाजीकरण घृत, अश्वगंधाघृत

अवलेह पाक—केशर पाक, सुपारी पाक, कौंच पाक, सालम पाक आदि।

तैल प्रकरण में—मन्मथ तैल, मृगमद तैल, कामध्वज तैल, श्री गोपाल तैल आदि।

आयुर्वेदिक मिश्रित पेटेण्ट योग—

१ सिद्ध मकरध्वज १ रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती, मल्लचन्द्रोदय २ रत्ती, पान स्वरस एव मधु के साथ सेवन करें।

२. शिलाजीत, बङ्ग भस्म, जावित्री, सालममिश्री छोटी इलायची प्रत्येक १०-१० ग्राम, सबको कूटपीस कर एकत्र करें और सुबह शाम धारोष्ण दुग्ध के साथ लेवें।

३. स्वर्ण बङ्ग २ रत्ती, पूर्ण चन्द्ररस २ रत्ती, वृहद कामचूडामणि रस १ रत्ती—मक्खन मलाई के साथ लेवें।

४ वसन्त कुसुमाकर रस १ रत्ती, वृ०कामचूड़ामणि रस १ गोली, स्वर्ण बङ्ग १ रत्ती, बङ्ग भस्म १ रत्ती—यह एक मात्रा हुई। इसे मधु के साथ सेवन करना है।

५. वृ० कामचूड़ामणि रस १ गोली, पूर्णचन्द्र रस २ रत्ती, स्वर्ण बङ्ग भस्म २ रत्ती सुबह शाम मक्खन मलाई के साथ चाटें।

६. चन्द्रोदय रस १ रत्ती, स्वर्ण भस्म आधी रत्ती कृष्णाभ्ररस १-२ रत्ती को पानरस एव मधु के साथ सेवन करना चाहिए।

७. वसन्त कुसुमाकर रस १/२ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, गिलोय सत्व १ रत्ती, मधु मिलाकर सेवन करें।

८. मकरध्वज आधी रत्ती, लोह भस्म १ रत्ती, मुक्ता भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, पान स्वरस एव मधु के साथ लें।

९. रस सिंदूर आधी रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म, बङ्ग भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म १-१ रत्ती मधु से।

१० बङ्ग भस्म १ रत्ती, स्वर्ण बग आधी रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, बसन्त कुसुमाकर रस आधी रत्ती मधु के साथ सेवन करें।

११. रस सिंदूर आधी रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म,

बङ्ग भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म १-१ रत्ती मधु से।

१२ बसन्त कुसुमाकर रस १ गोली, पूर्ण चन्द्रोदय रस १ गोली, शतावर्यादि चूर्ण १ माशा। १ मात्रा—प्रातः साय खाकर दूध पीवें।

१३. भोजनोपरान्त मृत सजीवनी सुरा ४ चम्मच बराबर जल मिलाकर लें।

१४. बसन्त कुसुमाकर रस, बृ० पूर्णचन्द्र रस, तुलसी के बीज, मोती पिष्टी प्रत्येक १-१ रत्ती। सुबह शाम मृत व मिश्री के साथ सेवन करें।

आयुर्वेदिक कम्पनियों द्वारा निर्मित पेटेण्ट औषधिया लिंग (शिश्न) में लगाने वाली दवाएं (मलहम)

हिमालय कम्पनी—हिमकोलिन क्रीम

मार्तण्ड कम्पनी का—टेस्टोविग क्रीम

एलोपैथिक दवायें—टेस्टोफास गोली, पेरेनड्रेन चूसने की गोली, टेस्टाफार्म ओरल, टेन्टेक्स फोर्ट, टेस्टोविरान गोलियां, ओरावाइरोन, यूनिटेसट्रीन, टेस्टोफार्म ओरल, योहिमनिण्डान गोली, सेसिविन, सोलोविटिन, एलेक्जीर सलाव कम्पाउन्ड, पासूमा स्ट्रांग फोरिटेज।

एलोपैथिक सूचीवेध—पेरेन्ड्रीन, फोस्टोरान, यूनिटेसट्रान टेस्टाफार्म, जेस्टोल, एण्टीटुरीन, स्टीरेण्ड्रिल, प्रोवोन टेस्टोविरान, इक्वाइरोन, ट्रायोलेण्ड्रेन, यूनी वी कम्पलक्स, टेस्टोट्रेट, विरीजेन, योहिम्बीन पासूमा आदि।

होमियोपैथिक चिकित्सा मे—

सल्फर २०० की १ गोली दीजिये, दूसरे दिन १ गोली कल्केरिया कार्ब २०० की दीजिए, तीसरे दिन लाइकोपोडियम २०० की १ गोली दीजिए। यदि इससे भी लाभ नही हो तो पुन लाइकोपोडियम १००० हजार की १ गोली १५ दिन उपरान्त दें। निश्चित लाभ होगा। यदि हस्तमैथुन या कुटेवो के चलते नपुंसकता उत्पन्न होगया हो तो नेरायटाफास २०० की हर सप्ताह देना लाभकर है। यदि इससे भी लाभ नहीं हो तो जेलसियम देना चाहिए। इसके बाद भी रोगी को एवेना सैट कोनायम आदि का व्यवहार कर सकते हैं।

बायो कैमिक दवाओं मे कल्केरिया फास ३× या कल्केरिया सल्फ, कालीफास, नेट्रमम्योर, नेट्रमफास, नेट्रम सल्फ, काली फास ३× व साइलीसिया १२× मिलाकर ४-५ बार रोज दें। निश्चित लाभ होगा।

योगासन एव रोगोपचार—प्राणायाम एव योगासन सन से शरीर एवं मन को स्वस्थ तथा जीवन की सारी बीमारिया दूर कर स्वस्थ एव सानन्दमय जीवन बनाया जा सकता है। बिना योग के रोग नहीं जा सकता है। यह चिर सत्य है रोग दूर करने की अन्तिम सीढी योग ही है। नपुंसकता दूर करने के लिए योगमुद्रा, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन से नपुंसकता दूर किया जा सकता है ऐसा विचार ऋषि मुनियों का है।

प्राकृतिक चिकित्सा—

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति मे शीघ्र पतन एव नपुंसकता की चिकित्सा के लिए औषधोपचार की आवश्यकता नहीं है वल्कि खान पान में आवश्यकतानुसार सयम तथा अन्य प्राकृतिक उपायो का आश्रय से ऐसे दुष्ट रोगो को जड से खत्म किया जा सकता है। सबसे पहला उपाय है प्राणवान भोजन किया जायें। प्राणवान भोजन से मेरा मतलब ऐसे भोजन से है जो सम्पूर्ण शरीर को पुष्ट करे तथा साथ-२ स्नायुओ को भी पुष्ट करे। इसके लिए अकुरित अन्न सेवनीय है। इसमें गेहूँ एव मूंग सर्वाधिक उपयुक्त है। अकुरित अन्न बिना मसाला के खावें। इससे विटामिन (जीव तिक्ति) ई की भरपूर मात्रा होगी साथ ही साथ मूली, गाजर, प्याज, टमाटर, खीरा लिया जा सकता है। भोजन के बाद थोडा व्यायाम भी जरूरी है। इससे शरीर में स्फूर्ति आती है। इसके बाद धूप स्नान, मिट्टी आदि का लेप तथा गर्म एव ठडे जल से स्नान भी जरूरी है।

आयुर्वेदिक तिलाओ का निर्माण इसी आधार हुआ है। आजकल एक यन्त्र निकला है जिसमें शिश्न (लिंग) डाल दिया जाता है पिचकारी की हवा खीचकर बिहर्गत कीजिए। इस तरह कुछ दिनों तक किया जाय तो शिश्न मे जान आजायेगी एवं शिश्न मे वृद्धि हो जायेगी। तिला

लगाने से एव वाघने से फोडा उत्पन्न हो जाता है लेकिन इसकी चिन्ता का परित्याग करना चाहिए ।

१ रस धतूरा आधा ग्रा० तिल का तेल २४ ग्राम एक कपडा आधा गज । धतूरे के रस मे कपडे को भिगो कर रहने दें (२० दिन तक) यह कपडा तब तक रहने दें जब तक कपड़ा पूर्ण रस को सोख न ले । फिर एक कटोरे मे २४ ग्रा० तिली का तेल ले लें फिर कपडा डाल दें जब कपडा पूर्ण सोख ले तो कपडा नीचे लटकाकर अग्नि लगा दें । जो रस रहेगा टपक कर गिरेगा कासे के बर्तन कपडे के नीचे रख दें । फिर तैल की बू दें टपक कर कासे के वर्तन मे गिरेगी । इसी तैल को सुपाडी छोडकर लगावें बहुत लाभकर है। तथा सफेद मूसली चूर्ण १२ ग्रा०, बन्सलोचन चूर्ण, सत गिलोय, दालचीनी चूर्ण, अकरकरा चूर्ण, त्रिफला चूर्ण ६ ६ ग्रा०, सोने के वर्क, चांदी के वर्क दोनों १-१ ग्रा०, वङ्ग भस्म, मू गा भस्म, लोह भस्म, १-१ ग्रा०, शहद ६० ग्रा०, घी, भाग १२-१२ ग्रा०, मिश्री ६० ग्रा० । सर्व प्रथम मिश्री को एक बर्तन में डालकर चासनी वना लें । फिर सफेद मूसली, बन्सलोचन, छोटी इलायची, गिलोय सत्व, दालचीनी, अक्रकरा और जायफल महीन पीसकर तदोपरान्त वङ्ग, मू गा, लौह सोने और चादी का वर्क, भाग का तैयार घृत एव शुद्ध शहद सहित सभी द्रव्यों को चासनी में डाल दें। फिर चासनी तैयार हो गया । हर रोज ३-३ ग्रा० दूध से लें ।

भिलावा की गुठली, जलयूक, कमल का पत्ता, सैंधा नमक इनको बन्द पात्र में जलाकर भस्म करलें । फिर भस्म को बडी कटेरी के फल के रस मे पीसकर लिङ्ग पर लगावे ।

रेङ्ग माही लौंग जायफल, जाविञी, कुचला, मालकागनी, खरातीन, पिस्ता, अकरकरा, सफेद घुघुची, बाय विडग, चन्द्रवस्तर ६-६ ग्रा अलसी या तिल के तेल मे डालकर पकावें । जब सभी दवा जल जाय उतारकर ठडा होने पर छानकर धीरे-२ लिंग पर मर्दन करे ।

अश्वगधा, सखरकद, जलयूक, वडी कटेरी, भैंस का मक्खन, हस्तिकरण पलास, बज्र वल्ली, इनके रसको अलग अलग इन्द्रिय पर मालिश करे (सभी ओषधियो की मात्रा तेल के चौथाई हो) ।

लोध, कासीस, नागवला इसके कल्क को तिल के तैल में पकावें एव लिंग पर मालिश करें ।

कूठ, नागवला खरैटी, असगन्ध, गज पिप्पली, कनेर की जड इनके चूर्ण को मक्खन के साथ मिलाकर इन्द्रिय पर लेप करें ।

अनार का छिलका, ककड़ी के बीज, नेत्रवाला या खस और बडी कटेरी के फल का रस, तैल को मन्द अग्नि पर पकावें एव लिंग पर मालिश करें ।

मालकागनी के बीज २।। तोला, अफीम, शृङ्गिक विष, भाग, लौग, जायफल, जाविञी, दालचीनी, अकरकरा, कौडिया लोहवान, प्याज के बीज, अडी के बीज छिलका रहित सभी को १-१ तोला लेकर कूट-पीस कर आक (मन्दार) के दूध मे घोटे एव टिकिया बनाकर पाताल यन्त्र से तैल निकालकर लिङ्ग पर लगावें—लिङ्ग की नसो पर शक्ति आकर लिंग की लम्बाई बढती है सोई हुई नसो मे रक्त का दौर दौरा बढ जाता है ।

वैसे आजकल वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र निकाला है जिसके व्यवहार से लिंग की लम्बाई बढ सकती है ।

मैथुन शक्ति बढ़ाने के उपाय—

शतावरीपाक—शतावर आधा किलो कूटछान कर ५ किलो दूध मे डाल कर खोया बनावें । बाद मे लौंग जाविञी, गोला मिर्च, नागरमोथा, सेमल का गोद, पीपल (छोटी) दालचीनी, तेजपात, केशर, इलायची (छोटी) नागकेशर अजवाइन और सूखे आंवले सभी ५-५ ग्रा०, भीमसेनी कपूर १ ग्रा० सबको कूटकर महीन कर खोआ में मिला दें । ३ किलो चीनी की चासनी बनाकर सब दवाओं को मिला दें। प्रतिदिन २५ ग्रा. के बराबर खाकर दूध पीवें । इसके सेवन से मैथुन करने की क्षमता बढ़ती है।

असगन्ध पाक—असगन्ध ४० तोले को महीन चूर्ण करें ६ सेर दूध मे पकावें गाढा होने पर उसमें चतुर्जात (दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची) १। तोले, जायफल, केशर, बशलोचन, मोचरस, जटामासी, चन्दन,

खैरसार, जावित्री, पीपलामूल, लोंग, ककोल, पाढ़ल, अखरोट की गिरी सिंघाडा, गोखरू, रस सिंदूर, अभ्रक भस्म, नागभस्म, वङ्ग भस्म, लौह भस्म प्रत्येक ७-७ माशे, इन काष्ठ औषधियो को महीन चूर्ण कर सबको खोआ मे मिलावें। दालचीनी की चासनी बनाकर उसमें (खोआ) में मिलावें। १-१ तोला सुवह शाम गो दुग्ध से या जल से लें, इसके सेवन मे वीर्य गाढा होता एव मैथुन शक्ति प्राप्त होती है।

अन्य पाकों मे—गोखरूपाक, मदनानन्द मोदक, कौच पाक, मूसली पाक, रतिवल्लभ मोदक आदि हैं। वलवीर्य वर्द्धक एव मैथुन शक्ति प्रदायक हैं।

चूर्ण—

अश्वगन्धादि चूर्ण, विदार्यादि चूर्ण, रतिवल्लभ चूर्ण, वानरी चूर्ण, कामिनी मर्दन चूर्ण, कामिनीविद्रावण रस, शतावर्यादि चूर्ण, अश्वगधादि चूर्ण, विधारा चूर्ण ४०-४० तोला लेकर इन को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण कर ६-६ माशा सुबह शाम दूध के साथ लेवें।

विदार्यादि चूर्ण—विदारी कन्द सफेद मूसली, सालम पंजा, असगन्ध गोखरू, अकरकरा प्रत्येक समभाग लें। कपडछन चूर्णकर ३-३ माशा सुबह साम दूध से लें।

रतिवल्लभ चूर्ण—सकाकुल मिश्री ८० ग्रा० वहमन लाल, वहमन सफेद, सालमपंजा, सफेद मूसली और गोखरू प्रत्येक ४०-४० ग्रा० लें, छोटी इलायची के दाने, सत्व गिलोय, दालचीनी और गावजुवां के फूल २०-२० ग्रा० लें। सबकी कूट कपडछनकर ४-६ ग्रा० तक दवा एव मिश्री मिला दुग्ध से लें।

शतावर्यादि चूर्ण—शतावर, गोखरू, कौच के बीज की गिरी, अश्वगन्धा और मूसली सब बराबर मात्रा मे लेकर कूट कपडछनकर ३-६ ग्रा० दवा खाकर दूध पीवें।

वानरी चूर्ण—कौंच के बीजो की गिरी, सफेद मूसली, तालमखाना के बीज, उटगन के बीज, मोचरस, ऊट-कटारे की जड की छाल, बीजबन्द, कमरकस, बहुफली, समन्दर शोष, सूखे सिंघाडे एव शतावर प्रत्येक ५० ५० ग्रा सवको कूट पीसकर रखलें। २ से ६ ग्रा चूर्ण दूध के साथ सुवह-शाम सेवन करें।

अनुभूत एवं परीक्षित प्रयोग

श्री दीनदयाल मिश्र के गुप्त सिद्ध प्रयोग से—वंश लोचन १० ग्रा, शिलाजीत १ ग्रा, लौह भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म, यशद भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, कपर्दिका भस्म, रससिन्दूर १-१ ग्रा सबका मिश्रण वनालें। उसमे अश्वगन्धा, शतावरी, गोखरू बडा २० २० ग्रा इन तीनो को मोटा कूटकर ४०० ग्रा जल मे क्वाथ करें। अष्टमांश क्वाथ उतारकर इस क्वाथ मे उपरोक्त मिश्रण को पत्थर के खरल मे घोटकर सुखा लें। १ ग्रा से १॥ ग्रा. तक दिन मे २-३ बार मक्खन १० ग्रा, मिश्री ५ ग्रा., शहद ३ ग्रा के साथ मिलाकर चाटें।

वीर्य स्तम्भक गोलिया—शिलाजीत ५ ग्रा, केशर ३ ग्रा, शुद्ध हिंगुल ३ ग्रा, वग भस्म ५ ग्रा, रौप्य भस्म ५ ग्रा, स्वर्ण वंग ५ ग्रा, शुद्ध कुचला चूर्ण ५ ग्रा, श्वेत मूसली का महीन चूर्ण १० ग्रा, अफीम ३ ग्रा सव द्रव्यों को किसी खरल मे पानी के साथ पीस लें। फिर उसमें वरगद का दूध ५० ग्रा. डालकर मटर के वरावर गोली बनाकर छाया मे सूखा लें। १ से २ गोली सोते समय दूध के साथ लें। —वैद्य ऊधवदास जे० लालवानी

स्तम्भक वटी—जातिफल, जातिपत्री, अहिफेन-सत्व, माजूफल, हरमल, रूमीमस्तगी, नागकेशर, मोचरस, तज, शुद्ध गुगुल, सुपाडी चिकनी, छोटी इलायची के बीज, वंश लोचन, खुरासानी अजवायन प्रत्येक १२-१२ ग्रा सबको कूट पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण करलें। फिर इसबगोल १२ ग्रा, वहिदाना १२ ग्रा को २५ मि ली जल में भिगोदें। फिर ३ घन्टे बाद कपडे से छानलें। उक्त चूर्ण को डालकर कूट और वेर के बराबर गोली बनालें १ गोली मैथुन के पूर्व खालें तो अपूर्व मैथुन क्षमता बढती है।

—श्री मोहरसिंह आर्य द्वारा अनुभूत योग से।

शिश्न की लम्बाई



वैद्य श्री सुभाष ठाकर सेक्सोलोजिस्ट
"कामोपचार" ए-१९, केपीटल कोम-सेण्टर
सन्यास आश्रम के नजदीक, आश्रम रोड, एलीस ब्रिज
अहमदावाद-३८०००९ (गुजरात)

अनुवादक—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

श्री सुभाष भाई ठाकर गुजरात के लब्धप्रतिष्ठित आयुर्वेदीय सेक्सोलोजीस्ट हैं। आपके पास वंश परम्परागत आयुर्वेद की विद्या विद्यमान है। आपके पिताजी स्व० वैद्य श्री जादवजी नरभेराम शास्त्री पाडीट-वाला प्रतिभा सम्पन्न एवं निष्णात वैद्य थे। उन्होंने गुजराती मे कई आयु० ग्रन्थ लिखे हैं। श्री सुभाष भाई लेखक भी हैं। भूतकाल में आपके परिवार द्वारा 'निरोगी' मासिक प्रकाशित किया गया था। बाद में "श्रेयसी" मासिक के आप सम्पादक भी थे। "श्रेयसी" मासिक आयुर्वेद समाज मे लोकप्रिय था। संयोगा-वशात आपने दोनों मासिक बन्द कर दिये। आपने कामोपचार मे सेक्स सम्बन्धी अनेक गलत मान्यताएं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रद्द कर दी हैं। आप IASECT के सदस्य हैं और आप सातवीं विश्व सेक्सोलोजी कांग्रेस के सदस्य और सायन्टीफीया रीसर्च कमेटी एवं पेपर सलेक्शन कमेटी—सेक्सोलोजी कांग्रेस के सदस्य (India–1985) थे। और आपने इसी अधिवेशन मे "ट्रीटमेण्ट ऑफ इम्पोटेन्सी" प्रस्तुत किया था। आपके बड़े भाई श्री लाभशकर ठाकर सर्वश्रेष्ठ वैद्य एवं कवि हैं। 'धन्वन्तरि' आपसे अनेकों अपेक्षा रखती है।

—अशोक भाई तलाविया आचार्य

हमारी जननेन्द्रिय का विकास नही हुआ है, हमारा शिश्न बालक के शिश्न जैसा छोटा है। ऐसी शिश्न की लम्बाई विषयक फरियाद लेकर अनेको पुरुष चिकित्सक के पास शिश्न की लम्बाई बढाने की अपेक्षा हेतु आते रहते हैं। चिकित्सक इस विषय से अनभिज्ञ होने से दर्दी को योग्य मार्गदर्शन नहीं दे सकता। चिकित्सक की अन-भिज्ञता के लिए चिकित्सक के सिवा चिकित्सा की शिक्षा को दोष देना सर्वथा उचित है। आयुर्वेद और एलोपैथी दोनों अभ्यासक्रम एक जैसा दोषित है।

शिश्न की लम्बाई कितनी होनी चाहिए ? यह प्रश्न का उत्तर विचारने से पहले शिश्न का उपयोग क्या है शिश्न का काम क्या है ? यह समझ लेना जरूरी है।

शिश्न का प्रथम कार्य योनि मे गहराई तक वी छोडने का है। और दूसरा स्त्री को शिश्न-योनि घर्ष युक्त जातीय सतोष देने का है। यह दोनों कार्य शिश्न उत्थान अवस्था से करने का है शिथिलावस्था मे नही अत शिश्न की उत्थानावस्था में उनकी लम्बाई ध्यान लेनी चाहिए शिथिलावस्था मे नही। यह हकीकत दव

के मन मे लाना की खूब जरूरी है क्योकि ज्यादातर दर्दी शिथिलावस्था की लम्बाई से विशेष चिंतित होते हैं।

योनि से वीर्य छोडने का और स्त्री को सतोष देने का कार्य क्षमतापूर्वक करने के लिए शिश्न की लम्बाई कितनी होनी चाहिए ? उसके उत्तर का आधार योनि मे वीर्य कितनी गहराई तक छोडने का है, और स्त्री को जातीय संतोष किस तरह मिलता है, उनकी जानकारी पर रहता है।

योनि की गहराई अथवा लम्बाई हर स्त्री मे अलग-अलग देखने को मिलती है। ज्यादातर लम्बाई दस से बारह से०मी० (साढे चार से पाच इंच) होती है। यह लम्बाई गिनती मे लेने से पहले देह सम्बन्ध समय मे कामोत्तेजना युक्त स्त्री की योनि की लम्बाई मे होती हुई वृद्धि को लक्ष मे लेना जरूरी है। जब स्त्री जातिय उत्तेजना अनुभव करती है तब योनि की लम्बाई मे ३ से ४ से०मी० की वृद्धि होती है। अत देह सम्बन्धावस्था मे कामोत्तेजित स्त्री की योनि की लम्बाई अगत सोलह से०मी० होती है।

यह गिनती के आधार पर हम कह सकते हैं कि पुरुष का वीर्य स्त्री की योनि मे सोलह से०मी० गहराई तक छोड़ना चाहिए। जत वीर्य मे विद्यमान शुक्राणु गर्भाशय मे से होकर फॅलोपीन ट्यूब मे जाकर वही उपस्थित स्त्री अण्ड को फलित कर सके और इस तरह गर्भधारण हो सके। अत स्त्री को गर्भधारण कराने के लिए सोलह से०मी० लम्बाई से युक्त शिश्न होना चाहिए। तो क्या इससे अल्प लम्बाई से युक्त शिश्न वाले पुरुष के पिता बनने की आशा पर पानी फेर देना चाहिए ? नही, बिलकुल नही।

हम जानते हैं कि वीर्य मे शुक्राणु नामक पूछ वाला अति सूक्ष्म जन्तु रहता है। यह जन्तु गर्भाशय मे से होकर फेलोपीन ट्यूब में गहराई तक का अतर पूछा द्वारा सरक कर पसार करता है। यह बीस से पचीस से०मी० का अन्तर पार करता हुआ जन्तु पन्द्रह-सोलह से०मी० और भी अन्तर पार कर सकता है। अत वीर्य योनि मे गहराई तक छोड़ने के सिवा योनि के बाह्य मुख पर छोड दे तो भी गर्भ धारण हो सकता है। जो कि गर्भ धारण की शक्यता अल्प हो सकती है। अत शिश्न सोलह से०मी० के बजाय एक से०मी० का हो तो भी गर्भ धारण हो सकता है। इतना ही नही पर शुक्र-अण्ड मिलन, टेस्ट ट्यूब मे सफलतापूर्वक करा देता विज्ञान युग मे शिश्न न हो तो भी चल सकता है। जरूरत होती है वीर्य की। वीर्य शिश्न द्वारा योनि मे छोडने के सिवा सिरिंज (आर्टी फीशियन इन्सेमीनेशन सिरिंज) द्वारा भी छोडने का घर मे शक्य है। अत गर्भधारण और शिश्न की लम्बाई के बीच मे कोई सीधा सम्बन्ध नही है। और अब आईये शिश्न के स्त्री को सन्तोष देने के कार्य पर नजर डालें।

स्त्री के जातिय सुख के सन्दर्भ मे सबसे महत्व की बात तो यह है कि स्त्री को अधिक मे अधिक जातिय सुख देने वाला अवयव योनि मे नही पर योनि के बाहर है। इस अवयव को अंग्रेजी में 'क्लीटोरीस' और संस्कृत मे मदनांकुर और भगांकुर कहते हैं। यह मदनांकुर केश प्रदेश की नीचे की ओर एव मूत्र छिद्र से ऊपर की ओर लघुओष्ठ के मिलन स्थान की मध्य मे स्थित है। उनकी लम्बाई हर स्त्री मे अलग-अलग होती है। अधिकाश लम्बाई तीन से चार से०मी० मालूम होती दिखाई दी है। यह मदनांकुर अधिकतया त्वचा से आच्छादित होता है। यह त्वचा लघुओष्ठी के साथ बधा हुआ है। मदनांकुर देखने मे शिश्न की लघु आवृत्ति जैसा होता है। समग्र शिश्न मे जिस तरह शिश्नमणि जातीय सुख देने वाले ज्ञानतन्तुओ का अधिक से अधिक सख्या से युक्त होता है, इस तरह मदनांकुर मे उनका दियासलाई के अग्र भाग जैसा प्रदेश, जातीय सुख देने वाला ज्ञानतन्तुओं का अधिक से अधिक सख्या से युक्त होता है। विश्व की किसी भी स्त्री को प्राकृक्रीडा द्वारा उत्तेजित करने के बाद मदनांकुर को मृदुता से मर्दन किया जाय तो जातीय तृप्ति मिल जाती है। हस्तमैथुन करती हुई स्त्रिया अधिकाश इस पद्धति का उपयोग करती हैं। सजातीय सम्बन्धो से युक्त स्त्रिया भी एक-दूसरे को अधिकाश इस पद्धति से जातीय

संतोष देती है। अब, आप ही कहिये कि स्त्री की जातीय तृप्ति के लिए शिश्न की कोई जरूरत है ? फिर भी कोई प्रतिपक्ष अपनाकर कहे कि शत-प्रतिशत स्त्रिया मैथुनावस्था मे शिश्न-योनि संघर्ष से (घर्षण) पराकाष्ठा को थामती है तो यह किस तरह ?

प्रथम बात तो यह है कि जिस तरह समग्र शिश्न मे शुरूआत (अग्रभाग) का २-४ से मी जितना शिश्नमणि का प्रदेश जातीय सुख देने वाला ज्ञानतंतुओ की विशेष मात्रा से युक्त होता है, इसी तरह योनि की शुरूआत (अग्रभाग) का २ से ४ से०मी० जितना प्रदेश भी समग्र योनि की दृष्टि से विशेष मात्रा मे ज्ञानतंतुओ से युक्त होता है। अत इस प्रदेश मे शिश्न द्वारा घर्षण (संघर्ष) होने से स्त्री को काम-सुख प्राप्त होता है। इस तरह स्त्री को प्राप्त हुआ काम-सुख मे परोक्ष मे मदनांकुर का मर्दन होने से काम-सुख मिल जाता है।

स्त्री की योनिमुख पर लघुओष्ठ आया हुआ है। यह लघुओष्ठ संभोग के समय शिश्न के साथ (चीट) चिपक जाता है और शिश्न की अन्दर-बाहर की गति के समय कठिन और शिथिल होता है। यह लघु ओष्ठ आगे कहा गया उसी तरह मदनांकुर की त्वचा के साथ संलग्न होने से यह त्वचा भी लघुओष्ठ के साथ कठिन और शिथिल होती है। और यह कठिन एवं शिथिल होती हुई त्वचा मदनांकुर को परोक्ष से मर्दन करती है। और मैथुनावस्था मे स्त्री के काम-सुख मे वृद्धि होती है। कम से कम चार से पाच से०मी० लम्बाई वाला शिश्न मैथुनावस्था मे स्त्री को काम-सुख देने के लिए समर्थ है।

शिश्न की लम्बाई विषयक चिंतित दर्दी को इतनी स्पष्टता जरूर सान्त्वना देगी। फिर भी उसको कहना चाहिए कि जिस तरह मनुष्य की ऊंचाई एक समान नही होती, जिस तरह सबकी नाक एक समान नही होती, उसी तरह शिश्न एक समान नही होता। हर व्यक्ति में शिश्न की लम्बाई भी अल्प-ज्यादा देखने को मिलती है। उत्तेजित अवस्था मे सात से०मी० से लेकर बीस से०मी० तक की लम्बाई वाला शिश्न काम विज्ञान ने नोट किया है।

अपने शिश्न की लम्बाई प्रमाण मे युक्त है, यह जानने के बाद भी कोई दर्दी लम्बाई बढाने का आग्रह करे तो स्पष्टतापूर्वक कहना चाहिए कि कोई भी सलामत उपाय नही है।

शूक नामक जन्तुओ के लेप द्वारा शोथ (सूजन) लाकर शिश्न वृद्धि करने का उपाय प्राचीन काल में कुट वैद्य (छद्मचर वैद्य) करते थे। और उनके इस कुकर्म की वजह से विकृत हुये शिश्न की चिकित्सा किस तरह करनी चाहिए ? उसका वर्णन सुश्रुत ने किया है।

दूसरा उपाय शिश्नमणि मे छिद्र करके, छिद्र मे मृदु पत्थर डालकर व्रण का रोपण करने का है। यह उपाय भी प्राचीनकाल मे हमारे यहा और जापान मे किया जाता था। जापान मे पत्थर के सिवा घुंघरी डाली जाती थी। यह उपाय भी खतरनाक है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र प्लास्टिक सर्जरी द्वारा शिश्नवृद्धि का प्रयोग करने जाते हैं। इसमें इंजेक्शन की मदद से सिलिका जेल नामक पदार्थ शिश्न मे डालते हैं। मगर सिलिका जेल से कैंसर होता है और शिश्न को शल्यकर्म द्वारा अलग करने की भी आवश्यकता पड सकती है। अत यह उपाय भी असुरक्षित है।

शिश्नवृद्धि के लिए उपयोग मे आता हुआ सक्सन पंप भी बनावटी साबित हुआ है। उसमे होती हुई वृद्धि अल्प समय तक मर्यादित होती है। अत शिश्नवृद्धि का सुरक्षित एवं विश्वसनीय ऐसा कोई भी उपाय काम-विज्ञान मे अभी तक नहीं मिला।

नपुंसकता की होम्यो चिकित्सा

विद्यारत्न डा० प्रकाशचन्द्र गगराडे बी. एस सी., डी फार्मा आयु वारिधि
८०२, एन २, हबीब गंज, भोपाल–४६२०२४.

—★✿★—



एग्नस कास्टस (३० शक्ति से १ M, १० M)

जो लोग बचपन मे बुरी सगत में पडकर वीर्य नष्ट कर चुके हैं या जिन्होंने जवानी में गुप्तरूप मे व्यभिचार किया हो, जिससे समय से पहले वृद्धावस्था के लक्षण दिखाई देने लगे हो ऐसे लोगों के लिए एक उत्तम दवा है। इसके रोगी मन मे दुखी, खिन्न और स्नायविक दुर्बलता के कारण परेशान रहते हैं। इसके अतिरिक्त रोगी मे यदि पक्षाघात के कारण नपु सकता आई हो, सभोग की इच्छा होने पर भी इन्द्रिय का खडा न होना, अति सभोग से लिंग ढीला, छोटा और ठडा पड गया हो, चाहने पर भी उत्तेजना नहीं आती हो तो ऐसी अवस्थाओं मे इस दवा का प्रयोग बहुत लाभप्रद होगा।

एसिड फास (Q, ३०, २००, १ M)

इसका रोगी मानसिक रूप से दुर्बल होता है। बोलते समय उसका कलेजा कांपता है। हमेशा निराशा मे जीता है। क्योंकि अधिक वीर्यक्षय किसी भी माध्यम से कर लेने पर ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं। इन्द्रिय की अधिक स्पर्शकारिता के कारण और इन्द्रिय के खडी होने के पूर्व ही या खडी होने पर भी योनि छूते ही वीर्य निकल जाता है। मरीज शारीरिक रूप से भी कमजोर हो जाता है। सभोग यदि किसी प्रकार क्षणिक तौर पर सभव भी हुआ तो उसके पश्चात् रोगी को अति थकावट और अधिक निराशा पैदा होती है। पेशाब बार-बार आती है। मूत्र त्याग के बाद लसदार सफेद रग का चिकना रस टपकता है। रात मे कभी-२ अनजान में या स्वप्नावस्था मे वीर्य निकल जाता है।

सेलीनियम—३०

यद्यपि सभोग की तीव्र इच्छा होती है फिर भी लिंग मे जरा सी उत्तेजना आते ही वीर्य निकल जाता है। यहा तक कि वीर्य अपने आप निकल जाता है। रोगी कमजोरी महसूस करता है। उसका मन किसी काम में नही लगता है। हमेशा आलस छाया रहता है। वह चाहता है कि हमेशा लेटा रहे।

केलेडियम सेग्विनम–६ X, ३०

लम्बे समय तक यदि रोगी स्वप्नदोष का शिकार रहा हो, बिना देखे ही वीर्य निकल जाता हो, शरीर से पसीना मीठा सा निकलता हो, नीद में लिंग मे कडापन आए लेकिन जागते ही उसका ठडा पड जाना, दुष्कर्मों के कारण नपु सकता आने से उन लक्षणों मे यह दवा गुणकारी है। इन्द्रिय के आसपास ठडा पसीना आना इसका विशेष गुण है।

कोनीयम–३०, २०० मे C M शक्ति तक

अनेक लोग अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और लोकलाज के कारण सभोग की अदम्य इच्छा होते हुए भी उसे बलपूर्वक दबाकर रखते हैं। नतीजा यह होता है कि वे नपु सक हो जाते हैं। यद्यपि वे सुन्दर स्त्री को देखकर मानसिक रूप से खूब संभोग करते हैं। इन सब स्थितियों

से एक अवस्था वह आती है। सिर मे चक्कर आना इसका विशेष लक्षण है। इसका रोगी किसी तरह लिंग मे कडापन उत्पन्न करता भी है तो सभोग शुरू करते ही वीर्यपात हो जाता है।

लाइकोपोडियम–२०० से C M शक्ति

चालीस-पैंतालिस वर्ष से ऊपर की उम्र वाले व्यक्तियो के लिए यह दवा अधिक उपयुक्त पाई गई है। जो व्यक्ति दूसरा या तीसरा विवाह करते हैं और 'समय पर' अपने आपको अयोग्य पाते हैं उनके लिए विशेष रूप से यह दवा लाभप्रद है। जिनका लिंग छोटा, ठडा और शिथिल लगे उन्हें भी इसके सेवन से सन्तोषप्रद लाभ मिलता है।

कल्केरिया कार्ब–२००

स्वप्नदोष के बाद बहुत कमजोरी मालूम पडना, वीर्यपात के बाद हाथो मे ठडा पसीना होना, सर पर ठडा पसीना आना, दोनो पैर के तलुवे ठडे रहना, ठड सहन न होना, मोटापे की प्रकृति पाना, सभोग की तीव्र इच्छा होना लेकिन शीघ्र वीर्यपात होना मे लाभप्रद हैं।

स्टेफिसेग्रिया–२००

अत्यधिक हस्तमैथुन के परिणाम स्वरूप लज्जापन, आखों के नीचे कालापन, चिडचिडापन और नपुसकता की यह एक उत्तम दवा है। व्यक्ति मानसिक रूप से हमेशा काम सम्बन्धी चिंतन करता रहता है। अपना अपमान सहन नही करता है। बात मन में ही रखकर अन्दर ही अन्दर घुटता रहता है। किसी से आखें मिलाकर बात करने की हिम्मत नही जुटा पाता। स्वप्नदोष जनित दुष्परिणामो में भी लाभप्रद है।

सल्फर–२०० से C M शक्ति

इसके रोगी के हाथ-पैर के तलवो में जलन रहती है। वह ठड सहन कर लेता है लेकिन ठडे पानी से नहाना नही चाहता। शारीरिक बनावट से रोगी बहुत दुबला पतला होता है। इन्द्रिय भोग की इच्छा का अभाव रहता है। उत्साहहीनता, दुर्बलता, कमजोरी व पेट के रोगों से ग्रस्त रहना, वीर्य पानी की तरह पतला होना, इन्द्रिय कमजोर, ठडी, उत्थान भी बहुत कम व बहुत देर में होना, इन्द्रिय का योनि छूते ही वीर्यपात होना इसके खास लक्षण हैं।

एनाकार्डियम–३०, २००

जिन युवको का स्वास्थ्य बुरी सगत में पडकर हस्तमैथुन या वेश्यागमन के कारण भग हो गया हो, जो व शादी करने मे घबराते हों इस डर से कि वे नपुंसकता के शिकार तो नही हो गए हैं, उनके लिए यह एक अमूल्य औषधि है। इसके नियमित सेवन से न केवल सभोग शक्ति बढती है वरन स्मरण शक्ति भी बढती है।

नुफरलुटिया–६

जब विषय, काम शक्ति सम्बन्धी चिंतन करने मे भी इन्द्रिय उत्थान न होता हो, इन्द्रिय भोग की इच्छा ही न होती हो, इन्द्रिय सिकुड कर छोटी व फोते ढीले होकर नीचे लटक जाते हैं, इन्द्रिय की कमजोरी से स्वप्नदोष होता हो ऐसे लक्षणो मे इसे दें।

ट्रिब्यूलस टेरेस्टिस–Q

जो लोग अधिक मैथुन करते हैं उनके रोग में यह दवा लाभप्रद है। स्वप्नदोष और हस्तमैथुन से उत्पन्न हुए दुष्परिणाम इसके सेवन से दूर होते हैं।

नक्सवोमिका–३०

शराब अधिक पीने से उत्पन्न नपुसकता मे यह बहुत लाभप्रद पाई गई है। युवावस्था मे जो लोग हस्तमैथुन करते हैं, उनके लिए यह दवा विशेष गुणकारी साबित हुई है। सिरदर्द, कमर दर्द के अलावा बार-बार स्वप्नदोष की शिकायत मे भी यह लाभप्रद है।

अश्वगन्धा–Q

यह दवा पुष्टिकारक, बलप्रद और वाजीकरण करने के कारण एक मास के सेवन से नई शक्ति, जोश, उमग, जवानी लौटा देती है। मन्दाग्नि, शक्ति का अभाव, नपुंसकता, मानसिक कमजोरी, लिखा-पढा याद न रहना, स्वप्नदोष होना आदि लक्षणो मे गुणकारी है।

डेमियाना–Q

अधिक सभोग और वीर्यनाश के कारण पैदा नपुंसकता में, स्नायविक दुर्बलता की वजह से लिंग की ताकत कम

होना जैसी अवस्थाओं मे यह एक उत्तम दवा है।

एवेना सेटाइवा-Q

स्नायुविक दुर्बलता दूर कर कामवासना को बढ़ाती है।

होम्योपैथिक मिश्रित योग

(१) एसिड फास Q ५ बूंद, एवेना सेटाइवा Q ५ बूंद, सबाल सेरूलाटा Q ६ बूंद, सलिक्स नाइग्रा Q ५ बूंद स्वच्छ ताजा पानी २ औंस।

एक स्वच्छ सौ मिलीलिटर की शीशी में निर्धारित मात्रा में उपरोक्त सभी मदर टिंचर (Q) डालकर ऊपर से दो औंस पानी भर दें। नया कार्क लगाकर शीशी अच्छी तरह हिला लें। इस प्रकार तैयार दवा की तीन खुराक बनालें। एक खुराक प्रात काल दूसरी दोपहर और तीसरी रात्रि मे सोने मे एक घन्टा पूर्व लें। यह स्वप्न-दोष, वीर्य का पतला होना, कामेच्छा न होना, मर्दानी कमजोरी आदि दूर कर नपुंसकता को ठीक करता है।

(२) डेमियाना Q ५ बूंद, योहिम्बिनम Q ३ बूंद, एग्नस कास्टस Q ६ बूंद, अश्वगन्धा Q ५ बूंद और पानी दो औंस। उपरोक्त दवा की तरह ही शीशी से तीन खराक बनाकर दिन मे तीन बार लें।

यह वीर्यदोष, स्वप्नदोष, मर्दाना कमजोरी, लिंग का खड़ा न होना, कड़ेपन का अभाव, शीघ्रपतन, मूत्र में चिकना सफेद पदार्थ निकलना, नपुंसकता आदि दूर कर अंगों की क्रियाशीलता बढ़ाता है।

बाह्य प्रयोगार्थ मलहम

आर्निक मदर टिंचर ६० बूंद, कैंथरिस मदर टिंचर ६० बूंद, कैलेन्डुला मदर टिंचर ३० बूंद, नूफर लुटियम मदर टिंचर ६० बूंद और २ औंस तेल। १ स्वच्छ शीशी में भर जैतून का तेल या तिल्ली, मूंगफली या बिनौलों का तेल (किसी एक को लेकर) में अच्छी तरह मिला हिला लें इस प्रकार बने तेल की मालिश इन्द्रिय पर दिन में दो बार (यानी नहाने के बाद व सोने से पूर्व) करने से उसके समस्त दोष दूर हो जाते हैं।

धैर्यता के साथ यह प्रयोग कुछ माह तक नियमित सेवन करें तभी इच्छित लाभ होगा। ✱

✱ पृष्ठ १५७ का शेषांश ✱

पैदा होती है। जवानी में बुढ़ापे के लक्षण प्रतीत होना, जरा-सी उत्तेजना या मनोविकार के कारण धातु क्षय, पेशाब के साथ धातुस्राव, अत्यधिक सहवास के कारण शुक्र की निर्बलता, हस्तमैथुन या अप्राकृतिक मैथुन में धातु क्षीणता, अत्यधिक शुक्रक्षय के कारण रक्त कणों की कमी, थोड़े परिश्रम से थकावट मे यह उपयोगी हैं।

स्वप्नारि टिकिया

(पटियाला आयुर्वेदिक फार्मेसी, सरहिन्द, चण्डीगढ)

घटक द्रव्य—इसकी प्रत्येक टिकिया मे सर्द चीनी ३० मिग्रा, सत्त गिलोय ५५ मिग्रा, कर्पूर १५ मिग्रा, नाग भस्म १०० मिग्रा, हरिद्रा ३० मिग्रा तथा लघु एला २० मिग्रा समाविष्ट है।

मात्रानुपान—वयस्क को २ गोली रात को सोते समय।

यह वीर्य की उष्णता को दूर करती हैं। यह मूत्रल है। यह विशेषकरके स्वप्नदोष मे उपयोगी हैं।

अद्‌जोया टिकिया

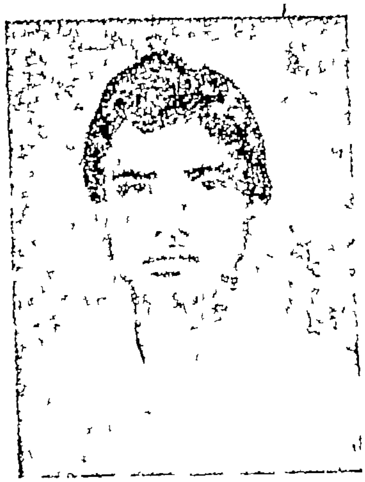
(चरक फार्मास्युटिकल्स, बम्बई)

घटक द्रव्य—इसकी प्रत्येक टिकिया मे अभ्रक भस्म ५ मिग्रा, अष्टवर्ग ५१ मिग्रा, अश्वगन्धा २० मिग्रा, चोबचीनी २० मिग्रा, गोक्षुर एक्स २० मिग्रा, गुडूची एक्स १५ मिग्रा, लोह भस्म ५ मिग्रा, प्रवाल पिष्टी १० मिग्रा, शतावरी एक्स २० मिग्रा, शिलाजीत ५० मिग्रा, सितोपलादि १० मिग्रा, सुवर्ण माक्षिक भस्म २० मिग्रा, त्रिवंग भस्म ५ मिग्रा, नागभस्म ५ मिग्रा समाविष्ट हैं।

मात्रानुपान—२ गोली दिन मे २ या ३ बार दूध के साथ। यह बलवर्धक, उत्तेजक, योगवाही, वृष्य मनो-विकार नाशक औषधि है। यह वीर्य में शुक्राणुओं की पुरुषत्व की कमी, वीर्य का पतलापन में उपयोगी है। अल्पता, शुक्राणु संख्या में पर्याप्त वृद्धि होती है। ★

शिश्न बृद्धिकर योग

वैद्य रविकांत शास्त्री बी ए एम एस, छीपीटोला, पंजाबी सराय, आगरा



१ मूसली के चूर्ण को भैंस के मक्खन के साथ मिलाकर उस पात्र को धान्य की राशि में रक्खें और ७ दिन के बाद निकालें। इसका लेप एक माह तक करें।

२ पीपर मरिच दूध घी तथा मिश्री सम्भाग इन सबों को मर्दन कर १ माह तक लिङ्ग के ऊपर लेप करें।

३ भैंस के घी में सैंधा नमक मिलाकर (सम्भाग) लेप बनालें। इसको लिंग पर मर्दन करे।

४. असगन्ध, अपामार्ग, सारिवा, बहेड़ा का फल, तिल, सरसों तथा इन्द्रजव सम्भाग इन सबों को बकरी के दूध मे पीसकर उससे लिंग को १ माह तक मर्दन करें।

५ मासी (जटामासी); बहेड़ा का फल, कूट, अश्वगन्धा तथा शतावरी इन सबो को तेल मे पकाकर एक माह तक लेप करें।

६ भल्लातकादि लेप—भिलावा सुगन्धवाला, कमलिनी के फूल (पत्ते) और काला नमक समान भाग लेकर मिट्टी के वर्तन मे वन्द करके भस्म करे। लिंग को भैंस के गोवर से अच्छी तरह रगडने के बाद कटेली के पके हुए फलों में मिलाकर उपरोक्त भस्म का लेप करें।

७. सूअर की वसा तथा मधु एवं सुहागा इन सबों को मिलाकर लिंग पर लेप करें।

८ पारद मरिच कूठ तगर कण्टकारी अश्वगन्धा तिल मधु सैंन्धा नमक सफेद सरसों अपामार्ग यव, उड़द तथा पीपर सम्भाग इन सबो को जल के साथ पीसकर उससे लिंग का सुबह शाम १ मास तक मर्दन करें।

९ हल्दी, मिश्री अश्वगन्धा तथा पारद समभाग इन सबो को मर्दन करें तथा इससे लिङ्ग योनि कर्ण तथा स्तन आदि एक मास तक मर्दन करने से बढते हैं।

१०. राहू मछली का पित्त, जोंक तथा लागली समभाग लिङ्ग के ऊपर एक माह तक लेप लगायें।

११. ध्वज वृद्धिकर योग (यो० र०)—मधु छोटी कटेली तगर मरिच पीपल सैंन्धा नमक अपामाग मूल जौ तिल गुड श्वेत सरसों उडद तथा असगन्ध को समान भाग लेकर विधिपूर्वक श्लक्ष्ण चूर्ण करके लेप करने से लिङ्ग की विशेष वृद्धि होती है।

१२ कुष्ठादि लेप—कूठ नागवला वला असगन्ध गजपीपल और कनेर के मूल को समान भाग लेकर विधिवत श्लक्ष्ण चूर्ण कर मिलाकर लेप करें।

अनुभूत—

रीठे का छिलका अकरकरा दोनों को थोडी मद्य मे पीसकर उसकी शिश्न पर १५-२० दिन मालिश करें।

अश्वगन्धादि तैल—अश्वगन्धा शतावरी कुष्ठ जटामासी कटेली के फल ४-४ तोला, तिल तेल १ सेर, दूध २ सेर। तैल साधना कर शिश्न क्षीण होने पर मले।

वैक्कम मैसेज यन्त्र

इस यन्त्र को दाऊ मैडीकल स्टोर्स अलीगढ से प्राप्त कर सकते हैं।

विधि—इन्द्रिय पर कोई लेप व तैल मालिस करके बाद में यन्त्र की चौडी नली में लिंग डाल दें। १०-१५ मिनट तक पम्प करें, इन्द्री में तैल शोषण हो जायेगा, २ मास मे इन्द्रिय लम्बी एव मोटी हो जाती है। विशेष जानकारी यन्त्र के साथ लिखी आती है।

रसायन सेवन क्यों कराया जाता है ?–किसे कराया जाता है ?

– रसायन का महत्व –

वैद्य श्री रामचन्द्र शाक्य, शासकीय आयुर्वेद औषधालय
रूपादेह (सिवनी मालवा) होशंगाबाद (म०प्र०)

'रसायन' का सेवन किसे कराया जाता है ? कामी को ? भोगी को ? व्यसनी को ?—नहीं, नहीं, नहीं ।

यथास्थूल म निर्वाह्य दोषान् शारीर मानसान् ।
रसायन गुणैर्जन्तुर्युज्यते न कदाचन ।।
योगा ह्यायु प्रकर्षर्या जरारोग निवहर्णा ।
मनुष्यशरीर शुद्धाना सिद्धयन्ति प्रयतात्मनाम् ।।

अर्थात् जो रसायन औषधि आयुवर्द्धक हैं, जरा नाशक है उन लोगो के लिये लाभकर नही होती है जिन्होंने शरीर और मानस दोष दूर नही किया । उन्हे रसायन से कोई फल नही मिलता ।

इतना नही च० चि० अ० १ मे बताया है—

तदेतन्न भवेद्वाच्य सर्वमेव हतात्मने ।
अराजेभ्योद्वि जातिभ्य. शुश्रषायेषु नास्ति च ।।

जो हतात्मा पुरुष हैं अर्थात् जिन्होंने मन आदि इन्द्रियों को विषय सेवा में रत हुये वे काम करते हैं जो आयु को क्षीण करने वाले हैं, शरीर दोषों को विकृत करके रोग पैदा करने वाले होते हैं, उन पुरुषो को रसायन तन्त्र का उपदेश नहीं करना चाहिये तथा जिन्हें सुनने की आकांक्षा नहीं पैदा हुई उन्हे भी उपदेश नही करना चाहिये ।

ऋषि दयानन्द यदि कभी रसायन तन्त्रोक्त भेषज का सेवन करते थे तो यह जानकर कामीजन हसते थे, ब्रह्मचारी दयानन्द को रसायन सेवन करने की क्या आवश्यकता है ।

यहां यह स्मरण रखना आवश्यक है कि रसायन का सेवन ब्रह्मचारी को ही सेवन कराना चाहिये उसे ही लाभकारी होगा ।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।।

—अ० ११।७।१९

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला निम्न बल प्राप्त कर सकता है—

यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्यो रतिक नीतएव ।
तमहरामि निर्ऋतेः रूप स्पादरयार्क्ष मेन शत् शारदाप ।।

—अ० ३।११।८

अर्थात् यद्यपि इसकी आयु क्षीण हुई हो, यदि यह मृत्यु के पास गया हो तो भी इसको उस विनाश के समीप से मैं वापिस लाता हूँ और सौ वर्ष के जीवन के लिये (अस्यार्त्त) बलवान करता हूँ ।

अत सिद्ध होता है कि जरा और मृत्यु को दूर करने के लिये ब्रह्मचर्यादि और रसायन दोनो आवश्यक हैं ?

रसायन किसे लाभदायक है ? किन गुणो युक्त मनुष्य को रसायन सेवन से लाभ होना है । हमारे आचार्य चरक मुनि ने इस प्रकार समझाया है—

सत्य वादिन म क्रोध निवृत्त मद्य मैथुनात् ।
अहिंसक मनाया सम्प्रशात प्रियवादिनाम् ।।
याज्य शौच पर धीर दान निय तपस्विनम् ।
देव गो ब्राह्मणाचार्य गुरू वृद्धार्यनिरतम् ।।
आनु शस्य परन्नित्य नित्य करूणा वेदिनम् ।
सम जागरण स्वप्न नित्य क्षीर घृताशिनाम् ।।
देशकाल प्रमाणज्ञ युक्तिज्ञ मन हङ्कृतम् ।
शस्ताचार म सकीर्ण महकात्य प्रवेणन्द्रियम् ।।
उपासितार वृद्धानां नास्तिकाना जितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्र पर विधान्तरे नित्य रसायनम् ।।
गुणैरते समुदितैः प्रयुङ्क्ते यो रसायनम् ।
रसायन गुणान् सर्वान् यथोक्तान् ससमश्नुते ।।

इसी प्रकार के विचार अष्टाङ्ग हृदय उ म ३९ में भी दिये गये हैं—(रसायन सेवी)

दिव्य औषधिया पुण्य देश मे ही उत्पन्न होती हैं और वह अपने प्रभाव से ही रसायन-कर्म का सम्पादन करती हैं। प्राणकामीय रसायन पाद में महर्षि चरक ने विशेषत. ग्राम्याहार तथा मिथ्याहार विहार के रूप मे जरा के निदान और सम्प्राप्ति का विशद् विवेचन किया है।

सभी रसायन जरा-व्याधि नाशक हैं। हरीतकी तथा आमलकादि रसायनों का चिकित्सीय क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। शरीर के सभी सस्थानों को वल प्रदान कर स्वस्थ और पुष्ट वनाती हैं। शारीरिक दौर्वल्य को दूर कर दीर्घ जीवन और इन्द्रियों को वल प्रदान करती हैं। कुछ रसायनों का विशेष प्रभाव होता है, कुछ विशेष व्याधि नाशक हैं।

आज के युग में महगाई के कारण एव अज्ञानतावश इस ओर हमारा ध्यान नही है, न इस ओर कोई ठोस कदम ही उठाया जा रहा है फिर भी इस वैज्ञानिक और यान्त्रिक आधुनिक बीसवी सदी के युग में इस प्राचीन शास्त्र की महत्ता, उपादेयता और व्यावहारिक उपयोगिता से मुख नही मोडा जा सकता। अत. विद्वान वैद्यों द्वारा इसका प्रयोग होना चाहिये और सर्व जनहिताय इसे प्रकाशित कर इसके गुण रहस्यो को उद्‌घाटित करने की नितान्त आवश्यकता है।

महात्मा बुद्ध को व्याधि और जराग्रस्त प्राणियो को देखकर तीव्र मानसिक कष्ट से उत्कट वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होने अपनी भरपूर जवानी में दुखमय ससार त्याग दिया। इससे यह कल्पना की जा सकती है कि व्याधि और जराग्रस्त प्राणी की दशा अति भयावह होगी। इसे दूर करने के लिए 'रसायन' ही समर्थ है। यही कारण है कि इसे आयुर्वेद के एक अग के रूप मे स्थान है। अत. रसायन का महत्त्व, रसायन क्यों कराया जाता है ? किसे कराया जाता है ? इस पर हम चर्चा कर चुके हैं। आइये पुन. जरा का चित्र और मनुष्य जीवन का अन्तिम दृश्य का अवलोकन करलें—अतोनिमित्त हि शिथिली भवन्ति मासानि, विमुच्यन्ते सन्धय, विदह्यते रक्त; वि.यन्दते चानल्पमेद., न सन्धीयते अस्थिषु मज्जा, शुक्रं न प्रवर्तते क्षयमुपैत्योज. स एव भूतो ग्लायति, सीदति, निद्रातन्द्रालस्य समन्वितो निरुत्साह पूर्वास्तति असमर्थ चेष्टाना शरीर मानसीनां नष्ट स्मृति बुद्धिच्छयो रोगाणामधिष्ठान भूतो न सर्वमायुर वाप्नोति।

ऐसी नारकीय परिस्थिति से बचने के लिए, दीर्घकाल तक (याने शतायु) स्वस्थ और पुष्ट बनाये रखने के लिए रसायन का आविष्कार किया गया था। यह इसकी सबसे बडी महत्त्वपूर्ण महत्ता है और ऐसी स्थिति न हो इसीलिए रसायन सेवन कराया जाता है तथा लक्ष्य मुक्त जीवन वाले प्राणी को रसायन सेवन कराया जाता है।

चक्रपाणि के मतानुसार—जो स्वस्थ व्यक्ति के लिये उर्जस्कर होता है वह प्राय रसायन और बाजीकरण होता है तथा ऐसे अधिकाश प्रयोग रोग निवारण मे भी उपयोगी होते हैं।

रसायन द्रव्य—आमलक हरीतकी, भल्लातक, च्यवनप्राश, वर्धमान पिप्पली, शिलाजतु, त्रिफला आदि का प्रयोग रोगो को दूर करने में होता ही है। क्योंकि प्रयुक्त हुआ व्याधिहर द्रव्य शरीर मे दृढता उत्पन्न कर दीर्घ आयु की प्राप्ति करवाता है। अत उसका भी रसायनत्वेन निर्देश सूचित है। साराश मे वृष्य और रसायन व्यक्ति की ऊर्जा को वढाने मे प्रयुक्त होते है। किन्तु वृष्य की अपेक्षा रसायन का प्रयोग रोग निवारण मे विशेष होता है। रसायन द्रव्यों का चिकित्सा में प्रयोग अन्यत्र भी कहा गया है-जो जरा व्याधि को नाश करने वाली भेषज होती हैं उसे रसायन कहते हैं। यहा रसायन का व्याधि नारीकत्व स्पष्ट माना गया है।

ऊर्जस्कर किसे कहते है ?—स्वस्थ व्यक्ति के उत्तम भाव, विशेष रूप से 'ओज' को बढाने वाले-ऊर्जस्कर। 'ऊर्ज' शब्द प्रशस्त भाव का वाचक है। स्वस्थ व्यक्ति में जरा आदि स्वाभाविक व्याधियो को दूर करने वाली तथा अप्रहर्ष, व्यवाय (मैथुन क्रिया) क्षीणता, अनुपचित-शुक्रता आदि अप्रशस्त शरीर भावों को दूर करते हुए ऊर्ज अर्थात् प्रशस्त भावो को शरीर में उत्पन्न करने वाली चिकित्सा को 'ऊर्जस्कर' कहते हैं।

रसायन का महत्व

आचार्य श्री वेदव्रत शास्त्री, कासगंज (एटा) उ० प्र०

रसायन निरुक्ति—रसाः रक्तादय. इयन्ते प्राप्यन्ते अनेन् इति रसायनम् ।

रस रक्तादि जिससे प्राप्त होते हैं उसे रसायन कहते हैं । भगवान चरक ने चिकित्सित स्थान मे चार प्रकार की रसायनें चार अध्यायो में वर्णन की हैं—

१—अभयाऽमलकीय रसायन पाद

२—प्राणकामीय रसायन पाद

३—करप्रचितीय रसायन पाद

४—आयुर्वेद समुत्थानीय रसायन पाद

उन्होंने अभयाऽमलकीय अध्याय के प्रारम्भ में लिखा है—

दीर्घमायु स्मृति मेधा आरोग्य तरुण वय ।
प्रभावर्ण स्वरोदार्यं देहेन्द्रिय बल परम् ॥
वाकसिद्धि प्रगति कान्ति लभते ना रसायनात् ।

अर्थात् दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, यौवनावस्था, प्रभावर्ण, स्वर, उदारता तथा देह एव इन्द्रियों में परम बल की प्राप्ति, वाक्‌सिद्धि, कान्ति और अन्य मानवों द्वारा प्रगति को मानव रसायन सेवन से प्राप्त करता है । मानव जीवन को युवावस्था जैसा बल वीर्य विक्रम प्राप्त कराने वाले प्रशस्त योग ही रसायन पद वाच्य हैं ।

उन रसायनो को कुटी प्रावेशिक एवं वातातपिक इन दो नामों से चरक ने प्रारम्भ में ही वर्णन किया है और विस्तारपूर्वक उनकी विधि का भी निर्देश किया है ।

रसायन विधि को उन्होंने देवताओं के अमृत से तथा भोगियों की सुधा से समता दी है । तथा यह भी उल्लेख किया है कि वृद्धावस्था दुर्बलता मृत्यु-आतुरता के अभाव के कारण मानव सहस्रवर्ष पर्यन्त जीवन व्यतीत किया करते थे ।

प्रथम पाद में आमलक और हरीतकी के विशिष्ट षड् योगों का वर्णन किया है । द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ मे प्रवचनशैली में ऋषि ने उद्घोष किया है कि—

प्राण कामा शुश्रुध्वम्—इद उच्यमानम् । प्राणेच्छुक प्राणियों सुनो जो मैं बोल रहा हु—और इसमे उन्होंने निद्रा, तन्द्रा, श्रम, लोभ, आलस्य, दौर्बल्यता विनाशक वात पित्त कफ के समता पर लाने वाले, स्थिरता प्रदायक बवृद्ध मासतर, अन्तराग्नि, सधुक्षण, प्रभा, वर्ण, स्वर को उत्तम बनाने वाले अप्रतिहत पराक्रम प्रदान करने वाले योगो का उल्लेख किया है । इस अध्याय मे १७ योगों का वर्णन है ।

करप्रचितिय अध्याय मे १६ योगो का वर्णन है । चतुर्थपाद आयुर्वेद समुत्थानीय मे महर्षि ने दिव्योषधियो का सिद्ध ब्रह्मचारियो के लिए वर्णन किया है । क्योंकि यह भ्रमणशील होते हैं । और यह सभी औषधियां सबको सर्वत्र सुलभ भी नहीं हो सकती हैं ।
इसी अध्याय मे—

अमरैरजरैस्तावद विबुधै. साधिये ध्रुवै. ।
पूज्येते प्रपतैरेतमश्विनौ भिषजत्यात ॥

अर्थात् देव वैद्य अश्विनीकुमारो की अजर अमर देवताओ द्वारा इसीलिये पूजा होती है कि वह वैद्य हैं । भारतीय आयुर्वेदशास्त्र में वैद्य की त्रिज सज्ञा है ।

तस्मात् वैद्य त्रिज. स्मृत ।

इन सबके लिखने का केवल मात्र अभिप्राय यही है कि उस काल में स्वतन्त्र भारत में जब विद्या, वैभव विवेक का साम्राज्य था उस समय वैद्य समाज को सर्व श्रेष्ठ माना जाता था । वह भी प्रत्येक आतुर को स्वजन मानकर चिकित्सा प्रारम्भ किया करता था । पर दुर्भाग्य से देश के वे दिन नहीं रहे और शासन कुशासन के कारण हम में प्रतिकूल परिवर्तन हुए और आयुर्वेद की निर्मल अविच्छिन्न धारा अवरुद्ध हो गई और इस प्रकार

भारतीय चिकित्सा शास्त्र का रसायन प्रकरण भी भोगियों के भोग की और कुत्सित कामियों की कामना साधक मात्र रह गये।

महर्षि ने—

नास्तिभव यस्याः सा अभया।

अर्थात् जिसके सेवन से किसी प्रकारण का भय न हो। उसी प्रकार—

आमलके समन्तात धारयतीति गौरादित्वातऽनेपू आमलकी।

अर्थात चारो ओर से शरीर की धारण शक्ति को स्थिर करने वाली दोनों औषधियो का रसायनपाद प्रथम मे वर्णन किया है। इन दोनों औषधियों के गुणधर्म से वैद्य तो वैद्य आबालवृद्ध तक भारत मे परिचित है। इस प्रकार वनौषधियो के चिकित्सा काल मे चरक द्वारा वर्णित वनौषधि जन्य रसायनों का प्रमुख उल्लेख है। लेकिन आधारभूत सृष्टि समुत्पादन के समय से लेकर षडरस विविध अर्थो में प्रयुक्त होता रहा है। आयुर्वेद के षड् रस भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमाय श्रितिस्तथा।
निवृत्तौच विशेषे च प्रत्यया स्वादयस्तम ॥

यह रस परस्पर सयोग योग से सप्तपचाशत होते हैं। तथा द्रव्य देश काल भेद से भी इनके त्रिषष्टि भेद होते हैं। यह सब चरक सुश्रुत मे बहुत ही सुन्दर प्रकार से विवेचित किये गये हैं।

न्याय शास्त्र के मत से—

रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा।
सहकारी रसासाया नित्यत्यादि च पूर्ववत् ॥

अन्यत्र इसकी निरुक्ति इस प्रकार से भी की गई है—

यत पार्था रसधातुर्यस्तनोऽवक्ष्य रस ।
सदैव सकल देह रसतीति रस स्मृत ॥ तथा—
सम्यक पक्वस्य भुक्तस्य सारोनिगदितो रस ।

जीवन मे वीरश्रृङ्गारादि रसों अनुभव भी यदा कदा प्राय सभी को होता हैं।

भक्त वेदाती तो—'रसो वै स'

कहकर उस पर परम परमेश्वर तक को रस मानते रहे हैं। तन्त्र शास्त्रकारो ने भी साधकों की उपासना सौकर्यार्थ रसास्वाद तथा रस प्रकार का वर्णन किया है तभी तो भगवान श्रीकृष्ण को भी कहना पडा है कि—

रसोऽमस्तु कौन्तय—इधर नागार्जुन मुनीन्द्र ने—

शिव बीज रस सूत पारदश्च रसेन्द्रक ।
एतानि रस नामानि।

कहकर एक क्रान्ति दर्शी ऐसा अद्भुत कार्य किया है जिसकी समता अभीतक कोई वैज्ञानिक नही कर सका है। उस समय—

न सूतेन विना कान्त न कान्तेन बिना रस ।
सूतकान्त समायोगात रसायनमुरोरितम् ॥

यह उद्घोष भारत मे सर्वत्र गुजित हो उठा था। इसीके साथ स्वर्ण-रौप्य निर्माण की विधि भी रसायन शब्द से अभिप्रेत हो उठी थी। साथ ही—

रसवैद्य. स्मृतो वैद्य ।

रस वैद्य को ही वैद्य शब्द से अभिप्रेत माना जाने लगा था। इसलिये रसायन की फलश्रुति भी प्रचुर प्रसार पा गई थी। यथा—

न केवला दीर्घमिदायुरश्नुते, रसायन यो विधिवय निषेसेत् ।
गति देवर्षिनिषेदितो शुभ, प्रपद्यते व्रह्त तथैव चा अयम् ॥

प्राचीन रसायनो मे च्यवनप्राश तथा ब्राह्म रसायन का प्रयोग आज भी प्रचुर परिमाण में हो रहा है पर अर्थलोलुपो द्वारा उनकी विशेष क्रियाओं की उपेक्षा कर अनुचित विधियो द्वारा उनका सम्पादन कर आयुर्वेद शास्त्र की रसायन चिकित्सा पर हडताल लगाई जा रही है। आवश्यकता है रसायन विधि मे वर्णित किसी भी विधि को सागोपाग निर्मित कर जनता के सामने आयुर्वेद की रसायन विधि को पुन. प्राणप्रतिष्ठा कराई जाय। रसायन किसे कहते हैं, इसके सेवन से क्या लाभ हैं तथा यह किसे सेवन कराना चाहिए आदि वार्ताओं पर संक्षिप्त विवेचन इसमें आ गया है। अब हम स्वानुभूत रसायनो के प्रयोग लिख रहे हैं—

—शेषांश पृष्ठ १७६ पर देखें।

रसायन का महत्व

आयुर्वेदाचार्य कवि० (डा०) श्री यशपाल शास्त्री ए., एम बी. एस
वशिष्ठ आरोग्य मन्दिर, चन्द्रनगर कोठी नं० ३, सहारनपुर (उ० प्र०)

रसस्य रसयो' रसाना वा अमनं रसायनम् । शरीर में रस अथवा रसों का परिभ्रमण रसायन शब्द का अर्थ है जैसे पृथ्वी का परिभ्रमण, उत्तरायन दक्षिणायन कहा जाता है । चरक चिकित्सा स्थान का प्रथम अध्याय रसायन, उसके गुण तथा विधि और योगों से परिपूर्ण है । ऐसा लगता है जैसे सूत्र स्थान प्रथम अध्याय में जो स्वस्थ और आतुर परायण दो प्रकार के आयुर्वेदोपदेश का सकेत किया गया था, उसी उद्देश्य को दृष्टि मे रखकर ऋषि ने प्रथम स्वस्थपरायण आयुर्वेद को प्रस्तुत किया है। यह उचित भी है क्योकि चिकित्सा से, स्वास्थ्य रक्षा श्रेष्ठ (प्रिवेंशन इज बेटर दैन क्योर)

रस और उसके अयन से क्या अभिप्राय है ?

रस अथवा रसों के अयन (गति, परिभ्रमण) से आयुर्वेद (मैडिकल साइंस) का क्या अभिप्राय है, यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है । आयुर्वेद के अनुसार ससार के सभी पदार्थों मे छ: ही रस, मधुराम्ल लवण कटुतिक्त कषाय होते हैं । किसी में एक या एकाधिक हो सकते हैं। हम जो भी पदार्थ खाते हैं परिपाक के पश्चात् उन सबका एक ही रस बनता है जिसे आयुर्वेद में केवल रस तथा आधुनिक आयुर्वेद (एलोपैथी) में जीवरस या प्लाज्मा कहते हैं । इस रस मे से ही रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र आदि धातुए बनती हैं । यह रस शरीर की एक-एक कोषिका तक पहुचता है। प्रत्येक कोषिका इस रस में से अपने उपयोग मे आने वाले द्रव्य लेकर अपना प्रकृति-नियुक्त कार्य करती है, कुछ विशिष्ट पदार्थ बनाती है, कुछ अनुपयोगी द्रव्य इस रस धारा में छोड देती है जिन्हें शोधक अंग मूत्र श्वास स्वेद मल आदि के रूप में शरीर से बाहर फेंक देते हैं । स्थूल रूप से यही रस (जीवरस) का परिभ्रमण है । आयुर्वेद का रसायन शब्द अपने पारमार्थिक अर्थ मे इससे कुछ अधिक अर्थ लिए हुवे है जिसका अभिप्राय है कि जीवरस को ऐसे पदार्थों से भरपूर करना, जो शरीर की प्रत्येक कोषिका तक ऐसे पदार्थ पहुचाए जो उसके प्रकृति-नियुक्त कार्य को सुचारू रूप से करने में सहायक हो, साथ ही कोषिका द्वारा जो उत्पाद (प्राडक्ट) प्राप्त हों वे सघटन एव मात्रा (क्वालिटी एण्ड क्वांटीटी) की दृष्टि से उपयुक्त हो । यदि ऐसी अवस्था किसी विधि से निर्मित की जा सके तो यह व्यक्ति के लिए सबसे बडी उपलब्धि होगी । क्योकि ऐसी दशा मे व्यक्ति का स्वास्थ्य चरमोत्कर्ष पर होगा, उसकी शारीरिक मानसिक क्षमता उच्चतम विन्दु पर होगी तथा उसकी आयु भी आयुमान के अन्तिम छोर को छू सकेगी । रसायन सेवन की फलश्रुति इसी रूप मे बताई गई है—

दीर्घमायु स्मृति मेधामारोग्य तरुण वय: ।
प्रभा वर्ण स्वरोदार्यं देहेन्द्रियबल परम् ॥
वाक्सिद्धि प्रणति कान्ति लभते ना रसायनात् ।
लाभोपायो हि शस्ताना रसादीना रसायनात् ॥
(च०चि०अ०१)

सक्षेप मे रसायन सेवन से दीर्घायु, चिर यौवन, स्मरण शक्ति, धारणा शक्ति, तेजस्वी मुख मण्डल, ओजस्वी वाणी, देहबल, इन्द्रियबल, सामाजिक सम्मान तथा दूर दृष्टि प्राप्त होती है । रसायन सेवन से व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसी क्राति होती है कि जीवन पथ के सोपान अनायास ही सुगम होते जाते हैं। व्यक्ति तन्द्रा, आलस्य, क्लम से मुक्त, आतक से दूर, स्थिर बुद्धि होकर अपने कार्य मे लगता है । सक्रिय दीर्घायु प्राप्त करके अपनी समस्त अभिलाषाओ को पूरी कर सकता है—

वैखानसाबाल खिल्यास्तथा चान्येतपोधना,
रसायनमिम प्राश्य वभूवुरमितायुष. ।

मुक्त्वा जीर्णवपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणवय,
वीत तन्द्राक्लमश्वासा निरातका समाहिता।
मेधास्मृतिवलोपेताश्चिर रात्र तपोधना,
ब्रह्म तपो ब्रह्मचर्य चेरुश्चात्यन्त निश्चया।
रसायनमिद ब्राह्ममायुष्काम प्रयोजयेत्।
दीर्घमायुर्वमश्नाग्र्य कामाश्चेष्टान् समश्नुते।
(च. चि अ. १)

रसायन की विधि —

रसायन की इस फलश्रुति से सभी आकृष्ट होंगे। क्योंकि कौन ऐसा है जो दीर्घजीवन और चिर यौवन को पाना नही चाहता। सच तो यह है कि हम सब सदा स्वस्थ रहना चाहते हैं और मरना तो कभी चाहते ही नही। आयुर्वेद अमरता की प्रतिभूति (गारन्टी) तो नही देता क्योंकि यह प्रकृति विरुद्ध है परन्तु चिरयौवन तथा दीर्घायु की प्रतिभूति अवश्य देता है। रसायन प्रकरण का यही उद्देश्य है। दीर्घायु एव चिर यौवन प्राप्ति के लिए रसायन सेवन की दो विधिया चरक मे वर्णित हैं।
१ कुटी प्रावेशिक २ वातातापिक

(१) कुटी प्रावेशिक विधि—

इस विधि में एक सुसकल्पित कुटी में कुछ समय के लिए व्यक्ति को प्रविष्ट कराकर सशोधनादि प्रारम्भिक क्रियाओं के बाद रसायन सेवन वैद्य की देखरेख मे कराया जाता है। समय का निर्धारण व्यक्ति की पूर्ण दशा तथा स्वास्थ्य लाभ की प्रगति पर निर्भर करता है। यह एक प्रकार से पूर्ण विश्राम करते हुए स्वास्थ्य सवर्धन की क्रिया है जिसे आजकल हास्पिटेलाइजेसन कहते हैं। (इनडोर पेसेन्ट)

(२) वातातपिक विधि—

इसे सौर्यमारुतिक भी कहते हैं जिसका अर्थ है चलते फिरते रसायन सेवन विधि। इसमे व्यक्ति को कुछ ऐसे आहार विहार निर्देश दे दिए जाते हैं कि व्यक्ति अपने घर पर अपना दैनिक कार्य करते हुये भी रसायन सेवन कर सकता है तथा लाभ प्राप्त कर सकता है। इसे हम आउट डोर पेसेन्ट कह सकते हैं।

रसायन का वैज्ञानिक आधार क्या है ?

पूछा जा सकता है कि रसायन सेवन का वैज्ञानिक आधार क्या है? क्या यह मात्र एक कल्पना है ? आयुर्वेद स्वय एक विज्ञान है अत यह तो कथमपि सम्भव ही नही कि वहा पर एक शब्द भी बिना किसी लम्बे अनुसन्धान और परीक्षण के लिख दिया जाये। अत रसायन सेवन के वैज्ञानिक आधार को जानना वैद्य एव जन साधारण के लिये हितकर है।

हमारा यह शरीर पाचभौतिक है तथा हमारे चारों ओर फैला यह ब्रह्माण्ड भी पाचभौतिक है तथा हमारा यह शरीर उन्ही तत्वों से बना है जो वाह्य वातावरण मे पाए जाते हैं। देश काल और पात्र के अनुसार वातावरण और व्यक्ति का सम्बन्ध परिवर्तित होता रह सकता है। यथा शीत ग्रीष्म वर्षा, शैशव यौवन वृद्धता, आनूप, जागल मरु प्रदेश आदि स्थितियों का प्रभाव हमारे शरीर पर अनिवार्य अपरिहार्य है। इन्ही सब पर्यावरणीय परिवर्तनो पर हमारा रोग, आरोग्य, जरा मृत्यु आदि निर्भर है। सक्षेप में जन्म से मृत्यु पर्यन्त हम इस वाह्य पर्यावरण में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते रहते हैं। इस सघर्ष मे जो सबल सक्षम होता है वह सफल होता है जो निर्बल होता है वह पिछड जाता है। जीवन सघर्ष में सफलता प्राप्ति के लिए सबल देह तथा मन मस्तिष्क आवश्यक हैं और रसायन सेवन से यह प्राप्त होते हैं। अत. रसायन की यही प्रासगिकता है। यही इसका वैज्ञानिक आधार है।

रसायनिक प्रक्रिया और चयन का आधार क्या है ?

रसायनार्थ जिन पदार्थों का चयन किया जाता है उनके वैज्ञानिक आधार के विषय मे जिज्ञासा स्वाभाविक है। ससार मे असख्य पदार्थ हैं। वे सब मानव के लिए लाभदायक नही हो सकते। उनमे से कुछ हमारे शरीर के लिए हानिकर भी हो सकते हैं। कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो किसी स्थिति विशेष में तो तुलनात्मक दृष्टि से लाभदायक हो सकते हैं परन्तु सदा प्रयुक्त नही हो सकते। कुछ ही पदार्थ ऐसे हैं जो सदा प्रयुक्त हो सकते हैं। इस

प्रकार चरक ने ससार के पदार्थों को तीन श्रेणी मे बाटा है—

किंचिद्दोषप्रशमन किंचिद्धातु प्रदूषणम् ।
स्वस्थवृत्तौमत किंचित्त्रिविध द्रव्यमुच्यते ॥

—च० सू० अ० १

अर्थात दोष प्रशमन (औषधि) धातुदूषण (विष, असात्म्य) तथा स्वस्थवृत्त प्रयोज्य (आहार) यह तीन प्रकार के पदार्थ हैं। इनमे दोष प्रशमन तथा स्वस्थ वृत्त प्रयोज्य आहार द्रव्यो मे से जो सर्वथा निर्विष पदार्थ हैं उन्ही को रसायन गुण के लिए चुना गया है। एक प्रकार से सौम्य औषधि तथा सात्म्य सात्त्विक आहार द्रव्यों के प्रयोग से ही रसायन योगों का सकल्पन किया गया है। उदाहरण के लिए आमलक, हरीतकी, विदारिगन्ध, कटेली, पचमूल, बिल्व, अग्निमन्थ, पुनर्नवा, जीवक ऋषभक, जीवन्ती, शतावर, मधु, साठी चावल, दुग्ध आदि सभी पदार्थ निर्विष एव सात्विक हैं।

शाकाहार रसायन की आधार भूमि—पूरे रसायन प्रकरण मे मासाहार की कोई चर्चा नही है। इससे भारतीयों के इस विचार की पुष्टि होती है कि उच्च आध्यात्मिक सिद्धि के लिए शाकाहारी होना नितान्त आवश्यक है। मास मछली अण्डा आदि आरोग्य तथा दीर्घजीवन के लिए अहितकर हैं।

रसायन योगों की क्रिया-शारीरीय प्रासगिकता—अद्यावधि वैज्ञानिको ने लगभग एक सौ दश मूल तत्वो का अन्वेषण पूरा कर लिया है। ससरवर्ती इन मूल द्रव्यों मे से केवल पन्द्रह तत्व ही हमारे शरीर में पाये जाते हैं—ओषजन ६५% कार्बन १८% हाईड्रोजन १०% नाईट्रोजन ३% कैलसियम २% फासफोरस १% पोटेशियम ०.३५% गन्धक ०.२५% सोडियम क्लोराइड ०.१५% मैगनेशियम ०.०५% लोह ०.००४% आयोडीन, फ्लूरीन, सिलिकन तथा जिंक अत्यल्प मात्रा मे पाये जाते हैं।

जो पदार्थ इन मूल तत्त्वो बने होंगे वे पदार्थ हमारी क्रिया शारीरीय प्रक्रिया (फिजियोलोजिक प्रोसिस) को विकृत नही करेंगे, वे सात्म्य होजावेंगे। हमारे शरीर मे जो भी पदार्थ किसी भी मार्ग से पहुचता है हमारी प्रकृति अपने उपलब्ध साधनों से उसे विश्लेषित सश्लेषित करती है और शरीर के लिए उपयोगी बनाने का प्रयास करती है। पाचन सस्थान इसमे विशेष भूमिका निभाता है। प्रयत्न यह होता है कि बाह्य वातावरण मे से लिया गया कोई भी पदार्थ हमारे जीवन रस (प्लाज्मा) के रासायनिक सघटन (बायोकैमिकल कम्पोजिसन) को विकृत न करे। क्योंकि हमारे जीवन रस का जैव रसायनिक परिवर्तन ही रोग है। जब तक इस जीवन रस में विकृति नही आएगी तब तक व्यक्ति रोगी नही होगा। साथ ही यह भी सत्य है कि बुढापा भी तभी असमय मे आता है जब हमारा शरीर विकृत पदार्थों से भर जाता है तथा हम प्रकृति की अवहेलना करने लगते हैं। क्रिया शरीरीय दृष्टि से रसायन योगों की प्रासगिकता तीन हजार वर्ष पूर्व भी उतनी ही थी जितनी आज है। रसायन गुण के लिए प्रयुक्त ब्राह्म रसायन, आमलकी रसायन, च्यवनप्राश,आमलक घृत,आमलकावलेह, नागबला रसायन, भल्लातक क्षौद्रम् ऐन्द्रीरसायन, वर्धमानपिप्पली रसायन, त्रिफला रसायन, शिलाजतु रसायन आदि की सकल्पना इस प्रकार से की गई है कि हमारी प्रकृति के अनुकूल रहे। योगों में प्रयुक्त औषध द्रव्य दोष प्रशमन करते हैं तथा आहार द्रव्य शुद्ध शरीर मे नव निर्माण करके क्षतिपूर्ति करते हैं। और भविष्य मे होने वाली अप्राकृतिक स्थिति को रोकने के लिए जीवन रस मे प्रतिरोधक शक्ति सचित करते हैं।

आचार रसायन की उपयोगिता—

रसायन सेवन से हमारे जीवन रस मे शुद्ध सात्विक परिवर्तन होता है, मेधा स्मृति काति की वृद्धि होती है परन्तु यदि हमारा मन और विचार नही सुधरता तो जीवन अधूरा ही रहता है। शरीर के साथ-२ मन भी उच्च मानवीय सोपानों पर चढता चले तो उत्तम है। अतएव सत्य बोलना, क्रोध न करना, मद्य मैथुन से दूर रहना, अहिसा, शाति, मधुरवाणी, यज्ञ, दान, शौच, धैर्य, तप

धारण करना गो, ब्राह्मण, आचार्य गुरु और वृद्धजनो की सेवा करना, क्रूरता त्यागना, दया करना, समय पर उठना, दुग्ध और घृत का सेवन करना, देश काल के अनुसार चलना, अहकार त्याग कर सतर्क होकर जीवन यापन करना सदाचारी, अन्तर्मुखी, उदार चेष्टा, वृद्धो की सगति करना, आस्तिक और सयमीजनों के साथ उठना वैठना तथा धर्म शास्त्रों के अनुसार चलने वाला व्यक्ति नित्य रसायन सेवी जैसा फल पाता है। ऐसा व्यक्ति यदि रसायन योगो का सेवन करे तो रसायन से प्राप्त होने वाले सभी लाभ उसे सम्पूर्ण रूप से प्राप्त होते हैं। आयुर्वेद की मान्यता है कि जब तक व्यक्ति का आहार तथा विहार दोनो ही उत्तम नही होगे तब तक उसे पूर्ण आरोग्य प्राप्त नही हो सकेगा क्योंकि हमारा जीवन शरीर और मन तत्वों का समवाय है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए आचार रसायन का विधान किया है।

रसायन और वाजीकरण मे अन्तर—

आपातत रसायन वाजीकरण दोनो ही एक जैसे प्रतीत होते हैं क्योंकि दोनो शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करते हैं परन्तु मूलत दोनो मे बहुत अन्तर है। रसायन और उसके सेवन करने की विधि उसकी फलश्रुति आदि के विषय मे पीछे बहुत कुछ बताया जा चुका है। रसायन सेवन करने वाले का शरीर तो सबल बनता है परन्तु मन शान्त और तपस्वी हो जाता है।उसके लिए मद्य और मैथुन से निवृत्ति आवश्यक है। (निवृत्त मद्य मैथुनात्) इसके विपरीत वाजीकरणों का प्रयोग किया ही मैथुन शक्ति की वृद्धि के लिए जाता है। इस विन्दु पर दोनों की दिशा एक दूसरे से विपरीत हो जाती है। जब व्यक्ति नित्य अधिकाधिक मैथुन चाहेगा, नई-२ स्त्रियों से सम्पर्क करेगा तो उसके मन मे अहकार, काम क्रोध लोभ ईर्ष्या, द्वेष, कलह, जय पराजय हीनता उच्चता आदि सभी मनोविकारो का होना स्वभाविक है। एक प्रकार से वाजीकरण वहिर्मुखी व्यक्तित्व का प्रदाता है जबकि रसायन अन्तर्मुखी व्यक्तित्व का जनक है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जो व्यक्ति ज्ञान, शिल्प कला साहित्य सगीत आदि तपस्या साध्य कार्यों की ओर लगे हुये हैं अर्थात वृद्धिजीवी हैं उनके लिए रसायन प्रयोग उपयुक्त है क्योंकि इन सभी क्षेत्रों में शान्त मन कुशाग्र वुद्धि तथा केन्द्रित चेतना की आवश्यकता होती है। इसके जो व्यक्ति प्रजा पालन तथा सम्वर्धन मे लगे हैं, उनके लिए वाजीकरण योगों की आवश्यकता है। वाजीकरण प्रयोगो मे उत्तेजक पदार्थों का सम्मिश्रण किया गया है जबकि रसायन योगो में शामक द्रव्यो का बाहुल्य है।

जरा और रसायन—

आयुर्वेद में जरा जीर्ण च्यवन ऋषि तथा च्यवनप्राश द्वारा उसके पुन यौवन प्राप्ति की आख्यायिका रसायन प्रकरण मे पाई जाती है। (अस्य प्रयोगाच्च्वन सुवृद्धोऽभू॰ त्पुनर्युवा) यह जरा और वृद्धता क्या है। क्या दोनों एक ही हैं ? जरा और वृद्धता आपातत. समानार्थक लगते हैं परन्तु मूलतः दोनो मे बहुत अन्तर है। सच यह है कि च्यवन ऋषि जराग्रस्त थे, वृद्ध जैसे थे, वृद्ध नहीं थे। वृद्ध होते तो पुनः युवा नही हो सकते थे। जरा वह अवस्था है जो हमारे अप्राकृतिक आहार विहार के कारण असमय ही उत्पन्नहो जाती है वृद्धता वह अवस्था है जो समय का अनिवार्य अपरिहार्य परिणाम है जो स्वाभाविक है और जीवन का परिपाक है। इसको यों समझा जा सकता है कि गेहू का एक पौधा यदि खाद और पानी के अभाव से मुरझा गया है, पीला पड गया है तो यह असमय का परिपाक है जो खाद पानी देकर दूर किया जा सकता है पौधा पुन हरा भरा जवान हो जाएगा। परन्तु जब यही पौधा अपने स्वाभाविक परिपाक के द्वारा पीला पड जाता है परिपक्व हो जाता है तब उसे किसी भी खाद पानी से पुन हरा भरा नही किया जा सकता।

आयु वृद्धि रसायन—

रसायन के लाभों मे 'दीर्घमायु स्मृति मेधा' आदि मे दीर्घ आयु की सबसे प्रथम उद्घोषणा की गई है। क्या सचमुच रसायन से आयु को लम्बा किया जा सकता है ? ऋषि कभी असत्य नहीं बोलते इसलिए विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि रसायन आयु को दीर्घ करने मे समर्थ है।

कामी क्रोधी व्यसनी लोग अकाल मृत्यु को बुलाते है। सयमी लोग पूर्ण आयुमान तक जीते हैं तथा अति सयमी लोग (योगी तपस्वी) आयुमान (शतायु) से कही अधिक समय तक जीते हैं। रसायन सेवन और सयम का चोली दामन का साथ है। अत यह निविवाद सत्य है कि आयुर्वेदोक्त आचार रसायन तथा ब्रह्म रसायनादि सेवन से आयु दीर्घ होती है।

रसायन के प्रकार—

आयुर्वेद मे रस-रसान शब्दों से कभी-२ भ्रम उत्पन्न हो जाता है। रस पारद का नाम है और पारद के सयोग से बनने वाले विविध योगो को भी रस ग्रन्थो मे रसायन शब्द से व्यवहृत किया है। प्रश्न है क्या यह भी रसायन शब्द वाच्य है? चरक की अपनी परिभाषा के अनुसार 'स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तुतद्वृष्य तद्रसायनम्' जो औषधि स्वस्थ व्यक्ति को ऊर्जा प्रदान करती है वही रसायन है वाजीकरण है। जो व्याधि को दूर करने वाली है वह भी इस अर्थ मे रसायन कही जा सकती है कि वह विकृत शरीर को रोगमुक्त करके हमे स्वस्थ जीवन प्रदान करती है। चरक के बाद रस-रसायन युग मे जो क्रातिकारी योग पारद गन्ध मल्ल वग आदि से बने हैं उन्हें भी रसायन मान लिया गया है व्याधि निर्घात कर रसायन के रूप में। इस प्रकार रसायन के मुख्यत. तीन प्रकार हो सकते हैं १ रसायन, २ वाजीकरण, ३ व्याधि-निर्घातकर। चौथा प्रकार आचार रसा भी है।

रसायन का महत्व — पृष्ठ १७४ का शेषाश —

श्री विदीना जरायेते मगु मजीर भूषिते।
द्रुत मगन्तु वाराहीं तुष्टा सावल कान्तिदा॥

(१) इसके दो अर्थ हैं—एक अर्थ मे वराही देवी (भगवान वाराह की पत्नी) दूसरे मे वाराहीकन्द। हे मगुमजीर भूषित अङ्ग वाली! काति एव लक्ष्मी से पुरुष हीन है वह शीघ्र ही वाराही देवी या वाराहीकन्द का सेवन करे तो बल लक्ष्मी की प्राप्ति हो सकती है।

अशक्तानां सहाय स्मात्–यथा शूलधर शिव तथा शाल्मलिका चैव शुक्र शिम्बीधर ष्ट्रिका।

(२) जिस प्रकार शूलधारी, शिव दुर्बलों के सहायक है–उसी प्रकार सेमल का मूल, कौच के बीज और गोखरू का चूर्ण भी दुर्बलों का सहायक है।

नोट—समान भाग चूर्ण को दूध के साथ सिता मिलाकर प्रात साय सेवन करे।

(३) यदि कोई पति अपनी पत्नी को शिशिरकाल मे भी अकस्मात मे भी आलिङ्गन नही करता है तो उसे दूध में पकाकर छुहारे का सेवन कराओ।

(४) रस सिन्दूर, अभ्रक, लौह, स्वर्ण और स्वर्ण माक्षिक भस्मो को समभाग ले मर्दन कर घृत मधु के साथ सेवन करता है वह पुरुष पूर्ण चन्द्र के समान काति वाला हो जाता है।

(५) कोक प्रवीणा किसे नही चाहती है। (वृद्धक-वृद्ध पुरुष को) मुकुन्द के सारथी का नाम बताओ (दारुक-दारुक) साएव वृष्यतम् रसायन क्या है? (वृद्धदारुकम्) विधारा—यह अन्वर्लाभिज्ञ है तीन अर्थ भावों को व्यक्त करता है।

(६) रस सिन्दूर १ ग्रा०, स्वर्ण भस्म १ ग्राम को मिश्रित कर घृत के साथ सेवन करने से बुढापा और मृत्यु का भय नही रहता है।

(७) लौह भस्म और त्रिफला चूर्ण को जो गोघृत और मधु के साथ सेवन करते हैं वे युवावस्था और बल को प्राप्त करते हैं।

स्वर्णं च बङ्ग रजतं च लोह।
गु जा प्रमाण मधुना लिहन्ता॥
सकामरूप. कमनीय मूर्तिः।
सञ्जायते चचल चारु नेत्रे॥

(८) हे चचल चारु नेत्रे! स्वर्ण भस्म, वग भस्म, रजत भस्म और लौह भस्म को मिश्रित कर १ गु जा प्रमाण–शहद के साथ सेवन करने वाला पुरुष काम स्वरूप हो जाता है। 'रसायन अमृत है'

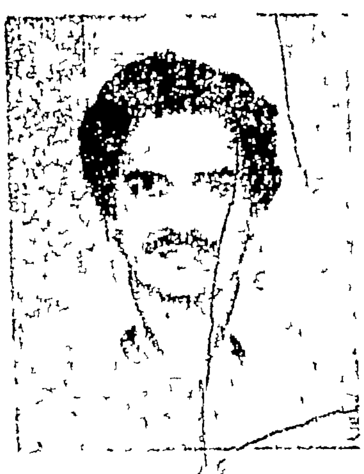
वाजीकरण विमर्श

वैद्य श्री जी० के० दवे एच पी ए.
अधीक्षक एव आचार्य-सरकारी अखण्डानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय एवं होस्पीटाल तथा
पी जी टी सेन्टर, विक्टोरिया गार्डन के सामने, भद्र, अहमदावाद-१
वैद्य श्री नयन पी० जोशी, अध्यापक-सरकारी अखण्डानन्द कालेज, अहमदावाद

सामान्यतया वाजीकरण का प्रयोग पुरुषों मे ही होता है, स्त्री मे नहीं। सभी शास्त्रों में सर्व संमत मत भी है। यहां पुरुष की व्याख्या देकर और कुछ अर्थपूर्ण तर्क देकर वाजीकरण पर एक नया संशोधनार्थ विचार दिया गया है। ★ लेखक श्री जी० के० दवे गुजरात के महान आयुर्वेदज्ञ और आयुर्वेदिक संशोधनकर्त्ता हैं। आप वर्षों से अध्यापन कार्य मे सलग्न हैं। आयुर्वेद के सभी विषयों के आप विद्वान हैं। विशेषतः पंचकर्म, वनस्पति शास्त्र, निदान-चिकित्सादि मे आप कुशल हैं। त्वक् रोग, क्षुद्र रोग, मधुमेह, वातपक्षाघात, अर्दित, हिक्का आदि मे आपने सद्य. फलप्रद संशोधन किया है, मैं साक्षी भी हूं। क्योंकि श्री दवेजी हमारे विद्या गुरु हैं। आप पचकर्म वैद्य हैं-वर्षो पहले आपने अहमदावाद मे बस्ति चिकित्सालय शुरू किया था। आप जूनागढ मे आचार्य थे, इसके पूर्व नायब आयु० नियामक थे, वर्तमान में अपनी मातृ-शिक्षा सस्था अखण्डानन्द के आचार्य हैं आप उत्तम लेखक हैं। अनेक गुजराती पत्रिकाओं मे आपके लेख प्रकाशित होते हैं। अनेक बार विज्ञप्ति के पश्चात यह लेख प्राप्त हुआ है जो सौभाग्य है। दूसरे लेखक श्री जोशी का लेख अन्यत्र है।

मैं गुरूपर्व श्री दवे साहब से वन्दनपूर्वक अपेक्षा रखता हूं कि 'धन्वन्तरि' को सहाय करें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज



वैद्य श्री नयन पी० जोशी

अष्टाग आयुर्वेद में वाजीकरण तंत्र का एक विशिष्ट स्थान है। आयुर्वेद का प्रथम उद्देश्य 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्' को ध्यान में रखकर प्रथम औषध 'स्वस्थस्योर्जस्करम्' ही बताया है।

"स्वस्थस्योर्जस्कर यत्तु तद् वृष्य तद्रसायनम्।"

जो स्वस्थ पुरुष है, उनके लिए ऊर्जस्कर अर्थात् वयानुसार होने वाले वार्धक्य आदि स्वाभाविक क्रिया को मन्द करके उसका प्रतिबन्ध करना, हर्ष अर्थात् स्त्री के प्रति आकर्षण तथा समागम के समय लिङ्ग का यथोचित उत्थान बढाकर व्यवाय सामर्थ्य जारी रखना, शुक्र की परिपुष्टि सम्यक्तया करना, तथा अन्य शारीरिक तथा मानस प्रशस्त भावों को उत्पन्न करना ये कार्य ऊर्जस्कर औषधि के हैं, जो रसायन तथा वाजीकरण तंत्र में वर्णित हैं। प्रत्येक चिकित्सक के लिए ये दोनों अङ्ग

(रसायन-वाजीकरण) का पारस्परिक समवाय करके अभ्यास करना अति आवश्यक होता है।

वाजीकरण-औषधि का कर्म

येषु नारीषु सामर्थ्यं वाजीव लभते नरः ।
व्रजेच्चाप्यधिकं येन वाजीकरणमेवतत् ॥(चरक)
सेवमानो यदौचित्याद् वाजीवात्यर्थवेगवान् ।
नारीस्तर्पयते तेन वाजीकरणमुच्यते ॥(सुश्रुत)

वाजीकर अथवा वृष्य द्रव्यों का जो विवेचन तत्र में किया है, जिनके यथोचित सेवन से पुरुष अति हर्षयुक्त होकर अश्व (वाजी) के सदृश्य स्त्रियों के साथ अधिक बार समागम करके उन्हे सन्तुष्ट कर सकता है। ये द्रव्य वाजीकरण होते हैं।

वाजो बल वेगो वा । न वाजी अवाजी
अवाजी वाजी क्रियते अनेन इति वाजीकरणम् ।

बल और वेग दोनों संयुक्त गुणों के रूप मे वात कहते है। वाजी शब्द 'अश्व' तथा 'शुक्र' दोनो अर्थ में भी प्रयुक्त है। आज के युग मे भी शक्ति (Power) को 'Horse-Power' के रूप में ही नापा जाता है। वाजीकरण औषधियों के सेवन से शुक्र की प्रचुर मात्रा मे वृद्धि होती है तथा पुरुष में अश्व या साढ के जैसी चिरस्खलित मैथुन शक्ति आती है। बार-बार अनेक स्त्रियो के साथ सयोग कर सके, ऐसी शक्ति प्राप्त कर सकता है। तृप्ति का गुण मानसिक तथा शारीरिक दोनों अर्थो मे विहित है। (नारीस्तर्पयते-सु०)

सुश्रुत ने शुक्र की विविध रुग्ण अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न औषधि का प्रयोग करने के लिए वाजीकरण तत्र मे बताया है—

वाजीकरण तत्र नामाल्प दुष्ट क्षीण विशुष्क रेतसामाप्यायन प्रसादोपचय जननमिति प्रहर्षजननार्थं च ।
(सुश्रुत)

आज के युग में वाजीकरण की अति आवश्यकता

(१) साम्प्रत समाज मे अतृप्त जातीय जीवन से पीडित अनेक युगलो मे विविध समस्यायें होती देखी जाती है। सतृप्ति पाने के हेतु, वे ग्रसित स्त्री-पुरुष, अन्य जगह पर अपना सुख ढूढने के लिए मारे मारे फिरते हैं। सामाजिक जीवन मे नैतिकता का ह्रास होकर व्यभिचार का प्रादुर्भाव होता है, दाम्पत्य जीवन नष्ट होता है। सिफलिस (उपदंश), फिर (गोनोरिया) एड्स (Aids) जैसे भयानक रोगो से आक्रान्त होने की भी सम्भावना बढती है। काम प्रधान इस भौतिक युग मे वाजीकरण तन्त्र ही हमे मदद कर सकता है।

बचपन से ही कुसगरत बच्चे हस्तमैथुन (Masturbation) गुद मैथुन, वियोनि मैथुन आदि विकृतियो से ग्रस्त होकर, यौवन काल मे शुक्रक्षयित होकर, समस्याओं का शिकार बन जाते हैं। शीघ्रपतन, ध्वजभङ्ग, अल्प शुक्रता, शारीरिक दौर्बल्य, कामशीतत्व (Frigidity) आदि विकारों मे, शुक्रजनन, शुक्रल-शुक्रस्तम्भन वर्ग की वाजीकर औषधियो का प्रयोग करके यथेच्छ लाभ पा सकते हैं।

(२) कभी-कभी आदमी व्यवाय कर्म मे समर्थ होते हुए भी शुक्र धातु की प्रजोत्पादन क्षमत्व (Fertility) अभाव होने से सतानविहीन (वन्ध्य) रहता है।

भारतीय सस्कृति मे प्राचीन परपरा से ही पुत्र या सन्तानयुक्त पुरुष की प्रशसा की है, पुत्रादि से ही कुल की परम्परा चलती रहती है। आदि काल के समाज में वाजीकरण तन्त्र का अधिक महत्व था। आज के युग मे भी शुक्राणुजनन, शुक्र आप्यायन, रेतोदोषहर वर्ग के वाजीकर औषधों से ये नि सतान दम्पत्तिओं में सन्तानोपत्ति की जा सकती है। परिवार नियोजन के इस काल मे, शुक्र का आदर्शावस्था हो तो अल्प सन्तान भी गुणवान, सामर्थ्यवान तथा ओजस्वी हो सकते हैं, जिससे कि सारे देश और विश्व को कुछ प्रदान कर सकें।

(३) विश्व में अनेक रोग जैसे उच्च रक्तचाप, हृद्रोग, मधुमेह, अवसादपूर्ण मानसिक अवस्थायें, प्रभृति रोगो में व्यक्ति की प्रजनन तथा जातिय शक्ति स्वभावतः कम होती दीखती है। इस स्थिति में अगर प्रधान रोग की चिकित्सा के साथ-साथ वाजीकर औषधियो की योजना युक्तिपूर्वक की जाय तो अच्छा लाभ मिल सकता है।

स्त्री मे वाजीकरण उपादेय है कि नहीं ?

पुरुष के पुंसत्व शक्ति तथा शुक्र सम्बन्धी विकारो के लिए वाजीकर औषध के यथेच्छ प्रयोग से निश्चित फल की प्राप्ति कर सकते है। पुरुष सम्पूर्ण होकर यथेच्छ रतिक्रिडा का सुख प्राप्तकर सकता है।

लेकिन ऐसे पूर्ण पुरुष के साथ रतिक्रिडा मे सलग्न जो स्त्री उदासीन हो, उसकी कामेच्छा कम हो गई हो, पूर्ण सहकार न देने से, योग्यकाल में क्षरित न होती हुई दोनों की अतृप्ति का कारणरूप बनती है, आधुनिक विज्ञान इसे Frigid स्त्री सज्ञा देता है। यहा दोषपूर्ण स्त्री है। इसी वक्त स्त्री की चिकित्सा करने से ही उनका दाम्पत्य जीवन बचाया जा सकता है।

इस अवसर पर हमारा मत है कि इस रुग्ण स्त्री को वाजीकर औषध देकर स्वस्थ बनाया जा सकता है। वैद्य समुदाय तथा विद्वद् जन हमारे इस मत पर सहमत न होंगे, क्योंकि शास्त्र में पुरुष जाति का ही वाजीकरण पर अधिकार स्पष्टतया प्रदर्शित है। स्त्रिया पर वाजीकर औषधि का प्रयोग कही भी उल्लेखित नही है। लेकिन हमारे निम्नोक्त विवेचन मे, स्त्री में वाजीकर औषधि के प्रयोग के बारे समर्थन करने का प्रयास किया है।

आयुर्वेद मे 'षड्धात्वात्मक पुरुष' से पुरुष जाति तथा स्त्री जाति दोनों का ग्रहण होता है। पुरुष मे ही रस से लेकर शुक्र तक की सप्त धातुओ की अवस्थिति बताई है। इसलिए स्त्री में शुक्र धातु होती ही है। प्रश्न उठता है किस स्वरूप मे ? शुक्र के अन्त शुक्र तथा बहिर्शुक्र-दो भेद होते हैं। पुरुष मे जो बहिर्शुक्र होता है, वह शुक्राशय, प्रोस्टेट वृषण का स्राव (शुक्राणु) आदि का समुदाय है, जो रक्त मे मिलकर सर्वाङ्ग व्यापक रहता है पुरुष के लिङ्ग द्योतक चिन्ह (Secondary sex charectors) का उत्पादक रहता, जिसे Testosterone अन्तः स्राव से गृहीत किया जा सकता है।

आदरणीय विद्वद् वैद्य स्व० श्री रणजीतराय जी ने अपने क्रिया शारीर ग्रन्थ के २० वें अध्याय मे उल्लेख करके बताया है, अन्त स्राव की रासायनिक रचना स्त्री शुक्र के समान होती है। मूत्र में परीक्षकों ने उस प्रकार के कई समास उपलब्ध किये हैं, जिनका कर्म अन्त शुक्र सदृश होता है। तज्ज्ञको का मन्तव्य है कि अन्त. शुक्र मूल तो वृषण में ही बनता है। पश्चात् धातुपाक होकर विभिन्न द्रव्य (Metabolites) बनते हैं, जो मूत्रमार्ग से क्षरित होते हैं। इन धातुपाक द्रव्यों को एण्ड्रोजन (Androgen) नाम दिया गया है।

"एण्ड्रोजन न केवल नर मूत्र में, नारी मूत्र मे भी पाये जाते हैं।"

"उधर वृषणों मे स्त्री शुक्र सदृश द्रव्य निकाले जाते है नर बतख, गिनिपिग आदि प्राणियों को षण्ड बनाकर उनके शरीर मे अन्त फल की कलम लगायी जाय तो उनके बाह्य-लिङ्ग-द्योतक चिन्ह बदलकर, स्त्री सदृश बनाये जा सकते हैं, इनका शिश्न क्षीण हो जाता है, स्तन-ग्रन्थियों से दूध का क्षरण होने लगता है। नरों या उनके प्रति हावभाव नारियो के प्रति हावभाव के समान हो जाता है। ये तथ्य इस बात के सूचक हैं कि नर और नारी में अन्तर कितना अल्प है। जिस व्यक्ति में अन्तः फल के अन्त स्राव अधिक होगें, उसमे स्त्री-बीज उत्पन्न होगे और जिसमे वृषणों के अन्त स्राव की मात्रा विशेष हो उसमे पुं-बीज उत्पन्न होगे।"

इस तरह अगर अन्त शुक्र को स्त्री शुक्र मानकर शुक्रोत्पादक (उभय शुक्रोत्पादक होने से) वाजीकर औषध देने से, स्त्री शरीर में बलवृद्धि, प्रीति (पुरुष पर स्त्री की सविशेष प्रीति तथा कामवासना), धैर्य आदि भावों की वृद्धि होने से रतिक्रिया के दौरान वह स्त्री उदार तथा सक्षम हो सकती है।

हम अपेक्षा रखते हैं कि सुज्ञ विद्वद्जन तथा चिकित्सक वर्ग हमारे ये मत की पुष्टि के लिए अनुसन्धान करके कुछ इस तथ्य चिकित्सा जगत में स्थापित कर सकते हैं।

—०✱०—

कुछ बाजीकरण प्रयोग

श्री वृजेशकुमार बर्नवाल, लाटघाट (आजमगढ) उ० प्र०

(१) कूठ, छोटी पीपर, दोनो खरेटी, वच, असगध, पीपल, कनेर यह सब वस्तुएं समान भाग लेकर कूट पीसकर मक्खन के साथ मिलाकर लेप करने से कामध्वज मूसल के समान कडा हो जाता है।

(२) लोध, केशर, असगन्ध, पीपल, शालपर्णी-यह सब वस्तुए समान भाग में मिलाकर तेल में पकाकर कामध्वज पर लेप करने में वह लम्बाई में बढ़ता है। और वह स्त्री के मन को प्रसन्न करता है।

(३) वच, खरेटी, पारा यह तीनो वस्तु समान भाग लेकर कूट पीसकर मिलावे और फिर इसको भैंस के मक्खन के साथ (मक्खन ताजा इस्तेमाल करें) मिलाकर लेप करने से मनुष्य का कामध्वज लोह दण्ड के समान कठोर (दृढ) हो जाता है। (यह देखा हुआ प्रयोग है)।

(४) भिलावे की मिगी, सेवार, कमल का पत्ता यह सब वस्तुए अग्नि मे जलाकर वारबार सेंधा नमक मिलाकर बड़ी कटहली के साथ पानी में मिलाकर लेप बनाकर कामध्वज पर लगावें तो कामध्वज घोडा के समान कठोर (दृढ़) और मोटा होता है।

(५) सुअर की चर्वी के साथ शहद को मिलाकर कामध्वज पर नित्य एक महिने तक लेप करे तो वह स्थूल, कठोर और लम्बा हो जाता है।

(६) असगन्ध, शतावरी, कूट, जटामांसी और कटेली का फल सब समान भाग लेकर किसी वर्तन मे रख चौगुने दूध और तिलों के तेल में पकाकर रखे। इसको मर्दन और भक्षण करने से स्तन, कामध्वज, कान और हाथ इन सबकी वृद्धि होती हैं।

(७) मूसली के चूर्ण को घी के साथ मिलाकर लेप करने से कामध्वज में कठोरता उत्पन्न होती हैं।

(८) पीपल, सेंधा नमक, दुध, मिश्री इन सबको मिलाकर लेप करने से भी कामध्वज कठोर जाता है।

(९) जटामांसी, बहेडा, कूट, असगन्ध, शतावरी यह सब वस्तुए समान भाग लेकर तेल में पकाकर लेप करने से कामध्वज स्थूल हो जाता है।

(१०) पारा, असगन्ध, हल्दी, गज पीपल और मिश्री यह सब वस्तुए समान भाग लेकर जल के साथ खूब महिन पीसकर (घोटकर) एक महिने तक किसी वर्तन में रखकर मुंह वन्द करके रखा रहने दें। फिर इसका लेप करे तो रति सेवक कान और स्तनों की वृद्धि हो।

(११) दोनों हल्दी, कमल, केशर और देवदारू इन सब वस्तुओ को बारबार २ कूट पीसकर रति मन्दिर पर लेप करने से स्त्री का कामालय सकुचित हो जाता है।

(१२) धाय के फूल, त्रिफला (हर्रे, बहेरा, आवला), जामुन की छाल, लोहसार, घी, मुलहठी इन सभी वस्तुओ को कूट छान लेप करने से बूढी स्त्री भी सुकुमारी के समान बन जाया करती है।

(१३) नील कमल, कटेली, वच, कालीमिर्च, कनेर आसन, हल्दी इन सब वस्तुओ को मिलाकर रति मन्दिर पर लेप करने से स्त्री का कामालय तुरन्त (तत्काल) सकुचित हो जाता है।

(१४) वीर वहूटी को पीसकर स्त्री अपनी रति निकेतन पर लेप करें तो उसका कामालय कठिन और गाढ़ा हो जाया करता है इसमे सन्देह नही है।

(१५) नीम के पत्तों को जल मे डालकर औंटाकर काढा बना के उस काढ़े से रति मन्दिर को धोवें अथवा नीम, हल्दी, घी, काला अगरू और गूगल इन सब वस्तुओ की धूप बनाकर रात में कामालय (रति मन्दिर) को धूप देवे से स्त्री पति को प्रसन्न करती है।

आयुर्वेद शास्त्र की मूल्यवान वाजीकरण औषधियां

डा० लक्ष्मण बजाज, गणेशराम नगर, रायपुर (म प्र)

—०✱०—

त्रिविध वाजीकरण—

वीर्य को निकालने वाली और वीर्य को बढ़ाने वाली तथा वीर्य को निकालने और बढाने वाली। इस प्रकार वृष्य (वाजीकरण) तीन प्रकार का है। मनुष्य को चाहिए कि पहले भले प्रकार वमन विरेचन से शुद्ध देह होकर सोलह वर्ष की अवस्था से ऊपर ७० वर्ष की अवस्था पर्यन्त वाजीकरण औषधियों का सेवन करें। आयु की कामना वाले मनुष्य को १६ वर्ष की अवस्था से कम और ७० वर्ष की अवस्था से ऊपर स्त्री प्रसङ्ग नहीं करना चाहिए। जो इस कथनानुसार नहीं चलते उनके क्षय, अण्डवृद्धि, उपदंश, प्रमेह आदि बड़े दुर्जय घोर रोग हो जाते हैं, बल्कि अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

विलासी, धन रूप यौवन वाला जिसके अनेक स्त्री हों, जो बुढा गये हों, स्त्री रमण से क्षीण हो गये हों जो नपुंसक तथा अल्पवीर्य हों इतने पुरुषों को वाजीकरण योग हितकारी और स्त्रियों में प्रीति के देने वाले तथा सन्तान और बल के देने वाले होते है तथा स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों को भी वीर्य की रक्षा के लिए वाजीकरण पदार्थों का समयानुसार सेवन करना चाहिए।

बुढ़ापे के कारण—

बहुत रास्ता चलने से, अत्यन्त शीत सहने से, सड़ा बासी अन्न खाने से, वृद्धा स्त्री के गमन करने से, मन में सदैव शोक करने से—इन पांच कारणों से मनुष्य को शीघ्र बुढ़ापा आता है।

वाजीकरण पदार्थ—

विचित्र भोजन, अनेक उत्तम दुग्ध, शर्बत, आसव आदि पीने के पदार्थ जो सुनने में प्यारे प्रतीत हों, ऐसे वचन देह को सुखकारक सुन्दर नरम वस्त्र आभूषण पूर्ण चन्द्रमा से शोभायमान रात्रि, सुन्दर विचित्र बाग बगीचे, सर्वाङ्ग सुन्दरी नवयौवना स्त्री, कानों और मन को हरने वाले सुन्दर रूप मन की इच्छापूर्वक रहना अर्थात जिससे मन को दुःख न हो ये सब वाजीकरण (काम को बढ़ाने वाले) पदार्थ हैं।

प्रयोग—

शतावरी घृतम–१ सेर गौ घृत लेकर उसमें १० सेर शतावर का रस और १० सेर गौ का दूध मिलाकर पकावें फिर १० तोला पीपल, १० तोला शहद, २० तोला खांड इन सबको मिलाकर इस घृत को २ तोला नित्य खाकर दूध पीवें तो वीर्य को बढावें।

लघु बाजी सर्पि—१ सेर उत्तम गौ घृत, असगंध कल्क १ सेर, नारी का दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध कर लें। इसमें बराबर मिश्री मिलाकर नित्य सेवन करे तो बल और वीर्य को बढ़ावे।

गोधूमादि घृतम्—सफेद गेहूं का सत्व ५ सेर लेकर जल में पकावें। जब ५ सेर बाकी रहे तो उसको छान लेवें फिर आगे लिखी औषधियों को कूटकर मिलावें। सफेद गेहूं, मुंजातक फल, उड़द, दाल, फालसा, काकोली, क्षीर काकोली, जीवन्ती, शतावरी, असगन्ध, छुहारा, मुलैठी सौंठ, मिर्च, पीपल, मिश्री, सिंघाड़ा, सौंफ के बीज ६-६ माशे, गौ घृत ६ सेर, दूध ४ सेर इनको घृतपाकादि विधि से मन्द आंच मे पकावें और पाक तैयार होने पर इसमें दालचीनी, इलायची, पीपल, धनिया, भीमसेनी कपूर प्रत्येक ६ माशे बारीक पीस कर डाल देवें। सिद्ध होने पर इसमें ३२ तोला शहद और ३२ तोला मिश्री मिलावें फिर इसको ईख के डण्डे से मथ कर दूध में मिलाके पीवें। अथवा चावलों के भात से खावें या मांस रस से पीवें। इसको २ तोला से ८ तोला तक बल के अनुसार खावें। यदि यह अकेला पीना हो तो उसकी ४ तोला की मात्रा है। इसके सेवन से लिंग मे शिथिलता नहीं होती, वीर्य क्षीणता को प्राप्त नहीं होता, बह बल को बढाता है, वात रोगों को शांत करता है, वीर्य को पैदा कर मूत्रकृच्छ को दूर करे। बूढ़े पुरुषों के लिए

परमोपयोगी है। इस रात्रि दूध के साथ सेवन करने से दस स्त्रियों से गमन करे। यह गोधूमादि रसायन अश्विनी कुमार जी ने कहा है।

वानरी गुटिका—एक पात्र कौंच के बीज लेकर १ सेर दूध में पकावें। जब दूध गाढ़ा हो जावे तब उतार कर बीजों का छिलका दूर करके उन बीजो की पीठी पीस लें। फिर इस पीठी को १-१ तोला की टिकिया बनाकर गौ घृत में पका लें। फिर आध सेर खाँड की चासनी कर उन टिकियों पर बालूशाही की भाँति चढावें। फिर उनको शहद मे डुबा दे। टिकिया बनाते समय इसमे २॥ तोला घी मिलादें नहीं तो टिकिया कठोर होने से खाना कठिन होता है। इनमे से नित्य १५ मासे खाकर ऊपर से गर्म दूध पीवें। इसी तरह प्रातः सायं दोनो समय खावें। शिथिल इन्द्रिय के सब विकार दूर होने से घोडे के समान मैथुन करे। इससे बढ़कर दूसरा नही।

वाजीकरण शष्कुली—काले तिल, असगन्ध, कौंच के बीज, विदारीकन्द, मुलहठी—इन सबको समान भाग लेकर कपड़छन कर बकरी के दूध मे गूँथ कर पूडी बनाकर बकरी के घी मे पका लें। इनको मिश्री मिले दूध के साथ खावें। इनके खाने से वीर्य पुष्ट हो, शरीर मे बल आवे।

पायस—जिसका बछड़ा बड़ा हो उस गौ के दूध मे घी मे भुना हुआ कनक का दलिया डालकर खीर बनावें फिर उसमे घृत, शहद मिश्री मिला कर खावे तो बूढा भी काम की इच्छा करने लगेगा।

सिताविवृष्य योग—मिश्री ४०० तो०, गौ का शुद्ध घी १४ तो०, विदारीकन्द ६४ तो०, पिप्पली का चूर्ण १२८ तो०, उत्तम शहद १२८ तो०—इन सबको मिला उत्तम चिकने मिट्टी के बर्तन मे रखें। फिर जठराग्नि का बलाबल विचार कर नित्य प्रातःकाल खावें। यह योग परम वृष्य (वीर्यवर्धक) कण्ठशोधक और रसादि सब धातुओं को बढ़ाने वाला है।

योग्य दूध—पहलौन ब्याई गौ जिसका बछड़ा बड़ा हो गया हो और उड़दो के पत्ते चरती हो उस गौ का दूध बल और वीर्य के बढ़ाने मे परमोपयोगी होता है।

रसाला—गाढ़ा मीठा, मलाईदार दही २ सेर, सफेद बूरा १ सेर, गौ का घी १ छटाक, शहद १ छटाक, काली मिर्च ६ माशे, इलायची, दालचीनी, नागकेशर ६-६ माशे इनको बारीक करके दही मे डालकर फिर स्वच्छ सफेद बारीक वस्त्र मे स्त्री नर हाथ से छाने। फिर इसको भीमसेनी कपूर की गंध से सुवासित कर मिट्टी के नये पात्र मे रखें। यह भीमसेन का बनाया रसाला भगवान मधुसूदन ने भोग लगाया है यह परम वृष्य है।

अश्वगंधादि घृत—असगंध १ सेर, दूध आठ सेर, शुद्ध गौ घृत १ सेर इनको मंद अग्नि से धीरे-२ पकावें और घृत पाक पर आवे तब उसमे सोंठ, मिरच, चतुर्जात वाय विडंग, जावित्री, बला, अतिबला, गोखरू, विधारा लोह भस्म, बंग भस्म, अभ्रक भस्म—इन प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला, शहद ३२ तोला, उत्तम मिश्री ३२ तोला इन सबको डालकर घृत को उतार लेवे। फिर चिकने बर्तन मे भर कर रख देवें और अग्नि का बलाबल देख कर दोनो समय इसमे से भक्षण करें। इसके सेवन से अर्दित वात, हनुस्तम्भ, सन्धिगत वायु कटिग्रह का (कमर का दर्द) दर्द या सब दूर हो और गर्भ सम्बन्धी रोग तथा प्रसव के रोग, वीर्य के सब विकार, सब वात रोग—इन सबको ऐसे जीत लेता है जैसे सिंह मतवाले हाथी को भगा देता है। अश्वगंधादि घृत परम वाजीकरण है।

मालादि घृत—कौंच के बीज ४ सेर, उड़द ४ सेर जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, क्षीरकाकोली, ऋद्धी, वृद्धी, शतावर, मुलहठी, असगंध प्रत्येक १६ तोले लेकर आठ गुने पानी मे पकावें और जब पकते-२ चौथाई रह जाये तब उतार कर छान लेवें। फिर इसमे घी १ सेर दूध १० सेर, विदारीकंद का स्वरस १० सेर पकावें। जब पकते-२ घी मात्र शेष रहे तो इसमे मिश्री, वंशलोचन, शहद प्रत्येक १६-१६ तो०, पीपल का चूर्ण ८ तो० मिला कर चिकने पात्र मे रख देवें। इनमे से अग्नि के बलानुसार खाकर ऊपर से मूंग, चावल, घृत खावें। इसके प्रभाव से वीर्य कभी क्षय नही होता। ✚

शीघ्रपतन
मनोवैज्ञानिक विवेचन-चिकित्सा

डा० श्री योगेश शर्मा बी. एस. ए. एम , ५-पारुल सोसायटी, मेमनगर फायर स्टेशन के सामने
नवरंगपुरा; अहमदाबाद (गुजरात)



डा० योगेश शर्मा अहमदाबाद के नवयुवक आयुर्वेदीय चिकित्सक हैं। आप स्नातक होकर ५ साल से गुप्त रोग की चिकित्सा करते है। गुजरात के दैनिक एवं मासिक पत्रों में आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। डा० योगेश शर्मा की धर्मपत्नी डा० नीता गोस्वामी-सौन्दर्य चिकित्सा में विद्वान हैं। वर्तमान में गुजरात में सौन्दर्य चिकित्सा हेतु डा. नीता गोस्वामी का नाम प्रथम पंक्ति में लिया जाता है। आप दोनों शुद्ध आयुर्वेद चिकित्सा करते हैं। 'धन्वन्तरि' के सौन्दर्योपचाराङ्क में आप दोनों का लेख भी प्रकाशित हुआ है। यहा शर्मा जी ने उचित विषय पर मार्गदर्शन दिया है। उपयोगी होगा। डा० शर्मा जी से धन्वन्तरि मासिक अनेको अपेक्षा रचना रखता है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आजकल मेरे चिकित्सालय में ८० % रोगी शीघ्रपतन के आते हैं। पुरुष रोग चिकित्सा में कई विद्वान वैद्यों ने इस रोग के बारे मे लिखा होगा लेकिन मैं इस रोग को मानसिक रोग के साथ रोगी की अज्ञानता अनुभव की कमी समझता हूँ। कामकला मालूम न होने पर स्त्री-पुरुष संपूर्ण सन्तोष प्राप्त नही कर सकते। इस विषय में मैं कुछ बताना चाहता हूं। पहले तो शीघ्रपतन कब माना जाता है ? कई विद्वानों के अलग-अलग मतमतांतर हैं।

१. स्त्री को सपूर्ण सन्तोष न देना-इसको कई विद्वान शीघ्रपतन कहते हैं।

२. सभोग की शुरूआत करते ही ३-४ हलन-चलन की प्रक्रिया में स्खलन हो जाने को या लिंग के योनि मे प्रविष्ट करते ही बाहर स्खलन हो जाने को शीघ्रपतन कहा जाता है।

३ पुरुष स्त्री के साथ जब सम्भोग करता है, अगर पुरुष स्त्री को ५०% से कम उत्तेजना देता है तो वह शीघ्रपतन का रोगी कहा जा सकता है।

शीघ्रपतन के रोगी को यह जानना बहुत जरूरी है कि सम्भोग किस समय करना चाहिये ? अगर इस लेख में बताये गये वक्त पर सम्भोग किया जाये तो आशा है स्त्री पुरुष दोनो को आनन्द मिलता है।

सम्भोग के लिये स्त्री का योग्य समय है, मासिक आने से पहले और मासिक आ जाने के ४-५ दिन बाद। इस समय में स्त्री की योनि मे प्रवाही वहता है, योनि में चिकनाहट रहती है। इस वजह से शरीर में एक प्रकार की उत्तेजना रहती है, अगर इस वक्त सभोग किया जाय तो अवश्य स्त्री पुरुष दोनों को आनन्द मिलेगा।

कई पुरुष समझते है कि सभोग हररोज करना चाहिए लेकिन मैं समझता हूँ संभोग हर ६-७ दिन के अन्तर में करना चाहिए। पुरुष उत्तेजना वार-२ हो जाती है और वह संभोग करने के लिए तत्पर रहते हैं लेकिन स्त्री घर की जंजाल, बालक, सास, ससुर वगैरह घर के सब सदस्यों के काम काज की वजह से सामाजिक कार्य की वजह से इतनी थक जाती है कि सोते ही निद्रावश हो जाती है। ऐसे वक्त मे संभोग की आशा रखना बेकार है। इसलिए स्त्री को जब ६-७ दिन में आराम मिले तब अगर संभोग

किया जाय तो अच्छा रहेगा। ६-७ दिन सभोग न करने पर स्त्री को खुद ही उसके शरीर मे उत्तेजना उत्पन्न होती है और आशा करती है तब ही सभोग करें।

जिस तरह सभोग के लिए योग्य समय है उसी तरह सम्भोग के लिये अयोग्य समय भी है ऐसे समय मे सभोग नही करना चाहिए।

जब तक दोनो स्त्री पुरुष की अन्दरूनी इच्छा न हो वहा तक सभोग नही करना चाहिए। पुरुष या स्त्री कही बाहर गांव के आये हों थकावट ज्यादा हो नींद अगर ठीक से न मिली तो सभोग नही करना चाहिए। अगर बीमारी मे उठे हों उस वक्त संभोग नही करना चाहिए। अगर कोई दुखद घटना घटी हो तब या घर मे लडाई-झगडा हुआ हो तब या घर में कोई देख जायेगा या बच्चे आजायेंगे यह डर मन में हो, उपवास हो तब संभोग नही करना चाहिए। क्योकि इस वक्त मन प्रफुल्लित नही होता है। अगर इस वक्त संभोग की इच्छा रखी जाये तो दुसरे पार्टनर को उत्तेजना अच्छी तरह से नहीं आती है। पुरुष का लिंगोत्थान ठीक से नहीं होता है और सभोग की शुरुआत मे ही स्खलन हो जाता है। ऐसी ही स्त्री को स्राव ठीक से नही होता है और सभोग में ओतप्रोत नहीं हो सकती।

शीघ्रपतन के रोगी को अगर कामकला का संपूर्ण ज्ञान हो तो ज्यादातर वह अपनी पत्नी को सतुष्ट कर सकता है और खुद भी सतुष्ट हो सकता है। स्त्री को उत्तेजित किये बिना सभोग करने से स्त्री अतृप्त रह जाती है। स्त्री को पहले सपूर्ण रूप से उत्तेजित किया जाय और इसके बाद अगर संभोग किया जाय तो अवश्य सफलता मिलती है। स्त्री के साथ सभोग करने से पहले स्तन मर्दन, निपल (Nipple) का मर्दन, मुख द्वारा स्तनपान, निपल को हाथ ही उगली से हल्के-हल्के हाथ से दबाना, जाघ पे धीरे-२ हाथ फिराना, भगोष्ठ (क्लिटोरिस)में उगली से हल्के-हल्के हाथ से घर्षण करने से अवश्य उत्तेजना उत्पन्न होती है। यह प्रक्रिया जब चल रही हो तब अगर कोई बिभत्स शायरी, जोक्स साहित्य, या आसन के फोटोग्राफ्स बताये जाये तो अवश्य स्त्री उत्तेजित होती है और अपने आप ही सभोग की इच्छा रखती है। इस वक्त अगर सभोग किया जाय तो अवश्य स्त्री कम समय मे ही स्खलित होजाती है। इस तरह स्त्री-पुरुष दोनो को ही आनन्द मिल जाता है।

कुछ विदेश के जानेमाने सेक्सोलोजिस्ट ने उपाय बताये हैं जिनका उल्लेख कर रहा हूँ। यह प्रयोग अगर लम्बे तक किये जाय तो अवश्य ही पुरुष वीर्य धारण की प्रक्रिया जान जायेगा और इस महारोग मे बच सकेगा—

(१) पुरुष स्त्री की तरह अगर नीचे सो जाय और स्त्री पुरुष की तरह ऊपर हो जाय और पुरुष की तरह चेष्टा करे इससे स्त्री सक्रिय बनती है और पुरुष निष्क्रिय। पुरुष की निष्क्रियता की वजह से शीघ्र स्खलन नही होता है और सभोग का समय बढता है। यही प्रयोग लम्बे समय तक करने से पुरुष का मनोबल बढ़ता है और पुरुष लम्बे समय के अनुभव के बाद शीघ्रपतन से छुटकारा पा सकता है। इसी तरह पुरुष ऊपर की ओर रहे और स्त्री नीचे की तरफ और सभोग करें, जैसे ही पुरुष को लगे कि वीर्य स्खलन होने की तैयारी है संभोग को रोक दें। जब आवेग कम हो जाये तब फिर से हलन-चलन शुरू करें। इस तरह १ दिन मे ४-५ बार करें धीरे-२ समय मर्यादा बढाते जाये, यह प्रयोग भी लम्बे समय तक करने के बाद पुरुष अवश्य ही वीर्य ग्रहण लबे समय तक कर सकेगा और अपनी स्त्री को और खुद को आनन्द दे सकेगा। इस प्रयोग में स्त्री का सहकार बहुत ही जरूरी है क्योंकि सभोग करने से स्त्री को उत्तेजना बढ़ती है। अगर उसी वक्त सभोग रोक दिया जाये तो उत्तेजना कम हो जाती है। इसी तरह बारबार करने से स्त्री को आनन्द नहीं आता लेकिन पुरुष को अपनी पत्नी को समझाना चाहिये कि हाल में भले ही आनन्द नही आयेगा लेकिन लम्बे समय के बाद अवश्य सपूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

(२) यही प्रयोग लिग को योनि मे प्रवेश कराये विना

किया जा सकता है। स्त्री खुद अपने हाथ से पुरुष के लिंग को उत्तेजित करे और हस्तमैथुन करे। जब वीर्य स्खलन होने की तैयारी हो तब यह प्रक्रिया रोक लिङ्ग को संकुचित अवस्था में लावें। पुनः उत्तेजित करके यही प्रयोग करें। यही प्रयोग बारबार करने से पुरुष को वीर्य ग्रहण करने की तरकीब आ जायेगी और सभोग के समय स्खलन देर से होगा। और स्त्री-पुरुष दोनों अवश्य ही आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

(३) संभोग के वक्त अपना ध्यान कही दूसरी ओर रखें। सिर्फ सभोग में ही ध्यान रखने से उत्तेजना ज्यादा बढ़ जाने से शीघ्र स्खलन हो जाता है। मन को कहीं और ले जाने से या ध्यान दूसरी तरफ जाने मे सभोग की क्रिया में देर होती है और स्खलन देर से होने से आनन्द प्राप्त होता है।

(४) लिंग मे उत्तेजना अधिक बढ़ जाने की वजह से शीघ्र स्खलन होता है। इस उत्तेजना का शमन करने के लिए निम्न प्रयोग उपयोग करने से फायदा होता है—

रूमादार तोलिया को रोज सुबह फ्रिज में रख दो। रात को सोते वक्त लिंग का सीधा स्पर्श हो ऐसे लपेटो। थोड़ी देर बाद अगर एक तरफ गरम हो जाये तो दूसरी तरफ लपेट दो। संभोग करते समय भी लिंग का भाग खुला रखें पर पिछली ओर लपेट रखें। इस प्रयोग से शरीर की गरमी शांत होगी और शीघ्रपतन में फायदा होता-है। ठंडे तोलिया से लिंग की उत्तेजना कम होती है और सभोग देर तक टिकता है।

यही प्रयोग तोलिया को ठंडे पानी मे भिगोकर भी किया जा सकता है।

सुबह नहाते समय लिंग पर १०-१२ लोटा ठंडे पानी के धार करने से भी उत्तेजना बढ़ जा है, और संभोग लम्बे समय तक चलता है।

शीघ्र पतन की चिकित्सा

१—काहू के बीज, कासनी के बीज, नीलोफर ५०-५० ग्राम, भांग के बीज, सूखा धनियां, ईसबगोल २०-२० ग्राम—सभी का चूर्ण बनाकर १-१ चम्मच सुबह शाम दूध से लें।

२—कस्तूरी २ माशे, केशर ४ माशे, इलायची छोटी के दाने ५ माशे, जायफल दखिनी ६ माशे, बंशलोचन ७ माशे, जावित्री ८ माशे, सोने के वर्क १ माशा, चांदी के वर्क ३ माशे—सभी को कूट छानकर पान के स्वरस में १६ घण्टे तक घोटें। फिर १-१ रत्ती की गोलिया बना लें। २-३ गोली सुबह शाम दूध के साथ लें।

—वैद्य कपूरचन्द जैन आयु० वृह०; आयु० रत्न, आयु० चक्र०
सुभाष चिकित्सालय, हीरापुर (सागर) म० प्र०

❋ शीघ्रपतन निदान-चिकित्सा ❋

वैद्यराज श्री० पी० सी० पटेल-सेक्सोलोजिस्ट (आयुर्वेद) डी० एस० ए० सी०, ए० एम०, ए० यु० एच० पी० ए० (जामनगर), १०२—राम चेम्बर, नवरंग सिनेमा, वड़ोदरा (गुजरात)



वैद्य श्री पी० सी० पटेल गुजरात के आयुर्वेदिय विद्वान है। आप स्नातकोत्तर होकर गुप्तरोग विशेषज्ञ के रूप में अपना चिकित्सा व्यवसाय करते हैं। गुप्तरोग में आयुर्वेद पद्धति विशेष फलप्रद है, आप यह मानकर कार्य करते हैं। यहा आपने शीघ्रपतन पर विशेष प्रकाश डाला है, जो उचित एवं उपयोगी है। मुझे अपेक्षा है कि श्री वैद्यजी 'धन्वन्तरि' मासिक द्वारा बार बार इसी तरह से मार्गदर्शन देते रहेंगे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

संभोग क्रिया में शीघ्रपतन एक महान समस्या है ६० से ८०% पुरुष शीघ्रपतन से पीड़ित हैं। पुरुष का पुरुषत्व बारम्बार संभोग करने में नहीं है। किन्तु सच्चा और अच्छा पुरुषत्व सफलतापूर्वक संभोग करने में है। शीघ्रपतन से पीड़ित पुरुष बारबार संभोग करके पत्नी को तृप्त करने का प्रयत्न करता रहता है और हरेक प्रयत्न ऐसी निराशा को और तेज कर देता है अतः वह हृदय से टूट जाता है, उसकी पत्नी हर समय अतृप्त रह जाती है और क्रमशः जातीय उदासीनता बढ़ती जाती है और हर वक्त जीवन में असतोष बढ़ता जाता है।

आजकल मेरे सेक्स गुप्त रोग केन्द्र में शीघ्रपतन की शिकायत लेकर बहुत से युवक आते हैं, उनमे कई ऐसे होते हैं जिनको संभोग करने से पहले ही वीर्यस्राव हो जाता है, कितने को लिङ्ग योनि मे प्रवेश करें या न करें इसके विचार करने मे ही वीर्यस्राव हो जाता है।

शीघ्रपतन होने के कारण—

१. जातीय आवेग ज्यादा रहे तो संभोग के समय शीघ्रपतन हो जाता है।

२. संभोग करते समय मानसिक आवेग अधिक तत्परता रहे तो भी शीघ्रपतन हो जाता है।

३ वीर्याशय में शुक्र की अधिकता हो तो भी शीघ्रपतन हो जाता है। अधिक समय के बाद संभोग करते है, तो ऐसा हो जाता है।

४ संभोग के समय किसी भी प्रकार का बाहरी भय (डर), वहम, सकोच, शर्म-लज्जा, एकांत का अभाव, प्रकाश और बाहरी आवाज से भी शीघ्र स्खलन होता है।

५. अतिशय शारीरिक मानसिक थकान, चिंता, टेन्शन के कारण शीघ्र स्खलन हो जाता है।

६. शीघ्रपतन से पीड़ित पुरुष इन्द्रिय का थोड़ा उत्थान होते ही इन्द्रिय को चटपट योनि में डालकर सीधा संभोग शुरू कर देते हैं क्योंकि उनको यह डर रहता है कि संभोग करते-२ इन्द्रिय शिथिल हो जायेगी तो वह डर से बचने की कोशिश करता है। वही डर ही शीघ्रपतन का कारण बन जाता है।

७ हस्त मैथुन की आदत से नुकसान हुआ है, वीर्य पतला हो गया है, वीर्य जल्दी निकल जाता है, लग-

जीवन मे स्त्री को संतोष दे पाऊंगा कि नही ? ऐसे विचारो से पुरुष लग्न जीवन में आत्मविश्वास और हिम्मत से काम नही ले पाता जिससे भी शीघ्रपतन का भय हमेशा रहता है।

८. घबराहट चिंता व्यग्रता के कारण भी पुरुष सभोग पर का काबू गवा देता है जिससे तुरन्त वीर्यस्राव होने लगता है और थोडी देर के बाद अपनी इच्छा न होने पर भी चुम्बन, आलिंगन जैसी क्रियायें करने से भी शीघ्रपतन होता है।

९. ना पसन्द स्त्री के साथ सभोग करने से भी शीघ्रपतन हो जाता है।

१०. ज्यादा हस्तमैथुन, स्वप्नदोष और वीर्य की बरबादी से शीघ्रपतन हो जाता है।

११. प्रोस्टेट ग्रन्थि, मूत्राशय को ग्रीवा की मूत्र नलिका का शोथ, उश्केराट या कोई भी खराबी शीघ्रपतन लाती है गुदा रोग या इन्द्रियरोग की पूरी चिकित्सा न लेना ये गुप्त अवयवो की खराबी का कारण है।

१२. इन्द्रिय की चमडी अधिक लम्बी और सिकुड़ी हुई हो और शिश्नमणि के ऊपर नीचे न होने से शिश्नमणि का आगे का भाग अधिक लागणीप्रधान और सवेदनशील होता है जिससे सभोग का समय उश्केराट जल्दी और ज्यादा आ जाने से शीघ्रपतन हो जाता है।

शीघ्रपतन से पीड़ित पुरुष की इच्छायें—

हर एक पुरुष सभोग क्रिया लम्बा समय तक चले ऐसी इच्छा रखता है। और जब अपनी इच्छा हो तब ही वीर्यस्राव होने दें इसके लिये कितने पुरुष अनेक प्रकार की औषधिया खाते हैं और कई बाह्य नुस्खे इस्तेमाल करते हैं। हर एक पुरुष की इच्छा होती है कि खुद को संपूर्ण सुख मिले और अपनी पत्नी को सम्पूर्ण आनन्द दे पावे। कभी ऐसा भी होता है कि स्त्री को तृप्त होने मे ज्यादा समय लगता हो तो सम्भोग के समय स्त्री को पूर्ण तृप्ति नही मिले वहां तक वीर्यस्राव नही होने देवे और पूर्ण शक्ति और तन्मयता इन्द्रिय के घर्षण का तालबद्धकार्य चालू रख के स्त्री को पूर्ण तृप्ति का भान दे देकर स्वर्ग के सुख की चरमसीमा पर पहुंचा कर परम सुख का अनुभव करा सकते हैं।

शीघ्रपतन से पीड़ित पुरुषों का मनोमन्थन—

हजारों पुरुष ऐसे होते हैं कि योनि मे इन्द्रिय डालते ही तुरन्त वीर्यस्राव कर देते हैं जिससे शर्म से उनका शिर झुक जाता है। जिस मिलन में स्त्री अतृप्त रह जाती है। वह मिलन में पुरुष को तृप्ति का परम आनन्द नही मिल पाता, ऐसा पुरुष शर्म, लज्जा और आत्मग्लानि के साथ करवट फेर के लेट जाता है। अतृप्ति की आग में सुलगती जलती हुई स्त्री अनिद्रा से पीडित और निष्फल जातीय जीवन पर पछतावा करती हुई लम्बे समय तक रात को निराश होकर शय्या मे पडी रहती है। स्त्री के लिये तो ऐसे सम्भोग का कार्य क्रूर सजा जैसा हो जाता है। पुरुष हर बार लम्बे समय तक वीर्य धारण नही कर सके वह स्त्री को कभी भी सम्भोग का अच्छा सुख नही दे पाता अतः इनके मन और विचारो में लघुताकी लागणी का जन्म होता है जो इसे मानसिक विकृति का शिकार बना देती है। वह हमेशा सोच मे डूबा रहता है कि वह खुद स्त्री से कमजोर और नीचे दरजे का है। ये विचार उसके मन मे ऐसा भय उत्पन्न करता है कि जिससे उसके बाद करने वाले हर समागम मे वही की वही घटना का पुनरावर्तन होता है।

शीघ्रपतन में ध्यान मे रखने योग्य बातें—

(१) पूर्ण इन्द्रिय उत्तेजित हुए बिना सम्भोग करने की जल्दबाजी नही करनी चाहिए।

(२) शीघ्रपतन के लिए जो शारीरिक मानसिक कारण हैं वह दूर करें।

(३) सम्भोग करते समय किसी भी प्रकार का भय, चिंता विचार, शर्म नहीं करनी चाहिए।

(४) सम्भोग का कार्य कुदरती और आनन्द के लिये है। हो सके जितना धीरज करो।

(५) समागम के करते समय एकांत, अंधकार और ओरत का प्रेमभाव होना चाहिये।

(६) समागम करते समय मन पर विचार, गुस्सा-सेवन, व्यग्रता और खोटी जल्दबाजी का योग नहीं बनना चाहिए।

(७) अपने को पसन्द न हो उस स्त्री के साथ कभी सम्भोग नहीं करे।

(८) सम्भोग के समय स्त्री को काम कला से पूर्ण रूप से उत्तेजित करें।

(९) इन्द्रिय की चमड़ी लम्बी और सिकुड़ी हुई हो तो उसका खतना करवा दे।

(१०) आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा और धीरज से सम्भोग करें।

(११) बहुत लम्बे समय के बाद सम्भोग नहीं करना चाहिए और स्तंभन होता है कि नहीं यह देखने के लिए सम्भोग नहीं करें।

(१२) शारीरिक या मानसिक थकान, जागरण, श्रम टेनशन हो तब सम्भोग नहीं करें। मन शांत और प्रफुल्लित हो तब ही सम्भोग करें।

शीघ्रपतन के उपाय—

१. कटिस्नान (Hip Bath)—कटिस्नान से शिश्न की ज्यादा उत्तेजना कम होती है। इन्द्रिय के अवयवों के ज्ञानतंतु शांत होते हैं। उस भाग में ठंडक के कारण रक्त भ्रमण ज्यादा होने के कारण अनेक प्रकार की जातिय शक्तियां दूर होती हैं। जातिय उत्थान केन्द्र और स्खलन केन्द्र पर कटिस्नान का चमत्कारिक असर होता है। कटिस्नान शीघ्रपतन निवारण की रामबाण जड़ी-बूटी है। जो लोग कटिस्नान नहीं कर सकते उनको जल से भीगा तौलिया कमर के आस पास आधा घण्टा लपेटकर रखे तो भी उसका परिणाम अच्छा मिलता है।

२. आसन और शीघ्रपतन—शीर्षासन और सर्वांगा-सन नियमित करने चाहिए। दूसरा पांव को चौड़ाकर खड़ा होकर हाथ को जंघा के पास लटकने दो। फिर इच्छा-शक्ति से नितम्ब के स्नायुओं को बलपूर्वक संकोच करें थोड़ी देर के बाद ढीला करें। ऐसा दिन में ३-४ बार ५-७ मिनिट यह क्रिया करनी चाहिए। ऐसा करने से वीर्य स्खलन पर नियंत्रण होता है।

३. स्थानिक स्पर्श शून्यता—शिश्न ज्यादा उत्तेजित हो जाता हो और शिश्नमणि को ज्ञानतन्तु उत्तेजित ज्यादा रहते हों उनको स्त्रीयोनि के संसर्ग में आते ही वीर्यस्राव हो जाता है। ऐसे लोगों को शिश्न की स्पर्श-शून्यता के लिये दवा की दुकान से स्थानिक स्पर्श शून्यता (Local Anesthetic) को पेस्ट मिलता है उसका उपयोग करना चाहिए। निरोध का उपयोग भी स्पर्शशून्यता देता है।

शीघ्रपतन की चिकित्सा—

(१) कस्तूरी, सोने के वर्क, चांदी भस्म, अम्बर १-१ ग्राम, शुद्ध कौंच, गोखरू, मूसली, जायफल, इलायची, उटगन के बीज, सालमपञ्जा ये सब ३०-३० ग्राम, वंशलोचन, भाग, जावित्री, मकरध्वज २०-२० ग्राम, बङ्ग भस्म, लौंग १०-१० ग्राम, सुपारी १५ ग्राम। इन सबको पान के रस में तीन भावना देकर चने बराबर गोली बनाकर २-२ गोली सुबह शाम दूध से लें।

(२) कस्तूरी २ ग्रा०, जायफल २० ग्रा०, जावित्री १० ग्राम, केशर ५ ग्रा०, बङ्ग भस्म १० ग्रा०, मकरध्वज रौप्य भस्म ५ ग्रा०, अकरकरा १० ग्रा०, सफेद मूसली २० ग्रा०, भीमसैनी कपुर १० ग्रा०, अश्वगन्धाघन ५० ग्रा० शतावर ३० ग्रा०, तालमखाना ३० ग्रा०, अफीम २० ग्रा० इन सब औषधियों का चूर्ण मिलाकर पान के रस की और भाग की पत्ती के रस की एक एक भावना देकर गोली बनाकर रात को संभोग से एक घण्टा पहले दूध के साथ सेवन करने से शीघ्रपतन मन्द होता है और स्तम्भन शक्ति बढ़कर लम्बे समय तक सम्भोग चलता है।

—✦✦—

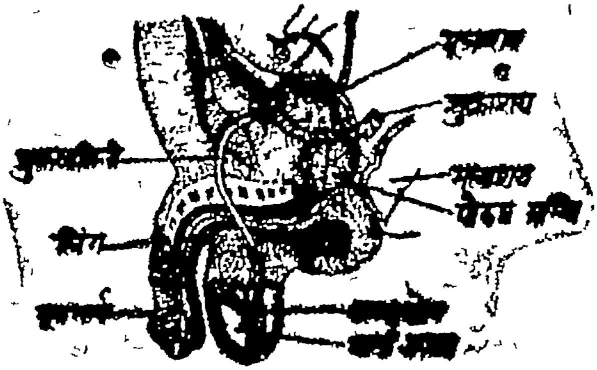
हस्तमैथुन के दुष्परिणाम एवं उपचार

डा० भवानीशंकर दीक्षित आयुर्वेद रत्न (आर एम. बी.) शारदा क्लिनिक, रक्सौल (बिहार)

श्री भवानी शंकर जी योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं। आपके पिता जी श्री डा० बनारसी दास जी दीक्षित 'धन्वन्तरि' में बहुत समय तक होमियोपैथिक के लेख लिखते रहे हैं जिनको कि पाठक अत्यन्त रुचि-पूर्वक पढ़ते थे। दु:ख है कि इस समय वे हस्त कम्प से रुग्ण हैं तथा चिकित्सक समाज की सेवा नहीं कर पा रहे हैं। अब उन्हीं के निर्देशन मे श्री डा० भवानी शकर दीक्षित ने यह लेख लिखा है जिसे आशा है कि पाठक अवश्य ही पसन्द करेंगे तथा सराहेंगे। आशा है कि श्री भवानी शंकर जी अपने सुयोग्य पिता के पद चिन्हो पर चलते हुए चिकित्सक समाज की सेवा करते रहेंगे। भगवान 'धन्वन्तरि' आपको चिरायु बनायें तथा चिरयश प्रदान करें।

—दाऊदयाल गर्ग।

यहां हम बताना चाहते हैं कि हस्तमैथुन से हमारे युवा भाइयों तथा बालकों को क्या हानि होती है। हस्त-मैथुन को करते समय युवक अपने उत्तेजित शिश्न को मुट्ठी के बीच पकड़ कर तब तक नीचे ऊपर करता है जब तक कि वीर्य स्खलन नही होता। इस प्रकार शिश्न की नसों पर हाथ तथा अगुलियों का काफी दबाव पड़ने के कारण शिश्न की रचना, रक्तवाहिनी नसो, नाड़ी जाल तथा शरीर के समस्त अगो पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। शिश्न तथा अण्डकोषो में विकृति पैदा हो जाती है। बहुत अधिक दिनों तक हस्तमैथुन करते रहने पर यौन अङ्गों के साथ शारीरिक तथा मानसिक विकास रुक जाता है।

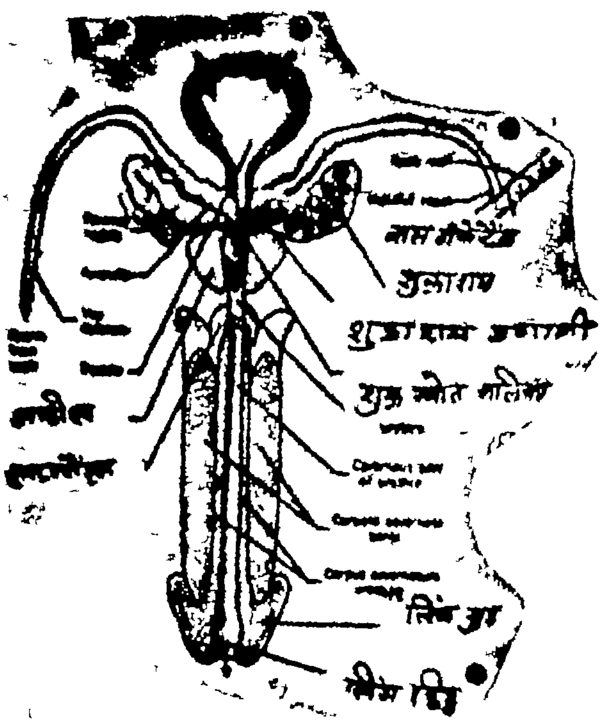


इसका कारण यह है कि कम उम्र में बालकों के शिश्न, अण्डकोष पूर्णरूप से विकसित नही रहते है। बल्कि समस्त यौन अङ्ग विकासशील अवस्था मे रहते हैं। कोमल तथा अविकसित अवस्था में हस्तमैथुन द्वारा उन अङ्ग पर दवाब और खिचाव पैदा होता है जिसके कारण उन अविकसित अंगों मे विकृति पैदा हो जाती है।

अंडकोष से निकलने वाला एक प्रकार का अन्त:स्रावी रस जो रक्त मे मिलकर यौन अगों तथा समस्त शरीर को पुष्ट करने में मे काफी सहायक सिद्ध होता है। अधिक दिनो तक हस्तमैथुन करने से वो रस वीर्य के साथ स्खलन के समय बाहर निकल जाता है। जिस कारण रक्त में निर्बलता आ जाती है तथा अंडकोषों मे पूर्ण रूप से रक्त की अधिकता नही हो पाती जिससे भीतरी यौन अग या तो अविकसित रह जाते हैं या फिर अर्ध विकसित रह जाते हैं।

कारण कि हस्तमैथुन अधिक करने के कारण नाड़ी जाल, स्नायुजाल ढीले पड़ जाते है। तथा पूर्ण रूप से सबल रक्त पर्याप्त मात्रा मे शिश्न तथा भीतरी यौन अगो मे नही पहुच पाता।

अधिक दिनो तक हस्तमैथुन से वीर्य मे शुक्राणुओं की कमी भी हो जाती है। शिश्न पर इसका बुरा प्रभाव यह होता है कि शिश्न में टेढ़ापन, पतलापन या ऊपर का भाग मोटा नीचे का पतला आदि कई विकृति पैदा हो जाती हैं जिसके कारण आगे चलकर शीघ्रपतन,



पूर्ण तनाव न आना, वीर्य मे पतलापन आदि कई कारणों से युवक अपने को सम्भोग मे असफल पाता है।

इसका कारण लिंग में शिथिलता, स्नायुजाल, नाडी-जाल पूर्ण रूप से रक्त नही ले पाने के कारण ही ऐसी अवस्था होती है, क्योंकि हस्तमैथुन के समय समस्त नाडी जाल, स्नायुजाल पर जोर का अप्राकृतिक धक्का लगता है जिससे अविकसित कोमल अंग उन कठोर धक्कों से विकारग्रस्त हो जाते हैं।

लिंग के कोष्ट तन्तु जब रक्त से परिपूर्ण होते हैं तभी लिंग पूर्ण उत्तेजित होकर कठोर होती है तथा हस्तमैथुन करने से रक्त का दबाव ऊपर नीचे होता है। नीचे दबाव होने पर प्रोस्टेट ग्लैंड सख्त एव सकुचित होने के कारण रक्त नशो में वापिस नही जा पाता। इस प्रकार रक्त का बार-बार दबाव प्रोटेस्ट ग्लैण्ड पर पड़ता है तथा तेज हाथ के आघातों से विकार ग्रस्त हो सकते हैं तथा उनकी सकुचन शक्ति नष्ट हो सकती है। शुक्राशय तथा वीर्य नाल पर भी इन आघातों का कुप्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार जब दबाव ऊपर की ओर होता है तब दवाव लिंग मुण्ड पर अधिक हो जाता है उस समय लिंग मुण्ड के सारे स्नायु अप्राकृतिक रूप से फैलते हैं जिससे लिंगमुण्ड के स्नायु जाल में ढीलापन आजाता है। तथा लिंगमुण्ड काफी सम्वेदनशील हो जाता है जिससे सम्भोग के समय जरा अधिक रगड लगते ही शीघ्रपतन हो जाता है।

इन सब कारणों से हस्तमैथुन करने वाले मेरे युवक भाइयो को पूर्ण युवा अवस्था मे प्राकृतिक यौन सुख नही मिल पाता। इस जानलेवा विकार को बढ़ाने मे आज के आधुनिक अध विश्वासी लोगो का विशेष योगदान है जो हमेशा यह कहते पाये जाते हैं कि हस्तमैथुन अति सम्भोग या अन्य अप्राकृतिक मैथुनो से किसी प्रकार की कोई हानि नहीं है।

दूसरा कारण आपका बेहद उत्तेजक वातावरण जिसमें सिनेमा, ब्लुफिल्म, उत्तेजक घटिया साहित्य आदि के कारण आज हमारे कितने भोले भाले युवक भाइयों को बुरे रास्ते पर ले जाते हैं तथा युवक अपना जीवन बरबाद कर रहे हैं। इसको छोड़ने की कठोर प्रतिज्ञा करके इसे छोड देना चाहिये। कई बार हस्तमैथुन छोड़ने के बाद स्वप्नदोष होने लगते हैं या और भी कई परेशानियां हो जाती हैं। यहां नीचे मै कुछ होमियोपैथिक दवायें लक्षणो के साथ दे रहा हू जिससे हस्त मैथुन के बाद आये विकारो मे लाभ होगा। शायद मेरे इस लेख से कई मेरे युवा भाइयो को लाभ अवश्य होगा—

(१) ऐसिडफास ३० या २०० हस्त मैथुन की आदत छुडाने की एक उत्कृष्ट दवा है। इस दवा के सेवन से हस्तमैथुन के कारण आई शारीरिक तथा मानसिक कमजोरी, स्वप्नदोष, सुस्ती तथा यौन अगो की शिथिलता आदि मे ३० पावर की तीन खुराक रोज आठ दिन लेवें। इसके बाद २०० को हर ५ वें दिन १ खुराक लेवें।

डा० ज्वहार के मतानुसार यह दवा अति स्त्री सहवास या हस्तमैथुन से आई सम्भोग सम्बन्धी कमजोरी की एक कुशल दवा है।

(२) सेलेनियम ३ ६-३० हस्तमैथु न के बाद की

अत्यधिक कमजोरी, स्वप्नदोष या बिना स्वप्न के वीर्यपात हो जाना। वीर्यपात या सम्भोग के बाद चक्कर आना अत्यधिक रागमेच्छा लेकिन सम्भोग मे असफल रहना। लिंग से वीर्य या प्रोस्टेट रस निकलते रहना। अत्यधिक वीर्यपात के कारण हुई कमजोरी मे यह एक लाभप्रद औषधि है।

(३) ऐग्नस कैसटस ६-३० अत्यधिक मानसिक कमजोरी, सदैव दुःख एव निराश रहना। जननेन्द्रिय मे दुर्बलता होते हुए भी प्रबल कामेच्छा बनी रहती है। मल त्याग के समय जोर लगाने से या नीद में बिना स्वप्न के ही वीर्य स्खलन हो जाना।

डा० नैश के कहने अनुसार यह दवा उन लोगो के लिये है जो कम उम्र से बहुत अधिक मैथुन तथा अत्यधिक अप्राकृतिक मैथुन के कारण लिंग में उत्तेजना का न आना, जननेन्द्रिय शिथिल हो जाना, सम्भोग के समय ढीलापन तथा वीर्य न निकलना नपुंसकता आ जाना। स्वय को निराश एव हतोत्साहित अनुभव करना—इन लक्षणो में यह दवा उत्तम लाभ करती है।

(४) चायना ३-३०-२००—अत्यधिक वीर्यक्षय के कारण कमजोरी जननेन्द्रीय में अक्सर अस्वाभाविक उत्तेजना, स्वप्नदोष होना। सम्भोग के बाद कमजोरी चक्कर आना, कान में आवाजें आना, भूख की कमी पेशाब से वीर्य या प्रोस्टेट रस निकलना। पेट मे दर्द, कब्ज या दस्त जो भोजन करते ही दस्त को जाना पड़े। अधिक सभोग, हस्तमैथुन या स्वप्नदोष से आई हुई कमजोरी के लिए यह एक विशेष लाभकारी औषधि है।

(५) लाइकोपोडियम ३०-२००—बिना उत्तेजना के ही वीर्य निकल जाना, नपुसकता शिश्न में ठंडापन ढीलापन, छोटा तथा कमजोर शिश्न जो सम्भोग के समय भी कठोर न हो। अत्यधिक वीर्यक्षय, हस्तमैथुन तथा अप्राकृतिक मैथुन के बाद की कमजोरी के कारण स्वप्नदोष, वृद्धों की काम शक्ति नष्ट होने तथा अजीर्ण वाले रोगियों के लिए विशेष लाभप्रद औषधि है।

(६) कैलेडियम ३-६-२०० यह औषधि यौन अगों को विशेष रूप से प्रभावित करती है। नीद मे शिश्न उत्तेजित रहना तथा जग जाने पर उसका न रहना यह इसका विशेष लक्षण है। यह पुराने ध्वजभंग (इम्पोटैन्सी) की एक अमूल्य औषधि है। बिना स्वप्न के वीर्य निकल जाना, मानसिक उत्तेजना होने पर शिश्न फूल कर लम्बा लटक जाना कठोरता न आना। अत्यधिक उत्तेजक औषधि (एलोपैथिक) के सेवन तथा अति मैथुन से आयी नपुसकता मे यह लाभकारी है।

(७) डायस्कोरिया Q, ३०, २०० डा० फैरिंटन के मतानुसार पुरानी नपुसकता में जहा बिना उत्तेजना के वीर्यपात हो, एक रात मे बार बार ठडा पतला वीर्य निकल जाता हो जिस से पैरो तथा घुटनों मे काफी कमजोरी सर दर्द तथा हाथ पाव के तलवों में जलन रहती हो। कमजोरी के कारण रोगी चलना फिरना तथा बोलना भी पसन्द नही करे, सम्भोग की इच्छा ही न होना आदि लक्षणो में यह उत्तम औषधि है।

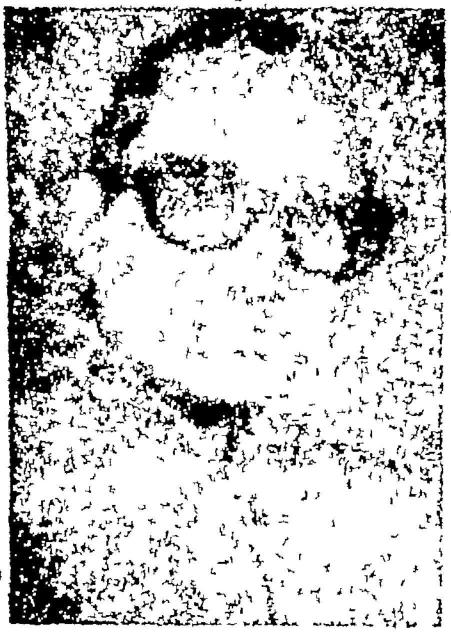
(८) बैरायटा कार्ब ६, ३० यह सम्भोग या स्वप्न दोष के बाद यदि अत्यधिक कमजोरी का अनुभव हो, सम्भोग के समय बार बार मुंह सूखे, हृदय मे तेज धडकन तथा घबराहट हो शीघ्रपतन हो, साथ ही स्नायविक शिथिलता अधिक हो तो यह एक उत्तम दवा है।

इन दवाओं का लक्षणों के अनुसार सेवन करने से अवश्य ही लाभ होगा। दवा कम पावर में जैसे ३-६-३० पावर की दवा दिन में ३ बार लेवें तथा २०० पावर की दवा रोज एक खुराक या पाच वें दिन १-१ खुराक लेवें। रोग की गति के अनुसार दवा जल्दी-२ या लेट दे सकते हैं। यौन रोग या नपुंसकता सम्बन्धी परामर्श भी हमारे पते पर कर सकते हैं। मेरे को पूर्ण विश्वास है कि युवा बन्धुओ को मेरे इस लेख से अवश्य लाभ होगा तथा वो अपने को हमारे समाज के पवित्र रास्तों पर चल कर अपने स्वास्थ्य समाज तथा देश को मजबूत कर आगे बढ़ायेंगे।

—०—

स्वप्नदोष निदान एवं चिकित्सा

आयुर्वेद चक्रवर्ती डॉ० गिरिधारी लाल मिश्र आयुर्वेद वाचस्पति,
प्रधान चिकित्सक—केदारमल आयुर्वेदिक हास्पीटल, तेजपुर (असम)



आयुर्वेद चक्रवर्ती श्रीयुत मिश्र जी एक आणाविसर के व्यापक गुणों के संवाहक हैं। शालीनता विनम्रता एवं कर्त्तव्य के प्रति समर्पण आपके चरित्र के ऐसे गुण हैं जिससे भारतेतर मनीषी भी आपसे प्रभावित हैं। आपके भाषण, लेख सरस होते हैं। सरस कृति का आदि मध्य अन्त सरस होता है—

सरसो विपरीतश्चेत् सरसत्वं न मुञ्चति ।

आपने सदैव सृजनशील समर्पित सेवा को अपनाया है, जिसके लिए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था—'मुझे मुक्ति या भुक्ति' की परवाह नहीं, वसन्त की भांति मौन दूसरों की सेवा करना मेरा धर्म है।

मेरे आग्रह पर आपने "स्वप्नदोष—निदान चिकित्सा" विषयक लेख प्रेषित कर कृतार्थ किया है।

—दाऊदयाल गर्ग।

* *

रोग परिचय—मनुष्य की अतृप्त वासना ही उसे स्वप्न के संसार में ले जाती है। मानसिक व सामाजिक प्रतिबन्ध हमारी उन इच्छाओं को उठने से दबा देते हैं जो हमारे संस्कार की दृष्टि में अनैतिक, अनुचित, अधार्मिक, असामाजिक होते हैं किन्तु स्वप्न में दमित वासनायें संस्कारों को लांघ जाती हैं और स्वप्न में काल्पनिक स्त्री के साथ मनुष्य सम्भोगानन्द को भोग कर अपनी वासना की तृप्ति करता है फलस्वरूप स्वप्न में सम्भोग से जो प्रत्यक्ष शुक्रस्राव होता है उसे 'स्वप्नदोष' कहते हैं।

स्वस्थ व्यक्तियों में ब्रह्मचारी रहते समय, जाग्रत अवस्था में आत्म मैथुनिक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति होती है जो निद्रावस्था में पुरुषों स्खलन होना और स्त्रियों में पूर्ण तृप्तिकारक है।

रोग की प्राचीनता—यद्यपि आधुनिक सभ्यता का यह बहुचर्चित रोग है और प्राय: आधुनिक युवा पीढ़ी इस रोग से ग्रसित है किन्तु प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से व स्वतन्त्र रूप से कहीं इस रोग का वर्णन नहीं है तथापि शास्त्रीय संकेत स्वप्न में शुक्रस्राव को प्रमाणित करते हैं—

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विज शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिपुनादित्य ऋच्यजपेत ॥

स्वप्नावस्था में अकामतः वीर्यपात हो जाने से ब्रह्मचारी को मानसिक दुर्बलता एवं कलुषित मनोविकारों की शांति के लिए स्नान, सूर्यार्चन और मन्त्रजाप द्वारा मनः शुद्धि करनी चाहिए। मन की दूषित प्रवृत्ति ही काम को स्वप्न में प्रवृत्त करती है एतदर्थ ही इस रोग को स्वप्नदोष संज्ञा से अभिहित किया गया है।

कैथोलिक चर्च ने भी इसे अपवित्रता की श्रेणी में लेकर

दोष की संज्ञा दी है तथा डा० लूबर कामात्मक स्वप्न को बीमारी मानते हुए उसकी दवा के लिए विवाह कर कर लेने की व्यवस्था देते हैं।

रोग लक्षण—

स्वप्नदोष रोग शारीरिक भी है और मानसिक भी। शारीरिक अवयव जहा क्रिया निवृत्ति द्वारा शुक्रक्षरण करते हैं वहा मानसिक उत्तेजना कार्य का सचालन करती है बल्कि यह रोग मानसिक पहले है और शारीरिक बाद मे क्योंकि मानसिक शुद्धता व मन के नियन्त्रण से इस रोग का नियन्त्रण भी सम्भव है।

शारीरिक लक्षण—अत्यधिक स्वप्नदोष होने से शरीर क्षीण और पीतवर्ण हो जाता है। चहरे की रौनक चली जाती, गाल पिचक जाते हैं और आखें अन्दर की ओर धस जाती हैं। हाथ पैरों के तलवों से बहुत पसीना निकलता है हृदय दुर्बल हो जाता है तथा अत्यधिक धड़कता है। शरीर मे अनेकों रोगो का रहना तथा थोड़े ही परिश्रम से थकावट आ जाना, स्मरण शक्ति का निर्बल होना व खाली बैठने पर तन्द्रा आना आदि लक्षण होते हैं।

मानसिक लक्षण—मस्तिष्क कमजोर हो जाने से स्मरण शक्ति का ह्रास होता है, किसी भी विषय में सकेन्द्रण का अभाव (loss of concentration) हो जाता है। जो छात्र प्रारम्भिक अध्ययनकाल में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते हैं स्वप्नदोष की अत्यधिकता से किसी भी विषय में स्थिरता से सोचने व याद रखने की शक्ति न रहने से हाईस्कूल या इण्टर की परीक्षा तक पहुंचते-२ कम नम्बर लाते हैं या लुढ़क जाते हैं। उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है बात-बात पर तुनक जाते है। दिमाग खाली-खाली रहने लगता है। शरीर में सुस्ती निद्रा तन्द्रा बढ़ जाती है तथा जीवन मे निराशा-निरुत्साह छा जाता है। स्वप्नदोष की वृत्ति ही अन्त में ध्वजभंग और पुरुषत्वहीनता का भी कारण बन जाती है। शुक्राणुओं की कमी हो जाने से सन्तानोत्पादन शक्ति भी क्षीण हो जाती है अत: अति स्वप्नदोष के फलस्वरूप शरीर और मन को हानि पहुचती है और जीवन भारस्वरूप लगने लगता है।

सावधानी—ऊपर जो लक्षण वर्णन किये गये हैं वे अति स्वप्नदोष से पीडित रोगियों के हैं। सामान्यावस्था मे जबकि दैनिक आहार विहार ठीक हो और एक माह मे २-३ बार स्वप्नदोष हो जाय तो उससे कोई विशेष हानि की सम्भावना नही रहती। कारण मामूली क्षतिपूर्ति तो प्रतिदिन के आहार से होती ही रहती है। साथ ही मेरा नव युवकों से विशेष आग्रह है कि उपरोक्त लक्षणों को पढ कर अपने आपसे मिलाने की चेष्टा न करें कारण उपरोक्त लक्षण अन्य बहुत से रोगों के व रोगों के बाद की कमजोरी में भी पाये जाते हैं अतः उपरोक्त लक्षणों को अपने आप में मिलाकर अपने आपको रोगी मान लेना अपने आप को रोगी न होते हुए भी जबरन रोगियो की श्रेणी में रखना है। अतः अस्वस्थ'वस्था में सद्वैद्य से उचित निदान कराकर उचित चिकित्सा लेनी चाहिए। युवकगण पत्रिकाओं में प्रभावशाली भाषा में लिखे विज्ञापनों को पढकर गुप्तरोग विशेषज्ञों के चक्कर मे पड़कर तथा अनुचित औषधियो का सेवन करके रोग को अधिक बढ़ा लेते हैं अतः केवल उपरोक्त लक्षण को पढकर रोगी नही मान लेना चाहिए क्योंकि वैसे लक्षण अन्य रोगों के कारण भी सम्भव हैं।

स्वप्नदोष के कारण (हेतुकी)—

१. यौनाङ्गों का विकास तथा यौवन की प्राप्ति
२. यौनावेग व प्रबल कामोत्तेजना
३ मानसिक मैथुन की प्रवृत्ति विकृत कामाचरण
४. दूषित वातावरण रेडियो, सिनेमा, साईकिल की अति सवारी
५. उष्ण, कटु अपथ्यकर आहार-विहार

यौवन और यौन ग्रन्थियां (Gonadas)—यौवन की प्राप्ति होने पर ही स्वप्नदोष होता है तथा यौवन की प्राप्ति यौनग्रन्थियों के अन्त स्रावों पर ही निर्भर है। बालक बालिकायें जब किशोर अवस्था मे पदार्पण करते हैं तो यौन ग्रन्थिया (Gonadas) अपना कार्य प्रारम्भ कर देती हैं तथा यौन रस शरीर में यौवन का सचार कार्य प्रारम्भ कर देता है फलस्वरूप मनुष्य मे यौवन के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं—

(क) चेहरे पर दाढ़ी मूंछ उगने लगती हैं।

(ख) यौन केश (गुप्ताङ्गों पर बाल) उत्पन्न होते हैं।

(ग) स्वर मजबूत और मोटा बनता है (किशोरियों की आवाज पतली होती है)

(घ) वीर्य निर्माण प्रारम्भ होता है और यौनाङ्ग पुष्ट होते हैं।

(ङ) चेहरे पर मुंहासे निकलने लगते हैं।

(च) सन्तानोत्पादक क्षमता आती है।

(छ) स्वप्नदोष होने लगता है।

स्वप्नदोष—यौन ग्रन्थियों के विकास होजाने पर दिमाग में जो कामोद्वेग का वातावरण बन जाता है। स्वप्नावस्था में सम्भोग का वातावरण बन जाता है फलस्वरूप सुषुम्ना के उत्तेजनात्मक पैरासिम्पैथैटिक आवेग गुप्ताङ्गों को उत्तेजित कर देते हैं जिससे उनमे रक्तसंचार तथा टेस्टोस्टरोन की वृद्धि होने से प्रजननांग का वातावरण सम्भोगरत जैसा हो जाता है तथा चरमावस्था पर पहुचने पर सैम्पैथिटिक आवेग से बांध टूट सा जाता है और शुक्र स्खलन हो जाता है। शुक्र स्खलन सुषुम्ना की प्रतिवर्त प्रक्रिया (Reflex action of spinal cord) होती है। जैसे भाप के इन्जन से भाप का दाब बढ़ जाता है और इन्जन की सुरक्षार्थ 'सेफ्टीवल्व' द्वारा कुछ भाप निकाल दी जाती है वैसे ही तरुण व्यक्तियों के गुप्ताङ्गों में शुक्रप्रजनन अधिक होने पर तनाव बढ जाता है और स्वप्नदोष हो जाता है। एक महीने में २-३ बार स्वप्नदोष होना स्वाभाविक अवस्था की सीमा में ही माना जाता है। किन्तु स्वप्नदोष होना प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक व अनिवार्य नहीं है तथा मलमूत्र विसर्जन की तरह इसे सामान्य प्रक्रिया मान लेना आधुनिक कामवेत्ताओं का काम विषयक अतियोग है जो सर्वथा अनुचित है।

मानसिक मैथुन और स्वप्नदोष—यौवन आने पर युवक युवतियों का मन उद्वेलित हो उठता है तथा मानसिक व्यवहार से मानसिक मैथुन की प्रवृत्ति से उनमें कामवासना उग्ररूप से जागृत हो जाती है और वे शीघ्र ही यौन सम्बन्ध स्थापनार्थ आतुर हो उठते हैं किन्तु वैसा सम्भव नहीं हो पाता तथा मस्तिष्क में छायी हुई यौन-मिलन कल्पना बनी रहती है। मन की यह व्याकुलता ही स्वप्न में काल्पनिक शरीर को धारण कर स्वप्नदोष के रूप में फूट पड़ती है।

अष्टांग मैथुन—प्राचीनाचार्यों ने वीर्य रक्षार्थ अष्टांग मैथुन तथा उसके निषेध पर प्रबल जोर दिया था। यह अष्टांग मैथुन और कुछ नहीं बल्कि कामेच्छा से लेकर स्वप्नदोष तक की क्रियानिवृत्ति का क्रमिक मानसिक कामवासना वृद्धि का ही शब्द चित्र है—

स्मरण कीर्तनं केलि प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च॥

— याज्ञवल्क्य स्मृति॥

(१) स्मरण—पूर्व में देखे व सुने मैथुन का ध्यान करना, सम्भोग योग्य व्यक्ति का ध्यान करना, कामवासना के विषय मे चिन्तन ही स्वप्नदोष व वीर्यक्षय की ओर अग्रसर होने वालों के लिए पहला सोपान है। कामवासना का स्मरण-चिन्तन ही वासना की अभिवृद्धि करता है।

(२) कीर्तन—कामवासना का चिन्तन जब मस्तिष्क में अपना स्थान बना लेता है तो मैथुन की बातें करना अच्छा लगता है तथा अश्लील कामोत्तेजक कहानी उपन्यास अथवा सहवास को प्रोत्साहन मिले ऐसी चित्रमय फिल्मी दुनियां की पत्रिकाओं को पढना अच्छा लगता है।

(३) क्रीड़ा (केलि)—बालक बालिकाओं के मन में उत्तेजक साहित्य तथा सिनेमागृहों के नग्न दृश्य छाये रहते हैं फलस्वरूप उनमें काम-क्रीड़ा, मजाक में हाथ पैर मारना, छेड़-छाड़ करना, चुटकी मारना, कपाल, मुख चुम्बन व गुप्ताङ्गों का स्पर्श, गुदगुदी करना नेत्र-वस्त्रादि से इशारे करना आदि प्रवृत्ति का विकास होता है।

(४) प्रेक्षण—अभिभावकों का प्रतिबन्ध व भय की प्रवृत्ति के कारण उपरोक्त काम छुप-छुप कर ही किया जाता है। छुप-छुप कर कामोत्तेजक कार्यों को देखने की इच्छा जागृत होती है। गलियों में चक्कर काटना, प्रेमिका के दर्शनार्थ घन्टों प्रतीक्षा में बैठे रहना तथा

उसका चिन्तन मस्तिष्क मे निरन्तर करते रहने की प्रवृत्ति को बढावा मिलता है।

(५) गुह्य भाषण—मैथुन सम्बन्धित गुप्त वार्ता करना, गुप्त रूप मे स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्धों को देखना तथा एकान्त मे मैथुन सम्बन्धी बातें करने की इच्छा बनी रहती है तथा जब भी जैसा अवसर मिले तो अपने आपको तल्लीन करने का प्रयास किया जाता है।

(६) सकल्प—गुप्त भाषणों से मैथुन की प्रवृत्ति मस्तिष्क मे जम जाती है। और गुह्यभाषण के साथ-२ मैथुन करने का मन ही मन सकल्प किया जाता है।

(७) अध्यवसाय—मैथुन का मन ही मन किया हुआ सकल्प ही अध्यवसाय की प्रवृत्ति को जगाता है तथा मैथुनेच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि साम-दाम-दण्ड भेद किसी भी नीति से तन-मन-धन से येनकेन प्रकारेण किसी को भी मैथुन कार्य के लिए तैयार किया जाता है।

(८) क्रियानिवृत्ति—अन्त मे मैथुन करके ही निवृत्ति की जाती है। संकल्प तक की वासना की प्रवृत्ति मैथुन के सकल्प को इतना दृढ़ कर देती है कि अध्यवसाय मे पूर्णत. सफलता न मिलने पर आत्मरति (हस्तमैथुन गुद मैथुन, पशुमैथुन, मैयामैथुनादि) का सहारा लेकर क्रिया निवृत्ति की जाती है। पर अतृप्त वासना रात मे स्वप्न में काल्पनिक स्त्री के साथ क्रियानिवृत्ति पर ही स्वप्नदोष के रूप मे मुखरित होती है।

अष्टाग मैथुन का एक-२ अग ऐसा लगता है जैसे अपने आप में स्वप्नदोष के क्रम को छुपाये हुए हैं। एक-एक कारण मानसिक वासना को जागृत कर स्वप्नदोष तक पहुचा देता है। अत अष्टागमैथुन मे कामवासना के सूक्ष्म तत्वो का समावेश निवृत्ति है एतदर्थं आयु आरोग्यार्थ ब्रह्मचर्य का मार्ग प्रशस्त किया—

एतन्मैथुनमष्टांग प्रवदन्ति मनीषिण ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यं आयुरारोग्य सौख्यदम् ॥

स्वप्नदोष चिकित्सा सिद्धांत—

स्वप्नदोष के कारणों पर पर्याप्त प्रकाश डालने के बाद अब चिकित्सा—सिद्धातो का प्रतिपादन प्रस्तुत करते हैं—चरकाचार्य ने त्रिविध औषधमिति—दैवव्यपाश्रययुक्ति व्यपाश्रय सत्वावजयश्चेति ॥ कहकर त्रिविध चिकित्सा व्यवस्था का प्रतिपादन कर चिकित्सा का मार्ग प्रशस्त किया है। स्वप्नदोष शमनार्थ अधोलिखित क्रम उपयुक्त है—

१ सत्वावजय—स्वप्नदोष का प्रमुख कारण अतृप्त वासना एवं मानसिक दुर्बलता है अत' मन में आत्मोद्धार की सच्ची लगन उत्पन्न हुई हो तो सफलता सुनिश्चित है।

२ मन के हारे हार-मन के जीते जीत—नि.सन्देह मन को दृढ करके इस रोग पर काबू पाया जा सकता है अतः मन को चलायमान न रखें। २५ वर्ष की आयु तक नही तो कम से कम २० वर्ष की आयु तक तो ब्रह्मचर्य का पालन होना ही चाहिए। मन में कामुकतापूर्ण विचारों को नहीं आने देना चाहिए। स्वप्नदोष नहीं होगा ऐसी भावना दृढ़ करनी चाहिए। रात्रि को सोते समय मन में दृढ़ संकल्प करके कि आज स्वप्नदोष नहीं होगा तथा मन से कामुक विचारों को हटाते हुए तथा ईश्वर की प्रार्थना करते हुए सोना चाहिए।

३ आयुर्वेद के स्वस्थवृत्त तथा सदाचार के नियमों का पालन करने से सात्विकभावों की जागृति होती है तथा ईश्वर के प्रति श्रद्धा-भक्ति तथा आस्था के साथ विश्वास कर काम-क्रोध-लोभ मोहादि दुर्गुणों से बचने का प्रयास करना चाहिए।

४. दुविधा मे दोनो गये—आजके नवयुवको को न तो ब्रह्मचर्य की ही शिक्षा मिलती है न कामशास्त्र की, आधुनिक अश्लील कामोत्तेजक साहित्य तथा परिवार नियोजन के लूप-कण्डोम निरोध आदि के खुले प्रचार से कामशास्त्र के प्रति जिज्ञासा तो बढ जाती है पर उचित निर्देशन नही मिलता है फलत' 'दुविधा मे दोनों गये माया मिली न राम' वाली कहावत के अनुसार अतृप्त कामवासना के शिकार युवको को स्वप्नदोष में तृप्ति मिलती है।

५. कुसंगति, चरित्रहीन मित्र, अश्लील साहित्य तथा तामसिक भोजन से बचना चाहिए। अष्टाग मैथुन से बचना भी स्वप्नदोष पर नियन्त्रण पाने में बड़ा सहायक है।

६. मादक पदार्थ— चाय, कॉफी, भांग, चरस, तम्बाखू सिगरेट आदि का सेवन नही करना चाहिए। अधिक लालमिर्च, प्याज, लहसुन, गर्म मसाले, मास-मछली, चाट, चटपटे भोजन सेवन नही करने चाहिए। खटाई से वीर्य पतला पड़ जाने से स्वप्नदोष होता है तथा प्याज, लहसुन, मद्य, मास-चरस आदि कामोत्तेजक एव तामसी भोजन होने से स्वप्नदोषकारक हैं अत इनका त्याग करें।

७. प्रात. काल ४ ५ बजे या आख खुलते ही उठ जाना चाहिए तथा फिर नही सोना चाहिए। कारण कि अवसर प्रात काल एक बार आख खुल जाने पर पुन निद्रा आजाने पर ही स्वप्नदोष होता है। अत आंख खुलते ही उठ जाना चाहिए तथा ईश्वर प्रार्थना करनी चाहिए छात्रो के लिए प्रात. उठकर अध्ययन करना श्रेयस्कर है।

८ सायंकालीन भोजन ६-७ बजे तक कर लेना चाहिए ताकि सोने के समय तक भोजन का पाचन हो जावे तथा सोते समय कामोत्तेजक विचारो से बचें।

९. आहार शुद्धि सत्व शुद्धि—'जैसा खावे अन्न वैसा रहे मन्न. अत ' मन को नियन्त्रण मे रखने के लिए भोजन का सात्विक होना परमावश्यक है। जिस तरह गले-सड़े, भोजन से शरीर नष्ट हो जाता है उसी तरह अश्लील साहित्य से मन विकृत हो जाता है अत भोजन मे सात्विकताका पालन जितनी कड़ाई से होगा उतना ही स्वप्नदोष पर सरलता से काबू हो सकेगा।

१० अधिक साइकिल चलाना या आलस्य मे पड़े रहना भी स्वप्नदोषकारक है। अत मन में उत्साह रख कर जीवन को कर्मशील बनाना चाहिए।

११. शिक्षकों तथा अभिभावकों का कर्तव्य—लड़कों लड़कियों को उत्तम स्वभाव बनाने की, उत्तम संस्कार की प्रेरणा देनी चाहिए। छात्रो का सही मार्गदर्शन होना चाहिए ताकि उद्दण्डता उच्छृंखलता तथा स्वेच्छाचारिता एव अनुशासनहीनता पर नियन्त्रण पा सके। कारण के कारण भी छात्रों को गलत आचरण में डालते हैं और कुटेवों के शिकार होते हैं जो स्वप्नदोषजनक हैं।

दैवव्याश्रय चिकित्सा—ईश्वरीय उपासना एव प्रार्थना मे बडी शक्ति है। प्राणायाम द्वारा शारीरिक और मानसिक शक्तियो पर नियन्त्रण होता है तथा प्राणायाम से ईश्वरीय उपासना से प्राण शक्ति एव आत्मबल की प्राप्ति होती है तथा सात्विक वृत्तियों का उदय होने से स्वप्नदोष का नाम निशान भी दृष्टिगोचर नही होता। आबाल ब्रह्मचारी भगवान हनुमान जी की उपासना ब्रह्मचर्य पालन करने वालो के लिये परमकल्याणकारी है। परन्तु "याद्दशीभावनातस्य सिद्धिर्भवति ताद्दशी" के अनुसार जिसकी जैसी आस्था-श्रद्धा-भक्ति होती है तदनुरूप ही लाभ होता है।

तेजपुर पूर्वोत्तर का सबसे बड़ा सेना-स्थल है तथा सेना के उच्चतम अधिकारियो से लेकर सहस्रो सैनिक मेरी चिकित्सा मे आते हैं। अत. आस्थावान सैकडो सैनिको को जो अवसर प्रतिदिन के स्वप्नदोष के आदी हो जाते हैं, मैं उचित औषधि व्यवस्था के साथ साथ उन्हें हनुमान चालीसा का पाठ रात को सोते समय करने का तथा साथ ही 'आज स्वप्नदोष नही होगा' का सकल्प करके सोने का निर्देश देता हूं तथा मुझे जो सूचना सैनिकों से मिलती है उसके अनुसार न केवल वे रोगमुक्त ही हो जाते हैं बल्कि उनकी ईश्वर के प्रति आस्था बढ़ती है तथा मेरे प्रति न केवल वे कृतज्ञ हैं बल्कि श्रद्धावान् भी बने रहते हैं। अत. सारे समय अवश्यमेव ईश्वर उपासना तथा प्रार्थना करके ही सोना चाहिए।

युक्ति व्यपाश्रय (औषधि प्रयोग)—

सर्व प्रथम रोगी का पाचन सस्थान ठीक करना चाहिए। स्वप्नदोष के रोगी को कोष्टबद्धता अवश्य रहती है अत. सरल-मृदु विरेचनों का प्रयोग करें।

(१) रात को सोते समय त्रिफला चूर्ण, मुनक्का ५ नग पानी से सेवन करना कब्ज तथा स्वप्नदोष नाशक है।

(२) आरोग्यवर्धनी वटी—२-२ गोली भोजनोपरात जल से सेवन करना हितकर है।

(३) चन्द्रप्रभावटी २ गोली, स्वर्णवंग २ रत्ती, अश्वगन्धा चूर्ण २ माशा, प्रातःसायं दूध से सेवनीय है। स्वप्न दोष नाशक, वीर्यवर्धक, कृशतानाशक योग है। जो दुबले पतले शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाकर जीवन में उत्साह संचार करता है। हजारो रोगियो पर हमारा अनुभूत योग है।

(४) त्रिफला ३ भाग, गुड ४ भाग, कपूर १ भाग—सबको मिलाकर मटर के बराबर गोलिया बनालें। १-२ गोली रात में ठण्डे पानी से लें। रात का भोजन जल्दी करलें या न करें। सोने के २-४ घण्टे पूर्व गोली खालें तो तत्काल प्रभाव दिखाई देता है। उसी रात से स्वप्नदोष पर नियन्त्रण होने लगता है तथा व्यर्थ का लिंगोद्रेक (उत्तेजना) नहीं होता।

(५) स्वप्नदोषान्तक योग (अनुभूत)—वङ्ग भस्म, प्रवाल पिष्टी, रौप्य भस्म, स्वर्ण वङ्ग, भीमसेनी कपूर, गिलोय, शुद्ध शिलाजीत सब समान भाग लेकर गुलाब जल में घोटकर २-२ रत्ती की गोलिया बना लें। प्रात सायं दूध से सेवन करने से वीर्य क्षरण न होकर वीर्य गाढा होता है। जिन लोगों का अति स्वप्नदोष से वीर्य पतला होकर अत्यधिक स्वप्नदोष होता रहता है उनके लिए परमोपयोगी स्वप्नदोष नाशक अनुभूत योग है।

ध्यान रखना चाहिए कि रोगी को कब्ज नही रहे तथा औषधि सेवन काल मे गरिष्ट पदार्थों से भी परहेज करना चाहिए।

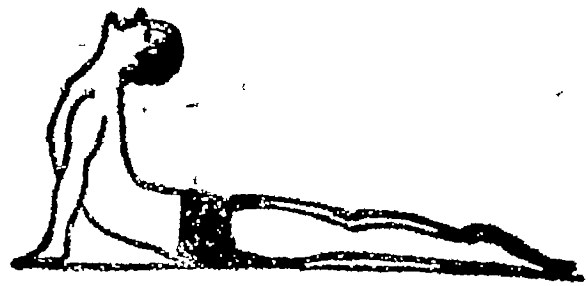
प्राकृतिक उपचार—

कटि स्नान—एक ऐसा बडा टब जिसमें कमर को जल मे डुबोकर बैठा जा सके, टब मे इतना पानी भरें कि नाभि तक आ जावे। इस तरह प्रातः साय नाभि तक कमर को डुबोकर पेडू को रगड रगड करके स्नान किया जाता है। यह क्रिया १० मिनट तक करनी चाहिए। स्वप्नदोष के रोगियों के लिए यह स्नान विधि बड़ी उपयोगी है।

योगाभ्यास—यौगिक आसनो का प्रातःकाल अभ्यास करना भी श्रेयस्कर है। सर्वाङ्गासन, गुजङ्गासन, पादहस्तासन, पद्मोत्तानासन, योगमुद्रा, धनुरासन, हलासन,



धनुरासन



हलासन

मत्स्यासन जानुशिरासन तथा मूलवन्ध का अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण है। प्राणायाम का अभ्यास सर्वोपरि है क्योंकि शारीरिक एव मानसिक शक्तियों का विकास कर आत्म-बल को बढाने मे प्राणायाम अत्यन्त ही उपयोगी है।

अपथ्य—गर्म तथा उत्तेजक पदार्थ, अति कटु अम्ल क्षार, चाय, कॉफी, लहसुन आदि पदार्थों का अति सेवन अधिक चिन्ता, अति निद्रा, दिवा स्वप्न तथा कब्ज होना भी स्वप्नदोष का कारण है। भाग, चरस, गाजा आदि भी कामोत्तेजक तथा स्वप्नदोष के कारण हैं। बहुमैथुन तथा अप्राकृतिक मैथुन भी स्वप्नदोष के कारण हैं तथा स्वप्नदोष के विषय मे अधिक सोचना भी निमन्त्रण देना है क्योंकि स्वप्नदोष के विषय मे सोचते-सोचते सोने सेभी स्वप्नदोष हो जाता है। अत' इनसे बचना चाहिए।

उचित औषधियों को पथ्यपूर्वक सेवन करना चाहिए। यौन दमन असम्भव है तथा अनैतिक सम्बन्ध पाप है। अत' निरापद यौन के लिये समाज अनुमोदित विवाह ही श्रेयस्कर है।

स्वप्नदोष विवेचन

वैद्य भानुप्रताप आर मिश्र बी.एस. ए एम., डी एस-सी. (ए) आयुर्वेद मध्यमा
विवेचक एवं प्राध्यापक-श्री बाबा हनुमान आयु० महाविद्यालय,
लोदरा ता० बिजापुर (मेहसाना) उत्तर गुजरात



'धन्वन्तरि' के विद्वान लेखकों में श्री मिश्रा ने अपना नाम पा लिया है। वर्षों से आप 'धन्वन्तरि' में लिखते हैं। आप शुद्ध आयुर्वेद के लिए सतत चिंतित हैं। धन्वन्तरि के अलावा आप शुचि, आयु विकास, स्वास्थ्य, अनुभूत योगमाला इत्यादि मासिकों में भी लिखते हैं। आज तक आपने धन्वन्तरि के सौन्दर्योपचारांक एवं स्वास्थ्य रोगांक-लघु विशेषांकों का सफल सम्पादन किया है जो आयुर्वेद जगत को पसन्द आया है। आपने यहां स्वप्नदोष की शास्त्रीय एवं अनुभूतात्मक चर्चा की है एवं इस अङ्क हेतु आपने आधुनिक आयुर्वेद पेटेन्ट योगों का लेख भी दिया है तथा प्रसिद्ध विद्वान वैद्य श्री शोभन भाई वसाणी जी के दो लेख अनुवाद करके भेजा है। इस तरह आपने धन्वन्तरि पर कृपादृष्टि रखी है और मैं यह कहना चाहता हूँ कि धन्वन्तरि में लिखने के लिए आपने ही मुझे प्रेरणा दी है। इस समय आपका स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी आपने जो सहयोग दिया है मैं ऋणी हूं। भगवान धन्वन्तरि आपको स्वस्थ रखें। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप निरन्तर धन्वन्तरि में लिखते रहें।

श्री मिश्रा जी आयुर्वेद के देदीप्यमान आशास्पद वैद्य हैं। आपके लेख से मार्गदर्शन मिलेगा।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

स्वप्नदोष अति प्रचलित रोग है। वर्तमान काल में यह रोग वृद्धि पा गया है। इससे ८५% लोग ग्रस्त हैं। यह १३-१४ वर्ष के व्यक्ति से लगाकर बुड्ढों तक में पाया जाता है। इस रोग के होने पर विशेषत. नवयुवक मानसिक कष्ट तो पाते ही हैं साथ ही चिकित्सकों द्वारा ठगे भी जाते हैं। वास्तविकता समझने और उचित मार्ग का अवलम्बन करने से स्वप्नदोष के रोगी का जीवन सुखमय बनता है। यही इस लेख का उद्देश्य है।

जब हम सम्भोग क्रिया करते हैं तब भी शुक्र का स्राव होता है। परन्तु इसमें शरीर को किसी भी प्रकार का गंभीर नुकसान नहीं होता। उसी प्रकार सप्ताह में एक दो बार स्वप्नदोष होना स्वाभाविक सी घटना है। उदाहरण के रूप में एक घड़ा है जिसकी पानी भरने की क्षमता ५ लीटर है। अगर उस घड़े में ५ लीटर पानी भरते हैं तो पानी घड़े से छलक कर बाहर नहीं गिरता है। परन्तु इसमें ५ लीटर से अधिक पानी भर दिया जाय तो पानी छलक कर बाहर आ जाता है। ठीक उसी प्रकार मानव शरीर में शुक्राशय की एक लक्ष्मण रेखा है। जब शुक्राशय में लक्ष्मण रेखा से अधिक शुक्र आ जाता है तब शुक्र निद्रा अवस्था में शरीर से बाहर निकल जाता है। इसे स्वाभाविक अवस्था में स्वप्नदोष कहते हैं। इस प्रकार के स्वप्नदोष से व्यक्ति को कोई नुकसान नहीं होता है। अगर सप्ताह में एक बार स्वप्नदोष हो तो हमारे किशोर मित्रों को घबड़ाने की कोई

आवश्यकता नहीं है। वे किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें। यह हमारी विनम्र प्रार्थना है।

अति सम्भोग करने से शरीर में शुक्र की कमी हो जाती है। परिणामस्वरूप मानव शरीर में दौर्बल्य, सर्वांग शरीर में शूल, मन्द ज्वर, शिर शूल इत्यादि विकार उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार अगर एक सप्ताह में आठ दस बार स्वप्नदोष होता है तो इससे शरीर में शुक्र की अल्पता होती है। इससे शरीर में शुक्रक्षय के लक्षण उत्पन्न होते हैं। यही विकृतिजन्य स्वप्नदोष हैं। इसके बारे मे आगे हम विस्तृत चर्चा करेंगे।

स्वप्नदोष की परिभाषा—रात्रि के समय अथवा दिन के समय निद्रावस्था में शुक्रक्षति होने को स्वप्नदोष कहते हैं। लोकभाषा में स्वप्न में शुक्र पतन हो जाना या दूषित निद्रा अथवा निद्रा में दोष या निद्रा काल में शुक्रगत अथवा स्वप्न में शुक्र क्षरण कहते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे Night Pollution अथवा wet Dream कहते हैं। यूनानी चिकित्सा विज्ञान में इसे एहतलाम कहते हैं।

स्वप्नदोष के कारण—

१. मास, मछली, अण्डा, प्याज, लहसुन, मिर्चा, चाय, कॉफी, तथा रूक्ष अम्ल, कटु, तिक्त रस युक्त आहार के अति मात्रा में सेवन करने से।

२. अतिमात्रा में एलोपैथिक की गर्म दवायें खाने से

३. कामोत्तेजक नाटक, सिनेमा देखने से।

४ लुकछिप कर स्त्री को देखने से।

५. प्रिय और अभिलषित स्त्री के रूप, स्वभाव, लावण्य आदि को बार-बार स्मरण चिन्तन करने से।

६. स्त्री के स्पर्श आदि के लिए कर प्रसारण, चुम्बन आदि करने से।

७. एकान्त में स्त्री से वार्तालाप करने से।

८ स्त्री के गुणों का गान करने से।

९ स्त्री के अनुराग सम्बन्धी विचार धाराओं के मनन करने से।

१०. गुप्त रूप से प्रसङ्ग करने से।

११. कामोत्तेजक, उपन्यास, कहानी, कविता पढ़ने से

१२, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, गुदकृमि, मूत्रेन्द्रिय को अनेक बार स्पर्श अथवा गुप्तेन्द्रिय के पास दाद खाज होने से।

स्वप्नदोष की सम्प्राप्ति—उपरोक्त कारणों से शरीर में पित्त के उष्ण तीक्ष्ण गुणों की वृद्धि होती है। शुक्र में उष्ण गुण की वृद्धि होने से शुक्र मे द्रवता बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप शुक्र पतला हो जाता है जो आसानी से शुक्राशय से बाहर निकलने योग्य बन जाता है। वातवर्द्धक आहार विहार करने से पक्वाशयगत वायु की वृद्धि होती है। इसमें विशेषतः व्यान वायु की वृद्धि होती है जो शुक्राशय में जाकर पित्त से विकृत हुए शुक्र को निद्रावस्था में स्राव करा देता है इसे स्वप्नदोष कहते हैं।

आचार्य शार्ङ्गधर ने शार्ङ्गधर सहिता मे कहा है कि—

पित्तम पगु कफ पंगु, पगवो मलधातव।

वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्तिमेघवत्॥

अर्थात् पित्त, कफ, मल एव धातुयें पंगु अर्थात् चलने में असमर्थ हैं। जिस प्रकार बादल को वायु जहां ले जाता है वहा बरसात होती है। ठीक उसी प्रकार पित्त, कफ, मल एव धातुओं को वायु जहां ले जाता है शरीर के उस भाग में रोग उत्पन्न होता है। इस सिद्धांत को ध्यान रखकर मैंने स्वप्नदोष की सम्प्राप्ति समझाने का प्रयत्न किया है।

स्वप्नदोष के शारीरिक लक्षण—शुक्रक्षय होने के कारण पुरुष के शरीर में दौर्बल्य, मुख का सूखना, शरीर का पीला पड़ जाना, अंगों में शैथिल्य, अनायास श्रम या थकावट, नपुंसकता, मैथुन में अशक्ति, स्त्री प्रसग में बड़ी देरी से वीर्य स्खलन होना, वीर्यसह रक्त स्खलन होना, लिंग में दाह होना, अण्डकोष में पीडा होना, शिरःशूल, अग्निमांद्य, आंखों के सामने अधियारी आना इत्यादि स्वप्नदोष के शारीरिक लक्षण हैं।

स्वप्नदोष के मानसिक लक्षण—आलस्य, मस्तिष्क निर्बल होना, स्मरणशक्ति की कमी, बेचैनी आदि स्वप्नदोष के मानसिक लक्षण हैं।

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

स्वप्नदोष की सामान्य चिकित्सा—

"निदान परिवर्जनम्" अर्थात् जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति हुई हो उस का त्याग करना ही स्वप्नदोष की चिकित्सा है। नरोहिताहार बिहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त। दाता सम सत्यपर. क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोग. ॥ —च. शा. अ. २।४५

हितकर आहार विहार का सेवन करने वाला, सोच विचार कर तदनुसार कर्म करने वाला, विषयो मे जो फंसा न हो, दानी, सब प्राणियों मे समदृष्टि रखने वाला, मन, वचन और कर्म में सत्य का सर्वदा पालन करने वाला क्षमाशील, आप्त पुरुषों का सग करने वाला पुरुष सर्वदा निरोगी रहता है। "आचार्य श्री चरक का यह असदिग्ध विचार जितना सत्य है उतना ही आत्मद्योतक है। अगर हम आचार्य श्री चरक के उपरोक्त बताये गये रास्ते पर चलते हैं तो हमें प्रतिया स्वप्नदोष नही हो सकता। अगर हुआ तो बिना औषधि उपचार के ही अच्छा हो जायेगा।

स्वप्नदोष की अनुभूत चिकित्सा—यह केस फरवरी १९७६ का है। उस समय मैं उत्तर प्रदेश के गोंडा जिला में चिकित्सा व्यवसाय करता था। राम मनोहरसिंह गोंडा में अभ्यास करते थे। एक दिन शाम को आये और मुझ से कहने लगे मिश्रा जी मैं लगभग तीन महीना से स्वप्नदोष से परेशान हूँ मुझे सप्ताह मे आठ से दस बार स्वप्नदोष हो जाता है। किसी-२ रात को तो २ से ३ बार स्वप्नदोष हो जाता है। जो पढ़ता हूँ याद नही रहता। कमर में दर्द हमेशा रहता है। कमजोरी काफी आ गई है। अभी तक मैंने चिकित्सा में लगभग एक हजार रुपया बिगाड़ दिया है परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। राम मनोहर जी की दर्द भरी—राम कहानी सुनता रहा। उनकी निराशा को आशा में बदलने का रास्ता सिर्फ आयुर्वेद के पास ही है शायद इसीलिए यह आयुर्वेद के शरण में आया है। यह संभव था। सर्वप्रथम मैंने राम मनोहर जी को गर्म आहार बन्द करा दिया। मात्र दूध और भात अथवा रोटी खाने की सलाह दी। आचार रसायन का विस्तृत मार्गदर्शन दिया। औषधि मे स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण ५ ग्राम रात को सोते समय गरम जल के साथ खाने हेतु दिया गया। ऐसी सात पुड़िया दी और बताया कि बताशे में बरगद (वट) अथवा गूलर (उदुम्बर) का दूध पांच बूंद प्रात शाम तथा दोपहर को खाने की सलाह दी। इतना कहकर सात दिन के बाद मिलने को कहा।

आठवें दिन जब राम मनोहर जी आये तब उनकी निराशा आशा में बदल चुकी थी। उनमे एक नया उत्साह था। आयुर्वेद के प्रति असीम श्रद्धा थी। प्रसन्न चित्त कहने लगे मिश्रा जी पांच दिन से स्वप्नदोष बिलकुल नही हुआ है। अब जो पढ़ता हूँ याद रहता है। कमजोरी भी दूर हो गई है। अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। आपने मुझे नया जीवन प्रदान किया है आदि-२ बहुत कुछ कहा। मैंने उन्हे कहा यह सब आयुर्वेद का प्रताप है।

इसके बाद वे कभी स्वप्नदोष लेकर हमारे पास नहीं आये। स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण से दस्त साफ आता है। इससे कब्जियत दूर हो जाती है। वह वात पित्त शामक भी है। जबकि बरगद अथवा गूलर ये दोनों परम स्तम्भन हैं। इससे शुक्र का पतलापन दूर हो जाता है।

उत्तर प्रदेश के एक वर्षीय चिकित्सा व्यवसाय में पचासों स्वप्नदोष रोगियों को मैंने उपरोक्त चिकित्सा दी होगी। सभी रोगियों में संतोषकारक परिणाम मिला है इसलिए यह स्वप्नदोष की सरल एवं सस्ती चिकित्सा मैं अपने पाठकों के करकमलो में रखते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं।

दूसरा स्वप्नदोष का केश १९८५ के अगस्त का है। इस समय मैं गुजरात के लोदरा मे अपना चिकित्सा व्यवसाय करता था। हमारी मित्रता श्री जोखूराम गुप्ता जी से हुई। श्री जोखूराम गुप्ता जी के माध्यम से श्री राम खेलावन यादव हमारे पास स्वप्नदोष की चिकित्सा कराने हेतु आये। श्री यादव जी की आयु ३० वर्ष की थी। इन्हें सप्ताह में १०-१२ बार स्वप्नदोष होता था।

—शेषांश पृष्ठ २०६ पर देखें।

स्वप्नदोष

वैद्य कन्हैयालाल गुप्ता एम. ए. आयुर्वेद रत्न, ए. एम. बी
खण्डेलवाल आयुर्वेदिक औषधालय, सुकेत (कोटा) राज०

विभिन्न नाम—स्वप्नदोष, एहतेलाम, नॉक्टरनल एमिशन, नाइट डिस्चार्ज, बैडड्रीम इत्यादि।

स्वप्नदोष शब्द प्राचीन शब्द नही है। यह शब्द तथा इस नाम का कही भी उल्लेख नही है। यह शब्द आधुनिक सभ्यता की देन है।

स्वप्नदोष ६ प्रकार का है। स्वप्न की उत्पत्ति निद्रावस्था मे मस्तिष्क से होती है। मनका निवास स्थान मस्तिष्क ही है। मन बैठा-२ कामेन्द्रियो से नाटक खेलता है, और स्वप्न की रचना करता है। अनैच्छिक या अनजान मे दिन या रात मे निद्रित अवस्था मे स्त्री का स्वप्न आता है। मनुष्य उससे सम्भोग करता है, जिससे नींद में ही वीर्यपात हो जाता है और कपडे गदे हो जाते है, स्वप्नदोष कहा जाता है। यदि स्वप्नदोष माह में १-२ बार कुवारे जवान व्यक्ति को हो जाये और ऐसा होने से किसी प्रकार की दुर्बलता प्रतीत न हो तो ऐसा स्वप्नदोष रोग नही समझा जाता है।

आधुनिक चिकित्सा के अन्वेषको का ऐसा कथन है कि स्वप्नदोष एक प्रकार की साधारण स्वाभाविक क्रिया है जिसमें वीर्य से लबालब भरी हुई वीर्य की थैलियों को शरीर खाली कर देता है, जिससे कि नवीन और हाल ही मे निर्मित वीर्य उसके स्थान पर आकर भरता रहे। चूकि यह कार्य स्वप्न मे होता है, अतएव उसे स्वप्नदोष कहते हैं। स्वप्नदोष विशेषत दो प्रकार के होते हैं—

१ स्वाभाविक स्वप्नदोष २. अस्वाभाविक स्वप्नदोष

(१) स्वाभाविक स्वप्नदोष—

इसमें पुरुषों में यौवनारम्भ होने पर अण्डकोष काफी मात्रा मे वीर्य उत्पन्न करते हैं और शुक्र ग्रन्थियां हर समय क्रियाशील रहती हैं। फलस्वरूप स्नायुओं पर दबाव और खिंचाव पडता है और प्राकृतिक यौन मैथुन के अभाव मे निद्रावस्था में ही जब चेतन मन यौन क्रिया के दमन में असमर्थ रहता है तो अतिरिक्त वीर्य स्वप्नदोष द्वारा बाहर निकल जाता है।

(२) अस्वाभाविक स्वप्नदोष—

स्वाभाविक सीमा का अतिक्रमण करके अति की सीमा मे पहुंच जाता है तो उसे अस्वाभाविक स्वप्नदोष कहते हैं। यदि १५ वर्ष से कम उम्र के बालकों को स्वप्नदोष हो तो उसे अस्वाभाविक स्वप्नदोष कहेंगे। उसी प्रकार ३५ वर्ष के बाद और वृद्धावस्था मे स्वप्नदोष होना अस्वाभाविक स्वप्नदोष है।

लक्षण—

आरम्भ मे जब रोगी रात को सम्भोग का स्वप्न देखता है और वीर्य निकल जाता है। परन्तु जब यह रोग पुराना हो जाता है तो रोगी को स्वप्न की बातें याद नहीं रहती है। फलस्वरूप प्रति दूसरे तीसरे दिन या प्रतिदिन स्वप्नदोष होने लगता है। यह क्रम लम्बे समय तक रहने से रोगी का वजन कम होने लगता है। चेहरा अन्दर धसा सा होने लगता है। विचार अस्थिर से रहते हैं, चिडचिडी प्रकृति, सिर मे दर्द, कार्य करने मे अरुचि, दिल का धडकना, पीठ का सुन्न हो जाना, स्मरणशक्ति का कमजोर होना, अनिद्रा, मुख की आकृति चिन्ताग्रस्त सी, हाथ पैर शीतल, भोजन का पूर्णतया पाचन न होना, भूख न लगना, शीघ्रपतन, कभी-२ लिंग मर्दन से या स्त्री का स्मरण करते ही वीर्यस्राव होना, कमर में दर्द जैसी व्याधिया सताती हैं। वकील, विद्यार्थी जैसे अनेक दिमागी कार्य करने वाले व्यक्ति यह शिकायत करते हैं कि स्वप्नदोष से एकाग्रता मे कमी, दृष्टि का ह्रास, सिर दर्द, आखों मे दर्द, पुन्सत्व शक्ति में कमी प्रतीत होती है। हमेशा ऐसा होने से रोगी कमजोर हो जाता है व कमर में पीडा बनी रहती है, उसका चेहरा पीला, आखें अन्दर की ओर धसी हुई, वीर्य पतला पड़ जाता है।

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

कारण—

गंदे विचार, कामोत्तेजक पदार्थों का सेवन, हस्त-मैथुन, अधिक मैथुन करना, गुदा मैथुन, विबन्ध, अविवाहित रहना, मन्दाग्नि, भोजन के बाद तुरन्त सो जाना, वृक्कों की गर्मी, सुपारी का लम्बा होना, मूत्र मार्ग का प्रदाह, वीर्य की थैलियों की एण्ठन, सम्भोग के विचार में लीन रहना, प्रेम कहानियां, अश्लील पुस्तकें पढ़ना, नंगे चित्र देखना, वीर्य की अधिकता, वीर्य की गर्मी, चटपटे खट्टे मसाले सेवन करना आदि से स्वप्नदोष की उत्पत्ति हो जाती है।

चिकित्सा—

यदि कोई भी औषधि सेवन की जाये तो उससे पहले व बीच-२ में कोष्ठ शुद्धि करते रहना चाहिए। साधारण रेचक औषधि, त्रिफला चूर्ण, पचसकार चूर्ण, अरण्डी तेल रात्रिमें सोने से पूर्व पानी या दूध के साथ सेवन कर लेने से सुबह २-४ दस्त हो जायेंगे। इस प्रकार सप्ताह में एक बार पेट साफ करते रहना चाहिए और तत्पश्चात् चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिए।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

१. नागौरी असगन्ध, व बिधारा दोनों समभाग पीसकर ६ माशे खाकर एक पाव दुग्धपान करें।

२ त्रिफला चूर्ण को गिलोय के रस में तीन बार खरल करके सुखावें और यह चूर्ण ३ से ६ ग्राम लेकर १० ग्राम शहद में मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करें।

३ स्वप्न प्रमेहारि कैपसूल(निर्माता—निर्मल आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ़) को प्रातः दोपहर, सायं १-१ कैपसूल ताजा शुद्ध जल के साथ लें। यह मेरा अनुभूत अचूक योग है। इससे तीन ही दिन में आराम हो जाता है।

४. फकीरी योग—बरगद का २-२ बूंद दूध एक बताशे में लेकर प्रातः सेवन करे, उससे वीर्य गाढ़ा होकर स्वप्न में वीर्य स्खलित नहीं होता है।

५. शीतल चीनी १ रत्ती, कलमीशोरा आधी रत्ती, वृष्य वटी आधी रत्ती, कपूर आधी रत्ती—रात्रि मे पीसकर जल से सेवन करे।

६. छोटी इलायची के दाने, बड़ी इलायची के दाने असली वंशलोचन, बड़ीमाई, बबूल की गोंद भुनी, कतीरा, खश-खस के बीज, ईसबगोल का छिलका, गुलाब फूल, अजवायन, अनार के फूल सब दवायें समभाग लेकर चूर्ण तैयार करें। यह चूर्ण ३ ग्राम प्रातः सायं बकरी के दूध के साथ खिलायें १०-२० दिन में पूर्ण लाभ होगा।

७. चन्द्र प्रभावटी—दूध के साथ या जल के साथ सेवन करने से स्वप्नदोष से मुक्ति मिल जाती है।

८ बंग भस्म २ रत्ती लेकर उसमें ईसबगोल के साथ रोगी को सुबह शाम सेवन कराने से उससे शीघ्र लाभ होता है।

९. स्वप्नदोष निवारक अनुभूत योग—अफीम ४ चावल भर, कपूर २ रत्ती, शीतल चीनी ६ रत्ती रात्रि मे सोते समय खाकर जरा सा पानी का घूंट भर लो आराम मिलेगा।

१०. मोचरस ६ माशा, मिश्री ४ तोला प्रातःकाल दोनो दवाओ को खाकर ऊपर से दूध पीले। यशश्योऽनुभूत है।

११. कपूर २ रत्ती, अफीम २ चावल भर इन्हे मिलाकर रात्रि मे सोते समय खाने से स्वप्नदोष नहीं होगा। लेकिन यह सावधानी रखनी चाहिए कि सोते समय दूध या पानी अथवा कोई पेय नहीं लेना चाहिए। पीने की चीजे शयन से २ घण्टे पूर्व ले लें।

१२ इमली के बीजो को थोड़ा भूनकर छिलका दूर कर के मैदा समान चूर्ण बनायें। आधा ग्राम खांड में मिलाकर गाय के दूध के साथ प्रातःसाय खिलायें।

आदेश व निषेध—

मन को शुद्ध करके निम्न बातों का पालन करें—

१. महात्माओं, सन्यासियों तथा सत्पुरुषों का सत्संग करना चाहिए।

२. पर नारी से एकान्त मे हंसी (मसखरी-मजाक) नहीं करनी चाहिए।

३. औरतों की ओर कामवासना की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

(४) सिनेमा, नाटक तथा अश्लील कामोत्तेजक नाच गानों से दूर रहना चाहिए।

(५) रोगी को आदेश दें कि वह उचित आहार विहार और सयम से काम लें।

(६) रोगी का भोजन सादा और संतुलित भूख से कम मात्रा में खाना चाहिए। रात को भोजन सोने से २-३ घण्टे पूर्व कर लेना अनिवार्य है।

(७) रात को कभी भी गर्म दूध पीकर नहीं सोवें।

(८) कब्ज पैदा करने वाले भोजन, मद्यपान, नशीले पदार्थ आदि से सख्त परहेज करायें।

(९) तंग अन्डरपेण्ट, अण्डरवीयर और लंगोट पहन कर भी नही सोना चाहिए। क्योंकि सोने से शिश्न पर कड़े वस्त्र की रगड़ या दबाव पड़ने से अनायास वीर्य स्खलित हो जाता है।

(१०) मूत्र, दस्त के वेग को न रोकें।

(११) लिंगेन्द्रिय को हमेशा साफ रखें। बार-बार लिंगेन्द्रिय को छूने मसलने के स्वभाव को छोड़ देवें।

(१) दिन को सोना रात को जागना अत्यन्त हानिकर है।

(१२) बेकार रहना ठीक नही, दिन भर काम में लगे रहना चाहिए।

—वैद्य कन्हैयालाल गुप्ता एम० ए०, आयुर्वेद रत्न,
वैद्याचार्य ए० एस० पी०,
खण्डेलवाल आयु० औषधालय
सुकेत (कोटा) राज०

-✱✤✱-

— पृष्ठ २०३ का शेषांश —

★ स्वप्नदोष का विवेचन ★

एक ही रात मे ३-४ बार स्वप्नदोष हो जाता था। यह रोगी उपरोक्त रोगी से अधिक कमजोर हो गया था तथा मानसिक असर काफी था। यादव जी को पथ्यापथ्य का विस्तृत मार्गदर्शन दिया तथा निम्न चिकित्सा दी—

(१) स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण ५ ग्राम रात को सोते समय गरम पानी के साथ खाने को दिया।

(२) चन्द्रप्रभावटी (शिलाजीतयुक्त) २-२ गोली प्रातःशाम दोपहर को दूध के साथ खाने को दीं।

(३) बङ्ग भस्म २५० मि० ग्रा० शुद्ध फिटकरी १ ग्राम, वंशलोचन ५०० मि.ग्रा. रसायन चूर्ण १ ग्राम ऐसी तीन मात्रा प्रातः दोपहर सायं को मिश्री मिश्रित दूध के साथ खाने को दिया।

उपरोक्त चिकित्सा श्री रामखेलावन यादव को एक सप्ताह तक दी गई। ८ दिन में स्वप्नदोष बिल्कुल बन्द हो गया। अभी तक फिर रामखेलावन जी को स्वप्नदोष नहीं हुआ।

मेरे एक वर्षीय सोदरा के चिकित्सा व्यवसाय में लगभग १५० स्वप्नदोष के रोगियो को उपरोक्त चिकित्सा दी गई है। सभी रोगियो मे शीघ्र परिणाम मिला है। स्वप्नदोष की तीव्र अवस्था में उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त एरंड स्नेह की मात्रा बस्ति भी देता हूँ रोगी को आचार रसायन का पालन कराता हू। आचार रसायन से रोगी को मानसिक शान्ति काफी मिलती है। हमारे पाठक मित्र तथा चिकित्सक मित्र स्वप्नदोष की उपरोक्त चिकित्सा करेगें तो उन्हे अवश्य संतोषकारक परिणाम मिलेगा। यह मेरा आत्म विश्वास है। इससे आयुर्वेद की प्रगति होगी और आपको धन एवं सम्मान दोनों मिलेगा।

-✤✤-

शुक्र क्षय

वैद्य अशोक भाई तथाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, भारद्वाज औषधालय,
स्वामी नारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (गुजरात)

शरीर में सात धातुयें विद्यमान हैं। धातु सात हैं—यथा रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। यह धातुयें शरीर को धारण करती हैं—कहा है "धारणाद् धातवः"। इस निरुक्ति के अनुसार शरीर को धारण करने में धातुओं का महत्व का कर्म है। चयापचय की दृष्टि से क्रमश. रस से रक्तादि धातु आहार में से बनती है। अत. शुक्र अन्तिम धातु है। और उसको सर्व धातु का सार कहा गया है। शुक्र से ही सृष्टि का निर्माण होता है। प्रजोत्पत्ति शुक्र पर ही निर्भर है। शुक्र धातु केवल पुरुष में बनती है, वह शुक्र धातु जब दोषादि से विकृत बनती है, तब शुक्र दोष हो जाता है। आयुर्वेद महा ग्रन्थों में जगह-जगह पर शुक्र धातु का विद्वता से विश्लेषण किया गया है। वात व्याधि अध्याय में वातजनित रोगों में शुक्र क्षय का वर्णन है, तो वाजीकरण अध्याय, रात्रिचर्या अध्याय, नपुंसक अध्याय आदि में शुक्र क्षय पर विचार किया है। यहां केवल शुक्र क्षय का वर्णन किया जाता है। शुक्र धातु पर अन्य विद्वानों ने अपने लेख में विस्तृत वर्णन किया है। अतः अन्य वर्णन उचित नहीं है, शुक्र क्षय विषय महत्व का है। क्षय रोगाधिकार में भी शुक्र धातु पर जोर दिया है। अतः हम यहां शुक्र क्षय पर विचार करेंगे।

शुक्र क्षय के कारण—

बलिनो मनसो रोधात्क्रोधाद्वा ब्रह्मचर्यत ।
नारीणामरसज्ञत्वात्क्षीणं शुक्रं भवेन्नृणाम् ॥–यो०र०

अर्थात् बलवान पुरुष को मैथुन से मन को रोकने से, क्रोध अधिक करने से, अधिक ब्रह्मचर्य से, स्त्रियों में रस की अज्ञानता से मनुष्य क्षीण वीर्य हो जाता है।

जो पुरुष अधिक बलवान एवं वीर्यवान होते हैं, वह पुरुष को मैथुनेच्छा होती हो तो भी वह पुरुष मैथुन नहीं कर सकता, और मैथुन की इच्छा शक्ति को रोक देता है, वह पुरुष क्षीण वीर्य बन जाता है। अत्यधिक क्रोध करने से पित्त दोष की वृद्धि होती है, अत्यधिक पित्त वृद्धि से वीर्य का नाश हो जाता है। जो पुरुष अधिक समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है, तो भी क्षीण वीर्य हो जाता है। और जो पुरुष स्त्री सम्बन्धी अज्ञान होता है, काम कला से अज्ञात है, वह पुरुष भी क्षीण वीर्य हो जाता है।

तिर्यग्योनावयोनौ वा दुष्टयोनौ तथैव च ।
उपदंशस्तथा वायोः कोप. शुक्रसुखक्षय. ॥

अर्थात् पशु आदि तथा अयोनि में (कृत्रिम, गुदा, हस्तादि) तथा दोषो से दूषित योनि में मैथुन करने से उपदंश तथा वायु का कोप, शुक्र और सुख का नाश होता है।

कामी पुरुष को मनचाही स्त्री न मिले तो अथवा वासना तृप्ति हेतु वह पुरुष पशु योनि में मैथुन करता है, तथा जो पुरुष अन्य व बालकों में गुदा मैथुन करता है, बारबार हस्त मैथुन करता है तो उसको उपदंश होता है, साथ साथ वायु का प्रकोप होता है, परिणामतः शुक्र का क्षय होता है, सुख का नाश होता है। यहां वात प्रकोप बताया है। उनका महत्व है। कहा है कि—

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रस्य कुपितोऽनिल. ।

अर्थात् जब वायु शुक्र में कुपित होता है तब शुक्र शीघ्र-शीघ्र निकलता है अथवा निकलता ही नहीं बन्द हो जाता है। भावार्थ यह है कि वायु शुक्र में कोप

करता है तब शुक्र का बार बार स्राव होता है, तथा साथ साथ कुपित वात से शुक्र सूख जाता है, अत शुक्र क्षय हो जाता है।

अति व्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारत.।
ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकः ॥

जो मनुष्य अत्यन्त मैथुन करता है तथा वाजीकरण (वीर्यवर्धक) औषधि नही खाता है उसे वीर्य के क्षय होने के कारण नपुसकता हो जाती है।

आहारादि कारण इस प्रकार हैं—

कटुकाम्लै सलवणैरतिमात्रोपसेवित ।
पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्ट क्लैब्य तस्मात्प्रजायते ॥

अर्थात् अत्यन्त कटु रस युक्त एव अम्ल रस युक्त तथा अत्यन्त लवण रस युक्त पदार्थ के अति सेवन से पित्त कुपित होकर शुक्र का नाश कर देता है जिससे नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है।

और भी कहा है कि—

हीनाङ्गी मलिना द्वेष्यां श्रामा वन्ध्यामसवृते।
देशेऽभिगच्छतो रेत क्षीण म्लान मनोभवेत् ॥

अर्थात् अल्प अग वाली, मलिन, द्वेषपात्र, दौर्बल्यता युक्त तथा बन्ध्या स्त्री के साथ सग करने से तथा खुली जगह मे मैथुन करने से शुक्र क्षीण हो जाता है तथा मन आनन्दरहित हो जाता है।

क्षुधित क्षुब्धचित्तश्च मध्याह्ने तृषितोऽबल ।
स्थितश्च हानि शुक्रस्य वायो. कोप च विन्दति ॥

अर्थात् क्षुधित, तृषित, व्याकुल चित्त वाला, तथा कृश व्यक्ति (पुरुष) मैथुन करता है, तथा मध्याह्न समय सम्भोग करता है, तो उनके शुक्र की हानि (क्षय) हो जाती है एव वात प्रकोप होता है।

शुक्र क्षय लक्षण—

दौर्बल्य मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदन भ्रम'।
क्लैब्य शुक्रविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् दुर्बलता, मुख का सूखना, शरीर का पाण्डु वर्ण होना, अङ्ग मे ग्लानि मालूम होना, भ्रम होना, नपुसकता होना और वीर्य का अनायास निकल जाना ये सब क्षीण शुक्र होने के लक्षण हैं।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुत ।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥

मैथुन से क्षीण होने वाले को वीर्य क्षय के जो लक्षण होते हैं (मैथुन में अशक्ति, लिङ्ग और अण्डकोष मे पीड़ा, वीर्य अधिक समय पर निकलना, और वीर्यपात के पश्चात् वीर्य या रक्त निकलना आदि) होते हैं, और देह पाण्डु वर्ण का हो जाता है और इसके उपरान्त यथा पूर्वक्रम से धातुऐं क्षीण हो जाती हैं। कहा है कि—

शुक्र क्षये मेढ्रवृषणवेदनाऽशक्तिर्मैथुने चिराद् वा प्रसेकः प्रसेकेचाल्परक्तशुक्रदर्शनम्। —सु०सु०

अर्थात् शिश्न, वृषण मे वेदना, मैथुन मे अशक्ति, शुक्र की अच्युति या विलम्ब से च्युति तथा शुक्र च्युति मे रक्त मिश्रित शुक्र का आना-ये शुक्र क्षय के लक्षण हैं।

इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति पौष्टिक आहार नही करते या नही कर पाते हैं और दूषित आचार विचार अपनाते हैं, वे शारीरिक व्याधियो के अतिरिक्त मानसिक व्याधियो से जीवन भर ग्रसित रहते हैं अथवा शुक्र क्षय के कारण अपने जीवन को निरर्थक समझते हैं।

पण्डित भावमिश्र जी ने और भी लक्षण बताये हैं—क्षीण वीर्य वाले पुरुष की इच्छा क्या होती है ? आचार्य कहते हैं कि—

शिखिन कुक्कुटस्याण्ड हंससारसयोस्तथा ।
ग्राम्यानूपौदकानां च शुक्रक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥

अर्थात् जिनका शुक्र क्षीण (क्षय)हुआ है वह पुरुष मोर (मयूर), मुर्गा, हस, सारस, ग्राम्य पक्षी, नदी, तालाब या सरोवर के किनारे पर रहने वाले पक्षी, और जल मे रहने वाले पक्षियों के अण्डे खाने की इच्छा रखते हैं।

शुक्र क्षय मे तात्पर्य यह है कि जो पुरुष बार-बार मैथुन करते हैं अष्टविध से मैथुन करते हैं—यथा सकल्पादि, पशु मैथुन करते हैं, गुदा मैथुन करते हैं, बार-बार हस्तमैथुन करते हैं, अन्यो से मुख मैथुन कराते हैं, और जिनको बार-बार स्वप्नदोष हो जाता है, उनको शुक्र क्षय हो जाता है। पौष्टिक आहार का

अभाव रहता हो और वाजीकर औषध नही लेते है, और शुक्र का नाश करने में सदा तत्पर होता है उनको शुक्र क्षय हो जाता है। आजकल तो समाज के सभी वर्ग के युवा व्यक्ति चलचित्रों को देखतेहै, अश्लील चित्रों को देखते है, अश्लील साहित्य पढ़ते हैं, मन से स्त्री की इच्छा रखते है—उनका मन सदा स्त्री सम्भोग मे रत रहता है, और अन्य उपायो से शुक्र का नाश करता है। शुक्र की पूर्ति तो होती नही और प्रतिदिन शुक्र नाश या पात करता है, तो शुक्र क्षय हो जाता हैं।

शुक्र क्षयी व्यक्ति डरपोक बन जाता है। मानसिक भय सताता रहता है, बार-बार क्रोध आता है, स्वभाव चिड़चिड़ा बन जाता है, भूख नही लगती, चक्कर आता है, वह द्वेषी बन जाता है, कृश कायी बन जाता है, ध्वजभङ्ग और शीघ्रपतन होता है। स्त्री को तृप्त नही कर सकता। पिंडलियों मे और सारे शरीर मे वेदना होती है। शिर शूल होता है। ओष्ठ सूख जाता है। मुख मे से लालास्राव होता है। मुख फीका हो जाता है। हाथ पग में धुंआरी होती हैं। शिश्नोत्थान जल्दी से नही होता, त्वचा का वर्ण बदल (पीला) जाता है।

स्पष्टता—शुक्रक्षय वाले पुरुष नपुसक नही हैं। नपुसक का निदान, लक्षण और प्रकार अलग है। शुक्रक्षयी पुरुष मे शुक्र बनता है, मगर पूर्वोक्तानुसार शुक्र क्षय हो जाता है, और योग्य चिकित्सा से शुक्र की पूर्ति की जाती है। योग्य चिकित्सा से पुरुष शुक्रशाली बन जाता है।

चिकित्सा—

सर्व प्रथम तो निदान परिवर्जन करना जरूरी है। आगे जो कारण बताये हैं, उनसे दूर रहना चाहिए। उनको छोड़ देना चाहिए।

पौष्टिक आहार लेना चाहिए। आचार विचार पवित्र होना जरूरी है।

शुक्र क्षय की चिकित्सा शास्त्रों मे विस्तृत रूप से बतायी गई है, उनका वाजीकरण अध्याय मे वर्णन है। शुक्र दोष, नपुसक और शुक्र क्षय हेतु तथा जो पुरुष प्रतिदिन मैथुन की इच्छा रखता है, उनके लिए वाजीकरण औषधि देने का विधान है।

शास्त्रों में कहा गया है कि समान द्रव्य की पूर्ति के लिए समान द्रव्य लेना चाहिए। अत रक्त-क्षय मे रक्त, मास क्षय मे मास और उसी तरह शुक्र क्षय मे शुक्र लेना चाहिए। मगर यह सम्भव तो नही। फिर भी अन्य पशुओ के वृषण से बनती औषधि लेनी चाहिए। शुक्र का मिलना अशक्य है अत यहा पर शुक्र के ग्रहण के लिए अण्डों का प्रयोग करना चाहिए। चिड़िया, हस, मुर्गा, केंकडा आदि के अण्डे लेना चाहिए तथा जहा भैसा, सांड, बकरा आदि के लिए लिखा हो तो उनका वृषण लेना चाहिए। अण्ड शब्द का अर्थ दो प्रकार का है एक अण्ड, दूसरा वृषण। शुक्रवर्धक द्रव्यो का नाम वृष्य है। यूनानी चिकित्सक भी पुरुत्वनाश के लिए जुंदवेदस्तर तथा अवाद का प्रयोग करते हैं। ये दोनो विशिष्ट प्राणियों के वीर्य हैं। आधुनिक चिकित्सा में भी वृषणो के सत्व का सूचीवेध शरीर में प्रवेश कराया जाता है।

तत्रापि (शुक्रक्षये) स्वयोनिवर्धनद्रव्योपयोग. (प्रतिका)

—सु० सू० स्थान

शुक्र शुक्रेण (आप्यायते भूयसरोम्) —च० शा० स्थान

नकुरेतो वृष्याणां (श्रेष्ठम्) —च० सू० स्थान

शुक्र के समान गुण द्रव्यों मे दुग्ध और घृत की गणना की है। तुल्य गुण होने से शीघ्र ही शुक्र की उत्पत्ति करते हैं।

शुक्रक्षये क्षीरसर्पिषोरुपयोगो मधुरस्निग्धसमाख्यातानां चापरेषा द्रव्याणा तथा शुक्रकर पय।

—च० शा० स्थान

चरक ने अष्ट वर्ग की औषधियों को समान गुण भूयिष्ठ होने से शुक्रवर्धक कहा है।

जीवकर्षभककाकोली क्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीमास-पर्णीमेदावृद्धरुहाजटिला कुलिङ्ग इत्येमानि शुक्रजननानि भवन्ति।

—च० सू० स्थान

वीर्य वृद्धि के लिए निम्न आचार का पालन करना चाहिये—

१. सम्भोग के समय ताम्बूल लेने से वीर्य की वृद्धि होती है।

२. भूशय्या बृहणी वृष्या—अर्थात् पृथ्वी पर गद्दा रखकर सोने से तथा उस पर स्त्री सङ्ग करने से वीर्य की वृद्धि होती है।

३ सवाहनं वृष्यं—अर्थात् शरीर को थपी कराने से वीर्य की वृद्धि होती है।

४. उपानद्धारण वृष्य—अर्थात् जूता-चप्पल पहनने से वीर्य की वृद्धि होती है।

५. विचित्र प्रकार के (अनेक पौष्टिक पदार्थों से सिद्ध) भोजन, अनेक विधि से प्रस्तुत पेय, कानों को प्रिय लगने वाली बातों को करने वाली तथा जिनके स्पर्श से त्वचा को सुख प्राप्त हो ऐसी सुन्दर स्त्रियां, चांदनी रात, नवयौवन स्त्री, कर्ण को मनोहर लगने वाले गीत अथवा ताम्बूल भक्षण, मदिरा पान, पुष्पमाला धारण, मन मोहक सुगन्धित द्रव्य, अनेक प्रकार के सुन्दर रूप, वाटिका भ्रमण, मन में किसी प्रकारका आघात नहीं होना (प्रसन्न रहना) ये सभी वाजीकरण हैं। इन सभी से वीर्य की वृद्धि होती है।

६ असगन्ध, मूसली, शर्करा (साकर-चीनी) और शतावर अत्यन्त वाजीकर है—वीर्य वृद्धि करता है।

७ नागवला और कवच बीज अत्यन्त शुक्रल है—अतः वीर्य वृद्धि करता है।

८. दुग्ध; उडद, भल्लातक फलमज्जा (भिलावां के बीज) और आमलक वीर्य को उत्पन्न करते हैं, तथा अधिक प्रवृत्ति भी कराते हैं।

९. अत्यन्त मैथुन करने वाले के वीर्य के नष्ट हो जाने पर शेष अन्य मज्जादि धातुयें भी नष्ट हो जाती हैं जिससे वह सूखने लगता है। उसे 'व्यवाय शोषी' कहते हैं। इस रोगी को दूध, रस, मांस, घृत आदि के भोजन, मधुर गन्ध वाले पुष्पों और कलियों का गन्ध और जीवनीय गण में कही गयी औषधियों का प्रयोग कराना चाहिए।

१०. शुक्रकार्श्ये शुक्रनाशे शुक्रस्यातिप्रवर्तने ।
—स्नेहपान हित मतम् ॥

अर्थात् शुक्र की दुर्बलता, शुक्र का नाश और शुक्र का अधिक निकलना आदि में स्नेहपान कराना हितकर है।

११. इन सबसे अत्यन्त वाजीकर स्त्री है—चरक मतानुसार शिक्षित, समझदार, प्रेमाल और पुरुष के प्रति वश होकर जीने वाली युवा स्त्री 'वृष्यतमा' अतः उत्तम वाजीकर है।

१२. पण्डित लोलिम्बराज कहते हैं कि मैंने आज शतावर का स्वरस पान किया है, और मैं आज रात को एकसी स्त्रियों के साथ मन भर सम्भोग करूंगा। तात्पर्य यह है कि शतावर अत्यन्त वीर्य वृद्धि कर एवं अत्यन्त वाजीकर द्रव्य है।

वीर्य वृद्धि हेतु अनगनित द्रव्य हैं। अनेक योगों का वर्णन भी आचार्यों ने किया है। यहां केवल कुछ प्रयोगों के नाम दिये जाते हैं—

रसाला योग, शतावर्यादि चूर्णम्, मूसल्यादि चूर्णम्, वानरीगुटिका, बस्ताण्डादि प्रयोग, पिप्पल्यादि योग, शतावर्यादि योग, विदारी कन्द चूर्ण, सितापलाण्डु रस, गोक्षुर चूर्ण, अमृतभल्लातक, केशर पाक, रतिवृद्धिकर मोदक, रतिवल्लभपूग पाक, कामेश्वर मोदक, आम्रपाक, कामाग्निसंदीपनो मोदक, शतावरी घृत, लघुवाश्वगन्धा-घृत, चन्दनादि तैल, महासुगन्धी तैल, पञ्चबाण रस, चन्द्रोदय रस, पुष्पधन्वा रस, मदन कामदेव रस, महाराज वटी, पूर्णेन्दु रस, रस भस्म योग, कामेश्वर रस, बंगेश्वर रस, तिल गोक्षुरादि चूर्ण, गोक्षुर पेय, सिन्दूरादि योग, अश्विशोषादि योग, वीर्य स्तम्भ वटी, कपिकच्छु पाक, शिलाजत्वादि वटी, मकरध्वज वटी, अग्नितुण्डी वटी, वसन्त कुसुमाकर रस, शु० शिलाजीत, बंग भस्म, त्रिबंग भस्म, महालक्ष्मी विलास रस, मन्मथ रस, नागबल्लभाद्य चूर्ण, बृहत् कामचूडामणि रस, शिवा गुटिका, प्रमदेभाकुश रस, जीवन सुधा रसायन, च्यवनप्राशावलेह, धात्री रसायन, अमृतप्राशावलेह, वृष्य वटी आदि अनेक योग वीर्य वर्धक हेतु उपयोग में लिए जाते हैं।

—✱✚✱—

क्या हस्तमैथुन विकृति है ?

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, भारद्वाज औषधालय
स्वामी नारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (भावनगर) गुजरात



महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने अपनी संहिता में निम्नोक्त आठ प्रकार के मैथुन कर्म बताये है। यथा—

स्मरणं कीर्तनं केलि प्रेक्षणं गुह्य भाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निवृत्तिरेवच ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीत ब्रह्मचर्यमायुरारोग्य सौख्यदम् ॥

अर्थात कीर्तन, स्मरण, क्रीडा देखना, गुप्त भाषण, संकल्प (मैथुन का) अध्यवसाय एव मैथुन की क्रिया की सम्पन्नता ये मैथुन के आठ अग शास्त्र में लिखे हैं। उपरोक्त आठ अंगों के विपरीत चलने से ब्रह्मचर्य की प्राप्ति होती है।

मैथुन का सामान्य रूप से इस तरह स्पष्टीकरण होता है। पुरुष (नर जाति) का शिश्न स्त्री (जाति) की योनि में डालकर घर्षण करना इस कर्म को मैथुन कर्म कहते हैं। अतः शिश्न या उपस्थ तथा योनि दोनों अङ्ग साथ मिलकर ही मैथुन कर्म कर सकते हैं। कोई एक अंग द्वारा यह कर्म सम्पूर्ण नही हो सकता।

आठ प्रकार के जो मैथुन कर्म निर्दिष्ट किये गये हैं, उनमें प्रथम सात मन से लगाव रखते हैं। आठवां जो क्रिया निवृत्ति बताया गया है—यह सम्पूर्ण शारीरिक मैथुन समझना चाहिए। क्रिया निवृत्ति का अर्थ है— स्त्री-पुरुष साथ मिलकर अपने शिश्न और योनि को क्रिया मे सम्मिलित करके क्रिया करना—उसको क्रिया निवृति अर्थात् मैथुन कर्म कह सकते हैं। अन्य विद्वान महाशयों का कथन है कि क्रिया निवृत्ति इसे कहनी चाहिए कि प्रथम कर्म जो मैथुन के बताये गये हैं, उनमें प्रत्यक्षत. स्त्री पुरुष आपस मे नही मिलते मगर मन से क्रिया होती है और आठवां क्रिया निवृत्ति है। उसमे क्रिया (मैथुन) द्वारा वीर्य का बाहर निकलना यह अर्थ समझना चाहिए। वीर्य तीन प्रकार से बाहर आनन्दाश्रुति से बाहर निकाला जाता है। १. स्वप्न में २ शारीरिक प्रत्यक्ष-स्त्री पुरुष मिलन से। ३. हस्तमैथुन

(१) स्वप्न मैथुन—पुरुष व्यक्ति स्वप्न में मन चाही स्त्री के साथ आनन्दपूर्वक मैथुन कर्म करता है, तब उसके उत्थान हुए लिंग द्वारा वीर्यपात हो जाता है, उसको स्वप्न मैथुन या स्वप्नदोष कहा जाता है।

(२) प्रत्यक्ष मैथुन—पुरुष और स्त्री दोनो जागृतावस्था में पुरुष अपने शिश्न को स्त्री की योनि मे डालकर दोनों एक स्वरूप होकर हलन-चलन करके पुरुष के शिश्न द्वारा स्त्री की योनि मे वीर्यपात करना—इस कर्म को प्रत्यक्ष मैथुन कर्म कहना चाहिए।

(३) हस्त मैथुन—पुरुष अपनी शिश्नेन्द्रिय को हाथ की मुट्ठी में लेकर स्वयं ही उत्थान हुये लिंग को

शीघ्रतिशीघ्र ऊपर नीचे या आगे-पीछे हिलाये और इससे वीर्य पात हो जाता है, उसको हस्तमैथुन कर्म कह सकते हैं। ऐसे भी पुरुष होते हैं जो अपने लिंग को अपनी पत्नी के हाथ से हस्त मैथुन कराकर वीर्यपात कराता या किसी अन्य द्वारा अपने लिंग को पकडा कर भी हस्तमैथुन आनन्दपूर्वक कराता है।

यहा क्रिया निवृत्ति का स्पष्टीकरण स्पष्ट ही है। प्रथम स्मरण कीर्तन-भाषण से मन मैथुन मे मन को जोड़ कर अन्त में वीर्यपात होना-उसको मैथुन क्रिया को क्रिया निवृत्ति अर्थात् मैथुन कर्म को क्रिया का अन्त लाना। यहा प्रत्यक्षतया स्त्री-पुरुष साथ मिलकर शिश्न-योनि द्वारा मैथुन कर्म की क्रिया निवृत्ति होती है। तथा कृत्रिम उपाय मानि हस्त द्वारा सिर्फ शिश्न को ही कर्म की क्रिया मे सम्मिलित करके वीर्यपात करना और उस कर्म द्वारा वीर्यपात हो जाता है। उसी को क्रिया निवृत्ति भी कहना चाहिए।

यहा हमारा विषय है हस्तमैथुन विकृति है? या नही? विकृति का अर्थ है दोष। दुर्गुण को भी दोष कहते हैं। गुण के दो प्रकार हैं–१ सद्गुण तथा दूसरा दुर्गुण। सतकर्म–अच्छे कर्म को सद्गुण और असत् कर्म या पापकर्म को दुर्गुण कहते हैं। जो कुदरत को साथ में रखकर सत् क्रिया करते हैं, उसको कुदरती सत् कर्म कहना जरूरी है तथा जो कुदरत को साथ में न लेते हों तथा उसके विपरीत कर्म करते हैं उसको अकुदरती कर्म कह सकते हैं। अत' स्त्री पुरुष साथ मिलकर मैथुन कर्म करते हैं, उनको कुदरती कर्म मानना चाहिये। तथा जो हस्तमैथुनादि कर्म से, उन कर्म को मैथुन कर्म समझकर वीर्यपात करता है, उनको अकुदरती कर्म मानना अत्यावश्यक है। अत हस्तमैथुन कर्म मानसिक दुर्गुण है। अकुदरती कर्म है मानसिक विकृति है। जिस तरह सकल्प-भाषण आदि मैथुन से ब्रह्मचर्य का नाश होता है, तो उसी तरह ही हस्तमैथुन से भी ब्रह्मचर्य का नाश होता है। ब्रह्मचर्यव्रत के पालन में वीर्य रक्षा का ही महत्व है। मानस से एवं शारीरिक प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा मैथुन से ब्रह्मचर्य व्रत का नाश होता है। यह मत ऋषिमुनियों का जो व्यक्ति मन से दृढ सकल्प शक्ति वाले होते हैं, तथा मन में भी मैथुन का विचार भी नही किया करते, तथा शारीरिक मैथुन जो व्यक्ति नही करते उसको ब्रह्मचारी कहते हैं। अत. ब्रह्मचर्य पालन में ही मैथुन कर्म की महत्ता है। मगर जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य को नहीं पालते, मानो कि यह व्रत उसको पालन जरूरी नही मानते और वीर्यपात करने में आनन्द समझते हैं तो क्या वह कर्म उसके लिए विकृति समझनी चाहिए?

जिस कर्म द्वारा मन को आनन्द मिले और शांति मिले इस कर्म को विकृति तो नही कहनी चाहिए। चाहे यह कुटेव हो, कुकर्म हो।

वर्तमान समय मे हम देखते हैं कि अधिकांश युवा व्यक्ति अष्टविध मैथुन कर्म करते हैं। कभी-२ शादी शुदा युवा भी हस्तमैथुन करते हैं, कराते हैं तथा जो व्यक्ति विधुर हैं तथा प्रौढ एव वृद्ध हैं, वह भी हस्तमैथुन करते देखे जाते हैं। इन सबको एक प्रकार की मैथुन कर्म की आनन्दानुभूति होती है। सकल्प भाषण आदि से मैथुन अधूरा होता है, और क्रिया परिपूर्ण नही होती, इससे मैथुन की इच्छा जोर पकड़ती है और शीघ्रतिशीघ्र उसका मन प्रत्यक्ष मैथुन की ओर चला जाता है। जिसके पास स्त्री प्रत्यक्ष होती है तो वह प्रत्यक्ष मैथुन करके आनन्दानुभूति ले सकते हैं, मगर जिसके पास यदि स्त्री न हो तो वह हस्त मैथुनादि क्रिया द्वारा उनको मैथुन ही समझकर आनन्द प्राप्त करते हैं। अन्य विचार से देखें तो—हस्त मैथुन कौन करता है। नपुसक तो इस कर्म को नही कर सकते। हा! नपुसक सिर्फ मन से यह कर्म करते हैं यथा मैथुन का विचार करना, बातें करना, स्त्री को देखकर विचार करना, स्त्री के साथ उनसे बात करके आदि कर्म नपुंसक करते हैं मगर वह प्रत्यक्षतया हस्त मैथुन नहीं कर सकता। अत' जो व्यक्ति पूर्ण पुरुष है कामवासना से युक्त है, जिनमें पुरुषायतन है, जो वीर्यवान है वही हस्तमैथुन तथा प्रत्यक्ष मैथुन में सामर्थ्यवान होते हैं।

अतः हस्तमैथुन कर्म को पूर्ण पुरुष का कर्म समझना चाहिए। क्योंकि सिर्फ प्रत्यक्ष शारीरिक मैथुन में स्त्री से वह कर्म में जो पुरुष व्यक्त है, वह सामर्थ्यवान् है, जो जिसके पास स्त्री नहीं है और परनारी गमन भी नहीं और मैथुन की इच्छा जोर पकड़ती है, तो वह क्या कर सकता है। हस्तमैथुन करके ही मन को शांति देते हैं। वह पूर्ण पुरुष का लक्षण मानना चाहिए।

जिसका मन मैथुन के प्रति होता है तब लिङ्गोत्थान होता है। और वीर्यपात करना प्रथम कर्तव्य है अत. लिंगोत्थान के बाद ही वीर्यपात होता है। लिंग का भङ्ग हो जाना या ढीले लिंग से वीर्य बाहर नहीं निकल सकता अतः जब लिङ्ग उत्थान होता है तब मैथुन के प्रति मन लग जाता है। जब वीर्यपात हो जाता है तब क्रिया निवृत्ति हो जाती है और मन को शान्ति मिलती है और मैथुन कर्म से मन दूर हो जाता है, तब लिंग ढीला पड़ जाता है। मगर जिसका लिंग इस तरह विचार से उत्थान हुआ हो और किसी तरह से वीर्यपात नहीं करते तो मन क्षुब्ध हो जाता है। अशान्ति व्याप्त हो जाती है। अतः मन शान्ति के लिए भी वीर्यपात करना जरूरी है। चाहे स्त्रीगमन से या चाहे हस्तादि से।

विकृति है ? या नहीं।

यदि संकल्प, भावना आदि को विकृति कहेंगे तो हस्त मैथुन को क्या कहेंगे ? प्रथम सब सात प्रकार तो मन से जुड़े हैं और मानसिक दुर्गुण से वे सात कर्म पैदा होते हैं। प्रथम सात कर्म के बाद ही क्रिया निवृत्ति आती है जिसका कर्म है वीर्यपात करना। स्त्री पुरुष समागम द्वारा प्राकृतिक मैथुन को हम प्राकृतिक मैथुन कहेंगे। लेकिन जहा बिना स्त्री-समागम स्वयं अकेला ही हस्त द्वारा शिश्न से वीर्यपात करता है, उसको अप्राकृतिक मैथुन कह सकते हैं। प्राकृतिक मैथुन स्वाभाविक कर्म है और हस्तादि कर्म एवं गुद मैथुन, पशु मुख मैथुन आदि अप्राकृतिक कर्म दोनों से अस्वाभाविक कर्म कह सकते हैं।

पूर्ण मैथुन इसे कहते हैं—

नर-नारी दोनों साथ मिलकर अपनी गुप्त इन्द्रिय द्वारा समागम कर्म करे, उसको पूर्ण मैथुन या स्वाभाविक मैथुन कर्म कहना चाहिए। शेष कर्म को अपूर्ण या अस्वाभाविक मैथुन। सजातीय मैथुन को भी अस्वाभाविक मैथुन कह सकते हैं। इस तरह देखो तो सभी अस्वाभाविक काम तथा अप्राकृतिक कर्म को विकृति मानमी अत्यावश्यक है। मन की विकृति ही कारण है। अत हस्त मैथुन मे स्त्री का सयोग नही होता है। सजातिय मैथुन मे एक ही जाति केवल नर या केवल नारी ही होती है। पशु मैथुन में पुरुष अन्य प्राणी में जाता है। अत प्रकृति के विरुद्ध का कर्म है। अत यह सब कर्म अप्राकृतिक हैं। वह सब मन से पैदा है। अतः मानसिक विकृति कहना जरूरी होगा।

दूसरी तरह से देखे तो—मैथुन का मुख्य उद्देश्य उत्तम सन्तानोत्पत्ति से है। स्त्री पुरुष का समागम होने से सन्तानोत्पत्ति हो सकती है अत पुरुष बीज (शुक्राणु) तथा स्त्री बीज का जब सयोग होता है तब बीज की उत्पत्ति होती है। आज के युग में भी यह स्वीकारा गया है। टेस्ट ट्यूब बेबी का जन्म कराया जाता है इसमें भी पुरुष का बीज एवं स्त्री बीज का सयोग कराना आवश्यक है। अत प्रजोत्पत्ति के लिए ही स्त्री-पुरुष समागम (मैथुन) जरूरी है। जब पुरुष हस्तमैथुन तथा गुद मैथुन आदि अप्राकृतिक मैथुन करते हैं तो उस क्रिया से सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती। इससे केवल क्षणिक आनन्द मिल सकता है। साधन से ही साध्य की पूर्ति हो सकती है। यहा स्त्री-पुरुष दोनो साधन हैं। सन्तानोत्पत्ति साध्य है। इसलिए भी हस्तमैथुनादि कर्म दुष्कर्म है। उत्तम सन्तान के लिए बलवान शुक्र अति जरूरी है और सयमपालन से वीर्यपात रोका जाय तो शुक्र बलवान होता है और मात्र सन्तानोत्पत्ति हेतु समागम किया जाय तो उत्तम व श्रेष्ठ बलवान सन्तान पैदा होती है। मगर बार-२ स्त्री प्रसङ्ग से, बार-२ हस्तमैथुनादि कर्म से एव अन्य अप्राकृतिक मैथुन से वीर्यपात होता है और वीर्य का नाश होता है तो तब बाद में उत्तम सन्तान की आशा करना व्यर्थ होता है। इसलिये भी वीर्य की महत्त

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

है वीर्य शरीर का महाराजा है। शक्ति है। उसका नाश करने से शरीर का नाश होता है। कहा भी है कि—

मरणम् विन्दु पातेन जीवनं विन्दु धारणात्।
तस्मादति प्रयत्नेन कुरुते विन्दु धारणम।

अर्थात बिन्दु (वीर्य) पात से ही मृत्यु है इसी (वीर्य) पात से ही मृत्यु है इसी विन्दु के धारण में ही जीवन है, अत. प्रयत्नपूर्वक बिन्दु (वीर्य) धारण करना चाहिए। यहा वीर्य की महत्ता दर्शायी गयी है।

आयुर्वेद शास्त्रों मे अनेक प्रकार की व्याधियों की चर्चा है। शारीरिक रोग मानसिक रोग तथा आगन्तुक रोग की चर्चा मिलती है। नपुंसक का विस्तृत वर्णन मिलता है। उनके प्रकार लक्षण, चिकित्सा आदि का वर्णन है मगर कही भी हस्त मैथुन कर्म तथा स्वप्न मैथुन या स्वप्नदोष का वर्णन नही है। चरकाचार्य ने केवल ध्वजभङ्ग (उपदश) के अध्याय में निदान में सर्व प्रथम ही 'हस्ताद' शब्द प्रयोग किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह 'हस्ताद' शब्द प्रयोग हस्त मैथुन करना चाहिए। मगर यहा महर्षि ने तो ध्वजभङ्ग-उपदंश रोग की उत्पत्ति में 'हस्ताद्' कारण बताया है। अर्थात हस्त क्रिया से शिश्न पर घाव होता है नख दन्त से भी घाव हो जाता है शिश्न पर पिटिका या अन्य चर्म रोग हुआ हो और हाथ से खुजलाने से या शिश्न को हाथ से टटोलने से पिटिका में से रक्त बहता है तो कभी पूयस्राव हो जाता है, बाद में उपदश रोग हो सकता है। इसलिए यहा अप्राकृतिक मैथुन का अर्थ अभिप्रेत नहीं हो सकता। यदि हस्तमैथुन विकृति है, दोष है तो शास्त्रों में क्यो निर्दिष्ट नहीं किया गया ? प्रश्न विचारणीय है। इसके कारण निम्नोक्त हो सकते हैं—यथा

(१) आचार्यो ने हस्तमैथुन को विकृति नहीं समझा।

(२) उस समय पुरुष वर्ग में यह बोध नही होगा। यहां दो कारण मुख्यत लि सकते हैं—

१. प्रथम कारण का विस्तृत वर्णन यहा किया है।

२. दूसरा कारण महत्व का है। उस समय (ऋषि-युग) में यह विकृति ही नहीं होगी। क्योंकि उस समय धार्मिक भावना उत्तम थी। पुरुष धर्म द्वारा ही अपना जीवन व्यतीत किया करते थे। मुख्य चार अवस्था में जीवन व्यतीत हो जाता था। यथा— १. ब्रह्मचर्याश्रम २. गृहस्थाश्रम, ३ वानप्रस्थाश्रम, ४. सन्यासाश्रम। यहां ही ब्रह्मचर्य का महत्व दिया गया है। बालक जब समझने लगे तब उसे माता पिता गुरु आश्रम ले जाते थे। वहां गुरु जी अपने आश्रम मे इस बालक को धर्म के साथ विद्याओं का ज्ञान देते थे। साथ-२ ब्रह्मचर्यव्रत के पालन पर जोर देते थे। अत युवावस्था तक यह अवस्था व्यतीत करनी होती थी। मन में धार्मिक भावना उत्कृष्ट रूप से होती थी मैथुन सम्बन्धी विचार मर्यादा अनैतिक या पाप समझा जाता था। अत युवावय तक अष्टविध मैथुन कर्म से दूर रहना श्रेयस्कर माना जाता था। जिससे हस्त मैथुन क्रिया क्या है ? यह भी समझते नहीं थे और जब वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे तब गुरु विदाई देते समय आर्शीवाद में—सुविचार देते थे—यथा उत्तम सन्तान हेतु लग्न जीवन प्रारम्भ करो और संयम पालन कर गृहस्थाश्रम का पालन करो। यहां उनके मन मे सदा सर्वदा गुरु आज्ञा शिरोमान्य होती थी। वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम तो प्रभुभक्ति का श्रेष्ठ समय है। मोक्ष प्राप्ति हेतु यह समय सुवर्ण समान है ऐसा मानते थे। अत चारों अवस्था मे अप्राकृतिक मैथुन नहीं किया करते थे। इस कर्म को वर्ज्य समझते होंगे। और इसीलिए यह कर्म उस समय के समाज में नहीं होंगे अत आचार्यों ने उनकी चर्चा नही की होगी।

हस्तमैथुन से होने वाले दुष्परिणाम—

आचार्यों ने मत व्यक्त किया है कि अति सर्वत्रवर्जयेत्। अर्थात् तमाम क्रिया मे अतिक्रम से बचना जरूरी है। क्योंकि अति क्रिया से नुकशान ही होता है। यथा रस अति मात्रा में सेवन किया जाय तो उनसे कफज रोग पैदा हो जाता है उसी तरह उष्ण तीक्ष्ण द्रव्यों के सेवन से पैत्तिक रोग होते हैं। और अति मात्रा में व्यायाम करना, दौडना, तैरना, वाहन सवारी करना इत्यादि से वात व्याधि हो जाती है। अतः एक ही प्रकार

से अति क्रम किया जाय तो रोगोत्पत्ति की पूरी सम्भावना हो सकती है। उसी तरह से देखें तो बार-२ आहार लेना, पानी पीना, ऊंचे आवाज को बार-२ सुनना चल चित्रों को बार-२ देखना, अतिशय रोना बोलना आदि अतिक्रम हैं और उससे विकृति हो जाती है। इसी तरह अति मात्रा में मैथुन (स्त्री-पुरुष समागम) करने से भी शारीरिक दोष हो जाते हैं यथा यक्ष्मा, उर:क्षत आदि। इसी तरह हस्तमैथुनादि अति क्रम से अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जब व्यक्ति हस्तमैथुन कर्म करता है तब उत्थानित शिश्न को हाथ की मुट्ठी मे पकड़कर शिश्न नीचे और आगे पीछे की तरफ बड़े जोर से शीघ्रता से यह कर्म करते हैं। धीमी गति मे शुक्र स्राव में देरी लगती है और व्यक्ति की भावना शीघ्र ही शुक्र स्खलन होजाय उससे है तथा शीघ्र कर्म करने से आनन्द भी आता है, और शीघ्र भी शुक्र स्खलन हो जाता है। यहाँ शीघ्रता कर्म से लिंग में नुकसान होना सम्भव है। यथा शिश्न में व्रणोत्पत्ति होना, रक्तस्राव होना, अवपाटिका, परिकर्तिका आदि रोग हो जाता है। इस कर्म से उपदंश फिरङ्ग आदि महारोग हो जाते हैं। ये सभी शारीरिक रोग हैं। और जब व्यक्ति का मनोबल निर्बल हो जाता है तब मानसिक दोष हो जाता है। व्यक्ति विचारने लगता है कि हस्तमैथुन पाप कर्म है, अनैतिक कर्म है, अप्राकृतिक है और उससे अनेक विपत्तियां आती हैं। लग्न में स्त्री को सन्तोष नहीं दे सकेंगे। लम्बे समय तक हस्तमैथुन से वीर्य का नाश किया है। सन्तानोत्पत्ति नही होगी। बल का नाश किया है। लिङ्ग पतला एव छोटा हो गया है। स्तम्भन शक्ति नष्ट हो गयी है। तात्कालिक पतन हो जायेगा। ऐसे अनेक विचार से व्यक्ति ग्रस्त हो जाते हैं। उनकी मानसिक शक्ति नष्ट हो जाती है। मनोबल दृढ़ नहीं रह सकता अत: परिणामत: सचमुच ही वह स्त्री समागम मे निष्फल हो जाता है। ध्वजभङ्ग, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष इत्यादि व्याधियां हो जाती हैं। वास्तव में देखा जाय समझा जाय तो यह एक प्रकार की मानसिक विकृति है। उनका मूल हस्तमैथुन है। हस्तमैथुनादि अतिक्रम से ही इस प्रकार की मानसिक दुष्टि आ जाती है। मगर व्यक्ति स्वस्थ मन से विचार करें तो जो होगया वह हो गया मानकर दुष्कर्म को भूल जाय और प्रसन्न मन से कार्यारम्भ करे तो अन्य दूसरी विपत्तियां नहीं आ सकती हैं और इस तरह हस्तमैथुन कर्म को पाप समझकर भूल को मन में से दूर करदी जाये तो व्यक्ति पूर्ण पुरुष की तरह सम्भोग कर सकेगा और हस्तमैथुन से होने वाली शिश्न की विकृतियां भी नही हो सकेंगी।

यहां एक बात की स्पष्टता करनी जरूरी होगी कि बार-२ अति मैथुन से शुक्र का क्षय हो जाता है। शुक्र की मात्रा में कमी आ जाती है। वीर्यस्राव देर से होता है। वीर्यस्राव अल्प होता है और वीर्य पतला हो जाता है। उसी तरह बार-बार अति मात्रा मे हस्तमैथुन से भी यह सभी लक्षण मिलते हैं।

कोई कहते हैं कि हस्तमैथुन से लिंग टेढा हो जाता है, छोटा और पतला हो जाता है। हमारी दृष्टि से ये मान्यता गलत माननी चाहिए। यदि हस्तक्रिया मे लिंग टेढा, पतला हो जाता है तो स्त्री पुरुष समागमजन्य मैथुन क्रिया से भी ऐसा होना चाहिए। क्योंकि दोनो क्रिया मे कार्य समान है। क्योंकि जिस तरह स्त्री समागम मे लिंग को घर्षण कार्य करना पड़ता है हलन चलन की क्रिया करनी पड़ती है, उसी तरह हस्तमैथुन मे भी हाथ से घर्षण एव हलन चलन क्रिया होती है। जो स्त्री समागम से लिंग को नुकसान नही हो सकता तो हस्तक्रिया से टेढापन, पतलापन और छोटापन कैसे आ जाता है? लिंग एक शारीरिक अवयव है। शरीर के अन्य अग भी होते हैं—यथा नेत्र से बार-बार देखना यह दृष्टि कर्म तो निरन्तर होता है, कर्ण से श्रवण कर्म निरन्तर होता है। जिह्वा से बार बार वाक् क्रिया होती है। उस क्रिया में नेत्र, कर्ण जिह्वा मे नुकसान सम्भव नहीं है। क्योंकि उनका यह स्वाभाविक कर्म है। जो लोग उन्मादी हैं—मेन्टल डिफेक्ट वाले होते हैं, वह लोग बारबार निरन्तर प्रलाप किया करता है, तो उनकी जिह्वा पतली टेढी छोटी नहीं हो जाती। उसी तरह

हाथ से निरन्तर कार्य करने से, पग से निरन्तर चलने मे या दौडने से—हाथ-पग पतला छोटा-टेढा नही हो जाता। उसी तरह शिश्न का समझना चाहिए। कुदरत ने जो अङ्ग जिस स्थिति मे दिया है वह अङ्ग उस स्थिति में ही रह सकता है। अंगुली को बार-बार हिलाओ तो क्या अंगुली मे विकृति आ सकती है ? नहीं आती। अतः हस्तमैथुन क्रिया से लिंग टेढा नही होता, छोटा नही होता और पतला भी नही होता। यह सब मान्यतायें गलत ही गलत हैं और युवकों के मन में गलत मान्यतायें छपावट वैद्य या धूर्त ढोंगी अनपढ चिकित्सकों द्वारा ही पैदा की गई हैं ताकि उनकी चिकित्सा चले और मनमानी से धनोपार्जन हो सके। परिणामतः युवक घबडाकर इस गलत मान्यता को सत्य समझ कर मानसिक से परेशान हो जाता है और मानसिक परेशानी से अन्य मानस रोग हो जाता है। हां ! आगे वक्तव्य दिया है कि हस्तमैथुनादि क्रिया से शिश्न रोग जैसे परिवर्तिका, अवपाटिका, उपदश, व्रण आदि हो जाते हैं। यह शारीरिक समझनी चाहिए। चिकित्सा हो सकती है और चिकित्सा से लाभ भी मिलता है और जो यदि मान लिया जाय कि लिंग पतला, टेढा, छोटा हो गया तो उनकी चिकित्सा से उन विकृतियों को मिटाया जाता है, तो यह गलत ही है। कभी भी लिंग छोटे से बडा नहीं होता, पतले से ज्यादा मोटा नही हो सकता क्योंकि शरीर के अन्य अगों पर लेप कर्म किया करो, मालिश कर्म किया करो तो क्या उस अग मे फेर बदल हो सकता है ? नही ! तो यहा लिंग मे भी ऐसा कुछ नही हो सकता।

कोई कहने वाले कहते हैं कि हस्तमैथुन से व्यक्ति का शरीर पीला पड जाता है, शरीर दुर्बल हो जाता है, आखें अन्दर धस जाती हैं, तिमिर दर्शन होता है, चक्कर आते हैं इत्यादि ! यह सभी मान्यता भी गलत हैं। मैथुन कर्म स्वाभाविक समझा जाता है और मैथुन कर्म से शारीरिक हानि नही हो सकती। उसमें तो व्यक्ति को मानसिक आनन्द प्राप्त होता है और इस आनन्दानुभूति द्वारा परम सन्तोष प्राप्त होता है। स्वस्थ मैथुन में थकान महसूस नही होती और उससे शारीरिक हानि कैसे हो सकती है। उसी प्रकार हस्तमैथुन से आनन्दानुभूति होती है। उससे शरीर मे कैसे हानियां हो सकती हैं ? जब शरीर मे रक्ताल्पता होती है तब शरीर पीला पड जाता है थकान लगती है दुर्बलता आ जाती है। यहा शुक्र और रक्त का सबन्ध तो दूर है। क्योंकि रक्त दूसरी है और शुक्र अंतिम धातु है। अतः मैथुन एवं हस्तमैथुन कर्म से वीर्यपात हो जाता है, रक्त का नहीं। रक्त तो निरन्तर ही पैदा होता है ? यह सब मान्यता, मानसिक है। मानसिक से, अनेक विकृतियां हो सकती हैं। उसी तरह व्यक्ति अपने को बेकार समझने लगे, दुर्बल मानने लगे, रोगी समझने लगे तो वह सचमुच ही ऐसा हो जाता है।

काम का आवेग मन द्वारा उत्पन्न होता है और उसकी प्रत्यक्ष क्रिया लिंग द्वारा होती है। लिंग काम का साधन है। साधन द्वारा ही साध्य की प्राप्ति हो सकती है। अतः लिंग का मुख्य कार्य सभोग है। संभोग या मैथुन से ही कामावेग को शान्त किया जाना ही कर्तव्य मानना जरूरी है। अतः लिंग का मुख्य एवं प्रथम कर्तव्य मैथुन (स्त्री-समागम) कर्म ही है और यह प्रक्रिया नैतिक, स्वाभाविक और प्राकृतिक है। इनके अलावा विरुद्ध कर्म जैसे गुद मैथुन, पशु मैथुन, मुख मैथुन तथा हस्तमैथुन अकुदरती, अस्वाभाविक तथा अप्राकृतिक हैं। घृणास्पद भी हैं, अतः हस्त मैथुन क्रिया को विकृति कहा जा सकता है। मगर यह विकृति मानसिक है।

चिकित्सा सम्बन्धी विचार—

कई वैद्य एवं चिकित्सक कहते फिरते हैं कि हम हस्तमैथुनादि क्रिया को रोकने के लिये औषधि उपचार करते हैं। क्या यह सच हो सकता है ? हमारा मन्तव्य है कि औषधि उपचार से हस्तमैथुन क्रिया को कभी भी रोका नही जाता। क्योंकि सर्व प्रथम तो यह शारीरिक रोग नहीं है। केवल काम का आवेग है, और काम का आवेग मन द्वारा ही पैदा होता है। शारीरिक एवं

मानसिक वेगों को बलपूर्वक रोका नहीं जाता। यदि रोका जाय तो अनेक प्रकार की विकृतियां हो सकती हैं। तेरह प्रकार के वेग शारीरिक हैं। उन वेगों को कभी भी रोकना नहीं चाहिए। कहा भी है—"न वेगान् धारयेत् धीमान्"। तेरह प्रकार के वेगों में शुक्र वेग भी आ जाता है। शुक्र के वेग को रोकने से शुक्राश्मरी जैसी व्याधि पैदा होती हैं। यहां भावार्थ यह है कि—जब मैथुन की क्रिया होती है, तब अन्तिमावस्था में शुक्र बाहर निकलने का समय आता है। तब वेग को रोकना नहीं चाहिए। उसी तरह हस्तमैथुन क्रिया दरम्यान आये हुए शुक्र वेग को रोकना नहीं चाहिए। अतः औषधि चिकित्सा सम्भव ही नहीं। क्योंकि मन द्वारा ही काम वेग उत्पन्न होता है, और वेग की प्रत्यक्ष क्रिया निवृत्ति मैथुनादि से सम्पन्न होती है। औषधि से मन के वेग को कभी शान्त नहीं किया जाता। अतः यदि ऐसा होता हो तो परिवार नियोजन हेतु शल्य क्रिया की जरूरत नहीं होती। औषध से ही काम के वेग को शान्त किया जाय तो मैथुन भी नहीं हो सकता। अतः सन्तानोत्पत्ति भी नहीं होवी। मगर ऐसी कोई दवा नहीं है कि कामवेग को शान्त किया जाय। उनके लिए एक ही रास्ता है—वह है—योग साधना। योग साधना से मन शान्त हो जाता है। इच्छा नष्ट हो जाती है। काम का नाश हो जाता है। योगी पुरुष समाधिस्थ रहते हैं, मन साधना मे रत रहता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए योग साधना अनिवार्य है। और योग साधना सिद्ध करने के लिए ब्रह्मचर्य भी अनिवार्य है। अतः काम वेग को भस्म करने के लिए योग साधना, धर्म ध्यान, भजन कीर्तन आदि मे मन को ओतप्रोत करना जरूरी होता है। ऐसा होने से मन में काम उत्पन्न नहीं होगा और लिङ्गोत्थान भी नहीं होगा। अतः मैथुनादि क्रिया भी नहीं हो सकती। हस्तमैथुनादि क्रिया भी नहीं हो सकेगी। परिणामतः योग साधना से ही यह मानस विकृति (हस्तमैथुन) टाली जा सकती है। औषध उपचार से नहीं।

सारांश—विद्वानों के सामने मैंने अपना मन्तव्य पेश किया है। मतभेद भी हो सकता है। यहां विस्तृत निरूपण से निष्कर्ष ऐसा है कि हस्तमैथुन विकृति है? या नहीं? उत्तर में कह सकेंगे कि हस्तमैथुन मानसिक विकृति है। शारीरिक दृष्टि से देखें तो यह दोषादि भेद से कोई रोग नहीं है। वात-पित्त एवं कफ द्वारा यह विकृति नहीं हो सकती। मगर जब हस्तमैथुनादि में अतिरेक आ जाय तो उससे बाद में रोगोत्पत्ति होती है—यथा उपदंश, अवपाटिका, परिकर्तिका व्रणोत्पत्ति आदि जो कष्ट साध्य भी हो सकती हैं। हस्तमैथुन आभ्यन्तर रोग नहीं है। औषध साध्य भी नहीं है। त्रिदोष से उत्पन्न नहीं होता। केवल मन द्वारा कामावेग आने से क्रिया निवृत्ति की जाती है। अतः मानसिक विकृति है। मानसिक विकृति इस लिए भी कहनी चाहिए कि हस्तमैथुन क्रिया प्रकृति नहीं है। प्रकृति तो स्त्री-समागम द्वारा मैथुन क्रिया है। और स्त्री-समागम में लिङ्ग और योनि प्राकृतिक साधन हैं। दोनों साथ मिलकर क्रिया निवृत्ति करे यह उनका ही कार्य है। उससे विपरीत हस्तमैथुन अप्राकृतिक और अस्वाभाविक क्रिया है। इस तरह भी पुरुष लिङ्ग और पशु योनि, लिङ्ग और गुदा, लिङ्ग और मुख इत्यादि से मैथुन क्रिया करना—ये सभी अनैतिक, अप्राकृतिक और अस्वाभाविक हैं।

हस्तमैथुन से सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। गलत मार्ग से वीर्य का नाश होता है। मानसिक वितृष्णा आ जाती है। उद्वेग, हताशा, निराशा आदि से मन व्याकुल हो उठता है। अतः हस्तमैथुन क्रिया एक मानसिक विकृति है।

यहां केवल पुरुष द्वारा होता हस्तमैथुन का विश्लेषण किया गया है, क्योंकि "पुरुष रोग चिकित्सा" में केवल पुरुष ही प्रधान है। आजकल तो अविवाहित स्त्रियां भी अपनी योनि मे अंगुली डालकर या रबर का कृत्रिम लिंग डालकर हस्तमैथुन क्रिया करती है। दो लड़कियां आपस में मिलकर एक-दूसरी की योनि में अंगुली डालकर हस्तमैथुन क्रिया करती हैं, और सम्भोग सदृश आनन्द लेती हैं। यह भी विकृति है—मगर उनका वर्णन यहां अप्रासंगिक होने से नहीं किया जा रहा।

—★★★—

स्वप्नदोष कारण एवं निवारण

आयुर्वेद चक्रवर्ती वैद्य मिश्रीलाल गुप्त डी ए. एम एस , भारतीय चिकित्सालय, आष्टा (सीहोर) म. प्र

संक्षेप मे इसके कतिपय लक्षण लिखना भी आवश्यक हैं —अस्तु। स्वप्न मे कामोत्तेजना होकर बार-बार वीर्यपात होना या हस्तमैथुन के उपद्रवस्वरूप बिना स्त्री क्रीडा के भी वीर्य का प्रवाहित होना रोग का मुख्य लक्षण है। इससे मनुष्य दुर्बल, निस्तेज एवं शरीर के सभी अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। रक्ताल्पता, भ्रम, हृद-कम्प, अनिद्रा, नपुंसकता एव क्षय आदि रोगी को दबोच लेते हैं। काम तृप्ति के प्राकृतिक साधनो के अभाव से स्वप्नदोषादि के कारण वीर्य के क्षय होने से मानसिक विकार व्याकुलता,वात नाडियो की क्षुब्धता आदि अवश्य ही उत्पन्न हो जाते हैं।

क्षुधानाश, विवध, हाथ पैरो मे जलन, कटिशूल, मूत्र दाह आदि भी इसी दुष्ट रोग के कारण रोगी मे पाये जाते हैं।

उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त कुछ और भी कारणो से स्वप्नदोष पैदा होता है। जैसे अत्यन्त खटाई, मिठाई, चरपरी, विशेष लहसुन, प्याज, तेल के तले हुए पदार्थ, अजीर्ण और कृमि भी रोग कहे जा सकते हैं। अत ऐसे आहार से बचते रहना चाहिए।

चिकित्सा से पूर्व आहार और व्यवहार दोनो को सावधानीपूर्वक ठीक रखने से ही चिकित्सा मे सफलता पाई जा सकती है। अत इस ओर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

यूनानी चिकित्सा ग्रन्थो मे इस रोग का स्वतन्त्र वर्णन मिलता है। इस रोग को 'एहतलाम' के नाम से लिखा गया है। इसका हेतु अश्लील विचार, ब्रह्मचर्य, हस्तमैथुन, अतिमैथुन, चित्त लेटना विवध अजीर्ण एव उदर कृमि बताया गया है। रोग की तीव्रता मे हर दूसरी तीसरी रात्रि मे या एक ही रात्रि मे दो-दो बार स्वप्न मे वीर्यपात हो जाना इसके लक्षण हैं।

आलस्य, दुर्बलता, मूत्रदाह, कातिहीनता, कटिशूल एव वृषणशोथ भी हो जाता है। अस्तु। आगे रोग की अनुभूत चिकित्सा दी जाती है। यदि संयम पालते हुए प्रस्तुत योगो का प्रयोग किया गया तो अवश्य ही इस दुष्ट रोग से पीछा छुडाया जा सकता है। व्याधि असाध्य नही है।

(१) रोगी को गर्म आहार विहार से बचते हुए प्रति दिन कम से कम १० मिनट तक अण्ड कोषो को शीतल जल से प्रक्षालित करना चाहिए।

(२) भोजन के बाद चित्त नही लेटें और एक दो केले नित्य १०-२० बूंद शहद डालकर सेवन करें।

(३) भीमसेनी कपूर १ माशा, पिसी हल्दी १ तो, शीतल चीनी चूर्ण ६ माशा, अफीम २ रत्ती, मिश्री २ तो पीस छानकर रखले। मात्रा २ माशा।

(४) भुनी फिटकरी ३ तो०, हरिद्रा, त्रिफला, गेरू १-१ तो० पीस छानकर रख लें। मात्रा ३ से ६ माशा अनुपान प्रत्येक मात्रा में १ तो० शक्कर मिलाकर दिन मे ३ बार जल से सेवन करें।

(५) कपूर २ रत्ती, अफीम आधी रत्ती, शीतलचीनी चूर्ण ६ रत्ती प्रात साय जल से सेवन करें। लाभ होगा।

(६) बबूल के नर्म पत्ते चबाकर प्रात साय ठंडा पानी सेवन करें।

(७) शिलाजीत, वङ्ग भस्म, प्रवाल भस्म १-१ रत्ती दिन में २ बार शहद से सेवन करें और भोजनोपरान्त चन्द्रप्रभावटी २-२ गोली सुबह शाम दूध से लेवें।

स्वप्न-दोष और मेरा अनुभव

वैद्य श्री विश्वम्भर दयाल गोयल बी ए, १३६ बी—नादान महल रोड (रकाबगज पुल के निकट) लखनऊ

—❋✿❋—

आर्य जीवन मे ऋषियो ने ब्रह्मचर्य को सदा आदर्श रूप मे पाने को जीवन का सार्थक रूप माना है। कामोपभोग तो अनार्यों का उद्देश्य रहा है। महर्षि पातञ्जलि ने चित्तवृत्ति निरोध को योग निष्ठा कहा है। चित्तवृत्ति के लगाम ख्याली पुलाव वत् भ्रमण ही योग निष्ठा है। कामना-वर्जन और कामना-अर्जन एक दूसरे से भिन्न मार्ग हैं। एक ऊर्ध्वगामी उन्नति का पथ है और दूसरा अधोगामी अवनति का पथ ही माना गया है। पूर्व की और पश्चिम की सम्पता मे इन्ही मार्गों पर प्रवाह और दृष्टिकोण केन्द्रित रहा है। भारतीय पथ चेतना का आत्मज्योति का पथ है जिसमे साधना द्वारा मनुष्य मानव से देवत्व प्राप्त कर सकता है जबकि भोग पर आधारित पथ दानवी रूप ही दिखाता है। भारत मानवता एव आत्मलाभ द्वारा आत्मानन्द का पोषक रहा है और पश्चिम जडवाद वाद तक ही सीमित रहा है। अत अब भारत का जडवाद-यान्त्रिकता की नकल करना उन्नति शिखर से गिरना वत् ही दिखाता है। ऋषियो के ज्योति रूप प्रकाश पथ पर दृष्टिपूत हो आख बन्द कर भी दौडा जा सकता है। भोगवाद को इसीलिये अधकार का मार्ग समझा गया है।

काम वृत्ति सम्बन्धी विचारधारा मे पूर्व और पश्चिमी चिकित्सको मेडीकल डाक्टरो मे विपरीत दिशासम बडा मतभेद है। पश्चिमी मेडीकल डाक्टरो का कहना है कि जैसे मल-मूत्र, पसीना स्वत बाहर निकल जाता है वैसे ही वीर्यपात भी देह का, बहि निर्गमन स्वाभाविक धर्म है। किसी-२ दशा मे उनका कहना है कि नई-२ युवतिया कामकलाप करने से दीर्घायु होती हैं। भोग द्वारा रक्त के श्वेतकण निकल कर नवीनीकरण हो जाता है और शरीर विशेष चैतन्य हो जाता है। जीवन को सफल स्वस्थ, सुन्दर और समुन्नत बनाने के लिये ब्रह्मचर्य की कोई आवश्यकता नहीं। उनके विचार में ऊर्ध्वरेतस् की चर्चा असम्भव ही नही अपितु एक पागलपन है और आजकल यहां भारत के पढे-लिखे लोग भी इसी को सही मानने लगे हैं। अब भला सोचने की बात है कि मैथुन खान पान की तरह जीव का उपयोगी अग है, रेतपात मल मूत्र, स्वेद समान हैं तो दुराचार, व्यभिचार और स्वच्छन्द मिलन रुके तो कैसे रुके ? इसमे लोगों की गुण बुद्धि खो गई है। भारतीय सस्कृति और चिन्ताधारा मे ब्रह्मविद्या जीवन का उद्देश्य है और ब्रह्मचर्य उसका साधन है। वीर्य उर्ध्वरेता होकर सचय करना ही अमूल्य निधि है। यही जीवन की सार्थकता है। किसी भी महात्मा के जीवन का श्रीगणेश ही ब्रह्मचर्य के व्रत से होता है। उन पूर्व महर्षियो ने घोर तपस्या कर जीवन तत्वो का साक्षात्कार कर स्वानुभूत सत्य को पाकर जनता के समक्ष रखा है। इस तत्व दर्शिनी बुद्धि की खोज में कोई भ्राति कोई रद्दोबदल नही हो सकती। पाश्चात्य बुद्धि को प्रमाण मानना समीचन नही जचता। उनकी नित्य नई खोज कल के सिद्धान्तो पर पानी फेर देती है अत उनका मत इस विषय मे अन्तिम प्रमाण नही माना जा सकता। उनकी अनेको रामवाण औषधिया आज समय के गर्त मे विलीन हो गई हैं। अत उनको काम सबध मे प्रमाण नही माना जा सकता। कारण उनकी खोज को ही अधिक समय नही बीता है, जबकि आयुर्वेद की ऋषियो की खोज को अरबों वर्ष बीत जाने की खरी बपौती मिली हुई है।

भारतीय विचारधारा मे 'कामोपभोग परमा एता वदितिनिश्चता' गीता का वचन है। अर्थात् काम का भोग आसुरी प्रकृति के लोग मानते हैं और वे इसके द्वारा घोर अन्धकार मे ही जाते हैं।

थोडा गहराई से सोचने पर पाश्चात्य डाक्टरों की त्रुटि-गलती स्पष्ट पकड मे आ जाती है। मलमूत्रादि सम वीर्य का स्वत निर्गमन का सिद्धान्त स्वीकार करने योग्य

नही ठहरता है। मल-मूत्रादि का क्षरण जीव के भूमि पर आते ही आरम्भ हो जाता है। देह यन्त्र के सभी स्राव स्वाभाविक धर्म रूप का आरम्भ जन्म से ही हो जाता है पर वीर्य की अधोगति जन्मगत नही। पितृ वीर्य-दोषवश यदि किसी दशा मे हो भी तो वह रोग ही है, धर्म नही। चिकित्सा व्याधि की होती है स्वभाव की नही। मलमूत्र स्वेद आदि शरीर द्वारा खाये हुये अन्न जल का असार तत्व है पर वीर्य मल मूत्र सम असार तत्व नही है। मल मूत्र का रुकना शरीर मे विपाक्त दोष बन जाता है, उनके निकाल फेंकने मे श्रेय होता है पर वीर्य स्खलन दोष होता है चित्त खिन्न और ग्लानि मानता है। वीर्य सार वस्तु है—तत्व है उसकी मलमूत्र से समता एक भूल-भ्रान्ति है। जाग्रत या या स्वप्न मे वीर्यपात उसी दशा मे होता है जब नर नारी रागपूर्वक एक दूसरे से मिलने की चिन्ता करते हैं। अत इसे चिन्ता साध्य व्याधि की सज्ञा दी जा सकती है।

इस समय देश मे मन, बुद्धि, शरीर सभी अस्वस्थ है और ब्रह्मचर्य के बिना एम ए डी लिट या आयुर्वेदाचार्य, प्राणाचार्य आदि कुछ भी बन जाय ऋषि प्रणीत शास्त्र न पढ सकते हैं न समझ सकते हैं नही स्वाधीनता का कोई मूल्य ही पा सकते है। कमाना खाना मैथुन तो पशु तुल्य कार्य हैं। आवश्यकता है सहस्रो युवक-युवतियो की ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर देश के कोने-२ मे फैल कर देश का चारित्रिक स्तर बढाके ऊ चा करें। भूभार स्वरूप जन सख्या वृद्धि एक अभिशाप ही है।

स्वप्नदोष मन की बाधा है—एक भयङ्कर व्याधि है। सत्य तो यह है कि जागृत मे स्त्री पुरुषो का आकर्षण, चिन्तन, विचार ही स्वप्न मे कामना पूर्ति खोजता है,शरीर निश्चेष्ट होने पर मन स्खलन द्वारा चौपट होजाता है। इस रोग में सोते समय लौग या शीतलचीनी या हरड मुह में रखकर सोना कुछ उपकार करता है। होम्योपैथी में 'काली फास १ एम' शक्तिकृत दसवें या पन्द्रहवें दिन पर, ३-४ बार सेवन करना या इसी प्रकार 'सूक्ष्मीकृत स्त्री हार्मोन' की २०० या १ एम शक्ति मे लेना (स्त्रियो मे स्वप्नदोष में 'पुरुष हार्मोन' का ऊची शक्ति मे लेना) भी उपकार करता है। विचारधारा पर नियन्त्रण के बगैर कुछ नही हो सकता। मै ने डीजेन भी ओ एम एम गोली (अब नेवास नाम से मिलती है) सेवन भी किसी हद तक उपकार करती है। गुप्तांग के रोगों मे सात्विक सद् विचार का होना आवश्यक है। गन्दे भाव एव कार्यों पर पूर्ण प्रतिबन्ध रखे, भोजन और पेय मे भी अति पौष्टिक खान-पान एव तम्बाकू मादक पदार्थो का बचाव भी अति आवश्यक है। स्वप्नदोष होने पर 'काली ब्रोम ३०' भी लाभप्रद होता है। इन्द्रिय मे तनाव एव रमणेच्छा की प्रबल आकाक्षा मे पिक्रिक एसिड ३X,३० शक्ति मे ३-४ बार सेवन करना उचित है। स्त्रियो के दर्शन मात्र से रेतपात मे 'कोनियम ३०' लाभप्रद होता है। स्राव की अधिकता में कमजोरी होने पर 'चायना ३०' उपकार करता है। होम्यो औषधिया अपने लक्षण साम्य होने पर अधिक कारगर होती है। शास्त्रों ने भी आदेश दिया है कि—'रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मवृतधर स्वय। अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदी जपेद ॥ भा ए स्क १०-२५। अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाला अपनी इच्छा से और चेष्टा से स्वय कभी भूल कर रेत पात न करे। अनिच्छा से यदि कभी स्वप्नादि से पात हो जाय तो जलाशय मे सिर से डुबकी लगाकर स्नान करे और प्राण सयमपूर्वक त्रिपदी गायत्री का जप करे। यह प्रयोग सिद्ध सत्य है। प्राणायामपूर्वक मानस द्वारा मन की वृत्ति बदल जाती है एव वीर्य धारणा वायु उर्ध्वगामी बन जाती है। इसी प्रकार राम या ॐ का जप करना या उद्दीपन विचार आते ही नासारन्ध्रो को हाथ से बन्दकर तथा मूलबन्ध को बलपूर्वक (मल द्वार को) ऊपर सिकोडलेने से विचार-मन की गति बदल जाती है तथा जप से मन को एकाग्रता का काम मिल जाता है। जागृत मे करते करते स्वप्न मे स्वत होने लग जाता है। सन्त तुलसीदास ने—हय तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई ॥' या 'राम कहत भवसिंधु सुखाही। कर विचार देखऊ मन माही ॥' द्वारा जप एव विचार बताया है। सक्षेप मे, ब्रह्मचर्य द्वारा ही स्वप्नदोष पर विजय पाना उचित है। ✤

क्या स्वप्नदोष रोग है ?

वैद्य पं० द्वारका प्रसाद दुबे आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ; पूर्व आचार्य—आयुर्वेद महाविद्यालय, जबलपुर
पूर्व अध्यक्ष—चिकित्सा समिति नगर-निगम, जबलपुर। पूर्व पार्षद नगर-निगम, जबलपुर
प्रधान चिकित्सक—श्रीमती सिंघैन काशीबाई दिगम्बर जैन
धर्मार्थ औषधालय, जबलपुर

कारण तत्त्व—

इस रोग का मुख्य कारण तो काम विषयक कल्पना ही है। अर्थात् जो पुरुष काम विषयक विचारो मे अधिक सलग्न रहते हैं। अथवा कामोत्तेजक उपन्यासो को पढ़ते हैं। शृङ्गार रस युक्त सिनेमा, नाटक, नाच, टी० वी० आदि देखते हैं। इस प्रकार स्त्रियों का स्मरण, कीर्तन-क्रीडन और प्रेक्षण आदि इसके कारण होते हैं। इनमें मस्तिष्क में वर्तमान उत्पादक अगों केन्द्र के द्वारा अन्य उत्पादक अंगो में क्षोभ होता रहता है। इस क्षोभ के चिरकाल तक होते रहने से वही स्वप्नदोष का कारण बन जाता है।

प्रकृति विरुद्ध कार्य गुदा मैथुन, हस्तमैथुन, पशु मैथुनादि से वीर्य तथा वीर्यवाहिनी शिराओं की दुर्बलता ही स्वप्नदोष का कारण है।

सभोग की अधिकता से उत्पादक अंगो मे क्षोभ होता रहता है, जिससे सहवास का त्याग कर देने पर भी स्वप्नमेह हो जाता है।

अत्युष्ण लालमिर्च आदि मसालायुक्त पदार्थों का सेवन करने से, तमाखू, चाय, काफी, अनेक प्रकार के सुरा, खटाई, अचार, चटनी, विविध प्रकार के खट्टे रस, सोडा वाटर क्षार, रस का सेवन करना, विदाही पदार्थों का सेवन करना इसका कारण बन जाता है।

यदि मनुष्य उत्तान सोता है और निद्रावस्था में उसका मूत्राशय मूत्र से भर जाता है तो सभवतः सम्पूर्ण मूत्राशय का दवाव शुक्राशय पर पड जाता है क्योंकि शुक्राशय मूत्राशय के तल पर पीछे की तरफ होता है और गुदा ठीक उसके पीछे रहती है। जिससे उसमें क्षोभ पैदा होकर स्वप्नमेह का कारण बन जाता है। जिस मनुष्य में मल विबन्धता प्रतिदिन चिर स्थाई रहती है उसकी गुदा में शोथ हो जावे से सीधा दवाव शुक्राशय पर पड़ता है जो स्वप्नमेह का कारण बन जाता है।

स्वप्नमेह के भेद—

स्वप्नमेह प्राकृतिक और अप्राकृतिक के प्रकार से दो प्रकार का होता है—

(१) प्राकृतिक स्वप्नमेह (२) अप्राकृतिक स्वप्नमेह

प्राकृतिक स्वप्नमेह—शुक्राशय में से स्वप्नावस्था में कभी-कभी वीर्य का स्खलन होना स्वाभाविक है। साधारणत. १८ वर्ष से ४२-४५ वर्ष तक की आयु वाले पुरुषो में सात दिन मे २-४ दिन के अन्तर से एक बार स्वप्नमेह देखा जाता है। मास में १-२ बार स्वप्नमेह होना स्वाभाविक है।

अप्राकृतिक स्वप्नमेह—एक सप्ताह में १ बार से अधिक स्वप्नमेह होना अस्वाभाविक है। किसी-किसी आचार्य के मत से १० अथवा १५ दिन में १ बार से अधिक होना अस्वाभाविक है।

सम्प्राप्ति—

जिस भाति चक्षुओं में, आमाशय में, फुफ्फुस की श्वास प्रणालियों और सधियो के अन्दर के स्तरों मे इसी भाति दूसरे अवयवो में भिन्न-भिन्न प्रकार के श्लेष्म द्रव्य सदा पैदा होते रहते हैं। इसी भाति वीर्य रूपी श्लेष्म द्रव्य भी थोडा-थोडा द्रव्य युक्त मात्रा में सदा पैदा होता रहता है। और पैदा होकर कुछ अण्ड ग्रन्थियो, कुछ उपाण्ड में कुछ शुक्र प्रणाली मे कुछ शुक्राशय में सञ्चित होकर शरीर मे विलीन होता रहता है और जीवनीय कार्यो

करता है। जैसे चक्षुओं में धूम प्रभृति क्षोभक पदार्थों के लग जाने में और आमाशय में उष्ण क्षोभक, भोजनों को खाने में, मुख में तीव्र और क्षोभक पदार्थों के रखने से फुफ्फुस की श्वास नलियों में शोथ आदि के कारण क्षोभ हो जाने से स्वभावत. निकलने वाले श्लेष्म द्रव्यों की मात्रा बढ जाने से नेत्रों से अश्रुपात, मुख मे लाला स्राव, आमाशय में अम्लपित्त, फुफ्फुस मे श्लेष्म कास प्रभृति रोग हो जाते हैं। उसी प्रकार उत्पादक अगो पर मैथुन आदि के द्वारा अत्यन्त क्षोभ हो जाने से वीर्य अधिक मात्रा में उत्पन्न होने लगता है। इतनी मात्रा को शरीर व्यय नहीं कर सकता, तब वीर्य बाहर निकल जाता है। यह चक्षुमुख आमाशय फुफ्फुस आदि मे मिथ्या आहार-विहार करने से यह क्षोभ स्थाई क्षोभ के वश, नेत्र स्राव, कफ स्राव, अम्लपित्त अथवा आमाशयिक शोथ और कफ श्वास स्थाई होकर समय असमय पर होते रहते हैं। इस भाति जब मस्तिष्क मे काम विषयक विचारो मे उत्पादक अगों में क्षोभ चिरकाल तक रहता है तो उनका स्राव स्थाई रूप में वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। वह बढा हुआ अथवा शुक्राशय में अधिक मात्रा में सचित हुआ वीर्य स्वप्नावस्था में बाहर निकल जाता है। क्योकि निर्बल मनुष्यों में थोडे से काम विषयक विचारों से उत्पादक अगो में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है जिससे वीर्य मात्रा मे अधिक उत्पन्न होने लगता है। वीर्य के अधिक उत्पन्न होने से जहां एक ओर रक्त का अत्यधिक व्यय होता है वहा पर वह शरीर में विलीन होकर शुक्राशय द्वारा बाहर निकलता रहता है। जिससे शुक्र के द्वारा देह का जो जीवनीय रस मिलता था, वह नही मिलता है। इससे शरीर निस्तेज हो जाता है। यह अधिक मात्रा मे उत्पन्न हुआ और शुक्राशय मे सचित किया हुआ शुक्र शरीर में विलीन नही होता है। तथा बाहर निकलने के सिवाय उसका अन्य मार्ग नही होता। प्राय निद्रावस्था में किसी काम-विषयक स्वप्न के द्वारा ही शुक्र का स्खलन होता है। इसको स्वप्नमेह कहते हैं।

पूर्वरूप—स्वप्नमेही के हाथ-पैर तलवों मे जलन होने लगती है। शरीर के अगो में स्निग्धता और शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। मुख में मीठापन और मूत्र मे अस्वाभाविक विकृति, तन्द्रा, ग्लानि होती है। प्यास ज्यादा लगती है। मुख कण्ठ, तालु सूखते हैं। शरीर से दुर्गन्ध आती है। थोडा परिश्रम करने से श्वास फूल जाती है। तालु, जिह्वा, गले और दातों मे मल जम जाता है। आलस्य इस रोग का पूर्व लक्षण है। यहा तक कि चलते हुए ठहरने की इच्छा, ठहरकर बैठने की इच्छा, बैठकर लेटना चाहता है। लेटकर सोना चाहता है। स्वेदकी अधिक प्रवृत्ति, केश नाखून अधिक बढने लगते हैं। शीत वीर्य पदार्थ प्रिय लगते हैं।

लक्षण—

स्वेद मे ही मलीन मुख, तेजहीन और चिन्ता मग्न प्रतीत होता है। शरीर में महा सुस्ती रहती है। मुख मण्डल पर युवापिडिकायें हो जाती हैं। आखों पर चारों ओर कालिमा अथवा नीलिमा छा जाती है। आखें अन्दर घुस जाती हैं। शुक्रजन्य वैद्युतिक गरमी का ह्रास हो जाता है। तलवो पर पसीना अधिक होता है। शिश्न ढीला हो जाता है और एक तरफ झुका रहता है। किसी-किसी का शिश्न अधिक छोटा हो जाता है। जल के तुल्य पतला वीर्य हो जाता है। यहा तक कि स्त्री के स्पर्श होते ही स्खलन को प्राप्त हो जाता है। क्लैव्य के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। स्वप्नमेह में वात सस्थान के उपद्रव, उन्माद, कटिशूल, वातरोग, अपस्मार, बाधिर्य, शिरोश्राव, क्लीवता, आमाशय के रोग, अजीर्ण, अम्लपित्तादि, हृदय रोग, श्वास-सस्थान, कास श्वास, त्वक् सस्थान में अकाल में पलित रोग, इन्द्रलुप्त, ध्वजभङ्ग आदि उपद्रव हो जाते हैं।

चिकित्सा सूत्र—जिन कारणो से रोग की उत्पत्ति हुई है उनका सर्वथा परिवर्जन करना ही चिकित्सा है।

सक्षेपत क्रिया योगो, निदान परिवर्जनम्।

स्वप्नदोष का सबध मन के साथ अधिक है। क्योंकि कामविषयक मानसिक संकल्प ही इसका प्रधान कारण है। अत. मन को राजसिक, तामसिक प्रवृत्ति से दूर

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

करके सात्विक प्रवृत्ति में प्रवृत्त करना चाहिये । उसके लिये मानसिक व्यायाम करना चाहिये ।

रात्रिचर्या—रात्रि मे भोजन करते ही सोना नहीं चाहिये । कम से कम भोजन करने के २ घण्टे बाद सोना चाहिये । फिर भी ६ घण्टे से अधिक स्वस्थ्य मनुष्य को नही सोना चाहिये । अधिक काल तक शैया पर पडे रहने से दूषित विचार मन में उत्पन्न होते हैं । यदि अनिद्रा का अभाव हो तो शारीरिक परिश्रम करना चाहिये न कि निद्राकारक औषधियों का सेवन करे । सोने से पूर्व उष्णोदक में आध घण्टे तक पैरो को रखे । शिर पर बादाम का तैल सोने से पूर्व मालिश करावे । इससे निद्रा आती है ।

चिकित्सा—

(१) निद्राजनक वटी—पीपरामूल ५० ग्राम, गुड १५ ग्राम इनको एक मे मिलाकर २ माशे की गोली बनावें ।

अनुपान—१-१ गोली शीतल जल के साथ लें । स्वप्नमेही का विस्तर कठिन और कसा हुआ होना चाहिये । नरम गद्दे पर नही होना चाहिये । तख्त पर कडे विस्तरों पर ही सोना लाभप्रद है । दाहिने या बाई करवट से सोना चाहिये । तकिया अधिक ऊंचा नही होना चाहिये । रात्रि में जब पेशाब की इच्छा हो तो तुरन्त पेशाब करना लाभप्रद है ।

(२) स्वप्नदोष पर शतावर—इसमें कडवापन, भारी, देरी से हजम होने वाली, मधुर, रसायन है । मस्तिष्क वृद्धि के लिये उत्तम, वीर्य को बढ़ाने वाली, पुष्ट करने वाली है । अग्नि वर्धक, नेत्ररोग, अतिसार, गुल्म, रक्त विकार, वायु और पित्तज व्याधियों को लाभ पहुचाती है । स्तन्य (दूध बढ़ाने वाली) है ।

त्याज्य शतावर—काली और खुश्क शतावर काम मे नहीं लेनी चाहिये ।

शतावरी योग—नवीन शतावर, चिकनी, स्नेह युक्त, जन्तु और जाला वगैरह से रहित ही प्रयोग मे लानी चाहिये । शतावर को लेकर साफकर धूप में सुखाकर कूट लेवें और बारीक कपडछन कर लेवें । इसके बराबर आवलो का चूर्ण (शतावर ५० ग्राम, आवलों का चूर्ण ५० ग्राम) मिलालें । दोनों बराबर मिश्री (मिश्री १०० ग्राम) मिलाकर शीशी मे रख लेवे । २ माशा की खुराक दिन में २ बार पानी के साथ २१ दिन तक सेवन करें ।

रात्रि मे ईसबगोल ६ माशा सोने से पूर्व लेवें । इससे कब्ज नही होगी । स्वप्नदोष वाले को आहार-विहार का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये । सोने के समय हाथ-पैर धोकर सोवें । कब्ज नहीं होना चाहिये । सोवे के कम से कम २ घण्टे पहिले भोजन करना चाहिये । प्रातःसाय घूमना आवश्यक है ।



पद्मासन में बैठकर प्राणायाम करें

(१) स्वर्ण वङ्ग योग—स्वर्ण वङ्ग १ रत्ती, शीतल चीनी ३ माशा, यह १ मात्रा है । प्रात' साय दूध मिश्री के साथ सेवन करें ।

(२) शतावरी चूर्ण ३ माशा, स्वर्ण वग १ रत्ती, त्रिवग २ रत्ती—यह १ मात्रा है । दूध के साथ दोनों समय लेना चाहिये ।

(३) चन्द्रप्रभा वटी, चन्द्रकला रस, शुक्रमातृका वटी इन योगों से भी लाभ होता है ।

(४) छिरेटा बूटी की पत्ती १ तोला, कालीमिर्च ५ नग । इन दोनों को ठण्डाई की तरह पीसकर मिश्री मिलाकर पीने से वीर्य शुद्ध होकर स्वप्नदोष, प्रमेह नष्ट हो जाता है । सरल एवं परीक्षित योग है ।

—✱४✱—

स्वप्नदोष-स्वप्नमेह

आचार्य विरिञ्चिलाल शास्त्री वैद्य, आयुर्वेद वाचस्पति, आयुर्वेद बृहस्पति, भिषग् रत्न
प्रधान चिकित्सक—श्री माहेश्वरी आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय, इस्लामपुर (झुंझुनू) राज

लक्षण—

इसके पूर्व रूप मे हाथ पैर के तलवो मे जलन होने लगती है। शरीर के अङ्गो मे स्निग्धता और पिच्छिलता उत्पन्न हो जाती है। मुख मे मधुरता-मूत्र मे अस्वाभाविक विकृति तथा ग्लानि होती है और प्यास अधिक लगती है। मुख, कण्ठ, तथा तालु सूखते रहते हैं। शरीर से दुर्गन्ध आती रहती है। विशेषत मुख से दुर्गन्ध आने के कारण दूसरा व्यक्ति उसके साथ बैठने से अनिच्छा प्रकट करता है। थोडा परिश्रम करने से श्वास फूल जाता है। तालु, गले मे और दातो मे अधिक मल जम जाता है। आलस्य ही इस रोग का मुख्य पूर्वरूप, लक्षण हैं। यहा तक कि चलते हुए ठहरने की, ठहर कर बैठने की, बैठने से लेटने की, व सोने की इच्छा होती है। सुश्रुत मे—

सचापि गमनात् स्थानं स्थानादासनमिच्छति।
आसनात् वणुते शयपा शयनात स्वप्नमिच्छति॥

इसके सिवाय स्वेद (पसीना) की भी अधिक प्रवृत्ति होती है। केश नाखून अधिक बढ़ने लगते हैं। शीत वीर्य पदार्थ प्रिय प्रतीत होते हैं। निद्रा तद्रा हरदम बनी रहती है। वैसे स्पष्ट लक्षणों मे तो मलीन मुख तेज-हीन, चिन्तामग्न दीखता है। शरीर मे सुस्ती बनी रहती है। मुख पर युवान पिटिका (जवानी की कील) आखो के चारो ओर कालापन हो जाता है। आख धसी हुई सी, मुख मे दुर्गन्ध बनी रहती है। स्वप्नमेही को गाढी निद्रा नही आती। इसके सिवाय पायरिया आदि दन्तरोग, शोथ जुकाम स्वरभेद, कास, श्वास, प्रभृति रोग भी हो जाते हैं। जैसे-'मन्दाग्नि क्षीणधातोग्नि नाडीमन्दतराभवेत्' के अनुसार हाथ, पैरो व शरीर का कापना, ठण्डापन अर्थात उष्णता का अभाव हो जाता है, हाथ पैर तलवो मे पसीना अधिक आता रहता है।

धैर्य, स्मृति, चित्त प्रवृत्ति का निरोध, ब्रह्मचर्य का पालन, इस स्वप्नमेह विषय को चित्त को मन से बिल्कुल त्याग देना, उत्तेजनाजनक विचारो व साधनो तथा भोजनादिक को छोड देना दिन मे सोना नही। सुश्रुत ने कहा है—

सर्वर्तुषु दिवास्वप्नोनिषिद्ध। रात्रि मे सोने से पहले भगवान का स्मरण करना, दुःस्वप्न नाशक गजेन्द्र मोक्षादि का पाठ करना चाहिए। खास ध्यान देने योग्य बात है कि रात्रि भोजन करते ही सोना नही चाहिये। भोजन जल्दी करके दो घण्टे कम से कम जागना जरूरी है। यदि निद्रा मे किसी कारण से कमी होती हो तो शारीरिक परिश्रम करना, हाथ पैर धोकर सोना भी लाभप्रद है। पानी पीकर या दूध वाले तरल पदार्थ पीकर जल्दी नही सोना चाहिये। बद्धकोष्ठता (कब्ज) हो तो उसे दूर करना चाहिए। सुबह शाम भ्रमण भी इसमे उचित ही है। प्राणायाम करना भी विशेषोपयोगी है। वैसे स्वप्नमेही की आकृत्यानुसार स्थूल कृश के हिसाब से भी ध्यान देकर करें। चूं कि यदि रोगी स्थूल हो तो विरेचन देकर करना, यदि कृश हो तो बल्य औषधि देना। कब्ज हो तो हरीतकी चूर्ण घृत मे भून कर ३-६ माशा तक देवें। ३-६ माशा तक त्रिफला चूर्ण मधु से खिलावे। इस रोग से ग्रसित रोगी को सुबह ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर शौचादि से निवृत होना बहुत जरूरी है।

(१) सुबह शाम कबाब चीनी (शीतल मिर्च) का चूर्ण ६-६ रत्ती, वङ्गभस्म २-२ रत्ती मात्रा से शहद मे चटावें, ऊपर से औटा कर ठण्डा किया हुआ दूध मीठा मिला कर दें।

(२) शिलाजीत ४-६ रत्ती कपडे की पोटली मे बाध

—शेषांश पृष्ठ २२६ पर देखें।

* स्वप्नदोष निवारक मंत्र प्रयोग *

ज्योतिर्विद प. सुरेश चन्द्र ठाकुर एम ए., आयु० रत्न,
व्याख्याता संस्कृत–श्रीराम ज्योतिष कार्यालय, देवगढ (देवास) म० प्र०

—✦✦—

देवगढ़ जिला देवास मध्य प्रदेश के सुविख्यात एवं विद्वान पंडित श्री अनन्तराम ठाकुर की कृपादृष्टि सदैव धन्वन्तरि को मिली है। वर्तमान समय में आप वयोवृद्ध होने से लिख नहीं सकते। फिर भी आपके आग्रह से अपने विद्वान पुत्र प० सुरेश चन्द्र ठाकुर के द्वारा यह लेख लिखाकर भेजा है। आयुर्वेद मे दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का महत्व है। यह लेख आध्यातिमक दृष्टि से महत्व रखता है और व्याधि निर्हरण हेतु दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का यह विषय अभिनन्दनीय है। क्योंकि स्वप्नदोष अधिकांशतः मानसिक व्याधि है। मन के साथ सम्बन्ध रखता है। लेखक ने यहां श्री हनुमान जी का मंत्र प्रयोग दर्शाया है। श्री हनुमान जी बाल ब्रह्मचारी थे और स्वप्नदोष अधिकांशतः ब्रह्मचर्यावस्था मे देखा जाता है। अतः यहा स्वप्नदोष की दैवव्यपाश्रय चिकित्सा इसीलिए अनिवार्य है कि मन्त्र प्रयोग, जाप, माला इत्यादि से मन पवित्र होता है, मन शांत होता है। परम शांति मिलती है। कुविचार दूर होता है और स्वप्नदोष पर काबू आ जाता है। लेखक को — अभिनन्दन। धन्वन्तरि परिवार आपकी तथा आपके पिता जी की शतायु की कामना करता है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

ॐ नमो हनुमते मम मदन क्षोभं सहर संहर आत्मतत्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट्स्वाहा।

विनियोग —

हाथ मे जल लेकर निम्नलिखित विनियोग को पढ कर जल छोड दें—

अस्य तत्वज्ञान प्रदाता मन्त्रस्य वशिष्ठ मुनिः अनुस्टुप छद. श्री हनुमान देवता मम कामविकार नाशयार्थं तत्वज्ञान प्रकाशयार्थं जपे विनियोग ।

अथ करन्यास.—

(१) ॐ नमो हनुमते (अ गुष्ठाभ्या नम.)
(२) मम मदन क्षोम (तर्जनीभ्या नम)
(३) सहर सहर (मध्यमाभ्या नम)
(४) आत्म तत्व (अनामिकाभ्या नम)
(५) प्रकाशय प्रकाशय (कनिष्ठकाभ्यां नम)
(६) हु फट् स्वाहा (करतल कर प्रष्ठाभ्या नम)

अथ हृदयादिन्यास —

(१) ॐ नमो हनुमते (हृदयाय नम)
(२) मम मदन क्षोभ (शिरसे स्वाहा)
(३) सहर संहर (शिखायै वषट्)
(४) आत्म तत्व (कवचाय हुम्)
(५) प्रकाशय प्रकाशय (नेत्र त्रयाय वौषट्)
(६) हु फट्, स्वाहा (अस्त्राय फट्)

तत्पश्चात हनुमान जी का ध्यान करें ।

ध्यान मत्र—

जानुस्य वाम वाहु च ज्ञान मुद्रा परं हृदि ।
अध्यात्म चित्तमासीन कदलीवन मध्यमम् ॥
बालार्क कोटि प्रतिभम् ध्यायेज्ज्ञानप्रद हरिम् ।

अर्थात् हनुमान जी का बायां हाथ घुटने पर रखा है, दाहिना हाथ ज्ञान मुद्रा मे स्थित होकर हृदय से लगा है। ये आध्यात्म तत्व का चिंतन करते हुए कदलीवन मे बैठे हैं, उनकी कीर्ति उदय काल के कोटि-कोटि सूर्यों के समान है। ऐसे ज्ञानदाता हनुमान जी का ध्यान करना चाहिए। ध्यान के अनन्तर माला का पूजन करना चाहिए। माला शुद्ध स्फटिक शङ्ख की या रुद्राक्ष की माला से जप करना चाहिए।

माला प्रार्थना निम्न लिखित हैं—

माला प्रार्थना—

ॐ मा माले महामाले सर्व शक्ति स्वरूपिणी।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तमान्मे सिद्धिदाभव॥
ॐ अविघ्न कुरु मालेत्व गृह्णाभि दक्षिणे करे।
जप काले च सिद्धियर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥

ॐ अक्ष मालाधिपतये सुसिद्धि देहि देहि सर्व मन्त्रार्थ साधनि साधय साधय सर्व सिद्धि परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

इस प्रकार माला की प्रार्थना कर निम्नलिखित मन्त्र का जप करें—

ॐ नमो हनुमते मम मदन क्षोभ संहर संहर।
आत्मतत्व प्रकाशय प्रकाशय हु फट् स्वाहा॥

उपरोक्त विधि द्वारा इस मन्त्र का जप प्रति दिन करना चाहिए। मन्त्र जप संख्या का विधान सवा लक्ष (१, २५, ०००) हैं। परन्तु १ माला भी प्रतिदिन जप लिया जाय तो अवश्य ही लाभ होगा बशर्ते कि प्रतिदिन हनुमान जी के सामने जप किया जाये।

—✱—

पृष्ठ २२४ का शेषांश — स्वप्नदोष–स्वप्न मेह

कर दूध मे लटकाकर दूध को गरम करें। शिलाजीत घुल जाने के बाद मीठा मिलाकर दूध दें।

(३) त्रिफला चूर्ण ६ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती मक्खन से या शहद से चटावे। ऊपर से गर्मकर ठडा दूध दे।

(४) चन्द्रप्रभावटी (निर्मल सस्थान) डावर आदि किसी कम्पनी की बनी २-२ गोली सुबह शाम गरम दूध ठडा करके मिश्री मिला कर पिलावें।

(५) समुद्रशोष के बीज कूट छानकर ३ माशा से ६ ग्राम तक ईशबगोल की भुसी ५ ग्राम मिलाकर तथा उसमें बराबर की मिश्री मिलाकर सुबह शाम ठडे पानी से या ताजा दूध से दें।

(६) शतावरी का चूर्ण ३ ग्राम, स्वर्णभग २ रत्ती की मात्रा से मिलाकर गरम कर गर्म कर ठडे किये हुये दूध से मीठा मिलाकर देवे।

(७) छोटी दुधि, गुलाब का फूल ३-३ ग्राम, इन्हे मिलाकर मीठे दूध या जल से दे।

(८) शङ्खपुष्पी, दुद्धी, शतावरी, सफेद मूसली सेमल मूसली सब बराबर लेकर सबके बराबर मिश्री मिलावें। ५-५ ग्राम मीठे दूध या ताजा पानी से दें।

(९) अश्वगन्धा, वन्शलोचन, प्रवाल पिष्टी, शतावरी चूर्ण मिश्रण करके सबके बराबर देशी बूरा (चीनी) मिलाकर ३-३ माशा सुबह सायं दिन में तीन बार देवें।

(१०) अमरवेल का रस मिश्री मिलाकर देने से विशेष फायदा होता है।

(११) आवला (आमलकी) चूर्ण मिश्री मिलाकर देने से भी फायदा करता है।

(१२) गोखरू, गिलोय, आवला तीनो का चूर्ण मिला बराबर मिश्री मिलावे और ३-३ ग्राम सुबह शाम दें।

(१३) निर्मली के बीज २४ घंटे पानी मे भिगोकर घोटकर मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिये।

पथ्य—इसमें लघु पौष्टिक एव लघु सात्विक भोजन ज्यादा तेज मिर्च मसाला न हो। ऐसी सब्जी तथा सतरा मौसमी, अनार केला आदि फल उपयोग में लेवे।

अपथ्य—रात्रि जागरण, विशेष धूम्रपान, गर्म चाय एव खट्टे पदार्थ और तीक्ष्ण पदार्थ, तली हुई चीजें व मैदा मावा के बने पदार्थों का सेवन निषिद्ध है।

—००—

कुछ असाध्य पुरुष रोग

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, सावर-कुन्डला जिला भावनगर (गुज०)

पुरुष रोगों में कुछ ऐसी भी व्याधि हैं, जो असाध्य होती हैं—उनका लक्षण-उपद्रव देखे जाते हैं और उनकी चिकित्सा करने पर भी ऐसा रोग मिट नही सकता।

नपुसक और क्लैव्य के बारे में—इस अङ्क में अन्य विद्वानों ने असाध्य नपुंसक और क्लैव्य पर वर्णन किया है, अतः उनको छोड अन्य असाध्य पुरुष व्याधि पर विश्लेषण करूंगा।

असाध्य पुरुष रोग निम्नोक्त हैं—

१. वीर्यगतवात, २ वीर्यगत कुष्ठ, ३ वीर्यगत मसूरिका, ४ वीर्यगत ज्वर।

(१) वीर्यगत वात—आवृत वाताध्याय मे वीर्यगत वात का संक्षेप मे उल्लेख मिलता है। सामान्यतया आवृत वात के लक्षणों में यह विशेषता होती है कि जिस किसी का भी आवरण होगा उस दोष या धातु के लक्षण वात के विकृत्यात्मक लक्षणों के साथ प्रमुख रूप से प्रकट होगे। वात के लक्षणों के साथ प्रकट होने वाले इन प्रमुख लक्षणो से ही आवरण का ज्ञान होता है।

शुक्रावृत वात लक्षण–जब वायु शुक्र से आवृत होती है तब शुक्र में वेग नही होता या शुक्र में अतिवेग होता है। इन दोनों अवस्थाओं के साथ-साथ शुक्र में निष्फलत्व (गर्भधारण कराने में असमर्थ) होता है। अत. शुक्रगत वायु की वैकृति अवस्था मे शीघ्रपतन, नपुसकता या बीजस्तम्भ, गर्भस्राव या गर्भपात अथवा गर्भ वैकृति (गर्भ स्थित भ्रूण का विकृत होजाना), दुर्बलता, स्मरणशक्ति की कमी, अनिद्रा, ओजक्षय (प्रतिमा जो अष्टधातु कहलाता है) इसकी कमी से प्रतिभाहीनता स्वाभाविक हैं।

चिकित्सा विमर्श—आवृत वात रोग कष्ट साध्य होते हैं। शुक्रगत वात भी कष्टसाध्य है। शास्त्रों में इस रोग की स्पष्ट चिकित्सा नही है। अत आचार्यों ने इस रोग को असाध्य ही समझा होगा। फिर भी सशोधन का अवकाश है। आयुर्वेद विद्वानों को इस पर गहन विचार करना जरूरी है।

बल एव शुक्र तथा हर्षण करने वाले अन्नपान का प्रयोग करना चाहिये। यदि मार्गावरोध हो तो शुक्र का विरेचन करने वाले द्रव्य एव उपक्रमो का प्रयोग करें।

(२) वीर्यगत कुष्ठ—कुष्ठाध्याय मे कुल मिलाकर अठारह प्रकार के कुष्ठ रोग का वर्णन है और धातुगत कुष्ठ रोग का वर्णन अलग से दिया है। जब प्रकुपित दोष क्रमश' रसादि सप्तधातु में प्रवेश करके कुष्ठ रोग पैदा करते हैं, तब वह कष्टसाध्य तथा असाध्य बन जाते हैं। उनमें रसगत, रक्तगत, मासगत, वातज और कफज साध्य मेदोगत और द्वन्द्वज कुष्ठ याप्य और मज्जा, अस्थि तथा शुक्रगत असाध्य माना गया है।

> दम्पत्यो कुष्ठबाहुल्याद् दुष्टशोणित शुक्रयो।
> यदपत्य तयोर्जात ज्ञेय तदपि कुष्ठितम्॥

अर्थात् स्त्री के आर्तवगत और पुरुष के शुक्रगत बीज भाग कुष्ठ द्वारा दूषित होने पर उनकी जो सन्तान होती है वह भी कुष्ठि होती है।

शुक्रगत कुष्ठ मे कुहनी के नीचे का हाथ निश्चेष्ट होना, अगों की गति का क्षय, भेदनवत् पीड़ा, घाव का फैलना तथा रसादि धातुगत कुष्ठ के भी लक्षण होते हैं।

चिकित्सा–सभी आचार्यों ने इस पर चिकित्सा सबधी विचार नही किया है और यह रोग असाध्य है।

(३) वीर्यगत मसूरिका—मसूरिका जब रसादि धातुगत बन जाती है तब कष्टसाध्य एव असाध्य बन जाती है। वीर्यगत मसूरिका के लक्षण इस प्रकार हैं—

> पक्वाभा पिडका स्निग्धा श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदना।
> स्तैमित्याऽरति समोह दाहोन्माद समन्विता॥
> शुक्रस्थायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि।
> निर्दिष्ट केवलं चिह्न जीवनं न तु दृश्यते॥

—शेषांश पृष्ठ २२९ पर देखें।

शुक्र मेह

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य

निदान व कारण—

आराम से सोना (आस्या सुखं, स्वप्न सुख) तथा आराम से गद्दी तकिये मे सदा पड़े रहना, दही, ग्राम्य औदक तथा आनूप पशु पक्षियों के मांस का सदा सेवन करना, द्रव्य तथा अनाज एवं ईख के बने पदार्थ का निरन्तर सेवन करना एव उन सभी आहार-विहारों का सेवन जो कफ को विकृत करते हैं। इन कारणों के अतिरिक्त शुक्र मेह के अन्य कारण निम्न हैं—

पूयमेह होने से, अजीर्ण हो जाने से, व्यायाम न करने से, मल विबन्ध से, रात्रि में अति भोजन करने से, व्यायाम के समय शिश्न पर वस्त्र का बार-बार घर्षण होने से भी कभी-कभी पुरुषों की शुक्र धातु का क्षरण हो जाता है। इसके अलावा—

अति स्त्री प्रसङ्ग (सभोग), अश्लील कामोत्तेजक नग्न चित्रमय उपन्यास व उत्तेजक पत्रिकायें पढ़ना, मैथुन के विषय मे चिन्तन करते रहना, अत्यधिक सिनेमा देखना तथा हस्तमैथुन, गुदा मैथुन और पशु मैथुनादि कुटेवों के फलस्वरूप तथा अधिक घुड़सवारी व अधिक साईकिल पर घुमना आदि कारणों से वीर्य पतला होकर मूत्र के साथ आता रहता है।

अग्निमांद्य, कषायित्, उदर कृमि, निद्रा का अभाव; सुजाक, उपदंश आदि रोग, मानसिक चिन्ता, अवसाद आदि कारण ही सहायक रूप में माने जाते हैं।

लक्षण—

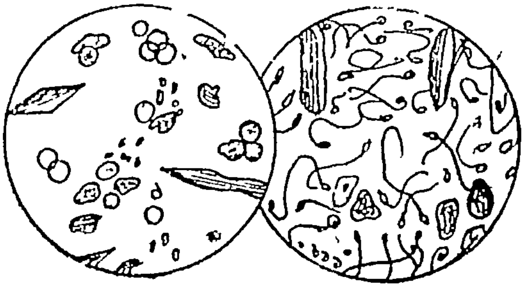
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा मुहुर्मेहति यो नर ।
शुक्रमेहिमाहुस्त पुरुषं श्लेष्मकोपतः ॥

अर्थात् जो व्यक्ति वीर्य के समान मूत्र अथवा मूत्र में शुक्र धातु मिला हुवा मूत्र बार-बार त्याग करता है उस व्यक्ति को शुक्र मेह है ऐसा जानना चाहिए।

मल-मूत्र के वेग को रोकने के बाद मल मूत्र का त्याग करने पर जोर लगाकर त्याग करने से वीर्य का पतन हो जाना, शीघ्रपतन हो जाना तथा स्वप्न (निद्रा) में वीर्यपात हो जाना शुक्र मेही का लक्षण समझना चाहिए।

परीक्षण—

रोगी के मूत्र का रङ्ग वीर्यवत् देखकर ही आभास किया जा सकता है। मूत्र त्याग के पश्चात् रोगी को चक्कर आकर आखों के सामने अधेरा छा जाता है। मायक्रोस्कोप द्वारा मूत्र परीक्षण से मूत्र मे शुक्राणु मिलते हैं।



प्रोस्टेट ग्रन्थि का स्राव   पुंबीज युक्त शुक्र

चिकित्सा—

१. निदान परिवर्जन-अर्थात् रोगोत्पत्ति के कारणों से दूर रहना, उससे बचना जरूरी है। तमाम कफ वर्धक आहार-विहार का त्याग करना आवश्यक है।

२ कफज मेह की जो चिकित्सा दर्शायी गई है, वह चिकित्सा करने से लाभ हो जाता है।

३ सदाचार का पालन करना, सयम रखना, बीडी, तम्बाकू, सुरापान आदि व्यसनों से दूर रहना।

४ औषध चिकित्सा—

(१) असगन्ध, सालम पजा, गिलोय, वट की अंतर छाल, निम्बत्वक्, वासा पत्र-समान भाग लेकर, वस्त्र पूत चूर्ण बना—१-१ माशा तीन बार मधु से देवें।

(२) न्यग्रोधादि चूर्ण १ माशा, महा सुदर्शन चूर्ण १ माशा, त्रिबग भस्म २ रत्ती, शु. माक्षिक २ रत्ती, शतपुटी अभ्रक भस्म २ रत्ती मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन में तीन बार मधु से देवें।

(३) जीवितप्रदा वटी—१ गोली ३ बार पानी से।

(४) चन्द्रप्रभा वटी—१ गोली ३ बार पानी से।

(५) स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण—रात्रि को सोते समय ५ ग्राम चूर्ण जल से।

इनके अलावा—

वसन्त कुसुमाकर रस, शिलाजत्वादि वटी, वग भस्म, गोक्षुरादि गुग्गुलु, मेहमुद्गर रस, मेहान्तक वटी, प्रमदेभांकुश रस (निर्मल) इत्यादि औषध प्रयोग करें।

आधुनिक आयुर्वेद पेटेन्ट योग भी दिये जाते हैं जो निम्नोक्त हैं—

स्पीमेन फोर्ट (हिमालया) + टेन्टेक्स फोर्ट (हिमालया) दोनों साथ देते हैं।

बृहत् कामचूड़ामणि रस (निर्मल अलीगढ)–२ गोली सुबह और शाम देने से लाभ मिलता है।

वगशील, और फोर्टेज (अलारसिन–बम्बई) दोनों विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधि हैं—देने से लाभ होता है। अन्य अनुभूत योग निम्नोक्त हैं—

(१) रसायन चूर्ण १ माशा, गन्धक रसायन २ रत्ती, त्रिवग भस्म २ रत्ती, शतावरी चूर्ण १ माशा मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया ३ बार मधु से।

(२) गोक्षुरादि गुग्गुलु—२ गोली ३ बार जल से।

नोट—कुछ विद्वान शुक्र मेह को स्वप्नदोष मानते है, मगर दोषादि प्राबल्य कारण आदि से विचार करने पर दोनों का स्वरूप अलग है।

कुछ विद्वान धातु स्राव (शुक्र स्राव) को शुक्र मेह मानते हैं। धातु स्राव जैसा कोई रोग शास्त्रों में वर्णित नही है। शुक्रमेह प्रमेह का प्रकार माना गया है।

कुष्ठ असाध्य पुरुष रोग — पृष्ठ २२७ का शेषांश

अर्थात् जिसे मसूरिका की पिडिकायें पकी हुई सी (पीली और नरम) हो, स्निग्ध हो, चिकनी हो, अत्यन्त पीडा करने वाली हो, आर्द्र हो, व्याकुलता करने वाली हो, मोह-दाह और उन्माद करने वाली हो, शुक्रगत मसुरिका कहते हैं। यह जीवन को नष्ट करती है।

विमर्श—असाध्य है। अतः चिकित्सा निर्देश नहीं है।

(४) वीर्यगत ज्वर—जब ज्वर धातुगत बनता है तो गम्भीर रूप ले लेता है, वीर्यगत ज्वर के लक्षण इस प्रकार है—

> मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे।
> शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः॥

जिसके लिंग में स्तब्धता (जडता) और शुक्र का अधिक क्षरण ऐसा लक्षण हो तो उसका ज्वर शुक्र धातु के आश्रय है और शुक्रगत ज्वर होने से मृत्यु हो जाती है।

यहां शुक्र मे पित्त दोष की वृद्धि होकर शुक्र अपने स्थान से च्युत हो जाता है। यह मारक लक्षण है।

विमर्श—शुक्रज ज्वर असाध्य हैं। अतः शास्त्र इसकी चिकित्सा करने में मौन हैं। शुक्र देह की अन्तिम धातु है, अतः शेष धातुओं का सार है। इनके स्थानों को जब ज्वर आक्रान्त कर लेता है तब इसका कोई उपचार नही है। चरकाचार्य कहते हैं कि—

> शुक्र स्थानगतः शुक्रमोक्षं कृत्वा विनश्य च।
> प्राणं वाय्वग्निसोमैश्च सार्धं गच्छत्यसौ विभुः॥

अर्थात् शुक्र का अधिक मोक्ष होने से सर्व शरीरस्थ प्राणवायु, अग्नि तथा सोम का भी क्षय हो जाता है, जिससे प्राणान्त हो जाता है।

> दग्ध्वेन्धनं यथा वह्निर्धातून् हत्वा यथा विषम्।
> कृतकृत्यो व्रजेच्छान्तिं देहं हत्वा तथा ज्वरः॥

जिस प्रकार अग्नि ईंधन को दग्ध कर और विष धातुओं को नष्ट कर शान्त हो जाते हैं उसी प्रकार शुक्रधातुगत ज्वर जीवित शरीर को नष्ट कर स्वयं शांत हो जाता है।

—★✤★—

शीघ्रपतन चिकित्सा

कविराज वैदेहीशरण सिंह, आयुर्वेदाचार्य, वसन्तपुरी, पो० पीरपैंती (भागलपुर) विहार

—०×०—

एकौषधि चिकित्सा—

(१) इमली के वीज को ४-५ दिन पानी में फुलावें, ऊपर का छिलका हटाकर गुड मिलावें एव चने के वरा-वर गोली वनाकर सेवन करें।

(२) दूध में शतावर (पीसकर) तथा मिश्री मिला कर सेवन करें।

(३) वताशा में वरगद का दुध डालकर पीवें, शीघ्र लाभकारी है।

(४) चिरमिटी सफेद का चूर्ण दूध मे मिलाकर पीने से शीघ्रपतन को दूर करता है।

(५) अण्डे की जर्दी मे (पाच), डेढ माशा हीग मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

(६) असगन्ध, सोंठ, विधारा वरावर भाग लेकर चूर्ण वनावे, वरावर मिश्री मिलाकर एक तोला चूर्ण फाककर दुग्ध पीवें।

(७) कौंच की कच्ची फली को पीसकर दूध के साथ पीने मे लाभ होता है।

(८) पका कटहल आधा पाव, केशर १ रत्ती, कस्तूरी आधा रत्ती एव थोडा सेंधा नमक मिलाकर खाने से शीघ्रपतन मे लाभ होता है।

(९) लिंग मे चमेली का तेल मालिश करें, इससे शीघ्र पतन दूर होता है।

(१०) मकरध्वज का सेवन भी शीघ्र पतन दूर करता है।

अनुभूत एवं परीक्षित प्रयोग

डा० वासुदेव एवट का योग

(१) गिरी कद्दू का वीज १९० ग्राम, गिरी वादाम १९० ग्राम, खशखश १२० ग्राम, गिरी फुदक वीज १२० ग्राम, चांदी का वर्क ६ ग्राम, तवाशीर शुद्ध ४८ ग्राम, वडी इलायची ६ ग्राम, शहद ६८० ग्राम।

कद्दू के वीज को साफ कर लें, फिर वादाम की गिरी (विना छिलका उतारे), इलायची के दाने को साफ कर फुदक (महीन) के वीज को लेकर उन्हे तवाशीर में मिलावें और महीन पीसे, फिर वर्क के साथ खशखश और शेष सामग्री मिलावें और खरल करें। इस प्रकार महीन चूर्ण जब लुगदी वन जाय तो उसमे शहद डालकर घोटे, जब मिल जाय तो एक शीशी में भर लें। हर रोज १० से २० ग्राम दूध के साथ लें।

(२) शिलाजीत ६६ ग्राम, शुद्ध कुचला ६६ ग्राम, लौह भस्म ३८ ग्राम, जायफल २४ ग्राम, लौंग २४ ग्राम, जावित्री २४ ग्रा., अकरकरा ३६ ग्रा, शुद्ध केशर १२ ग्रा, केंचुआ ३८ ग्रा, शिगरफ भस्म २४ ग्रा., संखिया भस्म ३ ग्राम, शुद्ध कुचला, लौह भस्म, अकरकरा, केंचुआ, जाय-फल और लौंग—सभी उपर्युक्त सामग्री को भलीभांति पहले साफ कर लें और फिर संखिया एव शिगरफ के साथ अच्छी तरह खरल करें। तदुपरान्त पान का रस आवश्यकतानुसार लें। कई घण्टे इसे खरल करें, फिर केशर मिलाकर मक्खन की तरह मुलायम वनावे और शिलाजीत मिलाकर खरल करें, जब तक सभी दवायें एक जीव हो जाय तो उसे ३-३ रत्ती की गोलियां वनावे। सुवह दोपहर एव शाम को दूध के साथ लें। यह अचूक नुस्खा है।

हरिदास वैद्य जी का नुस्खा—छोटी इलायची के वीज, जाविश्री, जायफल, लौंग, अकरकरा, दालचीनी, केशर, शुद्ध सिंगरफ, अभ्रक भस्म (हजार पुटी) प्रत्येक १-१ तोला, मकरध्वज (षड् गुण बलि जारित) ३ माशे, कस्तूरी ६ माशे—सारी चीजो को कूट पीसकर महीन करें। मकरध्वज को आठ दस घण्टे खरल करें, फिर सबको खरल में डाल ऊपर से शहद की भावना दें। इस गोली को खाकर मिश्री मिला दूध पीवें।

—शेषांश पृष्ठ २३२ पर देखें।

मूत्र शुक्र

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, भारद्वाज औषधालय,
स्वामी नारायण मन्दिर, सावर-कुण्डला (भावनगर) गुजरात

मूत्र शुक्र पुरुषो मे होने वाला मूत्र जनित तथा वीर्य जनित व्याधि है। सहिता ग्रन्थो मे मूत्र रोगो पर सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण किया गया है। उसमे मूत्राघात नामक एक अध्याय अलग से दिया है। यद्यपि मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि भी मूत्रमार्ग जन्य व्याधि हैं और उनका भी अलग अध्याय मे वर्णन मिलता है। मूत्राघात तेरह प्रकार का है। इस मूत्राघात का मूत्र वीर्य व्याधि एक प्रकार का माना गया है।



मूत्राघात का सामान्य कारण एवं लक्षण—

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश।
प्रयो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादय ॥

अर्थात् दोषो के प्रकुपित होने से तेरह प्रकार के मूत्राघात होते हैं, मूत्र का वेग रोकने से बहुधा मूत्राघात-वातकुण्डलिका आदि उत्पन्न होते हैं।

मूत्र शुक्र लक्षण —

मूत्र का वेग रहते हुये मैथुन करते हुए पुरुष का वायु प्रकुपित हो जाता है। इसके द्वारा प्रवृद्ध अपने स्थान से हटा शुक्र त्याग के पूर्व या पश्चात निकलता है, ये चूने के पानी के समान या राख के समान होता है, इसे मूत्रशुक्र कहते हैं। मूत्र त्याग मे कृच्छता नही होती, शुक्र ग्रन्थित होने पर कृच्छता पैदा होती है।

कहा गया है कि—

मूत्रितस्य स्त्रिय यातो वायुना शुक्रमुद्धतम्।
स्थानात् च्युत मूत्रयत प्राक्पश्चाछाप्रवर्तते ॥
भस्मोदकप्रतिकाश मूत्रशुक्र तदुच्यते।

इस रोग मे कई आहार एव विहार जन्य कारण है। सिर्फ मैथुन करने से पूर्व मूत्र प्रवृत्ति का वेग आता है, उसको रोकने से होता है। जब मैथुन क्रिया समाप्त और पश्चात मूत्र प्रवृत्ति करने से मूत्र के साथ शुक्र के कुछ अश बाहर निकलता देखा जायेगा और मैथुन समय अल्प होगा। क्योकि मूत्र रोकने से मूत्र मूत्राशय मे जमा होता है और परिणामत अपान वायु विकृत होता है, अपान वायु मूत्र को बाहर निकालने मे प्रवृत्त होता है, मगर व्यक्ति उस समय मैथुन क्रिया मे लगा हुआ है और वीर्य वेग को प्रवृत्त करने मे, चलायमान करने भी अपान वायु का कर्म होता है, अत दो कर्म मुख्यत्थे करने होते हैं अत मैथुन मे अधिक समय नही लगता और अपान

वायु के कुपित होने से शुक्रपात तुरन्त ही हो जाता है। परिणामतः पुरुष और स्त्री दोनों मे अतृप्ति की भावना देखी जायेगी। मूत्र वेग को रोके हुए मैथुन करने से शुक्र का कुछ अंश ऊपर मूत्राशय की ओर चला जायेगा और कुछ अंश शुक्राशय में पड़ा रहेगा, और जब पुरुष मैथुन क्रिया समाप्त करेगा और तुरन्त ही मूत्र प्रवृत्ति करता है, तो उस समय मूत्र के साथ ऊपर गया हुआ शुक्र भी मूत्र के साथ बाहर निकलेगा।

सापेक्ष निदान—

मूत्र शुक्र और शुक्र मेह दोनों व्याधि एक जैसी लगती है। मगर दोनों अलग-अलग व्याधि हैं। शुक्रमेह प्रमेह जन्य व्याधि है, उनका अन्य कारण भी मिलता है। उनकी अलग चिकित्सा भी है। जबकि मूत्र शुक्र केवल मूत्रजन्य व्याधि है। उनका एक ही स्पष्ट कारण है। स्पष्टतया अलग चिकित्सा नही है।

उपाय—इसका उपाय व्यक्ति पर निर्भर होता है। जब मैथुन का समय आता है, तो उससे पहले पुरुष और स्त्री दोनो को मूत्र त्याग कर लेना चाहिए। बाद में मैथुन कर्म करना जरूरी है। ऐसा करने से मन मैथुन मे ही लग जाता है। मूत्राशय खाली रहने से अपान वायु शात रहती है, और केवल अपान वायु का कर्म शुक्र वेग को चलायमान करने को होता है। ऐसा भी होगा कि अगर स्त्री-मूत्र वेग को रोके हुए मैथुन कर्म करायेगी तो मूत्राशय में मूत्र का भार बढ़ जाता है, और पुरुष स्त्री के ऊपर सोते-सोते धक्का लगाता है, परिणामतः मूत्राशय में वेदना होगी और उसका मन पूर्णतः मैथुन कर्म में नहीं लगेगा। और शुक्रपात हो जाता है, और स्त्री मूत्र प्रवृत्ति करने जाती है, तब भी उनके मूत्र के साथ शुक्र देखा जायेगा। फिर भी यह व्याधि पुरुष जन्य ही है। स्त्री जन्य नहीं।

यह मूत्राघातज मूत्र शुक्र की औषध चिकित्सा किसी भी आचार्य ने नहीं बतायी है। यह कोई स्पष्ट व्याधि नहीं है; और बिना उपचार मिट जाने वाली है। इसीलिए शास्त्रों में स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। सिर्फ एक ही उपाय होगा—मैथुन के पूर्व मूत्र वेग को रोकना नहीं चाहिए।

उपद्रव—बार-बार ऐसे मैथुन करने से मूत्राशय में विकृति हो सकती है।

१—ध्वजभङ्ग हो सकता है।
२—शीघ्रपतन हो जायेगा।
३—मैथुन समय में शिश्नेन्द्रिय शिथिल हो जायेगी।
४—मैथुन समय अल्प होगा।

स्पष्टता—मूत्र मे शुक्र को देखकर कुछ वैद्य ऐसा भी कहने लगते हैं कि मूत्र मार्ग में से पोषण धातु का स्राव होता है। यह मान्यता गलत है। धातु स्राव जैसा कोई रोग नही है। मूत्रशुक्र मूत्र वेग को रोकने से होता है।

यहा जो उपद्रव लिखे हैं, उनकी चिकित्सा की भी कोई जरूरत नही है। उनमे मूत्र वेग को प्रवृत्ति मात्र करना एक ही उपाय है। ✤

—पृष्ठ २१० का शेषांश—

शास्त्रीय योग

कामिनी विद्रावण रस, शिलाजित्वादि वटी, मदनानन्द मोदक, बसन्त कुसुमाकर रस, पूर्ण चन्द्रोदय, स्वर्ण वंग।

आयुर्वेदिक मिश्रित पेटेन्ट योग

(१) पूर्ण चन्द्रोदय रस १ गोली + टेन्टेक्स फोर्ट १ गोली मिलाकर मधु के साथ सेवन करें।

(२) मन्मथाभ्र रस १ रत्ती + लक्ष्मीविलास रस नारदीय १ गोली, मिलयकुन (लिडरले) १ चक्रिका + ऐटी साइक्लीन १ चक्रिका (१ गोली) सबकी दो पुड़िया बनावें। ताजा पानी से खिलावें।

(३) बसन्त कुसुमाकर रस १ गोली + चन्द्रकला रस १ गोली + स्वर्ण वंग १ रत्ती त्रिवंग भस्म १ रत्ती छोटी इलायची चूर्ण और मधु से लें।

(४) शिलाजित्वादि वटी १ गोली + स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती + अभ्रक भस्म २ रत्ती + प्रवाल भस्म २ रत्ती + जायफल १ माशा सबी को मिलाकर मधु के साथ सेवन करें। ✤

पुरुष रोगों पर अश्वबल-प्रयोगजन्य औषधियां

वैद्यरत्न द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य, मंत्री—विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, ओडो (नवादा) बिहार

बिहार के वयोवृद्ध, ज्ञान वृद्ध, आयुर्वेद-मनीषी, वैद्य रत्न श्री द्वारका मिश्र जी विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के महामन्त्री हैं। आपकी रचनाएं सदैव धन्वन्तरि पत्रिका मे प्रकाशित होती रहती हैं। आप वर्षों से लिखते हैं। यहां आपने कष्ट उठाकर खोजपूर्ण लेख भेजा है। आजकल तो पुरुष के रोगों में कुछ कुछ छप्पर वैद्यों को अनीति अपनाकर रुग्ण को परेशान करते देखा गया है। तब यदि समाज के सामने आयुर्वेद औषधि प्रयोग बताया जाय तो रुग्ण सर्वाङ्गीण दृष्टि से बच जाता है। यहा वैद्य जी का यही सराहनीय प्रयास है जो अभिनन्दनीय है। वृद्धावस्था होने पर भी आपने उत्साह दिखाकर स्वस्पता से लेख भेजकर धन्वन्तरि को उपकृत किया है। धन्वन्तरि परिवार आपके स्वास्थ्यमय स्वास्थ्य की प्रभु धन्वन्तरि के समक्ष प्रार्थना करते हैं और हर समय आपके अमूल्य ज्ञान का 'धन्वन्तरि' माध्यम से जनता जनार्दन को मिलता रहे—ऐसी प्रार्थना है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज।

पुरुष और स्त्री दोनो के सयोग से ही सृष्टि सन्तानोत्पत्ति होती है—कहा भी है—(पुत्र प्रयोजनी भार्य्या) अत सृष्टि कार्य में पुरुष का महत्व अधिक है। पुरुष अपनी शक्ति (प्राण) रूपी वीर्य को स्त्री के गर्भाशय तक पहुचाता है। उसमे जो असमर्थ है वह पुरुष नही उसका पुरुषत्व नष्ट हो जाता है। वह नपुसक है। खोया पुरुषत्व पुन. प्राप्त की आवश्यकता होती है। अत इसके लिये चिकित्सा औषधि एक अङ्ग है। प्रकृति और पुरुष दोनों का मिलन ही सृष्टि का मूलकारण है। यह भी सन्तति शास्त्र एक विज्ञान है। चरक ५ वें अध्याय मे पुरुष को ही जगत (लोक) कहा है यही घट-घट व्यापी ईश्वर का एक अ श है जो प्राकृतिक 'क्षिति-जल पावक गगन समीरा, तत्व से शरीर का निर्माण होता है—इस मानव शरीर निर्माण मे पुरुष वाचक चिह्न (लिंग) मूत्र मार्ग वीर्यवाहिनी पौरुष ग्रन्थि स्त्री से भिन्न जननेन्द्रिय मेहन मार्ग हैं। अत प्रमेह रोग स्त्री को नही होता। पुरुष चिन्ह विवेचन मे कहा है यथा—

बस्तिर्गस्ति शिरस्चैव पौरुषम वृषणीगुदम्।
द्वयगुल दक्षिणेपार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यत।
मूत्रस्रोत यथा शुक्र पुरुषस्यप्रवर्तति। —सुश्रुत।

यही अव्यक्त (शुक्र) हं ब्रह्म है जिस शुक्र (धातु) का संरक्षण करने वाले ब्रह्मचारी कहाते हैं। इस शुक्र की विकृति ही पुरुषत्व ओज शक्ति को नष्ट करती है। जो पुन प्राप्ति के लिए आयुर्वेद जीवनशास्त्र मे वाजीकरण चिकित्सा कहा है। उस वाजीकरण अश्वबल की प्रयोगात्मक औषधियो को पाठको के लाभार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

आयुर्वेदीय ग्रन्थो के वृष्याऽधिकार मे कहा है कि—चिन्ता बुढापा रोगादि कारणो से या उपवासादि या अति व्यवाय (ब्रह्मचर्य नष्ट) अति सहवास से वीर्य क्षीण हो जाता है। जब यह प्राण शक्ति वीर्य क्षीण हो जाता है तो पुरुष शक्तिविहीन होकर अपने को उत्साहरहित चिन्ता मग्न हो अनेक रोग जाल मे फंस जाता है। यथा—

चिन्तया जरया शुक्रे व्याधिभि. कर्म कर्षणात।
क्षयं गच्छत्व नशतात स्त्रिनाचाति मिशेवनतात॥

उक्त कारणो के परिहार मे अश्वबल (वाजीकरण) शास्त्रकारो ने कहा है। वाजी शब्द का अर्थ होता हैं वीर्य (धातु) दूसरे शब्द मे वाजी (घोडा) अश्व कहा हैं। अतः जिस औषधि प्रयोग से घोड़े के समान शक्ति उत्पन्न होकर वीर्य धातु बृद्धि किया जाता हैं यही वाजीकरण का मुख्य चिकित्सकीय प्रयोग है।

वाज शुक्र तदस्या नस्तोति वाजी अवायो वाजी क्रियते अनेन-इति वाजी करण।

अर्था वाजी व अश्व (घोडा) के समान वीर्य प्राप्त करत् पुरुष स्त्री से रमण करता हैं—उस योग को

महर्षि चरक ने वाजीकरण कहा है ।

पुष्ट वृष्य पदार्थों का सेवन इसके निराकरण मे बताया है। यानी जो पदार्थ मीठा, चिकना, जीवनदाता, जीवनीय तत्व से युक्त बृंहण वीर्ययुक्त भारी आत्मा मन को प्रसन्न करने वाला बृहण कहा जाता है ।

शास्त्रविहित प्रयोग—

(१) उडद (माष) की दाल घृत में भूनकर मिश्री दूध मे खीर बनाकर खाने से पुरुष अपने पुरुषत्व से अधिक स्त्रियो को सन्तुष्ट कर सकता है ।

(२) इसी तरह शतावर को मिश्री दूध मे खीर बना कर खाने से रतिशक्ति में वृद्धि होती है ।

(३) पुराने सेमल की जड का रस मिश्री के साथ शर्वत बनाकर पीने से ७ दिन मे पुरुषत्व शक्ति मे वृद्धि होती है, धातु वर्धक ।

(४) सेमर की जड को मूसली घृत मे भूनकर दूध मिश्री मिलाकर खाने से गौरैया पक्षी के समान रति शक्ति बढती है ।

(५) विदारी कन्द के चूर्ण घृत दुग्ध गूलर के रस को मिश्री दुग्ध मे घिसकर पीने से वृद्ध भी युवा के समान रति क्रिया मे तत्पर हो जाता है ।

(६) मास भक्षी पुरुष बकरे के दोनों अण्डकोषों को दूध मे घिसकर पीपर नमक मिलाकर खाते हैं। सौ स्त्रियों से रमणयोग्य होता है ।

(७) गोखरू तालमखाने के बीज गुलकाकरी और कधी (बला) चीनी (मिश्री) दूध के साथ वही पुरुष पी सकता है जिसके घर में १०० स्त्रियां हों ।

(८) उक्त वाजीकरण योगों मे नपुंसकता, ध्वजभग विशेष है। इनकी चिकित्सा में उपयुक्त औषधि सेवन वृष्य आहार भक्षण, परिहार में स्त्रियों का स्थान भी कम नहीं है। सुन्दर रूप वाली, यौवन अवस्था के षोड्श-सर्वाङ्गी काम कला में चतुर, वस्त्रालकार से शोभित शिक्षित स्त्री को भी वृष्य कहा गया है ।

स्त्री द्वारा चिकित्सा विधान में वीर्य वृद्धि (मैथुन) प्रवृत्ति उत्तम स्त्री के द्वारा ही संभव है। कारण सुन्दर स्त्री के दर्शन,स्पर्शन, चिन्तन आदि से शुक्र उत्पत्ति होकर लोग मैथुन क्रिया में लग जाते हैं। ध्वजभंग नपुंसकता की चिकित्सा मे अपनाई गई स्त्रियो में विशेष गुण होने चाहिए। अपने हाव भाव कटाक्ष दर्शन स्पर्शन से पुरुषके हृदय मे हर्ष की जागृति उत्पन्न हो। वर्षा ऋतु मे बादलों की घनघोर घटाएं स्वच्छ सुन्दर स्थान पर्यंक झरनों का पानी व आवाज, दृश्य सुन्दर, सुडौल, शिक्षित, रूपवती, अपने वश मे रहने वाली, आज्ञाकारणी, सभी कामकला रतिक्रिया में निपुण, अपने हावभाव शृङ्गार कटाक्ष, मन-मोहनी से जो पुरुषों के हृदय में गुदगुदी पैदा कर देती हो—ऐसी स्त्री को देखते ही मैथुनेच्छा जागृत हो उठती है ।

उक्त प्रकार की स्त्रियो के चुम्बन गुदा,कटिबन्ध कक्षा उरु, स्तनका स्पर्शन, दृढ आलिङ्गण द्वारा तीव्र उत्तेजना पैदाकर वाजीकरण में स्त्रियां सहायक हैं ।

यही नही शास्त्रोक्त औषधियो का सेवन भी उत्तम योग पर हैं। अत यहा एवं वाजीकरण प्रयोग शास्त्रीय औषधियो की एक सूची दे रहा हू। आप वैद्य नहीं हैं तो किसी योग्य वैद्य खरीद कर इन औषधियो मे से कोई भी सेवन कर लाभ उठायें। या इनमें चुनकर योग बनाकर सेवन करें ।

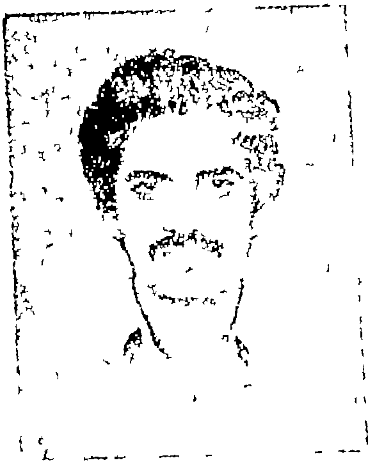
(९) वाजीकरण औषधि—नरसिंह चूर्ण, गोधूमाद्य घृत, बृहद अश्वगधा घृत, कूष्माड गुड, वृ शतावरी मोदक, मूसलीपाक, कौंचपाक, रतिवल्लभ, विजया मोदक, कामनी मदभंजन, मृतसजीवनी सुरा, अश्वगधापाक, शृङ्गी पाक, अश्वगन्धादि चूर्ण ।

(१०) कौंच के बीज, ताल मखाना, गुलशकरी, गोखरू, शतावर असगन्ध, वरियार के बीज, गोखुरू बीज, कधी, अतिवला, लौंग, मूसली का चूर्ण बराबर मिश्री सहित रोज दो बार १० ग्राम खाकर दूध पीता है, जिसके घर में १०० स्त्रिया रतियोग्य हैं—

१ मेदा महामेदा—वीर्यवर्धक
२ कंकोल क्षीर कंकोल—शुक्रल मधुर गुरु
३ मधुयष्टि—शुक्रल

४. अश्वगंध—शुक्रल वृष्य
५. शतावर-मूसली—शुक्रल वृष्य
६. गुड़ शकरी नागवला बीज—शुक्रल वृष्य
७. ताल मखाना—शुक्रल मधुर वृष्य
८ दुग्ध—नपुंसकता नाशक रतिरेचक वृष्य बलकर
९. उडद (माष)—„ „ „ „
१०. भिलावा मज्जा—स्तम्भक
११. गुग्गुल, शिलाजीत, धाय के फूल, हरड—रसायन
१२. आमला—रसायन, शुक्रल
१३. अजमोद—शुक्रल; शूलहित वृष्य
१४. जीरा कस्तूरी—शुक्रल गुरु
१५. देवदारु, त्रिफला—प्रमेह नाशक
१६. बेल पत्र, जामुन—मधुमेह नाशक
१७ गुजराती छोटी इलायची—मूत्रकृच्छ्रनाशक
१८. दालचीनी—शुक्रल, वर्णकत्री
१९. नख—लघु शुक्रल
२०. जटामासी—कान्तिवर्धक, बलप्रद
२१. गोल मिर्च—बल्याग्नि प्रदायनी
२२. बेलपत्र—बल्य लघु
२३. अकरकरा—उत्तेजक धातुवर्धक रतिवर्धक
२४. गोखरू—पुष्टिकर, प्रमेह, अश्मरीहर
२५. मुदगपर्णी— शुक्रल
२६. माषपर्णी—रूक्ष शुक्रल बलकर
२७. जीवणीयगण—शुक्रकृद् बृहणोहिम
२८. कौंच बीज—वृष्य मधुर
२९. कुशदर्भ—मूत्रकृच्छ्र नाशक
३०. केतारी जड़-
३१. तालमखाना—वृष्य शुक्रल
३२. बाराही कन्द—स्तन्य शुक्रदा बलदा रसायणी
३३. पेयन्दी आम—बलवीर्यकर लघु
३४. खीराबीज—मूत्रल
३५. सेब—रुचिकर शुक्रल बृंहण
३६. अमरूद—लघु वृष्य
३७. नाग भस्म—प्रमेह धातु विकार पुष्टिकर
३८. बग भस्म—प्रमेह धातु विकार शक्तिप्रद
३९ लौह भस्म— प्रमेह धातु विकार रक्त वर्धक
४०. अभ्रक भस्म—लघु वीर्य वृद्धिकर
४१. मोती भस्म—शक्ति वर्धक लघु बलकर
४२. प्रवाल भस्म—पुंशिस्लीव प्रमेह पित्त नाशक
४३. शालीधान—वृष्य बल्य
४४. यव (वार्ली) धान—बलकर गुरु
४५. गेहूँ—शुक्रल बलकर
४६. उडद—बल्य शुक्रल
४७. तिल— „
४८. पोई शाक—बल्य शुक्रल रक्तपित्त नाशक
४९. पेठा (कूष्माण्ड)—बल्य वृष्य शीत
५०. आलू शकरकन्द—बल्य वृष्य विष्टम्भी
५१. सेमर मुसेला—धातुवर्धक पुष्टिकर
५२. खिचडी—शुक्रल बलकर
५३. खीर—शुक्रल बलकर वृष्य
५४ रोटी—शुक्रल बलकर बृहण वृष्य
५५. उडद के बरा-शुक्रल लघु बलकर पाचन वायुवर्धक
५६. पालक शरबत-रुचिकर पित्त नाशक मूत्रल शुक्रल दाहत्रास हर
५७. चीउडा—वृष्य बल्य विष्टम्भ
५८. गोदुग्ध—जीवनं वृष्यमायुष्यं बलप्रद
५९. दधि-रुचिर पुष्टिद बल्य मूत्रकृच्छ्रनिवारणम्
६०. नवनीत (माखन)-पौष्टिक शुक्रल विवर्धन वृष्य
६१. जलजमनी-प्रमेह हर धातु पौष्टिक
६२. गुडमार—मधुमेह नाशक
६३ बंशलोचन-पुष्टिकर
६४. भांग—कामोत्तेजक, मादक
६५ रसोन-रसायन कामोत्तेजक वातनाशक शुक्रवर्धक
६६. नागकेशर-पुष्टिकर रक्तशोधक
६७ केशर-दुर्बलता नाशक ओज वर्धक
६८. कस्तूरी-शुक्रल गुरु

पुरुष में वृषण का विशेष महत्व



डा० नयनकुमार पी० जोशी बी. एस ए. एम.
राजकीय अखण्डानन्द आयुर्वेद कालेज, अहमदाबाद
एच/सातवा मजिल, फिरदोस फ्लेट, खानपुर, अहमदाबाद–१

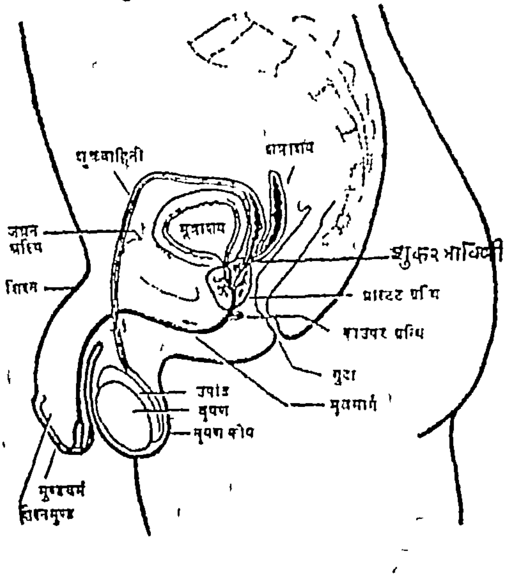
—✱✣✱—

डा० नयन जोशी आयुर्वेद के उत्साही युवा वैद्य हैं। सन् ७७ में अखण्डानन्द आयु० महाविद्यालय द्वारा स्नातक होकर ७८ से आप अपनी मातृ शिक्षा सस्था में सेवा दे रहे हैं। आपके लेख गुजराती में प्रकट होते रहते हैं। यहा श्री जोशीजी ने वृषण पर प्रकाश डाला है। आपका प्रयास उत्तम है। मैं अपेक्षा करता हू कि आप 'धन्वन्तरि' मासिक को सर्वांगीण सहकार देंगे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

सृष्टि का उत्पत्ति क्रम अविरत चलाने मे नर तथा मादा दोनों की आवश्यकता अपने कार्य वैशिष्टय से स्वीकार की गई है। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को इस कार्य सम्पादन के लिए जाति अनुसार विशिष्ट प्रजनन अवयव दिये हैं।

वृषणगत जटिल रचना



पुरुष के प्रजनन अङ्गों में वृषण तथा मेढ़ को प्रधान गिना जाता है। इसमें वृषण अवयव में सूक्ष्म तथा जटिल रचना तथा कार्य प्रणाली को देखते हुए, पुरुष मे कुल नव आनयविक रचना कार्य वैशिष्ट्य की दृष्टि से विद्यमान होती है।

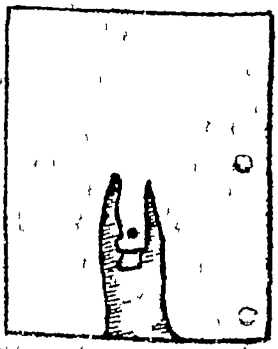
(१) वृषण कोष या अण्डकोष (२) वृषण
(३) उपाण्ड (४) शुक्र प्रणाली
(५) शुक्राशय (६) शुक्रस्राविणी
(७) अष्ठीला या पौरुष ग्रन्थि (८) कूपर ग्रन्थियां
(९) शिश्न

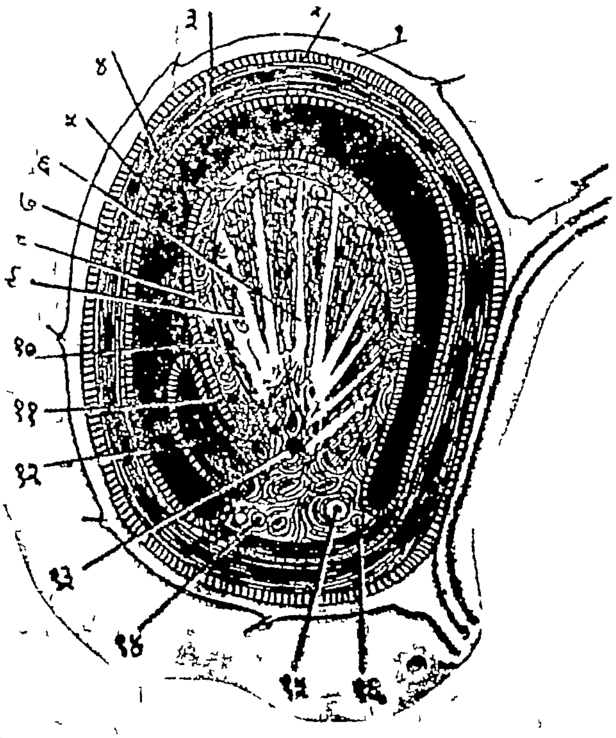
(१) वृषण कोष (Scrotum)—श्रोणि के नीचे लिंग के मूल में लटकी हुई थैली को अण्डकोष या वृषण कोष कहते हैं। वह वलियुक्त तथा मृदु त्वचायुक्त होते हैं। इसके दो अश प्रथम बाया और दूसरा दाहिना–जिसमें दो अण्ड विभक्त होकर रहते है। अण्डकोष में शुक्राणु की उत्पत्ति तथा जीवन के लिए, इसका तापक्रम शरीर तापक्रम से २ डिग्री कम होना चाहिए। इसलिए तापक्रम के नियन्त्रण के लिए इस थैली की त्वचा शीतकाल तथा युवावस्था में शरीर से चुस्त-सटा हुआ वृषण को रखती है, उष्ण काल तथा वृद्धावस्था में वह स्थिति स्थापकता कम होने से, विस्फार युक्त होकर, वृषण ढीला-लटका हुआ प्रतीत होता है।

(२) वृषण (Testies)—शुक्रोत्पादक ग्रन्थि के रूप में, दो वृषण-अण्ड, स्पर्मेटिक कोर्ड (धारक रज्जु) के

जरिये वृषण कोष मे लटके रहते है। जब पुरुष बच्चा गर्भावस्था में होता है, तब गर्भाधान के छः से आठ में माह तक यह दोनों अण्ड उदर में से बस्तिगह्वर में आकर रहते हैं। शिशु के जन्म से कुछ पहले दोनों अण्ड पूरी तरह से अण्डकोष में उतर आते हैं। वाम वृषण दक्षिण की अपेक्षया कुछ बडा होने से थोड़ासा ज्यादा नीचा लटकता रहता है, यह प्राकृत ही है। वयस्को में वृषण अण्डाकार ४ से ५ सेमी लम्बा, २ ५ से.मी चौडा तथा ३ से.मी तक आगे से पीछे तक की परिधियुक्त होता है। उसका वजन २२ से २५ ग्रा. तक रहता है। प्रत्येक वृषण मे

छिन्न वृषण कोष

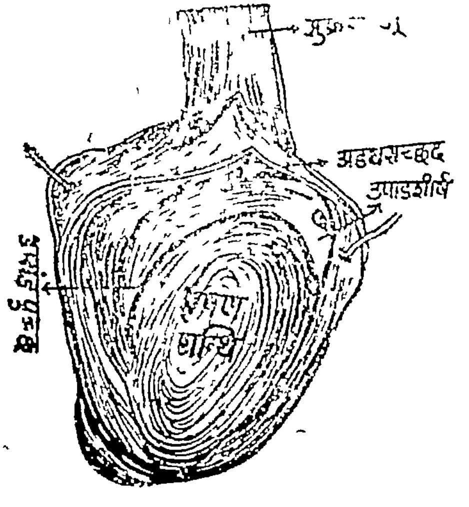




अनेक कोष तथा प्रणालियां होती हैं, जो शुक्राणु तथा अंतः स्राव (हारमोन) उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक वृषण मे एक-एक गज लम्बी, करीब ८०० से हजार तक शुक्रजनक नलिकाएें (Seminiferous tubules) होती हैं। ये सब प्रणालिकाओं को लम्बी करके, खोलकर जमीन पर फैला दी जायें, तो लगभग सवा मील जितनी लम्बी हो सकती हैं।

(३) उपाण्ड (Epididymis)—ये उपयव वृषण के ऊर्ध्व प्रान्त में स्थित हैं। वृषण कोष को बाहर अंगुली से दबाने पर उपांड की प्रतीति की जा सकती है। अण्ड में आई शुक्रजनक नलिकायें आपस में मिलकर, १५ से २० की संख्या में बडी नलिकाओं के रूप में होकर उपांड में जाकर खुलती हैं। उपाण्ड की कुल लम्बाई पाच गज होती है, किन्तु प्रकृति ने इसको सिकुडकर दो इन्च की जगह में समाविष्ट किया है। गर्भोत्पादन योग्य तथा जीवंत-गतिशील, शुक्र का संग्रह भी यहां होता है।

(४) शुक्र प्रणाली या वाहिनी (Ductus deference or seminal ducts)—जहां उपाण्ड समाप्त होता



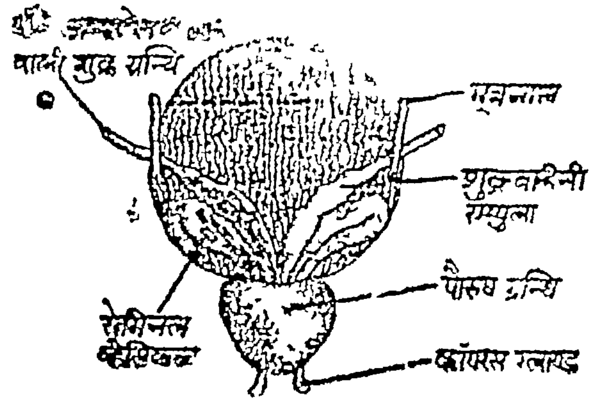
वृषण ग्रन्थि और उपाण्ड

है, वहा से एक नलिका, जिसे शुक्रवाहिनी कहते हैं–आरम्भ होती है। यह शुक्र प्रणाली शुक्राणु को आगे बढ़ने का सूक्ष्म मार्ग है, जो उदर गुहा मे से होती हुई आगे जाकर मूत्राशय के नीचे पहुचती है, जहा शुक्राशय के मुख इनमें खुलते हैं। शुक्राशय-मूत्राशय के नीचे बायें ओर दायें दोनों ओर इसके निकट होते है। आगे जाकर ये शुक्रवाहिनी प्रोस्टेट ग्रन्थि मे से होती हुई मूत्रमार्ग में खुलती है। परिवार नियोजन के शस्त्र कर्म में यह नली प्रारम्भ से काटी जाती है जिससे कि शुक्राणु, शुक्रस्राव में न मिल सके और गर्भाधान न हो सके।

(५) शुक्राशय (Seminal vesicles)—शुक्र नाली के नीचे दोनों ओर दो शुक्राशय हैं, जो ढाई इन्च चौडे होते हैं। शुक्र के घनत्व, पोषण तथा सरक्षणार्थ, फ्रुक्टोस तथा अन्य प्रोटीन युक्त पदार्थों का तरल स्राव वीर्यक्षरण के समय शुक्राशय से सम्मिलित होता है।

(६) शुक्रस्राविणी (Ejaculatory Duct)—यह शुक्राशय के नीचले सिरे से निकलकर शुक्रप्रणाली से जा मिलती है। यहा से प्रारम्भिक शुक्रस्रोत फिर अष्ठीला ग्रन्थि मे घुमकर, दोनो ओर से, शिश्न की जड़ मे आया हुआ, मूत्रमार्ग मे खुलती है। इसे वृषण का उत्सर्ग द्वार बोलते हैं।

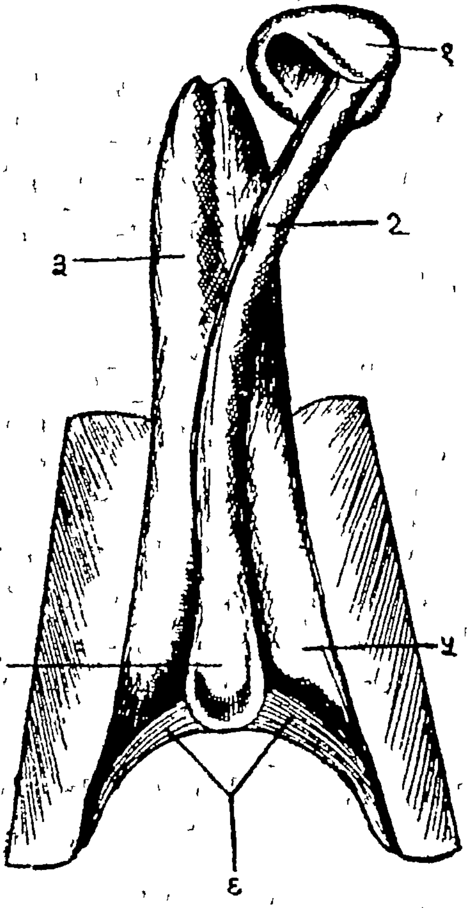
(७) अष्ठीला या पौरुषग्रन्थि (Prostate Gland)–यह ग्रन्थि वस्तिगुहा में दोनों शुक्राशयों के बीच तथा मूत्राशय के मूल में स्थित है। गुदा के भीतर गुद परीक्षण करते समय, अगुली से वह स्पर्शगम्य होती है। दोनों ओर की शुक्र नलिकाएँ मूत्राशय के नीचे स्थित अष्ठीला के पिछले पार्श्व से उसके अन्दर प्रवेश करती हैं। मूत्राशय से आरम्भ होकर, मूत्र नलिका में प्रवेश करने के पहले तक, मूत्रमार्ग का प्राय सम्पूर्ण भाग इसी में से (Prostate में से) होकर जाता है। यहां दोनों शुक्रस्रोत नलिकायें मूत्रमार्ग मे खुलती हैं। प्रोस्टेट के स्राव से मूत्रनलिका का मार्ग चिकनाईयुक्त रहता है। यह स्राव क्षारीय रीएक्शन युक्त है, इसलिए स्त्री के योनिपथ की अम्लता जो कि शुक्राणु की नाशक है उसको यह नष्ट



करके क्षारीयत्व प्रदान से शुक्राणु गतिशील बने रहते हैं। वीर्य में अधिकतर प्रोस्टेट ग्रन्थि का स्राव पाया जाता है, वीर्य की विशेष गन्ध Spermin नामक इसके विशेष स्राव से होती है। मैथुन मे स्खलन के समय, जब शुक्रस्रोत नलिकाओं से शुक्रादि वेग के साथ निकलता है, तब प्रोस्टेट ग्रन्थि का स्राव भी वेग के साथ निकलकर शुक्र में मिल जाता है। अष्ठीला मे आये विशेष पेशीतन्तु सम्भोग के समय मूत्रमार्ग के छिद्र को रोध की तरफ सिकोडकर बन्द कर देते हैं, जिससे वीर्य के स्राव, मूत्र त्याग नहीं हो सकता, क्योंकि मूत्र से शुक्र मे अम्लता बढ़ने से शुक्राणु का नाश होता है। कामोत्तेजना के बाद वह मूत्रमार्ग पुन. खुल जाता है। इस तरह पुरुष में मूत्रमार्ग तथा शुक्रवह मार्ग एक होने पर भी, दो अलग-अलग कार्य हो पाते हैं। वृद्धावस्था में इस ग्रन्थि की वृद्धि होने पर मूत्रगत वेदनायें तथा कामोत्तेजना की वृद्धि होती देखी जाती है।

(८) कूपर ग्रन्थि (Bulbo-urethral glands or cowper's gland)—निम्न शिश्नदण्डिका के मूल के दोनों ओर मटर के दाने समान दो छोटी-छोटी ग्रन्थियां होती हैं। इस ग्रन्थि का स्राव चिकना पारदर्शक तथा क्षारीय होता है जो कामुक विचारों की उपस्थिति या मैथुनवश उत्तेजना से उत्पन्न होकर शिश्न मुण्ड तथा शिश्नाग्र की त्वचा को स्निग्ध बनाता है। इस स्राव से रति कर्म सरलता से हो सकता है तथा मूत्रनलिका की अम्लीयता दूर होने से, शुक्राणु का मार्ग निरापद बनता है।

(८) शिश्न-लिङ्ग—प्रजनन कर्म तथा रति कर्म का मुख्य अवयव शिश्न, जो स्पंज के समान कोमल तन्तु कोषों से बनी हुई तीन मुख्य दण्डिका पेशियों से बना है। ऊपर की दो दण्डिकायें शिश्नपार्श्विका (Corpora cavarnosa) जो लिङ्गमूल से निकलकर शिश्नमुण्ड



शिश्न की पेशियों की स्थिति
१–शिश्नमुण्ड २–कोरपोरा स्पंजियोसा
३–कोरपोरा केवरनोसा ४–शिश्न का बल्ब
५–शिश्न का क्रस ६ विटप प्रवेशीय कला

(Glans penis) तक जाती हैं। तीसरी पेशी मध्यिकन्द्र काय (Carpus spongiosum) कहते हैं जो शिश्न के नीचले हिस्से में होती है। यह शिश्न-पार्श्विकाओं की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है तथा लिङ्ग छिद्र के पास पहुंचकर काफी चौड़ी और त्रिकोणाकार होकर शिश्न-मुण्ड का रूप ले लेती है। इन तीनों पेशियों से बने बीच वाले भाग से मूत्रनलिका पसार होती है। तीनों पेशियों में उत्तेजनाशील तंतु तथा रक्तवाहिनियाँ होने से कामोत्तेजना (प्रहर्षण) के समय रक्तवाहिनियों में रक्त वृद्धि होकर, पेशी की लम्बाई-चौड़ाई बढ जाने से लिङ्ग में उत्थितावस्था होती है, जो मैथुन के लिए आवश्यक है; उत्तेजना खत्म होने पर रक्त वापस निकलकर पूर्ववत् स्थिति आ जाती है।

वृषण का विशेष कार्य

शुक्रवहानां स्रोतसां वृषणौ मूलं शेफश्च। –च०वि० ५।

आयुर्वेद में शुक्रोत्पादक स्रोतस का मूल दोनों वृषण को बताया है तथा कार्य सम्पादनार्थ कर्म में भाग लेने वाले मेढ्र को मूल कहा है।

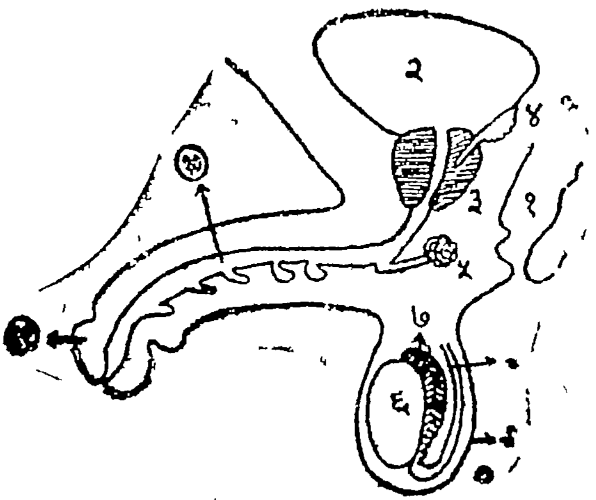
वृषण ग्रन्थियों मे दो जाति के कोष होते हैं–एक जो Testosteron अन्तः स्राव का उत्पादन करता है, जिसे अन्तः शुक्र कह सकते हैं। सामान्यतः तारुण्य का उदय होने पर करीब चौदह से सोलह साल की आयु वाले पुरुष जाति के बच्चे मे वृषणों के कोषों में (मस्तिष्क केन्द्रों से आदेश (F.H.S) रूप स्राव के रक्त में आने पर), पुंबीज का प्रादुर्भाव होने लगता है। Testosteron नामका हार्मोन इसमें से पैदा होकर रक्त में मिलकर, जिसको शुक्र का तेजस अंश सर्व शरीर व्याप्त होते कह सकते हैं। क्योंकि शुक्रधरा कला को आयुर्वेद ने सर्व शरीर व्यापक कहा है, जिससे पुरुषों में वह उसके व्यक्त लक्षण होते है। तारुण्य काल मे होने वाले पुरुष जाति के Secondary sex character (बाह्य लिङ्गोद्योतक चिह्नों में जो परिवर्तन होते हैं वो इस प्रकार हैं। भग प्रदेश तथा मुख पर बाल फूटना (दाढ़ी-मूँछ आना) बालक का स्वर जो लड़की जैसा होता है, बदलकर धीर गम्भीर होना, मुख पर मुँहासे होना, त्वचा दृढ़ तथा गहरे रङ्ग की होना मेद संचय कम होकर–मांस पेशियों की पुष्टि तथा सुदृढ़ होकर पुरुषोचित संहनन बनने लगता है। लिङ्ग की वृद्धि तथा वृषण का विकास होता है। कभी-कभी स्वर के बाद

—शेषांश पृष्ठ २५७ पर देखें।

वृषण शोथ (ORCHITIS)

डा० वेदप्रकाश शर्मा त्रिवेदी, आयुर्वेदाचार्य, ए०,एम०बी०एस० (लखनऊ), एच०पी०ए० (जामनगर)
विभागाध्यक्ष—अनुसन्धान अधिकारी, मानसिक व्याधि एवं शल्य शालाक्य चिकित्सानुसन्धान विभाग,
भारतीय कायचिकित्सा सस्थान (अन्तर्गत सी०सी०आर०ए०एस०, नई दिल्ली)।

—:o:—



पुरुष जननेन्द्रिय की प्राकृतिक रचना
१. गुद द्वार २ मूत्राशय ३. पौरुष ग्रन्थि, ४. शुक्राशय (सेमीनल वेसीकिल), ५. काउपर ग्रन्थि, ६. वृषण ग्रन्थि, ७ उपाण्ड (इपीडीडीमिस), ८ शुक्रवहा नलिका, ९. अण्डकोष, १० मूत्रनलिका, ११. शिश्नाग्र।

वृद्धि के भेद—

सुश्रुत मतानुसार इसके सात भेद हैं यथा—

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस व्याधि का वृद्धि में समावेश मिलता है।

वृद्धि निदान एवं सम्प्राप्ति—

स्वप्रकोपक कारणजन्य अधोगमनशील वायु प्रकुपित होकर स्थूल शोथ को उत्पन्न करता हुआ वंक्षण प्रदेश के मार्ग से होता हुआ अण्डकोषों (Scrotum) में जाकर वृषण कोष वाहिनी धमनी को दूषित करके अण्डकोषों के आकार को बढ़ा कर देता है। इस विकार को वृद्धि कहते हैं।

१. वातज, २. पित्तज, ३. श्लेष्मज, ४. रक्तज ५ मेद, ६ मूत्र, ७ आन्त्र।

विमर्श—मूत्र वृद्धि एव आन्त्र वृद्धि का मूल हेतु वात है अत. वात का ही विशिष्ट भेद है तथापि स्पष्ट रूप होने से वृथक भेद लिखा है।

समाधान—यद्यपि वृद्धि का शाब्दिक अर्थ बढ़ना है अत व्यापक अर्थ मे गलगण्ड, अर्बुद आदि भी आ सकते हैं। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में अण्डवृद्धि ही अभिप्रेत है।

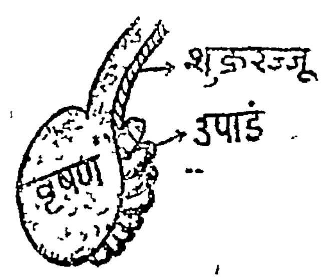
चरक संहिता—इस ग्रन्थ में इसका नाम 'बृध्न' है।

वृद्धि के कारण—सभी प्रकार की वृद्धियों में दो प्रकार के कारण हैं। १. सामान्य २. विशेष।

सामान्य कारण—वायु सभी प्रकार की वृद्धियों के कारण होता है।

विशेष कारण—पृथक पृथक प्रकार की वृद्धियो के विशेष कारण हैं।

कारण के पुनः भेद—(१) निज कारण
(२) आगन्तुज कारण



क्षयज उपाण्ड शोथ
(उपाण्ड और शुक्ररज्जु अधिक स्थूल और कड़े हो गये हैं)

वृषण वृद्धि—

आन्त्र वृद्धि को छोडकर सभी वृद्धिया इसमें समाविष्ट हो जाती हैं। शरीर रचना दृष्ट्या निम्न प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है—

(१) कोष या आवरण—इसमें निम्न रोग हो सकते हैं।

क—अधस्त्वक शोथ (Cellulitis)

ख—मेदोग्रन्थि (Sebeceious Cyst)

ग—अर्बुद (Tumour)

घ—मेदोज वृद्धि (Elephantiasis)

(२) अण्डरज्जु या वृषणावरण (Spermatic Cord & Tunica Vaginalis)–इसमें निम्न रोग हो सकते हैं—

क—मूत्रज वृद्धि (Hydrocele)

ख—रक्तज वृद्धि (Haematocele)

ग—सिरोत्फुल्लता (Vericocele)

(३) अण्ड ग्रन्थि शोथ (Enlargement of testis)–इसमें निम्न रोग हो सकते हैं—

क—अण्डग्रन्थि शोथ (Orchitis)—इसके निम्न कारण हो सकते हैं—

१. आन्त्रिक ज्वर (Typhoid), २. पाषाणगर्दभ (Mumps), ३. वातरक्त (Gout), ४. अर्बुद, ५. श्लीपद (Filaria) ६. शीत (Cold)

वृषणातिरिक्त बाह्यवृद्धि—

वृषण के अतिरिक्त किसी अग का बाहर निकलना वृद्धि कहलाता है यथा आन्त्र वृद्धि।

वृद्धि की विभेदक तालिका

निदान	स्पर्श	दर्शन	वेदना
वातिक वृद्धि	बस्तक के समान	रुक्ष	अकारण पीड़ा
पैत्तिक ,,	उष्ण	पके उदुम्बर फलके समान	दाह, पाक पीड़ा
कफज ,,	शीत, स्निग्ध	स्निग्ध	कण्डु, मन्द पीड़ा
रक्त ,,	उष्ण	कृष्ण, विस्फोट	पित्तज वृद्धिवत
मेदज वृद्धि	मृदु	ताड़फल सदृश	कफज वृद्धि वत
मूत्रज ,,	मशकवत मृदु	मशकवत	गमनेक्षोभ मूत्राकृक्षवत वेदना, हलकी पीड़ा

प्राच्य प्रतीच्य समन्वय

प्राच्य निदान

वातिक वृद्धि	जीर्ण वृषण शोथ (Chronic Orchitis)
पैत्तिक ,,	तीव्र वृषण शोथ (Acute Orchitis)
कफज ,,	जीर्ण ,, (Chronic or Tubercular Orchitis)
मेदोज ,,	(Scrotal Elephantiasis or simple Tumour)
रक्तज ,,	रक्त वृषण (Haemetocele)
मूत्रज ,,	जलवृषण (Hydrocele)

विमर्श—मूत्रज वृद्धि मे वस्तुत. मूत्र से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है अपितु वृषणरण (Tunica Vaginalis) का रोग है। रक्त वाहिनियों से जल चूकर वृषणावरण में एकत्रित होने लगता है। वृषावरण में रक्त एव मत्रातिरिक्त द्रव के एकत्रीभवन को मूत्रजवृद्धि या जलवृषण कहते हैं। विशिष्ट कारण आधुनिकों के विचाराधीन हैं तथापि वृषण शोथ, फिरंगज वृषण विकार, श्लीपद, शीत जलवायु कारण माने गये हैं।

मूत्रज वृद्धि का लक्षण समुच्चय—

१. अण्डकोष फूला हुआ २ पीडा का प्राय अभाव होता है ३. कण्डू अण्डकोष अत्यन्त बढ जाने की दशा में शिश्न प्रायः अन्तराविष्ट हो जाता है। ३ (क) परिणाम स्वरूप मूत्र त्याग के समय मूत्र अण्डकोष की त्वचा पर बहता है एवं क्षोभ के परिणामस्वरूप कण्डू होती है। ४. अस्त्यात्मक दीपिका परीक्षण (Positive Transillumination test), वृषण के बाईं ओर टार्च रखकर

जलाते हैं तथा दाईं ओर से देखने पर प्रकाश दीखता है तथा जल का भी आभास होता है ५. कम्पन अथवा तरंग प्रतीति होती है।

सापेक्ष निदान—अधस्त्वक शोथ (Cellulitis), वृषण शोथ, मेदोजवृद्धि, रक्तज वृद्धि, अर्बुद तथा मेदोवृद्धि से सापेक्ष्य निश्चिति की जाती है।

प्रभावी लक्षण—

नपुंसकता—प्रजोत्पादक (शुक्राणुओं) का निर्माण अण्डकोषों में होता है एवं इनके अस्तित्व के लिए शारीरिक तापमान से न्यून तापमान अपेक्षित होता है। शारीरिक तापमान इनके लिए प्रतिकूल होता है। इसीलिए इनको शरीर से बाहर रखा गया है। मूत्रज वृद्धि में वृषावरण में शारीरिक तापमान का द्रव संचय होता है जिसके कारण शुक्राणु या तो बन नहीं पाते, यदि बनते हैं तो नष्ट हो जाते हैं।

चिकित्सा सूत्र—अपथ्य-वात प्रकोपक आहार, विहार, अधिक शीतल जल, उपस्थित वेगों को धारण करना, अप्राप्त वेगों का प्रेरण, भार उठाना, अधिक मार्ग गमन, उत्कट आसन, उत्कट वाहन।

पथ्य—वातहर आहार-विहार, स्नेह, स्वेदन, विरेचन स्नेहन स्वेदन अनुभूत-स्वेदन—(१) एरण्ड तैल का मृदु अभ्यंग करके एरण्ड का पत्ता सेंक कर बांधे व लंगोट कसकर बांध दे। सोते समय बांधे।

(२) शिग्रु पत्र कल्क को एरण्ड तैल में कोष्ण स्विन्न करके बांधकर लंगोट बांधे।

(३) तम्बाकू का पत्ता स्विन्न करके लंगोट की सहायता से बांधे।

(४) एक बड़ा गोल बेंगन लेकर दो समान भागों में इस प्रकार काटे कि वृन्त के माध्यम से दोनों भाग जुड़े रहें। अब दोनों भागों के बीच का गूदा निकाल कर गर्त बनायें। दो भागों के गर्त अण्डकोष के ऊपर लगाकर दोनों भागों को धागे से बांध देवें। तीन घण्टे में अण्ड वृद्धि का शूल व शोथ ठीक होता है।

आहार व्यवस्था—शिग्रु फल का शाक, वास्तूक एवं अन्य विषघ्नहर एवं वातनाशक आहार सेवन करायें।

औषध व्यवस्था—सामान्य

प्रातःसायं—वृद्धि बाधिका वटी १ गोली, चन्द्रप्रभा वटी २ गोली जल से दो बार।

भोजनोत्तर—दशमूलारिष्ट १० मि० लि०, कुमार्यासव १० मि० लि०, जल २० मि० लि० दो बार।

रात्रि को शयनकाले (क) त्रिफला चूर्ण १० ग्राम, सेंधानमक यथावश्यक मिलावें।

(ख) एरण्ड तैल १० मि० लि०, दुग्ध २० मि० लि० मिलाकर (क) औषधि खाकर पीले।

स्थानिक—अनुभूत स्नेहन-स्वेदन में कथित कोई एक प्रयोग करे।

विशिष्ट चिकित्सा—रक्त, मल, मूत्र परीक्षणोपरांत कारण व व्याधि का निश्चय होने के पश्चात कारण प्रत्यनीक व व्याधि प्रत्यनीक चिकित्सा करनी चाहिए जिससे पुनरावृत्ति न हो सके।

शल्य कर्म—

यद्यपि प्रायः सभी प्रकार की वृद्धियां औषध साध्य होती हैं किन्तु मूत्रज वृद्धि, आन्त्र वृद्धि पुराने व बढ़े हुए होने पर शल्य कर्म साध्य होते हैं। औषधि सेवन लक्षणों में मात्र अस्थायी लाभ करती है।

आन्त्र वृद्धि—शल्यकर्म द्वारा आन्त्र को अतिक्रमण से रोकने हेतु मार्गावरोध करते हैं।

मूत्रज वृद्धि—इसमें दो प्रकार का शल्य कर्म होता है।

(क) लघु शल्यकर्म—स्थानिक संज्ञानाशक प्रयोगोपरान्त ट्रोकार की सहायता से जल का निष्कासन कर देते हैं जिससे अस्थायी लाभ होता है।

(ख) वृहद शल्यकर्म—तान्त्रिक संज्ञानाशक की सहायता से शल्योपकरण (Surgical Instruments) द्वारा वृषावरण का जल निकाल कर विषावरण विवर्तन (Eversion of sac) करके स्थायी लाभ होता है। कोष (Sac) के अभाव में आजीवन जल संचय नहीं होगा।

वृषण कच्छु-निदान चिकित्सा

वैद्य अशोक भाई दलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर,
सावर-कुण्डला (भावनगर) गुजरात

सर्व प्रथम भावमिश्र जी ने कुष्ठ रोगाधिकार मे पामा रोग के साथ वर्णन किया है एवं क्षुद्र रोगाधिकार में कुछ स्पष्टतापूर्वक वर्णन मिलता है। व्यवहार मे यह व्याधि पाया जाता है—

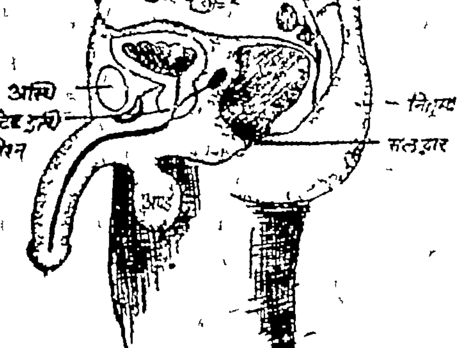
निदान—

क्षुद्र रोगाधिकार मे स्पष्टतापूर्वक निदान किया है। यथा—

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषण संस्थितः।
प्रक्लिद्यते तदा स्वेदात्कण्डू जनयते तदा॥
ततः कण्डूयनात् क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते।
प्राहुर्वृषणकण्डूं तां श्लेष्मरक्त प्रकोपजाम्॥

—भा० प्र० म० खं०

अर्थात् स्नान न करने से तथा शरीर को स्वच्छ न रखने से वृषण प्रदेश पर स्वेद पैदा होता है—उस स्वेद के साथ वृषण का मेल मिलकर क्लेद उत्पन्न होकर कण्डू हो जाता है। उसको खुजलाने में पिटिका उत्पन्न होती है और स्राव होता है। इस व्याधि को वृषण कच्छु कहते हैं; और यह कफ तथा रक्त दुषित होने से होता है।



माधव निदान तथा योग रत्नाकर मे निदान एक ही प्रकार का बताया गया है। अतः पंडित भावमिश्र जी ने जो निदान दर्शाया है उस पर विचार करेंगे—

स्नान न करना—खास करके जो लोग मजदूर हैं, और जो व्यक्ति शरीर के प्रति बेदरकार हैं, छोटे-२ बच्चे जैसे व्यक्ति स्नान नहीं करते परिणामतः शरीर पर मैल जम जाता है। वृषण प्रदेश पर लंगोट और अन्य कपडे पहने जाते हैं, वहां ज्यादा मैल जम जाता है और साथ ही साथ स्वेद भी उत्पन्न होता है। जो कोयले की खानों में काम करते है, कृषिकार, कपड़ें की मिलों के मजदूर अन्य फैक्टरी के मजदुर आदि को स्वेद अधिक उत्पन्न होता है। जब वह स्वेद और मैल के साथ मिलता है, तब वहाँ आर्द्रता उत्पन्न होती है। परिणामतः कण्डू उत्पन्न होती है। अत्यधिक खुजलाने से वहां पिटिका उत्पन्न हो जाती है, बाद में स्राव उत्पन्न हो जाता है।

प्रकार—

सभी आचार्यों ने दो विभाग में वर्णन किया है यथा—कुष्ठ रोगाधिकार में पामा को लघु कुष्ठ में गणना की है और पामा के साथ कच्छू को लिया है। तो क्या कच्छू रोग पामा का प्रकार है? प्रश्न तो जरूर उठेगा।

स्पष्टता—पामा संक्रामक रोग है। अतः संक्रामक होने से जनपद में सबको घर घर मे हर व्यक्ति को पामा रोग हो जाता है। पामा सारे शरीर में होती है। खास करके अंगुली, नितम्ब, सक्थि मूल प्रदेश और अन्य प्रदेश में भी पामा देखी जाती है। पामा दो प्रकार से उत्पन्न होती है। एक में छोटी एवं अल्प पिटिका जिसमें स्राव नही होता, होता तो कुछ पानी जैसा होता है। दुसरे मे पिटिका बड़ी एवं पूयुक्त देखी जाती है। उसमें से पूय, रक्त आदि का स्राव होता है। वेदना एवं दाह भी होता है।

जब वृषण कच्छू में केवल वृषण प्रदेश में ही इस रोग की व्यापकता देखी जाती है। वृषण कच्छू होने से शरीर के अन्य भागों मे रोग फैलता नही है। अत: कच्छू रोग सक्रामक नही। पामा के विराट स्वरूप को कच्छू लक्षण स्वरूप मानी गई है। वहा मात्र कच्छू शब्द प्रयोग दिया है। वृषण नही। जबकि क्षुद्र रोगाधिकार में केवल वृषण प्रदेश को निश्चित स्थान बतलाया है और वृषण कच्छू नाम दिया है।

वृषण कच्छू के विशेष भेद एवं लक्षण—

चिकित्सा व्यवसाय में दो प्रकार का मिलता है—

१ शुष्क वृषण कच्छू-वृषण प्रदेश त्वचा कठिन एव रूक्ष हो जाती है। श्याम वर्ण देखा जाता है। इसमें अत्यधिक कण्डू (खुजली) आती है खुजलाने से मन को आनन्द मिलता है। मीठी खुजली आती है। ज्यो ज्यों आनन्दपूर्वक खुजवाते हैं, त्यों त्यों आनन्दानुभूति प्राप्त होती है। अन्त मे रक्तस्राव होता है, तब दाह एव वेदना होती है।

२ आर्द्र वृषण कच्छू—इसमें वृषण की त्वचा प्रथम से ही आर्द्र रहती है, पिटिका होती है, अल्प खुजलाने से पूययुक्त रक्त स्राव निकलता है और वेदना, सदा एवं दाह रहता है।

दोषाधिक्य—शास्त्र में सिर्फ कफ दोष की विकृति बताई है। इस व्याधि में कच्छू लक्षण मुख्य बताया गया और व्यवहार में भी कण्डू अधिक देखी जाती है। कडू कफ दोष की अधिकता से होती है। कहा है—'न कफेन् विना कंडू।' अर्थात् कफ विना कडू नही होती। कफाधिक्य से (त्वचा मे) ही खुजली होती है। मगर जब दाह उत्पन्न होती है, पिटिका में पूय पैदा होकर स्राव उत्पन्न होता है तब पित्त भी प्रकुपित होता है। आर्द्र वृषण कच्छू में कफ और पित्त एवं रक्त दुषित होता है। जबकि शुष्क वृषण कच्छू मे कफ, वात और रक्त तथा पित्त की अधिकता मिलती है। शुष्क में त्वचा रूक्ष हो जाती है, कठिन हो जाती है और श्याम वर्ण हो जाता है। यह सब वातिक लक्षण हैं। खास करके देखा गया है कि बालकों मे आर्द्र वृषण कच्छू होती है और बालक में कफाधिक्य होता है और प्रौढावस्था तथा वृद्धावस्था मे शुष्क वृषण कच्छू पाया जाता है। इस आयु मे वायु की अधिकता हो जाती है।

निदान में अन्य स्पष्टता—

आचार्यों ने सिर्फ अस्वच्छता का कारण बताया है। आहार की दृष्टि से कोई स्पष्ट कारण नहीं दिया है— हमारी दृष्टि से दूसरे अन्य कारण निम्नोक्त हैं—अत्यधिक रूक्ष, मधुर तथा कटु पदार्थों के सेवन से, अत्यधिक मिर्च-मसाले खाने से, अत्यधिक लवण रस लेने से, रात्रि जागरण करने से, दिवास्वाप से, गन्दे एव मैल युक्त कपड़े पहनने से, कादव कीचड़ युक्त प्रदेश में रहने से, त्वचा को भली भाति साफ न करने से वृषण कच्छू रोग उत्पन्न होता है और वृषण प्रदेश के केश जब बढ जाता है और उनको दूर न करने से (मैथुन के पश्चात शिश्न और वृषण को साफ न करने से) कडू योनि, स्रावी योनि, रजस्वला योनि आदि योनि रोग वाली स्त्री से सम्भोग करने से भी वृषण कच्छू रोग हो जाता है।

चिकित्सा—

१ सर्जरस, कूठ (कुष्ठ), सैंधव और श्वेत सर्षप समभाग लेकर चूर्ण बनाकर उससे वृषण पर उद्वर्तन करें।

२ अर्क तेल—अर्क पत्र स्वरस में हरिद्रा कल्क के साथ सर्षप तेल मिलाकर तैलपाक विधि से अर्क तेल तैयार होता है। अर्क तेल लगाने से वृषण कच्छू पामा विचर्चिका मे लाभ मिलता है।

३. कच्छू राक्षस तेल अत्युपयोगी है। इस अंक में वैद्य श्री शोभन भाई वसाणी जी का कच्छू राक्षस तेल का स्वतन्त्र लेख है। अत विधि उस लेख में है।

इनके अलावा—महामिरिच्यादि तेल, निम्ब तेल, करंज तेल; आदित्यपाक तेल, खदिरादि तेल उपयोगी हैं।

आरोग्य वर्धनी रस, गंधक रसायन, वङ्ग भस्म, रस माणिक्य, मजिष्ठादि चूर्ण, चोपचिन्यादि चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, किशोर गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, काचनार गुग्गुल, महामजिष्ठादि क्वाथ व काढ़ा, सारिवाद्यरिष्ट आदि औषधिया उपयुक्त होती हैं।

वृषण कच्छू में उपयोगी कच्छू राक्षस तैल

लेखक—वैद्य श्री शोभन वसाणी
आयु. सेन्टर, सर्वोदय कोमर्सियल
सेन्टर, रिलीफ सिनेमा के पास
अहमदाबाद (गुजरात)

अनुवादक—वैद्य श्री भानुप्रताप आर० मिश्र
श्री वाला हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय
लोदरा ता. विजापुर जि महेसाना
(उत्तर गुजरात)

तिल तैल या सरसों तैल मे वनस्पतियो का स्वरस आदि पकाकर तैल सिद्ध करने की आयुर्वेद की मौलिक विशेषता है। इस प्रकार के तैल जितना पुराना होते हैं उतना उनकी औषधि गुणवत्ता बढ़ती जाती है। तैल अपने योगवाही, आशुकारी और अणुत्व के सूक्ष्म गुणों से त्वचा के छिद्रो मे त्वरित प्रवेश करके अन्दर गहराई तक उतर कर रोगों के कारण रूप कफ, वायु, कृमि, जन्तु आदि का नाश करते हैं। तैल को शरीर के अग-प्रत्यगों पर लगाने में भी सुविधा रहती है। इसी कारण से आयुर्वेद में मात्र चर्मरोगों में भी विभिन्न प्रकार के तैलो की योजना की गई है। इस कच्छू राक्षस तैल की संयोजना आयुर्वेद के आधारभूत ग्रन्थ भाव प्रकाश मे की गई है। विभिन्न प्रकार के कुष्ठरोग अर्थात् चर्मरोग में कच्छू राक्षस तैल का उपयोग करने का निर्देश दिया गया है। कच्छू अर्थात् खुजली अथवा वृषण ऊपर हुआ कच्छू नामक रोग। राक्षस अर्थात् कच्छू का नाश करने वाला तैल इस प्रकार का अर्थ घटन किया जा सकता है। इस तैल मे सरसों का तैल, गोमूत्र के अतिरिक्त पन्द्रह अन्य चर्मरोग नाशक औषधो के साथ पकाया जाता है जिसमें गन्धक, वत्सनाभ, मनशील, हरताल, कासीस, चक्रमर्द बीज, अर्क दुग्ध, निम्ब पत्र, कनेर की जड़ आदि मुख्य हैं।

'न कफेन विना कडु' अर्थात् कफ के बिना खुजली नही आ सकती। इस प्रकार आयुर्वेद के सूत्र अनुसार जिसमें खुजली मुख्य लक्षण के रूप में गिना जाता है। ऐसे विभिन्न प्रकार के चर्मरोगो के कारणरूप कफ को यह तैल जडमूल से नाश करता है। इस कारण से चर्मरोग जडमूल से नाश हो जाते हैं। कितने ही पुरुषो के वृषण (टेस्टीकल) की थैली पर हमेशा खुजली आया करती है जिसके परिणामस्वरूप वृषण की त्वचा मोटी, रूक्ष या चिकनी हो जाती है। उसे कच्छू नामक रोग कहा जाता है। इस रोग में यह कच्छू राक्षस तैल सर्वोत्तम औषधि मानी गई है। वृषण कच्छू पर लम्बे समय तक कच्छू राक्षस तैल लगाने से बहुत अच्छा परिणाम मिलता है। खाज खुजली मे बहुत ही अच्छी असर कारक यह औषधि है। अनेक दवायें करने पर भी महिनों यह रोग काबू मे नही आता है तब कच्छू राक्षस तैल का उपयोग लाभप्रद होता है। नीम के पत्र से उबाले पानी मे स्नान करके या रोगग्रस्त अङ्गो को साफ करके दिन मे दो बार यह तैल लगाने से बहुत ही अच्छा लाभ होता हैं। बेवाय (पाददारि), उकवत (विचर्चिका) खुजली आदि त्वक् विकारों तथा रक्तज विकारो में कच्छू राक्षस तैल का परिणाम मिले विना नही रहता है।

घर मे किसी को चर्मरोग हुआ हो या उसका सक्रमण हुआ हो तो कच्छू राक्षस तैल का उपयोग किया जाता है तब रोगी नमक, दही, गुड, तिल, उडद, शक्कर, तला हुआ आहार, फलो आदि का त्याग करना चाहिए। उबाला, नमक बिना का मूंग के साथ रोटी ही आहार मे लेना चाहिए। दिन मे सोना नही चाहिए। कब्ज रहती हो तो स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, मजिष्ठादि चूर्ण या त्रिफला चूर्ण लेते रहना चाहिए।

—✱✚✱—

लिङ्गार्श

आयुर्वेद बृहस्पति आचार्य डा० महेश्वर प्रसाद 'सर्जन' आयुर्वेद सम्राट, आयुर्वेद वारिधि, एम. डी. (ए)
आचार्य डा० महेश्वर विज्ञान भवन, मंगलगढ (समस्तीपुर)

परिचय—प्रकुपित वात-पित्त दोष शिश्न में जाकर तद् स्थान के मांस एवं रक्त को विकृत कर उसमे सर्वप्रथम खुजली उत्पन्न करते हैं और उसके बाद खुजलाने से वही घाव (व्रण) निर्मित हो उस व्रण मे शिश्न मुण्ड (मणि) या उसकी त्वचा के ऊपर अनेक कूर्चाकार अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हे लिङ्गार्श कहते हैं। कभी-२ ये अंकुर छत्र के आकार के हो जाते हैं। पाश्चात्य चिकित्सा ज्ञान प्राप्त व्यक्ति इस व्याधि का समावेश अंकुरार्बुद (Papilloma) मे करते हैं। कोई व्यक्ति इसे पॉलीपस (Polypus) मानते है किन्तु वस्तुत: यदि सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि से विचारा जाय तो यह लिंग का अर्श अथवा अंकुर ही प्रमाणित होता है।

कारण—माता एवं पिता के दूषित रक्त एवं वीर्य के कारण, युवावस्था में अत्यधिक वासनात्मक विचार से शरीर में उपदंशज गर्मी उत्पन्न हो जाने के कारण तथा अन्य कारणो से प्रकुपित हुए वायु आदि दोषों के शिश्न एवं शिश्नमणि में प्रविष्ट हो जाने से मणि तथा उसकी त्वचा मे कूर्चाकार या छत्राकार अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं।

सम्प्राप्ति—प्रकुपित हुए वातादि दोष शिश्न में प्रविष्ट होकर वहां के मांस एवं रक्त को दूषित कर उसे खुजलाने को बाध्य करते हैं। फिर इससे क्षत बनकर उस स्थान में कूर्च आकार का शिश्नमणि तथा उसकी त्वचा पर दूषित मांस के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं। इससे चिपचिपे रक्त का स्राव होता है और अधिक वृद्धि होने पर वे अंकुर शिश्न तथा पुरुषत्व को समाप्त कर देते हैं। स्त्री मे उसकी योनि में प्रकुपित हुए वातादि दोष वहां के मांस और रक्त को दूषित करके मृदु, दुर्गन्धित, लसलसे रक्त का स्राव करने वाले छत्र के आकार के अंकुर को उत्पन्न कर देते हैं। योनि में इस प्रकार के अंकुर की उत्पत्ति होने से वे योनि और ऋतुस्राव (आर्तव) को विकृत कर देते हैं।

इस प्रकार का अर्श पुरुष एवं स्त्री दोनों को हो सकता है। आचार्य वाग्भट ने इन्हे 'लिङ्गार्श' नाम से सम्बोधित किया है।

लक्षण—शिश्न, शिश्नमणि तथा वहां की त्वचा पर पुरुषो को तथा योनि के अन्दर स्त्रियो को क्रमशः कूर्च के आकार के तथा छत्र के आकार के दूषित मांस के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं उनमें खुजलाहट होती है, उनसे लसदार रक्त का स्राव होता है। पुरुषों में यह पुरुषत्व शक्ति नाश करता है तथा स्त्रियों में ये कोमल, दुर्गन्धित, चिपचिपे रक्त का स्राव कराती है एवं योनि और आर्तव का नाश कर देता है।

आचार्य सुश्रुत ने इन्हीं सब बातो को अति संक्षेप में सुश्रुत संहिता निदान स्थान अ. ३ में उल्लेख किया है।*

चिकित्सा सूत्र—

सर्व प्रथम वमन, विरेचन (इच्छाभेदी रस की दो गोली खिलाने से पूर्व विशुद्ध घृत मिश्रित खिलाना) कराकर वात और पित्त की प्रकुपितावस्था को ठीक (नियोजित) करना। यदि इसमें पर्याप्त लाभ उपलब्ध न हो तो प्रत्येक अंकुर का छेदन करके उस पर जात्यादि घृत लगावें जिससे व्रण का रोपण हो। शेष उपदंशवत चिकित्सा करें।

* प्रकुपितास्तुदोषा··· ··· ··· ··· ··· ··· प्रदूष्य कण्डू जनयन्ति, ततः कण्डूयनात् क्षतं समुपजायते, तस्मिंश्च क्षते दुष्टमांसजा प्ररोहाः पिच्छिलरुधिर स्राविणो जायन्ते कूर्चं किनोऽभ्यन्तरमुपरिष्टाद्वा, तेषु शेफो विनाशयन्त्युपघ्नन्ति च पुंस्त्वम्। योनिमभिप्रपन्नाः सुकुमारान् दुर्गन्धान् पिच्छिलरुधिरस्राविणश्छत्राकारान करीराञ्जनयन्ति, ते तु योनिमुपघ्नन्त्यार्तवं च॥ —सु० सं० नि० अ० ३।

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

आयुर्वेदिक चिकित्सा—

(१) चाहे नया लिङ्गार्श हो या पुराना उसको क्षार हरताल योग के लेप के प्रयोग द्वारा छेदनकर्म किया जाता है अथवा गलाया जाता है ।

विधि—अपामार्ग क्षार १ ग्राम मे हरताल १ ग्राम मिलाकर जल में भलीभांति एकत्र पीसकर प्रत्येक लिगार्श पर चिड़िया के पंख से लेप करें । लिङ्गार्शों के कटकर गिरते ही उक्त स्थान पर जात्यादि घृत लगाते रहें । इससे व्रण का रोपण हो जाता है ।

(२) नीम छाल (अन्तर्व.छ), भृङ्गराज पत्र, गिलोय क्वाथ, कटकरंज की मींगी, स्वर्णक्षीरी मूलत्वक, बाल हरीतकी, बहेड़ा, निर्गुण्डी पत्र प्रत्येक १०-१० ग्राम ले जल के साथ कूट-पीसकर ५०० मि०ग्रा० की गोलियां बना लें । प्रात. सायं १ से २ गोली ताजा जल से दें ।

लाभ—इससे लिगार्श की विकृति दूर हो शांति मिलती है ।

एलोपैथिक चिकित्सा—

१. लिङ्गार्श को विसंक्रमित कर उसको ऑपरेशन करके काटकर हटा दें तथा वहां फुरासिन मलहम लगावें ।

२ क्रिस फोर (साराभाई) या क्लॉक्सिलीन (अल्केम) ५०० मि०ग्रा० का एक इंजेक्शन अवस्थानुसार हर १२ घंटे पर या प्रतिदिन गहरे मांस में लगायें ।

३. सेप्ट्रान (बी. डब्लु.) या बैक्ट्रिम (रोश) वयस्को या नी १ टिकिया दिन में २-३ बार जल से दें ।

४ सायनामॉक्स (साराभाई) २५० मि ग्रा का १ कैपसूल तथा सी बी. टिना-एफ (कल केमि.) १ टिकिया एकत्र जल से दिन में २-३ बार खिलावें । ✚

पुरुष मे वृषण का विशेष महत्व

बढ़ने लगते हैं तथा ललाट प्रदेश विशाल बनता है । स्वभाव में साहस तथा वीरोचित गुणों की उपलब्धि होकर बलिष्ठ बनने लगता है ।

वृषण के इस स्राव की कमी रहे तो स्त्री जाति के अनेक लक्षण जैसे उरः प्रदेश में मेदसंचय त्वचा कोमल तथा दाढ़ी-मूंछ के बालों की कमी तथा अल्प शुक्र युक्त बनते हैं ।

आयुर्वेद मे भी सार्वदैहिक लक्षणों का वर्णन 'शुक्रसार पुरुष' के साथ वर्णन किया है जैसे—वह देखने में सौम्य-प्रिय-क्षीरपूर्ण नेत्र युक्त (सभा वीरस्य भूषणम्), अति हर्ष (कामवेग) युक्त, श्वेत-स्निग्ध घन, पुष्ट, सम, दृढ़, गोल तथा सुदृढ़ अस्थि-नख तथा दन्तावली युक्त प्रसन्न तथा स्निग्धवर्ण तथा स्वर से सम्पन्न, विपुल स्फिक् प्रदेश युक्त स्त्री की तृप्ति में समर्थ-बलवान्-सुख, ऐश्वर्य-आरोग्य-वित्त तथा सम्मान युक्त तथा संतान वाला होता है ।

शुक्रं धैर्यं च्यवनं प्रीतिं देहबलं हर्षं । (करोति)

शुक्र (Semen)—

आयुर्वेद में इसका स्वरूप में, स्फटिकाभ निर्गन्ध-तेल-

पृष्ठ २३८ का शेषांश

मद्य या घी जैसी चिकनाहट युक्त, मधुर तथा मधुतुल्य गन्ध-युक्त, घन-स्निग्ध-थोड़ा द्रव-गुरु-पिच्छिल तथा अभिष्यन्दि होना शुद्ध शुक्र का स्वरूप है ।

वृषण के कोषों में Spermatozoa (शुक्राणु) का उत्पादन होता है उसे वृषण का बहि स्राव कह सकते हैं । वह शुक्र रस मे तैरता रहता है। एक बार के शुक्रस्खलन मे करीब ४ से ८ मि. लि. शुक्र निकलता है । शुक्र शुक्राणु-शुक्राशय के स्राव-प्रोस्टेट का स्राव, कूपर ग्रन्थि के स्राव का एक मिश्रण है । एक बार के वीर्यपात में २० से ५० करोड़ मि लि. के करीब शुक्राणु पाये जाते हैं, तो ही पुरुष गर्भ स्थापित करने में समर्थ होता है । १५ करोड़ से कम तथा २०% से कम गतिशील शुक्राणु गर्भोत्पादन में अक्षम होते हैं । इतनी बड़ी संख्या में से केवल एक ही शुक्राणु मैथुन के बाद शुक्र के साथ योनिगत जाकर, प्रतीक्षारत एक स्त्री बीज से संयोग पाकर नई जिंदगी को पनपने का शुभारम्भ करता है जिससे कि सृष्टि की परम्परा निरन्तर चलती रहती है । ✚

परिवर्तिका, अवपाटिका एवं निरुद्धप्रकश

वैद्य अयोध्याप्रसाद अचल एम० ए० (द्वय), पी एच० डी०, आयुर्वेद बृहस्पति
योगायुर्वेद शोध संस्थान, धर्मसभा रोड, रमना (गया)

—✱★○★✱—



वैद्य श्री अयोध्या प्रसाद जी, आयुर्वेद मेडिकल कालेज, गया के विद्वान प्राध्यापक हैं। साथ-साथ मौलिक सिद्धान्त विभाग के अध्यक्ष भी हैं। वर्षों से 'धन्वन्तरि' मासिक पर आपकी असीम कृपा है।

'धन्वन्तरि' में आपके विद्वतायुक्त लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं। आपकी लेखनी से 'धन्वन्तरि' के विशाल पाठक वर्ग को मार्गदर्शन मिलता है। आपके इस लेख से चिकित्सकों को अवश्य मार्गदर्शन मिलेगा। भविष्य में 'धन्वन्तरि' आपसे अनेकों अपेक्षा रखते हैं।

—वैद्य अशोक भाई ठलाविया भारद्वाज

उक्त तीनों ही विकृतियां शिश्न-मुण्ड को ढकने वाली त्वचा से सम्बन्धित हैं। उनका नीचे संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

परिवर्तिका—

शिश्न-मुण्ड या मणि को ढकने वाली त्वचा का मणि को अनावृत्त कर पीछे की ओर इस प्रकार चढ जाना और वहां एक कड़े छल्ले की तरह मणि के पृष्ठ भाग को इस प्रकार जकड़ लेना कि प्रयास करके भी उसे आसानी से आगे की ओर अपनी वास्तविक स्थिति में न लाया जा सके परिवर्तिका कहलाता है। सुश्रुत ने परिवर्तिका पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

> मर्दनात् पीडनाच्चापि तथैवकात्वाभिघाततं।
> मेढ्चर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चर ॥
> तदा वातोपसृष्टं तु चर्म प्रतिनिवर्तते।
> मणेरधस्तात् कोशश्च ग्रन्थि रूपेण लम्बते ॥
> सवेदनः सदाहश्च पाक च व्रजित् क्वचित्।
> मारुतागन्तुसम्भूतां वियात्तां परिवर्तिकाम् ॥
> सकण्डू कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥
>
> —सु०नि०अ० १३

वाग्भट ने इसे निवृत्त की संज्ञा दी है उन्हीं के शब्दों में—

> विमर्दनादिदुष्टेन वायुना चर्म मेढ्जम्।
> निवर्तते सरुग्दाह क्वचित् पाकं च गच्छति ॥
> पिण्डित कुथितं चर्म तत्प्रलम्बघोमणेः।
> निवृत्तसंज्ञ सकफ कण्डूकाठन्यवस्तुतत् ॥
>
> —अ०स०उ०अ० ३८

परिवर्तिका के लक्षण—शिश्न के अग्रिम चर्म का उलटकर पीछे की ओर चढ जाना, पिण्डाकार कुचला हुआ सा होकर मणि के नीचे की ओर लटक जाना, दाह एव पीड़ा, कभी-कभी पक जाना (कफ का योग होने पर) कठोर हो जाना एवं खुजलाना।

निदान—इसके तीन प्रधान कारण बतलाए गए हैं—

क—मर्दनात् अर्थात् हाथ से मसलना—यथा हस्त-मैथुन करते समय।

ख—पीडनात् अर्थात् पीड़ा पहुचाना—हाथ से या अन्य किसी कड़ी चीज से शिश्न को कसकर दबाना।

ग—अभिघात अर्थात् घोर जबर्दस्त में शिश्न को चोट पहुचना—यथा बलात्कार करते समय या किसी कम

उम्र या संकुचित योनि वाली (सूचीमुखी) स्त्री के साथ सम्भोग की कोशिश करते समय ।

सम्प्राप्ति—उक्त कारणो से सर्वशरीरचर व्यान वायु कुपित होकर जब लिंग को आक्रान्त करता है तो उसका अग्रचर्म ऊपर की ओर चढ जाता है। कफ-प्रकोपक कारणों से यदि कफ भी प्रकुपित हुआ तो वह भी वायु के साथ मिलकर उस चर्म मे काठिन्य और कण्डू की उत्पत्ति करता है।

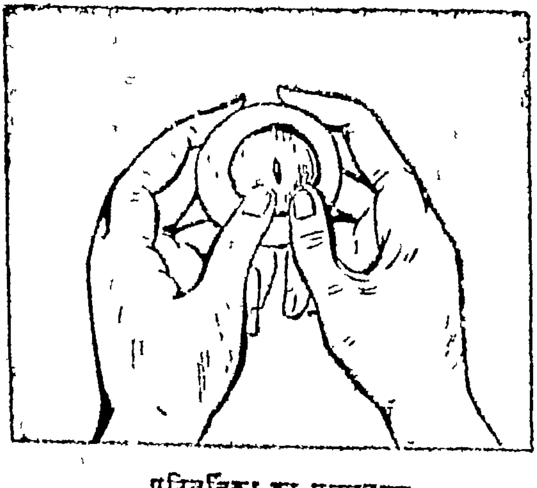
चिकित्सा—सुश्रुत ने परिवर्तिका की निम्न चिकित्सा बतलाई है—

परिवृत्ति घृताभ्यक्ता सुस्विन्नमुपनाहयेत् ।
ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म चानयेत्पीडयेन्मणिम् ॥
प्रविष्टे च मणौ चर्म स्वेदयेदुपनाहनै ।
त्रिरात्रं पचरात्रं वा वातघ्नै साल्वणादिभि ॥
दद्याद्वातहरान् वस्तीन् स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ।
वपाटिकां जयेदेव यथादोष चिकित्सक. ॥
—सु०चि०अ० २२

१—सर्वप्रथम लिंगाग्र—चर्म का घृत (पुराण या कोई भी वातनाशक घृत) से भली प्रकार स्वेदन करे ।

२—स्वेदन के उपरान्त उस पर वात नाशक द्रव्यों की पुल्टिस बांधे ।

३—पुल्टिस को हटाने के बाद पुन' घी-से उसकी



परिवर्तिका का प्रत्यानयन

मालिश करे । इससे चर्म की जकडन मे कुछ कमी आ जायेगी । वह मुलायम पड जायेगा । अब मध्यमा और तर्जनी के बीच शिश्न को बीच मे पकड कर, अंगूठे के अग्रभाग से मणि को थोडा अन्दर दवाते हुए धीरे-धीरे लिंगाग्र-चर्म को नीचे उतारना । अगर रोगी अभी भी कष्ट का अनुभव करे तो उक्त प्रक्रिया को दोहरा कर चर्म को और मुलायम बना लेना चाहिए । और फिर उसी विधि से उसे नीचे उतारने की कोशिश करनी चाहिए ।

४—चर्म के यथास्थान आ जाने पर पुन आवश्यकतानुसार ३ या ५ दिनतक स्वेदन परान्त उस पर साल्वण आदि वातघ्न उपनाहों से स्वेदन करें ।

५—वातनाशक बस्तियो का प्रयोग ।

६—स्निग्ध अन्न का भोजन ।

मलावरोध न होने पाये इस वात का भी ध्यान रखना चाहिए ।

अवपाटिका—

जब लिंगाग्र फट जाता है या उसमे दरारें पड जाती हैं तो उसे अवपाटिका कहते है—

दुरूढ स्फुटित चर्मनिर्दिष्टमवपाटिका" ।

इसका वर्णन सुश्रुत ने निम्न शब्दो में किया है—

अल्पीय खां यदा हर्षात् वालां गच्छेत् स्त्रियं नर. ।
हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तते बलात् ॥
मर्दनात्पीडनाच्चापि शुक्रवेगाविघातत ।
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥
—सु०नि०अ० १३

लक्षण—लिंगाग्र चर्म का फट जाना, उसमें दरारें पड जाना, दाह, पीडा आदि ।

निदान—इसके निम्न कारण बतलाए गए है—

क—अल्पवयस्क या अल्पयोनिच्छिद्रवाली बाला या स्त्री के साथ प्रहर्षपूर्वक बलात् सम्भोग करना ।

ख—हस्तमैथुन करते समय लगा अभिघात ।

ग—मर्दन । घ—पीडन ।

च—आए हुए शुक्र के वेग को रोकना ।

छ—परिवर्तिका से पीडित व्यक्ति को जबर्दस्ती चर्म

को नीचे खींचने की ओर निरुद्धप्रकश से पीडित व्यक्ति द्वारा चमड़े को जबर्दस्ती ऊपर चढाने की कोशिश करना।

सम्प्राप्ति—इन कारणों से प्रकुपित वायु अवपाटिका को जन्म देता है। कफ का विशेष योगदान होता है।

परिवर्तिका और निरुद्धप्रकश के रोगियो मे प्राय मणि को ढकनेवाले चर्म की आन्तरिक श्लैष्मिक कला में भी शोथ के लक्षण देखे जाते हैं। दवाने पर उसमे से पूय जैसा पदार्थ निकलता है। परिवर्तिका के रोगियों मे तो इसे आसानी से साफ कर दिया जा सकता है पर निरुद्ध प्रकश के रोगियो मे मणि मे उत्पन्न स्राव प्राय. बाहर नही निकल पाते। अन्दर ही जमा होकर वहा सक्रमण की सी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। दिन मे तो अनेक बार मूत्र त्याग के कारण स्राव का कुछ अश बाहर निकलता रहता है। पर रात मे सो जाने की हालत मे या कभी-कभी दिन मे भी जब मूत्र त्यागों में लम्बा अन्तराल हो जाता है तो ये स्राव अन्दर ही एकत्रित हो जाते हैं। ऐसे मे रोगी एक अजीब तरह की अकुलाहट का अनुभव करता हैं। उससे मुक्ति पाने के लिए वह लिंगाग्र-चर्म को मसलता है, जबर्दस्ती उसे ऊपर चढाने की कोशिश करता है। एक दफा उसने उसे छेड़ा नही कि बर्दाश्त करना मुश्किल हो जाता है। कुछ तो ऐसी हालत में जोर-जोर से हस्तमैथुन जैसी क्रिया में रत हो जाते हैं। इसी जोर-जबर्दस्ती में लिंगाग्र-चर्म मे अभिघात लगकर वह फट जाता है। उसमे दरारें पड जाती हैं। इसमें बेतरह जलन होती है। पेशाब करते समय विशेष तकलीफ होती है।

चिकित्सा—चूंकि अवपाटिका की स्थिति प्राय परिवर्तिका तथा निरुद्धप्रकश के साथ ही पाई जाती है इसलिए शास्त्रों मे इसका भी वही उपचार बतलाया गया है जो परिवर्तिका का है। किसी दोष विशेष की प्रबलता मालूम हो तो उसके अनुरूप चिकित्सा मे थोड़ा हेर-फेर किया जा सकता है।

अवपाटिकायामप्यय विधि । —अ०ह्र०उ०अ० ३४

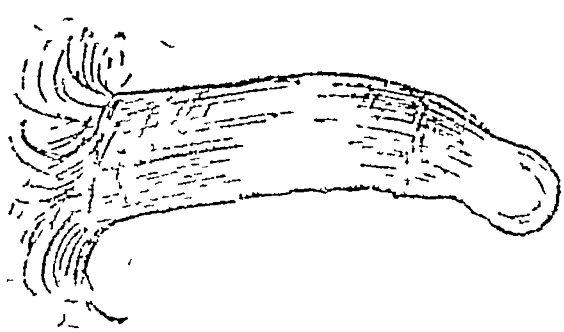
निरुद्ध प्रकश—

इसमें लिंगाग्र-चर्म मणि को पूरी तौर से ढक लेता है। उसमें मुख पर एक काला छल्ला जैसा बन जाता है जो दिन पर दिन सिकुड़ कर तंग होता जाता है। रोगी के लिए चर्म को ऊपर चढ़ाकर मणि को अनावृत कर सकना लगभग असम्भव हो जाता है। कभी कभी तो छिद्र इतना तग हो जाता है कि रोगी के लिए मूत्र त्याग करना भी कठिन हो जाता है। यद्यपि यह स्थिति अपने आप में उतनी कष्टकर नहीं है पर इसमे उत्पन्न होने वाले उपद्रव-अन्दर स्रावों का एकत्रित होकर सक्रमण उत्पन्न कर देना, छिद्र के अत्यधिक सकुचित हो जाने से मूत्र त्याग में कठिनाई होना आदि रोगी के लिए निश्चित रूप मे कष्टदायी सिद्ध होते हैं। इसका वर्णन सुश्रुत ने निम्न शब्दों मे किया है—

वातोपसृष्टमेव तु चर्म सश्रयते मणिम् ।
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतोरुणद्धि च ॥
निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् ।
मूत्र प्रवर्तते जन्तोमणिर्न च विदीर्यते ॥
निरुद्धप्रकश विद्यात् सरुज वातसम्भवम् ।

—सु० नि० १३

लक्षण—शिश्न चर्म से मणि का पूर्ण रूप से ढक जाना, प्रयास करने पर भी उसका ऊपर न चढना, मूत्र बहिर्गमन मार्ग का सकुचित होना, मूत्र का मद धार में बाहर निकलना, उसके कुछ अश का अन्दर ही रह जाना, सामान्यतया किसी प्रकार की वेदना का न होना या अल्प पीडा युक्त होना।



शिश्नमुण्ड में खाल आगे लटक रही है

वाग्भट ने इसे निरुद्धमणि की संज्ञा दी है। उन्होंने इसका वर्णन निम्न शब्दों मे किया है—

वातेन दूषित चर्म मणौ सक्तं रुणद्धि चेत्।
स्रोतो मूत्र ततोऽभ्येति मन्दधारमवेदनम्॥
मणेर्विका सरोधश्च स निरुद्धमणिर्गदः।

—अ०सं०उ०३८

निदान—इसके भी कारण वे ही हैं जो परिवर्तिका या अवपाटिका मे बतलाए गए हैं।

सम्प्राप्ति—इसमे भी कुपित वायु लिगाग्र चर्म में अवस्थित होकर उसे जकड़ देता है।

चिकित्सा—वाग्भट और सुश्रुत, दोनो ने लगभग एक ही प्रकार चिकित्सा का निर्देश किया है। दोनो के मूलभूत सिद्धान्त वही हैं। देखिए सुश्रुत के शब्दों मे—

निरुद्धप्रकशे नाडी लोहीमुभयतोमुखीम्।
दारवीं का जुतुकृता घृताभ्यवतां प्रवेशयेत्॥
परिषेके वसामज्जाशिशुमारवराहयो।
चक्रतैल तथा योज्य वातघ्नद्रव्यसयुतम्॥
त्र्यहात् त्र्यहात् स्थूलतरा सभ्य नाडी प्रवेशयेत्।
स्रोतो विवर्धयेदेव स्निग्धमन्न च भोजयेत्।
भित्वा वा सेवनी मुक्त्वा सद्यःक्षतवदाचरेत्॥

—सु०चि० २०

सुश्रुत ने निरुद्धमणि की दो प्रकार की चिकित्सा बतलाई है। पहली युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा द्वारा लिगाग्र चर्म की जकडन को समाप्त कर उसके मुख को बढाकर-फैलाकर स्वाभाविक स्थिति मे लाना। दूसरी शल्यक्रिया द्वारा लिगाग्र चर्म को काटकर निकाल देना।

युक्तिव्यपाश्रय—चिकित्सा के विभिन्न चरण नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—पखे में नीचे लगाने वाली बांस की नली के समान लोहे, लकड़ी या लाख की एक पतली नली बनवालें जिसमे दोनों ओर छिद्र हो। इस नली को घी लगाकर चिकना कर लें। फिर उसे धीरे-धीरे लिगाग्र चर्म के मुख में प्रवेश कराएं।

२—शिशन मुण्ड का मगर अथवा/तथा सुअर की चर्बी अथवा वातनाशक द्रव्यों से युक्त कोल्हू के तैल से परिषेक करें।

३—हर तीन दिन के बाद नली का आकार पहले की अपेक्षा कुछ बढ़ाते जाएं। इससे लिगाग्र चर्म का मुख धीरे-धीरे फैलता जावेगा।

४—वातनाशक स्निग्ध आहार दें।

यह चिकित्सा समय-साध्य है। जो इस झंझट से बचना चाहें अथवा जिन्हे युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा से लाभ न हो उन्हें सेवनी बचाते हुए शल्यक्रिया द्वारा लिगाग्र चर्म को कटवाकर निकलवा देना चाहिए और सद्य क्षत विधि के अनुसार उपचार करना चाहिए।

परिवर्तिका को अग्रेजी में 'पाराफायमोसिस' और निरुद्धप्रकश को 'फायमोसिस' की संज्ञा दी गई है। अवपाटिका को 'टियर इन प्रीप्यूस' कहते हैं। आधुनिक आयुर्विज्ञान में भी इन रोगो के लक्षण, निदान और सम्प्राप्ति के सम्बन्ध में लगभग वे ही बातें कही गई हैं जो आयुर्वेद में हजारों वर्षों पूर्व कही गई थी।

कुछ बच्चों मे जन्मजात निरुद्धप्रकश की विकृति पाई जाती है। अनेको में, अगर शिश्न की सफाई का समुचित ध्यान रखा जाए, तो साल भर का होते होते यह विकृति स्वत. समाप्त हो जाती है। जिनमें उसके बाद भी बनी रहे और बच्चे को मूत्र त्याग मे कठिनाई होने लगे उनमे उपचार आवश्यक हो जाता है।

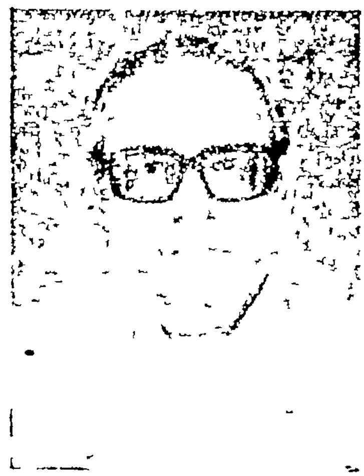
प्राचीन रोम में और कुछ जातियो-सम्प्रदायों में अभी भी यथा यवन, यहूदी आदि मे जन्म के कुछ समय बाद ही इस चर्म को काटकर अलग कर दिया जाता है इसे खतना कहते हैं। मुसलमानो मे खतना एक धार्मिक सस्कार माना जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह एक स्वस्थ परम्परा है। इससे शिश्न की सफाई आसान हो जाती है।

खतना का आपरेशन (सरकमसिजन) एक सामान्य शल्यकर्म है जिसे कोई भी कुशल वैद्य, हकीम या सर्जन आसानी से कर सकता है।

अकसर वृद्धावस्था में होने वाला एक शस्त्र साध्य व्याधि—

वाताष्ठिला-पौरुषग्रंथि की वृद्धि

—PROSTATITIS—



वैद्यराज श्री नवीन भाई ओझा डी एम. ए सी, एच पी. ए, एन डी
आयु० रत्न, आयु उत्तमा, वैद्याचार्य, वैद्य वाचस्पति, वैद्य महारथी,
अध्यक्ष—गुजरात आयुर्वेद संशोधन विकास केन्द्र,
अध्यक्ष—वडोदरा जिला वैद्य मण्डल,
मन्त्री—आरोग्य प्रचारक मण्डल-वडोदा,
भूतपूर्व-सदस्य—सेनेट सिन्डीकेट-गुजरात आयु० यूनि० (जाम०)
,, सम्पादक—वैद्य कलपतरु एव अमृता
,, सदस्य—एस एस सी ई बोर्ड गुजरात राज्य
पता—जन आरोग्य ओषधालय, पारकर वाडा, दाडिया वडोदरा (गुज०)

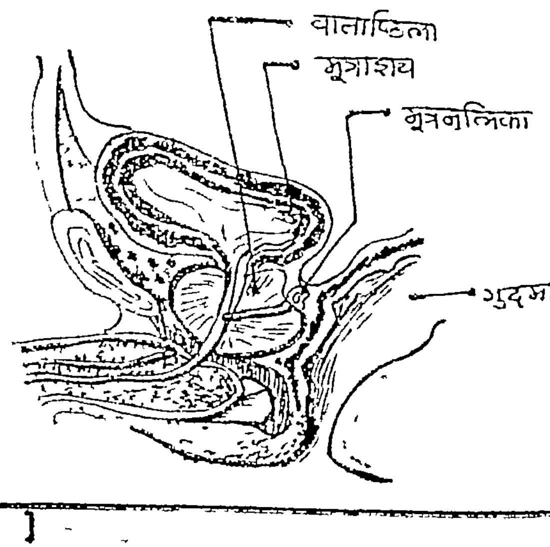
—★☆—

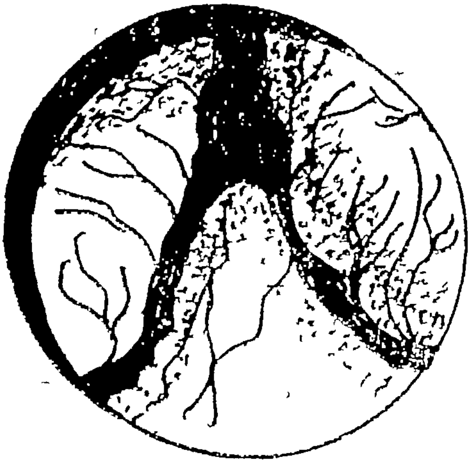
वैद्य श्री नवीन भाई ओझा गुजरात के लब्ध प्रतिष्ठित आयुर्वेदज्ञ हैं। आप सफल चिकित्सक एवं सिद्धहस्त लेखक हैं। आज तक आपने तीन सौ से अधिक आयुर्वेद एवं आयुर्वेदेतर पुस्तकें लिखी हैं तथा पांच हजार तक लेख प्रकाशित हुये हैं। गुजराती मासिक एवं हिन्दी मासिको मे आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। जन आरोग्य माध्यम से आप प्रति मास एक ग्रथ लिखकर प्रकाशित करते हैं। आपके सम्पादकत्व मे चिकित्सा चन्द्रोदय नामक गुजराती अनुभूत ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। दूसरा भाग भी प्रकाशित होने वाला है। इस तरह आप आयुर्वेद के प्रचार एवं प्रसार मे दिन रात अकेले हाथ ही लगे रहे हैं। विशेष आग्रह से यहाँ श्री ओझा जी ने 'पौरुष ग्रन्थि वृद्धि' पर अपना अनुभूतात्मक विचार प्रकट किया है। जो उपयोगी होगा।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

कई व्याधि ऐसी हैं जिसको लोग आधुनिक नाम से पहचानते हैं। प्रोस्टेट ऐक ऐसी ही व्याधि है। अयुर्वेद के ग्रन्थों मे उसे वाताष्ठिला कहा गया है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थो में इस रोग का स्पष्ट उल्लेख या वर्णन नहीं है। किन्तु सुश्रुत सहिता मे इस रोग का वर्णन पाया जाता है। क्योकि यह व्याधि शस्त्र साध्य है और सुश्रुत खुद सर्जन था। ऐसी कई व्याधि हैं जो अन्यत्र निर्दिष्ट नहीं हैं किन्तु शस्त्रसाध्य होने से सुश्रुत में पाई जाती हैं। प्रोस्टेट के कार्य को देखकर उसे पौरुष ग्रन्थि ऐसा नाम भी दिया गया है और यह नाम भी उचित लगता है।

प्रोस्टेट का व्याधि अङ्गविशेष है और अङ्ग के नाम





[Endoscop द्वारा दिखाई देती प्रोस्टेट वृद्धि]

से रोग का नाम रखा गया है। इसी कारण स्वस्थ अङ्ग और रोगग्रस्त अवस्था दोनों मे एक ही नाम प्रयुक्त होता है। जैसे एपेन्डीक्स-आन्त्रपुच्छ तो पहले से मौजूद होता है। वह अच्छा होता है तब तक हमे उसका पता नही होता। जैसे उसमें सूजन होती है, वृद्धि होती है, वेदना होती है, पाक होता है हम कहते हैं कि एपेन्डिक्स हुआ है। सही बात यह है कि एपेन्डिसाइटिस अर्थात् आन्त्रपुच्छ शोथ हुआ है। वैसे ही प्रोस्टेट व्याधि को प्रोस्टेटाइटिस कहा जाना चाहिये। पौरुष ग्रंथि की वृद्धि या शोथ कहा जाना चाहिए।

यह व्याधि वय विशेष भी है। सामान्यत. ५० वर्ष के बाद प्रोस्टेट की वृद्धि होती है। प्रोस्टेट की मौजूदगी तो पहले से ही होती है लेकिन वह स्वस्थ होने के कारण हमें उसकी जानकारी नही होती है। जब उसमें सूजन होती है तब उसका आकार बढ जाता है और कभी-२ वेदना भी होती है।

प्रोस्टेट का आकार सुपारी (पुगीफल) जितना बडा होता है। वह मूत्राशय के नीचे होता है। उसके बाद मलाशय आता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मूत्राशय (ब्लेडर) के बीच में यह अवश्य आता है। जब वह सप्रमाण होता है तो मल मूत्र की प्रवृत्ति सम्यकतया होती है और उसमें कोई बाधा नही आती है। किंतु जब वह प्रोस्टेट वृद्धि होती है तब वह मलाशय एवं मूत्राशय पर दबाव करता है। अत. मल मूत्र प्रवृत्ति में तकलीफ होना शुरू होती है।

रोगी जब चिकित्सक के पास जाता है तब उसे यह पता नही होता है कि उसे प्रोस्टेट वृद्धि हुई है। वह तो फरियाद करता है कि मूत्र प्रवृत्ति ठीक नही होती है बार-बार पेशाब जाना पडता है, रात को भी पेशाब करने उठना पडता है। चिकित्सक रोगी की आयु देखता है। यदि वह ४५ वर्ष से अधिक होती है तो उसे प्रोस्टेट वृद्धि की शङ्का हो जाती है। गुदमार्ग मे अगुली प्रवेश करने से प्रोस्टेट वृद्धि दिखाई देती है। मूत्र मार्ग मे शलाका (केथेटर) प्रवेश करने से वह पूरी अदर नही जायगी, बीच मे रुक जायेगी। इतनी परीक्षा से पता चलता है कि रोगी को प्रोस्टेट वृद्धि है।

पोस्टेट वृद्धि के अन्य लक्षण निम्न प्रकार हैं—



← वृद्धपौरुष ग्रन्थि पर शिराजाल

१. बार-बार मूत्र प्रवृत्ति होती है।

२ मूत्र प्रवृत्ति साफ नही होती।

३ मूत्र प्रवृत्ति के समय थोडा जोर भी करना पड़ता है।

४ मूत्राशय मे जितना मूत्र होता है पूरा निष्कासित नहीं होता। ४०% तक यह अन्दर पडा रहता है।

५ कभी-२ मूत्रप्रवृत्ति के समय वेदना अथवा जलन होती है। रोगी को कष्ट से मूत्रप्रवृत्ति होती है। उसे रोना भी आ जाता है।

पौरुष ग्रन्थि के ३ खण्ड →



६. मूत्र प्रवृत्ति अल्प मात्रा में होती है ।

७. रात को भी मूत्र प्रवृत्ति के लिए उठना पड़ता है।

८ मूत्र प्रवृत्ति के जैसा मल प्रवृत्ति भी होता है। मल प्रवृत्ति अनियमित हो जाती है।



पौरुष ग्रन्थि स्राव की अविकृतावस्था का सूक्ष्मदर्शकीय चित्र

९ कभी-२ विबंध हो जाता है। विरेचन लेवे पर भी मल प्रवृत्ति साफ नहीं होती है ।

१०. कभी-कभी २-४ बार मल प्रवृत्ति के लिए जाना पड़ता है ।

११. मल प्रवृत्ति के समय कभी-२ वेदना होती है ।

१२ इस रोग से मानसिक व्याधि भी होती है। रोगी का चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है। कभी पागलपन जैसे लक्षण भी पाये जाते हैं। मानसिक हताशा भी महसूस करता है ।

१३. अरुचि, निद्रानाश, शरीर गौरव, अंगमर्द, शिर शूल, दाह, ग्लानि, दुर्बलता, ज्वर आदि लक्षण भी पाये जाते हैं ।

१४ मूत्र मे कई बार सफेद स्राव निकलता है ।

१५ मल प्रवृत्ति भी चिकनाई युक्त होती है ।

सम्प्रति विज्ञान की दृष्टि से इस वृद्धि का कारण रक्त मे विशेष प्रकार के बेक्टेरिया बताया गया है। शरीर में कहीं पाक या सड़न हुई हो उसका असर रक्त से होकर प्रोस्टेट तक पहुचता है और प्रोस्टेट में सूजन होती है। इस सूजन से मूत्र का प्रवाह एकदम रुक जाता है तो उसे Acute Prostatitis कहते हैं। लेकिन यह मूत्र प्रवृत्ति रुक रुककर,होती हो तथा यह स्थिति अधिक समय तक चलती है तो उसे Chronic Prostatitis कहते हैं।

एक बार प्रोस्टेट वृद्धि का निदान हो जावे के बाद उसकी चिकित्सा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। संप्रति विज्ञान की दृष्टि से यह शस्त्र साध्य व्याधि है। उसकी कोई औषधि नही है। Acute Prostatitis में हायर ऐन्टबायोटिक्स से सूजन कम की जाती है। इसके अतिरिक्त और कोई औषधि नहीं है। वृद्धि को बिठाने के लिये इन्जेक्शन का प्रयोग किया जाता था। किंतु उसमें पूरी कामयाबी नही मिली ।

५० साल के बाद ७०% वृद्धो को प्रोस्टेट वृद्धि होती है। किन्तु सबको वह परेशान नही करती क्योंकि उसकी वृद्धि अत्यल्प होती है। रोग के ३०-४०% रोगी को वह परेशान करती है किन्तु उन सबको शस्त्रकर्म की जरूरत नही होती है। जो व्यक्ति प्रोस्टेट वृद्धि से परेशान होते हैं उनमें से १०-१५%को ही शस्त्रकर्म कराना पड़ता है। १८७६ मे नीत्झने एण्डोस्कोपी की पद्धति की शोध की। उसके बाद प्रोस्टेट का निरीक्षण करने मे सुविधा बढ गई है। तदनन्तर इस पद्धति से अनेक संशोधन होते रहे। आज तो बहुत अच्छी तरह एण्डोस्कोपी से प्रोस्टेट का निरीक्षण हो सकता है ।

इसमे उदर को काटकर प्रोस्टेट का शस्त्रकर्म किया जाता था। सन् १८८७ मे मेग्गील नामक इंग्लेण्ड के शस्त्रविद् ने प्रोस्टेट का इस तरह शस्त्रकर्म किया था। किन्तु यह पद्धति १०० साल पुरानी है। अब तो कुछ भी काटे बिना गुद मार्ग से ही रीसेस्टोस्कोप से प्रोस्टेट का शस्त्रकर्म किया जाता है जो अत्यन्त सुविधाजनक, आरामदायक और नुकसानरहित है। यह पद्धति अब प्रचलित है।

आयुर्वेद के उपचार से शस्त्रकर्म के बिना भी रोगी आरामप्रद जीवन जी सकता है। उसके लिये निम्न प्रकार का पथ्य पालन जरूरी है।

१. सयमित जीवन

२. वातवर्धक आहार विहार का त्याग

३. सुपाच्य, लघु, और अल्प आहार का सेवन

४. वातानुलोमक एव मूत्रल औषधों का सेवन

५ विबन्ध होवे नही देना

६ योगासन करना ।

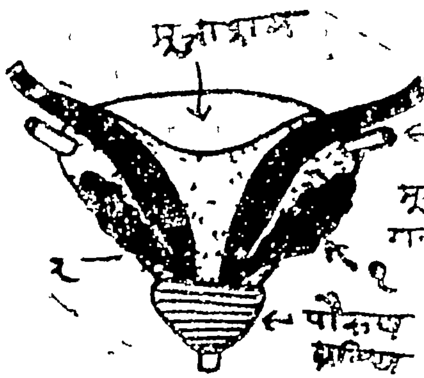
७ कुलत्थ क्वाथ और यव का जल अधिक उपयुक्त होता है ।

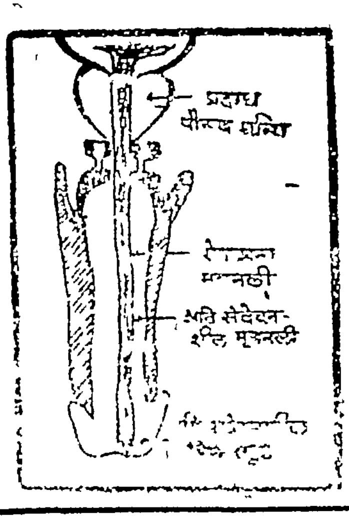
—शेषांश पृष्ठ २५८ पर देखें ।

पौरुष ग्रन्थि वृद्धि

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज, आयुर्वेदाचार्य
भारद्वाज औषधालय, स्वामी नारायण मन्दिर, सावर-कुण्डला (भावनगर) गुजरात

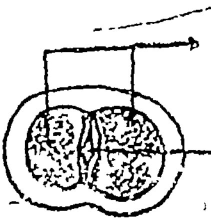
पौरुष ग्रन्थि शोथ का दूसरा नाम अष्ठीला वृद्धि है। शास्त्रो मे वाताष्ठीला नाम से वर्णन किया है तथा मूत्र ग्रन्थि नाम सुश्रुत ने दिया है। आचार्य रणजीत राय देसाई उसको बस्तिशिर कहते हैं। पौरुष ग्रन्थि मे जब शोथ आ जाता है तब उसको पौरुष ग्रन्थि वृद्धि या पौरुष ग्रन्थि शोथ से जाना जाता है। आधुनिक विद्वान उसे प्रोस्टेट ग्लेन्ड्स कहते हैं और शोथावस्था मे उसको प्रोस्टोयटीस कहते हैं। यह व्याधि केवल पुरुषो मे होती है क्योकि पौरुष ग्रन्थि केवल पुरुषो मे ही विद्यमान है।





पुरुष को अधिकाशत ४५ से ५० वर्ष की उम्र में पौरुप ग्रन्थि शोथ होता देखा जाता है। जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गो व इन्द्रियो की कार्य-मन्दता के साथ साथ शारीरिक क्रियायें सम्पन्न कराने वाली ग्रन्थिया भी अपना सहयोग देना वन्द करने लगती हैं। पुरुष शरीर मे इस तरह से पौरुप ग्रन्थि भी अपवाद नही है।

परिचय—पौरुष ग्रन्थि को मुखशायी ग्रन्थि भी कहते हैं। इस नाम की व्याख्या शास्त्र मे पायी जाती है। कोई उसे वाताष्ठीला कहते हैं, तो कोई उसे मूत्र ग्रन्थि कहते हैं। श्री आचार्य रणजीत राय देसाई के मत से उसे वस्तिशिर कहा जाता है। पुरुषो मे यह ग्रन्थि मूत्र स्रोतस से ऊपरी सिरे तथा मूत्राशय के निम्न द्वार को घेरे हुये लगभग २०-२५ ग्राम भार की, अखरोट सदृश, दो पार्श्व खण्डो से युक्त होती है। इसके दोनो ओर के स्रोत मूत्रस्रोत में खुलते हैं। यह ग्रन्थि मास सूत्रो से वनी होती है। यह ग्रन्थि सौत्रिक तन्तुओ से ढकी रहती है। इस ग्रन्थि के द्वारा मूत्राशय का निम्न द्वार बनता है। इस ग्रन्थि का स्राव शुक्र का सहायक स्राव होता है जो शुक्राणुओं को गति प्रदान करता है। लगभग ४५ से ५० वर्ष की उम्र के वृद्ध पुरुषो मे यह ग्रन्थि आकार मे कुछ वडी हो जाती है, जिसे पौरुप ग्रन्थि वृद्धि कहते हैं। इस ग्रन्थि का मोटा भाग वस्ति या मूत्राशय से सटा हुआ होता है तथा पतला भाग नीचे की ओर रहता है जो श्रोणि प्रदेश के आधार पर रहता है। इसके ऊपर के भाग का व्यास करीव १-५ इन्च तली के नीचे तक का माप १। इन्च और मोटाई करीव १ इन्च की होती है। इसका भार अनुमानत १० ग्राम के लगभग होता है। इस ग्रन्थि मे एक प्रकार का रस वनता है। कामोद्रेक के समय तक पिच्छिल रस



पौरुष ग्रन्थि का काट
ग्रन्थि के बीच मे मूत्रमार्ग को दिखाया है।

विश्रृत होकर दस-बीस पतली-पतली नलियो मे होकर (जो इस ग्रन्थि मे अवस्थित हैं) तक शुक्र मार्ग मे आकर खुलती हैं, शुक्र मे आ मिलता है। यह पिच्छिल रस क्षारीय होता है। मूत्र मार्ग को अम्लत्व के स्थान पर क्षारीय करने मे यह स्राव सहायता देता है। अम्लत्व मे पुंबीज जीवित नही रहते, अत क्षारीय द्रव उन्हे जीवित रखने मे समर्थ रहता है।

कारण—

वृद्धावस्था मे पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि का मुख्य कारण हार्मोन-असन्तुलन होता है। इस आयु मे प्राय पुरुष हार्मोन-टेस्टोस्टेरोन की उत्पत्ति कम हो जाती है तथा स्त्री हार्मोन ईस्ट्रोजन की उत्पत्ति अपेक्षाकृत उतनी कम नही हो पाती है। इस प्रकार स्वभावत होने वाले हार्मोन असन्तुलन मे प्राय वृद्धि होती है।

प्राथमिक कारण—प्राथमिक कारणो मे साधारण आघात जैसे घुड सवारी के समय कडी चीज पर बैठने ऊंचे स्थान से नीचे कूदने तथा कृत्रिम अथवा हस्तमैथुन से रोग का आरम्भ होता है।

गौण कारण—गौण कारण पौरुष ग्रन्थि वृद्धि के लिए इनमे शुरू होता है। जैसे-युरेथ्राइटिस, मूत्राशय की पथरी, मूत्रोत्सर्ग वात, गठिया, सुजाक या उत्तेजक पदार्थ से शोथ हो जाता है।

लक्षण—

१ बहुमूत्रता २ कामशक्ति लोप ३ मूत्रकृच्छ्र ४ मूत्राघात ५ रक्तमूत्र—

(१) बहुमूत्रता—पौरुष ग्रन्थि के मूत्रमार्ग या मूत्राशय के अन्दर की ओर आ जाने से सर्व प्रथम रात्रि मे मूत्र प्रवृत्ति अधिक होती है। मूत्र त्याग की इच्छा बार-बार होती है। रात्रि मे लगभग ३-४ बार मूत्रोत्पत्ति होती है। यह लक्षण पूर्वरूप मे मिलता है। व्यक्ति यदि किसी भी बार रात्रि मे बार-बार मूत्रोत्पत्ति नही करता और क्रमश यह लक्षण देखने को मिले तो समझना जरूरी होगा कि पौरुष ग्रन्थि मे शोथ आ रहा है।

(२) कामशक्ति लोप—यह लक्षण महत्व का है। प्रारम्भ मे कामोत्तेजना बढती है, लेकिन जब पौरुष ग्रन्थि बढती जाय तब काम शक्ति क्रमश घटती जाती है। वृद्धो मे काम विषयक चिन्तन, मनन, मानसिक से होता रहता है मगर मैथुन शक्ति का ह्रास हो जाता है।

(३) मूत्रकृच्छ्र—यह स्पष्ट स्वरूप का लक्षण है। मूत्र प्रवृत्ति करते समय काफी देर के बाद बूंद-बूंद करके उतरती है। मूत्र की धार निर्बल हो जाती है। मूत्र की धार आगे दूर न गिरकर बिलकुल नीचे गिरती है।

(४) मूत्राघात—अत्युष्णपान, मद्यपान, अतिशीत सेवन, दीर्घ यात्रा या दीर्घकाल तक आराममय बिस्तर पर पडे रहने से मूत्राघात हो जाता है जिसके फलस्वरूप तीव्र उदरशूल पाया जाता है।

(५) रक्तमूत्र—ग्रन्थि के मध्य खण्ड से सम्बन्धित रक्तवाहिनियो मे विस्फार के कारण मूत्र के साथ शुद्ध रक्त आने लगता है।

अन्य कारण—युवावस्था मे अत्यधिक मैथुन करना या अप्राकृतिक विधि से मैथुन करना या मैथुन के समय कोई ऐसा कार्य करना कि जिससे वीर्यस्खलन आदि पर कुप्रभाव पडे, इसके कारण हैं। किंचित पुरुषो तथा किशोरो मे जो आजकल हस्त-मैथुन का प्राबल्य है यह भी एक विकृति पैदा करने की वजह है। अधिक साईकिल का प्रयोग या घोडे आदि की सवारी या कब्ज का रहना हानिकारक है। शरीर की मर्यादा से अधिक मेहनत और मद्य का अधिक पान रोग को जन्म देते हैं। चिन्तातुर रहना, गलत आहार विहार का सेवन करना रोग का हेतु है। उपरोक्त सभी कारणो से शरीर मे विष (का

निर्माण होता है और वही रक्त मे मिलकर ग्रन्थि मे वार्धक्य शोथ पैदा करता है। फलस्वरूप बल का क्षय होकर सम्बन्धित समस्त अङ्ग उपाङ्ग निर्बल हो जाते हैं।

परीक्षण—

१ उदरगत परीक्षण—मूत्राशय तनाव युक्त मिलता है। वृक्क स्पर्शगम्य हो जाते हैं।

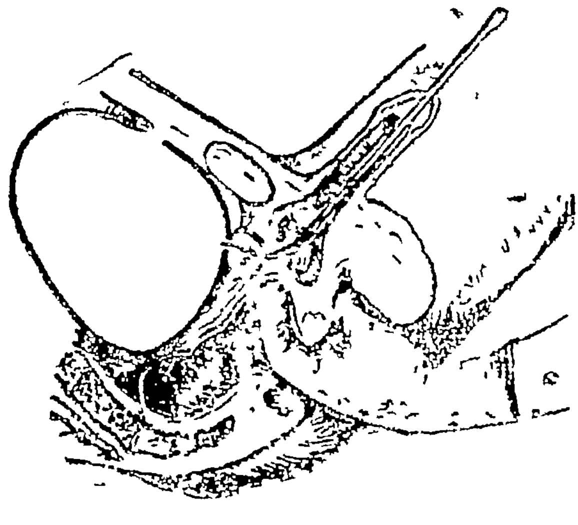
२ गुद परीक्षण—ग्रन्थि की वृद्धि स्पष्ट चिकनी, कठिन एव मध्य परिखा का अनुभव किया जा सकता है। गुदपेशी पौरुष ग्रन्थि से अलग स्पर्शगम्य होती हैं।

(३) आयु—प्राय ५० से ५५ वर्ष से ऊपर एव लक्षण धीरे-धीरे उत्पन्न होते हैं।

(४) अन्तिम अवस्था मे देर तक मूत्र रुके रहने से वृक्कों द्वारा यूरिया पूर्णरूपेण न निकल पाने पर उसके रक्त मे मिल जाने से यूरीमिया (मूत्र-विषमयता) उत्पन्न हो जाती है।

मूत्र परीक्षा—विशिष्ट गुरुत्व कम हो जाता है। मूत्र मे पूय (पस सेल्स) पाये जाते है।

रक्त परीक्षा—यूरिया की उपस्थिति पाई जाती है।



पौरुष ग्रन्थि वृद्धि के कारण उत्पन्न मूत्रावरोध की चिकित्स्यार्थ कैथीटर प्रविष्ट कर मूत्राशय को रिक्त करें। यदि इस वृद्धि के कारण कैथीटर प्रवेश मे कठिनाई पडे तो चित्र मे दिखाये अनुसार गुदा मे अगुली प्रविष्ट कर कैथीटर को सहारा देकर मूत्राशय मे पहुचायें।

सापेक्ष निदान—

मूत्राश्मरी—इसमे गुद परीक्षण मे ग्रन्थि का अनुभव नही होता।

मूत्र परीक्षा मे शर्करा, फास्फेट, आक्जीलेट आदि की उपस्थिति पाई जाती है। यह प्राय अपेक्षाकृत युवा एव तरुणावस्था मे पाई जाती है तथा इनमे दाहयुक्त अत्यधिक तीव्र उदरशूल पाया जाता है।

चिकित्सा—

आयुर्वेदीय चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार जहा शोथ उत्पन्न होता है वहा कफ दोष का प्राबल्य अवश्य होता है। अत कफ वृद्धि से ही शोथोत्पत्ति होती है। और शोथ को हटाने के लिए सर्व प्रथम लघन या लघु उपवास अत्यन्त आवश्यक होता है। कहा है कि 'लङ्घनम् परम् औषधम्' अर्थात् लङ्घन ही मुख्य औषधि है। लङ्घन से आमरस एव अन्य विष द्रव्य का नाश होता है। अत यहा पौरुष ग्रन्थि शोथ मे सर्व प्रथम केवल लङ्घन कराना उचित है। सिर्फ तीन दिन तक लङ्घन कराने से आवश्यक परिणाम देखा जाता है। लङ्घन के समय केवल सुण्ठी युक्त उष्ण जल पान से तथा लङ्घन से अग्नि प्रबल होती है और अग्नि से आम का नाश होता है परिणामत कफ की अधिकता कम होती है और शोथ कम होने लगता है।

तीन दिन के बाद मूंग का पानी, चावल, खाखरा इत्यादि लघु आहार लेना जरूरी होता है। बाद पांच दिन मे जब रुग्ण को शक्ति आने लगे और पाचन शक्ति तीव्र हो तब आभ्यन्तर चिकित्सा जरूरी होगी।

आजकल तो ऐसी मान्यतायें प्रचलित है कि यह रोग केवल शस्त्र का है, अगर रुग्ण शुरूआत आयु० चिकित्सा हेतु आयेगा शस्त्रक्रिया की जरूरत नही होगी। कुछ चिकित्सक लङ्घन नही कराते और प्रथम से ही औषधि चिकित्सा देते हैं उसमे देर लगती है। ऐसा हमारा अनुभव है।

औषधि चिकित्सा—

१ आरोग्यवर्धनी रस, वङ्ग भस्म, यवक्षार, मूली

क्षार, हजरतबेर भस्म ये सब २-२ रत्ती, रसायन चूर्ण १ माशा। मात्रानुसार पुड़िया बनाकर १-१ पुड़िया दिन में ३ बार पानी से देवें।

२ चन्द्रप्रभा वटी २-२ गोली तीन बार पानी से।

३. गोक्षुरादि गुग्गुलु—२-२ गोली ३ बार पानी से

४. पेडू पर गरम पानी से सेक करना।

५ रात्रि को त्रिफला चूर्ण १ तोला पानी से देना।

६ सम्पूर्ण आराम।

मूत्र में पूयोत्पत्ति पायी जाती है, तब—

(१) तारकेश्वर रस—२-२ गोली ३ बार पानी से

(२) गन्धक रसायन—१-१ गोली ३ बार पानी से

पौरुष ग्रन्थि शोथ में अलारसिन फार्मेसी की आधुनिक आयुर्वेद पटेन्ट दवा पर हमारा अनुभव—

आज तक हमारे पास पौरुष ग्रन्थि शोथ के अनेक लोग चिकित्सा हेतु आये हैं। उन सबको हम निम्नोक्त चिकित्सा करते हैं। ऊपर जो चिकित्सा बताई है, वह तो साथ-साथ चलती ही है। मगर तुरन्त परिणाम हेतु निम्नोक्त औषधियां भी देते हैं—

१. वंगशील गोली (अलारसिन कम्पनी-बम्बई)—२ गोली ३ बार पानी से दो सप्ताह तक।

२ फोर्टेज गोली (अलारसिन कम्पनी-बम्बई)—२ गोली ३ बार पानी से दो सप्ताह तक, दो सप्ताह के बाद उपरोक्त दोनों गोली १-१ कर दी जाती हैं जो दो सप्ताह तक चालू रहती हैं। बाद में तीन माह तक दोनों गोली केवल रात को दो-दो दी जाती हैं। यह दो योग शुद्ध आयुर्वेदिक हैं और सम्पूर्ण सफलता मिलती है। मैंने आज तक अनेक दर्दीओं पर यह योग दिया है। साथ साथ तारकेश्वर रस देने से जल्दी आराम मिलता है।

विवरण—आरोग्य वर्धनी से शोथरोग दूर होता है। शोधन होने से शोथ भी दूर होता है। वंग भस्म मूत्रल है पूय नाशक है। मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी है। रसायन चूर्ण भी मूत्रल है और हार्मोन-असन्तुलन में उपयोगी है। इस तरह मूलीक्षार, यवक्षार और हजरत यहूद भस्म मूत्रल होने के साथ साथ दाह, रुकावट, शोथ इत्यादि को दूर करते हैं। चन्द्रप्रभा नीरोग करती है और मूत्राशय-शोथ की वृद्धि न बढ़ने देती है। साथ-साथ हार्मोन्स को पैदा करती है। गोक्षुरादि गुग्गुलु से शोथ नष्ट होता है, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रविबन्धता का नाश होता है।

सूचना—अगर पौरुष ग्रन्थि में शोथ ज्यादा बढ़ गया हो और उसकी वजह से मूत्र प्रवृत्ति न होती हो तो रबर कैथेटर द्वारा मूत्र निकालना पड़ता है। मगर दो तीन से अधिक बार नहीं। अन्त में जब सम्पूर्ण आराम मिल जाय तब दर्दी को ब्रह्मचर्य का बोध देना जरूरी है। ■

— पृष्ठ २४९ का शेषांश —

ओवरप्रेशर में शिलाजीत का प्रयोग उत्तम है। शिलाजीत युक्त चन्द्रप्रभावटी और आरोग्यवर्धिनी का नियमित सेवन लाभ करता है। आरोग्यवर्धिनी उपयुक्त है। इसमें शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुल एवं कुटकी सम प्रमाण में आता है। इसको २-२ गोली सुबह दोपहर और शाम को गरम पानी के साथ दें।

शिलाजीत के बाद अमृता-कुटकी भी लाभप्रद है। इसकी मनमानी गोली रोगी को दे सकते हैं। मूत्रल औषधि के लिए गोक्षुरादि गुग्गुल और पुनर्नवादि गुग्गुल भी उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त कुमारिका, आमलकी, शतावरी, अश्वगन्धा, ब्राह्मी, गोक्षुरक, यष्टिमधु, जीवन्ती आदि औषधियों का नियमित सेवन करना चाहिए।

वसन्तकुसुमाकर रस और स्वर्ण राजवंगेश्वर रस भी इस व्याधि में खूब लाभ करता है। इस व्याधि में एलारसिन का वंगशील अधिक प्रमाण में देते हैं। और वंगशील के सेवन से अच्छे परिणाम भी मिलते हैं।

प्रोस्टेट वृद्धि की अविलम्ब चिकित्सा करनी चाहिए क्योंकि इस व्याधि से मूत्राशय का पूरा मूत्र निष्कासित नहीं होता है और करीब ४०% मूत्र मूत्राशय में कायम रहता है जिसके कारण अश्मरी बन सकती है। मूत्र में पूयोत्पत्ति होने से पाक-शोथ और संक्रमण हो सकता है। रोग के प्रारम्भ से ही आयुर्वेद औषधियों के नियमित सेवन से शस्त्रकर्म टाला जा सकता है। ✚

✻ शुक्राश्मरी तथा शर्करा-निदान चिकित्सा ✻

डा० महेश भाई तलाविया बी० एस० ए० एम० चिकित्साधिकारी
नेसडी वाया सावर-कुण्डला (भावनगर) गुजरात

—✻•✻—



श्री महेश भाई तलाविया सरकारी आयुर्वेद महाविद्यालय जूनागढ़ गुजरात के स्नातक हैं। आप गुजरात-सौराष्ट्र के प्रसिद्ध वैद्यराज श्री शामजी भाई तलाविया के पुत्र हैं, और 'धन्वन्तरि' पुरुष रोग चिकित्सा के विशेष सम्पादक वैद्य श्री अशोक भाई तलाविया के लघु भ्राता हैं। आप साहसी एवं हसमुख स्वभावी हैं। 'धन्वन्तरि' मे आपका प्रथम प्रयास उत्तम है। आप से आशा की जाती है, कि आप शुद्ध आयुर्वेद को माध्यम रखकर बार-बार 'धन्वन्तरि' को सहायता करेंगे।

—डा० बाऊदयाल गर्ग

अश्मरी स्त्री एव पुरुष दोनों में होती है। वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज कुल मिलाकर चार प्रकार की अश्मरी का वर्णन शास्त्रों में मिलता हैं। उसमे वातज, पित्तज और कफज तीन प्रकार की अश्मरी स्त्री तथा पुरुष दोनों में होती है। सिर्फ शुक्राश्मरी केवल पुरुषो में ही होती हैं। सुश्रुत तथा भाव प्रकाश आदि ग्रन्थों मे शुक्राश्मरी का विस्तृत वर्णन पाया जाता हैं।

शुक्राश्मरी का निदान व कारण—

शुक्राश्मरी तु महता जायते शुक्रधारणात्।

अर्थात् शुक्र धारण करने से शुक्राश्मरी होती हैं। जब शुक्र का वेग आता है, तब उस वेग को रोके रखने से शुक्राश्मरी होती हैं। उदावर्ताध्याय में भी कहा गया है यथा—

शुक्राश्मरी तत्स्रवण भवेच्च ते ते विकारा विहते तु शुक्रो। शुक्र के वेग को धारण करने से शुक्राश्मरी तथा अन्य मूत्राशय सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं।

सम्प्राप्ति—

स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयारन्तरेऽनिलः।
शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रं तच्छुक्रामश्मरी ॥

अर्थात् मैथुन के वेग से स्थान भ्रष्ट वीर्य बीच में मैथुन रोकने से बाहर नहीं आ सकता तो इस वीर्य को वायु लिङ्ग तथा वृषण के मध्य में मूत्राशय में ले जाता है, और वायु द्वारा शुक्र सूख जाता है। अत. अश्मरी हो जाती है, उसे शुक्राश्मरी कहते हैं।

लक्षण—

बड़े पुरुषों में शुक्राश्मरी शुक्र के कारण उत्पन्न होती हैं। मैथुनरत पुरुष एकदम किसी कारणवश मैथुन से विरत हो जावे, अथवा मैथुनाधिक्य के कारण स्वस्थान से क्षरित शुक्र बाहर न आकर विमार्गगामी होकर वायु द्वारा ऊपर नीचे या किसी भी पार्श्व में ले जा कर मेढ़ और वृषण के मध्य में (मूत्राशय के नीचे शुक्राशय मे) एकत्रित होकर गोलाकार बन जाता है तथा

वायु वहां पहुंचकर इसे शुष्क कर देता है। यह शुष्क शुक्र ही अश्मरी बन मूत्रमार्ग को अवरुद्ध कर देता है जिससे मूत्र का कठिनाई से आना, वस्ति मे वेदना का होना तथा कभी-कभी दोनों अण्डकोषों मे सूजन हो जाती है। गुदा मे अंगुली प्रविष्ट कर शुक्राशय पर दबाव डालने से यदि अश्मरी छोटी ही है तो वह विलीन हो जाती है। यह नूतन शुक्राश्मरी के लक्षण हैं। भावमिश्र ने लक्षण बताते हुये कहा है यथा—

वस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्व मुष्कश्वयथुकारिणी ।
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा ॥

शुक्राश्मरीजन्य शर्करा—

अवस्था भेदादश्मरी शर्करासिकता भवतीत्याहु । अश्मर्येव च शर्करा । चकारात् सिकता च भवति-शर्करासिकतयोश्च भेदो महत्वाल्पत्वाभ्यां बोद्धव्य ।

अर्थात् शर्करा (बारीक रेत जैसी) मेह, सिकता (दानेदार बालू) मेह और भस्माख्य (मूत्र शुक्र नामक मूत्ररोग) अश्मरी के ही विकार (उपद्रव) हैं। अश्मरी जब वायु द्वारा छोटे-छोटे रेत जैसे टुकडों में विभक्त हो जाती है तो उसे शर्करा कहते हैं। इसमें अश्मरी के समान ही लक्षण एव वेदनायें होती हैं। यदि यह बहुत बारीक हो तो वायु के अनुकूल होने पर (उचित चिकित्सा से) बाहर निकल भी जाती है। यथा—

सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते । साऽश्मरी ॥

कारण बताते हुये आचार्य कहते हैं—

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते ।
मूत्रस्रोतप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥

अन्य लक्षण तथा उपद्रव इस प्रकार हैं—

शर्करा रोगी के हृदय प्रदेश मे वेदना (शर्कराश्मरी वृक्क में होने पर), टांगों मे ग्लानि, उदरशूल, कम्पन, तृष्णा, वायु का ऊर्ध्वगामी होना, रुग्ण का कृष्ण वर्ण हो जाना, दुर्बलता के कारण (रक्त की कमी से) रुग्ण का पीलापन, अरुचि और अजीर्ण आदि होते हैं। यदि अश्मरी वृक्क से निष्क्रमित होकर मूत्रमार्ग (मूत्र गवीनी नलिका) मे पहुंचकर रुक जाती है तो अत्यन्त बेचैनी, उदरशूल, हृदय मे वेदना, दुर्बलता, कृशता, अरुचि, तृष्णा, पाण्डु, वमन उत्पन्न करती है।

अरिष्ट लक्षण—

अश्मरी, शर्करा तथा सिकतायुक्त रोगी को नाभि तथा वृषण में शोथ हो जाय तथा मूत्रबद्धता हो तथा वेदना होती हो तो उस पुरुष की तुरन्त ही मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—

अष्टाङ्ग हृदय के कर्ता महर्षि वाग्भट्ट ने तथा भावप्रकाश के कर्ता पण्डित भावमिश्र ने कहा है कि शुक्राश्मरी होने पर वस्ति कर्म द्वारा मूत्रमार्ग के शुद्ध कर लेने के बाद पुरुष वृष्य द्रव्यों और मुर्गे के मांस का तृप्ति पर्यन्त सेवन करे। पश्चात् अत्यन्त मददायी, रूपवती, षोडस वर्षीया बाला के साथ जी भरकर सम्भोग करे। इससे शुक्राशय की शुद्धि होकर शुक्राश्मरी नष्ट हो जाती है।

भावमिश्र जी ने उदावर्ताध्याय मे कहा है कि—

वस्तिशुद्धिकरैः सिद्ध चतुर्गुणजल पय ।
आवारिनाशात् कथित पीतवन्त प्रकामत ॥
रमयेयु प्रियनार्यं शुक्रोदावर्तिन नरम् ।
तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिरा चरणायुधा ॥
शालि पयोनिरुहश्च हित मैथुनमेव च ।

औषध चिकित्सा—

वातादि दोष जनित अश्मरी की निम्न चिकित्सा करनी चाहिए—

१ कूष्माण्ड के रस (पेठा) में यवक्षार तथा गुड मिलाकर पीने से शुक्राश्मरी और शर्करा नष्ट हो जाती हैं।

२ शतावर्यादि रस—शतावर के मूल का रस समान भाग गाय के दूध मे मिलाकर पान करने से पुरानी शुक्राश्मरी भी शीघ्र नष्ट हो जाती हैं।

३ कुटजादि योग—कुटज की छाल का चूर्ण दही के अनुपान से सेवन करने से तथा पथ्य अन्न भोजन करने

से शिश्न की शर्करा शीघ्र निश्चित नष्ट हो जाती हैं।

४. पाषाणभेदादि क्वाथ–पाषाण भेद, वरुण, गोखरू, एरण्ड, छोटी कटेरी और तालमखाना इनके मूल भाग को समान लेकर क्वाथ कर उसमें दही का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्र विबन्ध, उग्र शुक्राश्मरी और शर्करा रोग नष्ट होते हैं।

५ त्रिपुसी बीजादि योग–ककडी के बीजो को अथवा नारियल के फूलों को दूध मे पीसकर पान करने से कुछ ही दिनों मे मूत्राघात और शर्करा का रोगी सुखी हो जाता है।

६ हरिद्रादि योग—जो मनुष्य हल्दी के चूर्ण और पुराने गुड को भली भाति मिलाकर काजी के साथ पान करता है, उसकी अत्यन्त पुरानी मेढ़ शर्करा भी नष्ट हो जाती है।

७ तिलादि क्षार योग–तिल, अपामार्ग, कदली (केला), पलाश यव इनके क्षार को बकरी के मूत्र के साथ पान करने से शर्करा तथा अश्मरी मे लाभ होता है।

८ सुपारी, अकोल, निर्मली फल, साग फल और इन्दिवर कमल के फल समान भाग लेकर क्वाथ कर गुड मिलाकर पीने से शर्करा नष्ट होती है।

९ गोखरू, वरुण और शुण्ठी के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से अश्मरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र मिट जाते हैं।

१० कूष्माण्ड के रस मे हींग तथा यवक्षार मिलाकर पीने से मूत्राशय तथा लिंग की वेदना, अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र मिट जाता है।

११ पुनर्नवा, लोह भस्म, हरिद्रा (हल्दी), गोखरू, चमार दुधेली, प्रवाल भस्म और हीराबोल को आम्र रस, शहद और इक्षु रस मे पीसकर पीने से शुक्राश्मरी तथा शर्करा मिट जाती है।

१२ वरुण त्वक्, पाषाण भेद, शुण्ठी और गोखरू का क्वाथ बनाकर उसमे यवक्षार डालकर पीने से शर्करा एवं सिकता टूट जाती है।

इसके अलावा तृणपचमूलाद्य घृत, वरुण तैल और कुशाद्य तैल जैसे औषधि योग देने से शुक्राश्मरी, शर्करा और सिकता नष्ट हो जाती हैं।

त्रिविक्रम रस, पाषाणवज्रक रस, गोक्षुरादि गुग्गुलु, चन्द्रप्रभा वटी, अश्मरीहर क्वाथ, त्रिकन्टकादि चूर्ण, शु शिलाजीत, इक्षुरक क्षार, पुनर्नवादि क्वाथ, गोक्षुरादि क्वाथ भी सफलता पूर्वक प्रयुक्त किये जाते हैं।

आधुनिक आयुर्वेद पेटेन्ट योग निम्न हैं—

सीस्टोन (हिमालया) केल्क्युरी (चरक) केल्क्युरोसिन सीरप (वान) वगशील (अलारसिन) पथरीना (वैद्यनाथ) आदि योग लाभप्रद हैं।

प्रमदेभांकुश रस (निर्मल अलीगढ) देने से शर्करा और सिकता नष्ट होती है।

पथ्य—कुलथी, मूग, गेहूँ पुराने शालिधान् के चावल, यव, धन्वदेशीय जीवों का मास, चौराई के साग, पुराने श्वेत कूष्माण्ड (पेठा) के फल, अदरख, यवक्षार ये सब अश्मरी के रोगियो के हितकर पथ्य हैं।

नोट—जब मैथुन कर्म किया जाय तब वीर्य के वेग को रोकना नही चाहिए।

★ शास्त्रों में शुक्राश्मरी वाले रोगियो को षोडसी बाला के साथ रमण (मैथुन) करने को बताया है, वर्तमान समय मे यह प्रयोग ठीक नहीं, फिर भी अपनी पत्नी के साथ जी भरकर सम्भोग करना उचित होगा।

—oo—

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र निदान चिकित्सा

वैद्यराज डा० रणवीर सिंह शास्त्री एम. ए., पीएच. डी., आगरा

व्याधि का नामकरण (सम्प्राप्ति सहित)—

वीर्य विकारों एवं प्रवृत्तवीर्य के अवरोध से मूत्रमार्ग में व्रण, आघात, शोथ घाव आदि के होने से मूत्र प्रसेक के साथ शुक्र का स्राव दाह वेदना या जलन के साथ होने लगता है इसलिए रोग के रूप और उपद्रवो को प्रदर्शित करने वाले नाम का निर्धारण किया गया है—शुक्रज मूत्रकृच्छ्र[1] ॥ अर्थात् शुक्र दोषो से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र, मूत्र प्रसेक मे असह्य पीडा व जलन या चिनग होना। वस्ति व मेहन (लिंग) मे वेदना होना, शोथ, दाह और परिकर्तिका की उत्पत्ति।

साधारण निदान—

यह शुक्रजमूत्रकृच्छ्र अल्प आयु वाले बालकों व शिशुओं को नही होता, वयस्क होने पर ही इस रोग की सभावना रहती है, अत्यधिक उष्ण मद्य मांस, पेय, गर्ममसाले, उष्णवाजीकर औषधियों, तीव्र प्रदाही वाह्य प्रलेपो (तिलाओ) के प्रयोग से स्वस्थान च्युत वीर्य मूत्र प्रसेक नलिका मे अवरुद्ध होकर घाव बना देता है अथवा स्वप्नदोष होने पर आकस्मिक परिस्रुत होने वाले शुक्र को हस्त आदि से अवधारित करना, इसी प्रकार मैथुन मे स्खलित वीर्य को श्वासाकर्षण आदि से हठात् रोकना लज्जा, भय, अशक्ति, पौरुष हीनता, खेद या खिन्नता के वशीभूत होकर निर्बलता को व्यर्थ ही छिपाने के लिए स्वस्थानच्युतशुक्र का येन केन प्रकारेण विधारण करना, शुक्रजमूत्रकृच्छ्र को उत्पन्न करने मे प्रमुख हेतु हैं, कोमल मूत्रमार्ग मे शुक्र का विधारणव्रण पूय आदि की उत्पत्ति के साथ-२ शुक्राश्मरी को भी उत्पन्न कर देता है।

मूत्रकृच्छ्र से सम्बन्धित होने के कारण शुक्राश्मरी[2] का पृथक वर्णन किया जायेगा, इसमे भी वीर्यावरोध कारण है।

शारीरिक एवं मानसिक उपद्रव—

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र के उपद्रवो मे मानसिक उत्क्लेश, अव्यवस्थित चित्तता, हीनता, अरुचि, शिरोर्ति, देह वेदना मेहन के समीपवर्ति स्थलो पर पीडा, आलस्य कामुकता, उत्तेजना, पीतमूत्रता, वीर्य का मूत्र के साथ प्रस्रवण, ग्लानि, वक्षणकटि वेदना प्रभृति दैहिक बौद्धिक उपद्रव होते हैं।

शुक्रजमूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा—

१. शुद्ध[3] शिलाजतु का प्रयोग—४-४ रत्ती शिलाजतु को शहद के साथ मिलाकर प्रात. मध्याह्न एव रात्रि मे लें।

२ यदि पुरुष पित्त प्रकृति हो, उष्णकाल हो और देश आहर विहार भी पित्तकारक हो, ऐसी दशा मे शिलाजीत[4] का प्रयोग शीतल दुग्ध मे मिश्री मिलाकर करें। अथवा शुद्ध गोघृत मे शुद्ध मधु मिलाकर करें। मात्रा—शिलाजीत ४-४ रत्ती, घृत १॥ तो, मधु १ तो प्रतिवार।

३. तृण पञ्चमूल[5] ५ तो जल ८० तोले मे पकावें। २० तोला शेष रहने पर १० तोला गोघृत पकावें। सिद्ध

१—शुक्रदोषैरुपहते मूत्र मार्गे विधारिते। सशुक्रं मूत्रयेत् कृच्छ्राद्, वस्तिमेहन शूलवान् ॥ योगरत्नाकर-मूत्रकृच्छ्रनिदान तथा माधव निदान—मूत्रकृच्छ्र निदान ॥८॥

२—अश्मरी हेतुस्तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ —माधव निदान मूत्रकृच्छ्र

३—कृच्छ्रे शुक्र विबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ॥ —योग रत्नाकर मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा

४—सक्षीरं ससितं पिवेत्। सर्पिर्मध्वापि प्रपिवेन्नरः ॥ —यो. र. मूत्र

५—तृणपञ्चकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिवेदपि ॥ —योग मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा

होनेपर २-२ तो गो दुग्ध मे पीवें १-२ सप्ताह प्रयोग करें।

३ खरेंटी २ तो., हींग २ रत्ती गोदुग्ध मे २ तो घृत[1] मिलाकर प्रातः पीवें।

शुक्र विवन्ध मूत्रकृच्छ्र मे पूर्ण यौवनाप्रमदा[2] का सेवन भी रोग निवृति के लिये हितावह है ऐसा आयुर्वेद चिकित्सा मे वर्णित है।

अनुभव के आधार पर चिकित्सा—

(१) वेरपत्थर ८ रत्ती शीतलजल अथवा कच्चे दूध से घिसकर प्रात सायं पीवें। मात्रा ८ रत्ती से १६ रत्ती तक।

(२) गोखरू छोटा, खमनई, चन्दनचूरा, छोटी इलायची ३-३ माशे शीतल जल से पीसकर २ तो मिश्री मिला पीवें। इस प्रयोग को कच्चे दूध से भी ले सकते हैं।

(३) चद्रप्रभावटी १-१ गो गोक्षुर क्वाथ मे २ दो वार लें।

(४) चन्दनासव, उशीरासव २-२ तोला मे अर्कसौंफ ४-४ तोला मिलाकर कुछ खाने के बाद दो बार पीवें।

उक्त शास्त्रीय चिकित्सा एवं अनुभूत चिकित्सा को पथ्यपूर्वक करने से सोपद्रव शुक्रज मूत्रकृच्छ्र शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं।

आवश्यक— शुक्राश्मरी भी शुक्रावरोध से होती है इसमे भी मूत्रकृच्छ्र[3] होता है। प्रसङ्गवश इस पर भी प्रकाश डाला जा रहा है—

शुक्राश्मरी—शुक्र के धारण मे युवा पुरुष को शुक्राश्मरी[4] होजाती है अपने स्थान से परिस्रुत मध्यमार्ग मे रोका गया वीर्य अण्डकोषो मे अवतीर्ण होकर दाह वेदना और रक्त विसर्पवत् शोथ व पाक उत्पन्न करता है। इसका तत्काल उपचार न किया जाय तो शुक्राश्मरी बन जाती है, अवरुद्धवीर्य शुष्क होकर अश्मरी का रूप ले लेता है।

लक्षण—

मूत्राशय मे वेदना, मूत्रोत्सर्ग मे भयकर कष्ट, अडकोषो मे सूजन आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—

शुक्राशय व मूत्र मार्ग की विशुद्धि के लिए वृष्य मास रस, कुक्कुट मास आदि का सेवन करावें, विशेष रूप मे समदा प्रमदाओ का सेवन रोग निवारक है।

प्रारम्भिक चिकित्सा—अण्डकोषो के शोथ व दाह मे शुद्ध मृत्तिका की पट्टिया वार-२ लगाते रहे। ईषवबीजो को पानी मे भिगोकर निरन्तर पट्टिया बाधते रहे। इससे बहुत शांति मिलती है।

शल्यक्रिया - सभी प्रकार के उपचारो व औषधि प्रयोगो से लाभ न हो तो शल्य क्रिया द्वार अश्मरी का निर्हरण करें।

२—शुक्रदोष विशुद्धयर्थं समदा प्रमदां भजेत् ॥ —यो र मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा

१—बला हिंगुयुनक्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः। यो र मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा

३—अश्मरी हेतुस्तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहृतम् ॥ साधयति, मूत्रकृच्छ्र ॥७॥

४—शुक्राश्मरीतु महतां जायते शुक्रधारणात्। स्थानाच्च्युतममुक्त हि मुष्कयोरन्तरेऽनिल । शोषयत्युपसगृह्य शुक्त तच्छुष्कमश्मरी ॥ बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्व मुष्कश्वयथुकारिणी ॥ —वाग्भट-मूत्राघात १६।१७

५—सिद्धैरुपक्रमैरेनं नचेत् शान्तिस्तदाभिषक्—इति राजानमापृच्छ्य शस्त्र साध्ववचारयेत् ॥

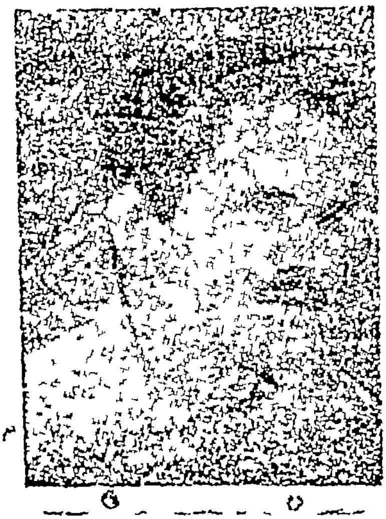
—वाग्भट्ट—मूत्राघात चिकित्सा ४२ से ४४

—✤✤—

❀ पुरुष को होने वाली विशेष व्याधियां ❀

डा० ब्रजमोहन वाशिष्ठ ए० एम० बी० एस०, राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय
मन्नीवाली (श्री गंगानगर)

—०※०—



१-अण्ड ग्रन्थि प्रदाह

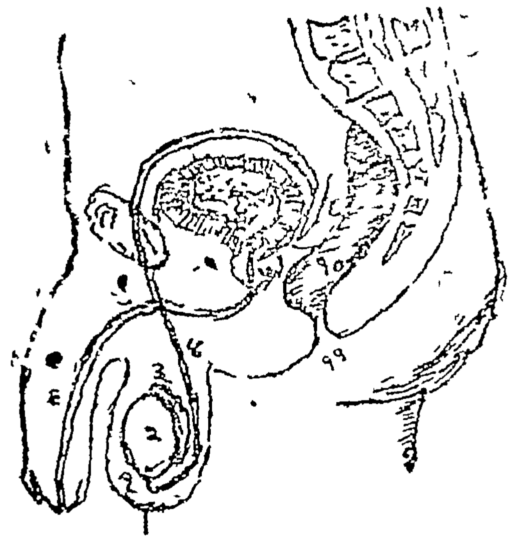
कारण—चोट, उपदंश, सुजाक, गठिया, छोटे जोड़ों में शूल, यकृत की बीमारियां, मूत्राशय शोथ, मूत्राशय की अश्मरी, कर्ण मूल, फाइलेरिया उपसर्ग के अतिरिक्त काम वासना का दमन भी इस रोग को बढ़ाने में सहायक है।

रोग के लक्षण—एक अथवा दोनों अण्डकोषों, उपकोषों अथवा उनकी आवरक झिल्ली में शोथ होकर व्याधित अण्डकोष बड़ा होकर वेदना उत्पन्न करने लगता है। शोथाधिक्य में अण्डकोष की त्वचा का वर्ण लाली लिए हुए दिखाई देता है। ज्वर के अतिरिक्त शूल भी बढ़ जाता है। पेशाब करते समय जलन की अनुभूति होती है। बहुत दिनों की शोथ में मामूली वेदना होती है। ज्वर प्रायः नहीं रहता। कई बार इस व्याधि में केवल कठोरता रहती है। दर्द भी नहीं होता।

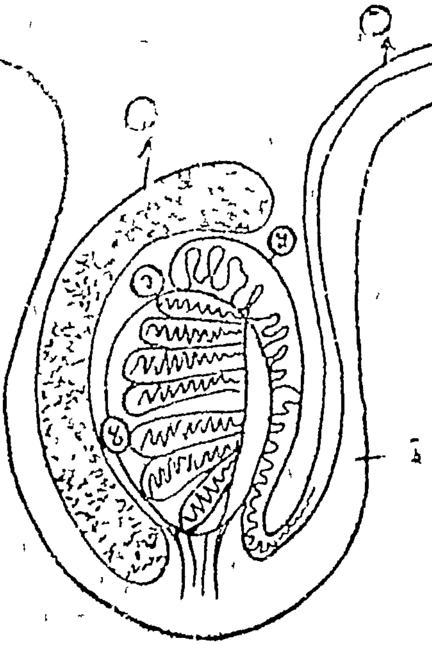
चिकित्सा—अण्डकोष के नीचे मुलायम तकिये का सहारा देकर रोगी को पूर्ण विश्राम देने के साथ ही हिलना डुलना भी यथासम्भव रोक देना चाहिए। रोग के एकदम होते ही रोगी आ जावे तो बर्फ की टोपी रखी जा सकती है। बाद मे बोरिक जल का सेक कराकर कुछ देर बाद सुखाकर एरण्ड के कोमल पत्ते पर महालाक्षादि तैल चुपड़कर गरम कर जितना सह सके उतना कसकर बांध दें।

जिन औषधियों के कारण इस व्याधि के होने का पता चले उनकी चिकित्सा उक्त चिकित्सा के साथ ही करने से जल्दी शमन होता है।

आधुनिक एलोपैथी चिकित्सा में अत्याधुनिक औषध द्रव्य यथा एम्पीसिलीन, इरीथ्रोमाइसिन का प्रयोग चिकित्सक दोषों की स्थिति के अनुसार करते हैं। साथ में



१-अण्डकोष २-अण्ड ३-उपाण्ड ४-शुक्रनलिका ५-मूत्राशय ६-शुक्राशय ७-पौरुष ग्रन्थि ८-मूत्र-मार्ग ९-शिश्न १०-मलाशय ११-मलद्वार



ओक्सालजीन जैसी औषधियां यथा मात्रा देने से रोग शमन में आसानी होने के साथ शून भी हटता है। लगाने के लिए भी थ्रोम्बोफोब अथवा मेडिप्रीम जैसा मरहम लगाने से राहत मिलती है।

२-धातु क्षीणता

कारण—शोक, भय, चिन्ता आदि मानसिक कारणों से, पौष्टिक आहार के अभाव से, अत्यधिक व्रत, तर्पण, सहवास जैसे द्रव्यों से क्रमश. सातों धातुओं के क्षीण होने से अन्तिम धातु शुक्र की क्षीणता हो जाती है।

लक्षण—शारीरिक और मानसिक कृशता जैसे इन्द्रियों की कमजोरी, उदासी, मुख की शुष्कता, कंपकपी, अंगों में पीड़ा की अनुभूति, सुस्ती, आंशिक या पूर्ण नपुंसकता, शिश्न या अण्डकोषों में वेदना प्रमुख से इस रोग में बताए गए हैं।

चिकित्सा—शुक्रवल्लभ रस ३०० मिग्रा., स्वर्ण मकरध्वज वटी १५० मिग्रा, अश्वगन्धा चूर्ण ३ ग्राम, वंग भस्म ३०० मिग्रा.। २ बार प्रात.सायं शहद में चाटकर दूध पीवें।

भोजनोपरान्त—अश्वगन्धारिष्ट २५ मिलि बलारिष्ट २५ मिली, जल २५ मिली। २ बार प्रात सायं पीवें।

च्यवनप्राश, चन्द्रप्रभा वटी, शिलाजतु, सफेद मूसली भी शुक्र वार्धक्य में यथामात्रा हितकारी हैं।

एलोपैथिक दृष्टि से टेस्टोस्टेरोन मिथाइल १० मिग्रा दिन में तीन बार मुख से या टेस्टोस्टेरोन ७५ मिग्रा इन्जेक्शन प्रति सप्ताह दो बार मासान्तर्गत दें।

वैक्यूम मसाज ट्रीटमेन्ट (चिकित्सा विधि) इस क्षेत्र में विशेष प्रभावी है। इस कार्य हेतु वैक्यूम मसाज पम्प आता है। उसकी कार्य विधि आदि सभी स्पष्ट तौर पर उसके साथ आती है।

३-प्रमेह (स्परमेटोरिया)

प्रमेह में इच्छा या बिना इच्छा सुषुप्त अथवा जागृत अवस्था में मूत्र के आगे या पीछे मूत्र के अतिरिक्त तत्वों का स्राव हो जाया करता है। इसमें शुक्र नहीं होता।

कारण—अति संभोग, हस्तमैथुन, मिथ्याहार विहार, दिवास्वप्न, दिन भर बैठे रहने, सामर्थ्यातिरिक्त श्रम, सेपरेटा दूध, दही, गुड, शक्कर, तीक्ष्ण खटाई एव मसालों के अति सेवन, नशीले द्रव्यो के सेवन, वात और पित्त-वर्धक पदार्थों के अधिक सेवन से अनेकों प्रकार के प्रमेह हो जाते हैं। आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार वातज चार, पित्तज छः और कफज दस, इस प्रकार बीस प्रकार के प्रमेह कहे गए हैं।

प्राय यकृत तथा उदर विकृतियों के कारण मूत्र में जो फोस्फेट आते हैं उसे ही भ्रमवशात् अज्ञानी लोग धातुस्राव (शुक्रस्राव), मान लेते हैं जबकि उसमें शुक्र नहीं पाया जाता।

चिकित्सा—सर्वप्रथम यकृत या उदरादि में यदि कोई विकृति हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। दुर्व्यसन, कुटेव, कुकृत्यादि का साथ छोड़कर पाचन संस्थान के दोषों (विशेषत विबन्ध) का इलाज करें। अति स्थूल रोगी की मेदोहर और अतिकृश रोगी की बल प्रदायक द्रव्यों से चिकित्सा करें।

त्रिबंग १५० मिग्रा, चन्द्रप्रभा वटी १०० मिग्रा,

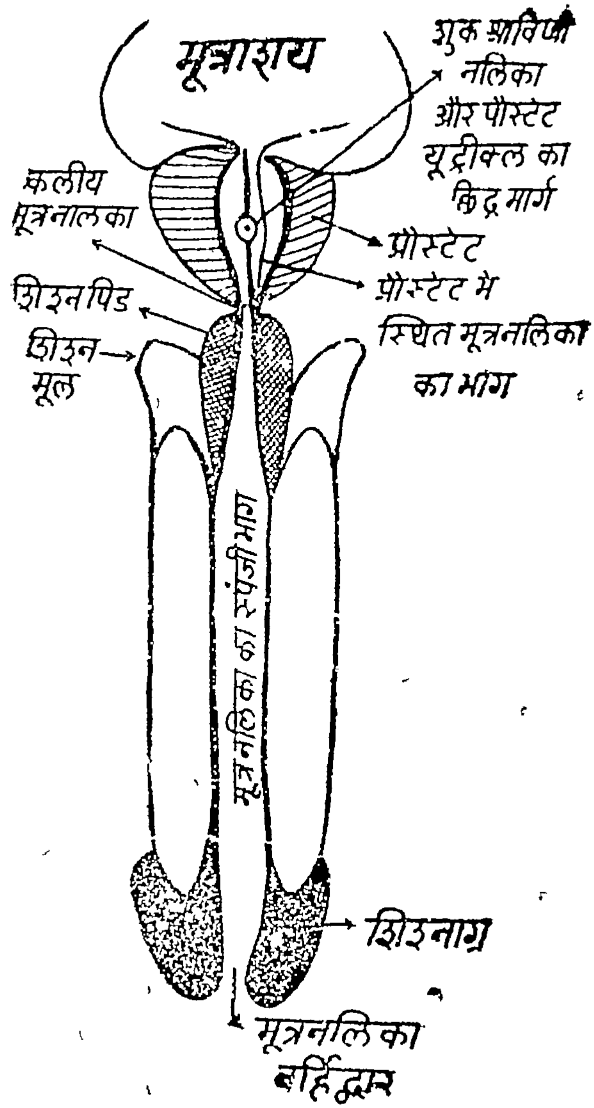
मुक्ताशुक्ति भस्म ३०० मिग्रा । २ बार प्रात सायं मधु से चटावें।

यदि रोगी स्थूल हो तो साथ में पाच सौ मिग्रा मेदोहर विडगादि लौह भी (एक मात्रा के हिसाब से) दोनों वक्त देना उपयुक्त रहेगा । यदि रोगी कृश है तो कार्श्यहर लौह तीन-तीन सौ मि०ग्रा० की मात्रा में उक्त योग के साथ देना चाहिये । साथ मे अश्वगन्धा घृत भी कृश काय को दिया जा सकता है।

भोजनोपरान्त द्राक्षारिष्ट २५ मि०ली० समान जल मिलाकर देना चाहिए । कृशकाय को इसके स्थान पर या इसके साथ इसी मात्रा में अश्वगन्धारिष्ट दिया जा सकता है। मकरध्वज २५ मि० ग्रा० च्यवनप्राश २५ ग्राम के साथ प्रात साय देकर ऊपर से दुध पीना ठीक है। यदि विबन्ध भी हो तो भोजनोपरान्त छोटी हरड तीन ग्राम (या पाच ग्राम भी दुध या उष्ण जल से देना चाहिए । सोते समय दुध सोने से काफी पूर्व पीवें।

तारकेश्वर रस ३०० मि० ग्रा०, वग भस्म २०० मि० ग्रा० प्रात साय मधु से चाटकर ऊपर से दुध पीना हितकारक है।

ऐलोपैथी में मूत्र की परीक्षा कराकर जो भी द्रव्य निष्कासन में पाया जावे उसके अनुसार ही चिकित्सा की जाती है। एसिड सोडी फोस १० ग्रेन और अमोनियम क्लोराइड २० ग्रेन मिलाकर दिन में तीन बार पानी से देने से पेशाव मे जाने वाले द्रव्य वन्द हो जाते है।



४-पौरुष ग्रन्थि शोथ (प्रोस्टेटाइटिस)—

कारण—गोनोकोकस, स्टेफिलोकोकस, आन्त्रकृमि, मूत्र नलिका (कैथेटर) का गलत प्रयोग, अश्मरी (पथरी) तथा गुदा के विभिन्न रोगों के कारण पौरुष ग्रन्थि में वृद्धि हो जाती है।

पहिचान—गुदा मे अ गुली प्रवेश कराकर शिश्न मूल से जुडी प्रोस्टेट ग्लेण्ड की वृद्धि का आसानी से पता चल जाता है। पुराने पौरुष ग्रन्थि प्रदाह में गुदा और सीवन के सयुक्त स्थान पर गाठ सी वढी हुई और वेदना की अनुभूति होती है। अण्डकोषों और जघाओं मे भी ऐसा ही प्रतीत होता है। मूत्र कष्ट से आता है और पेशाव में लघु आकार में धागे जैसे तन्तु निष्कासित होते हैं।

चिकित्सा—स्थानीय मूत्र विकृति या गुद विकृति पर ध्यान देकर चिकित्सा करना श्रेयस्कर है। अश्मरी हो तो उसकी चिकित्सा पहले करनी चाहिए। विबन्ध, मूत्रावरोध दोनो का निराकरण जरूरी है। हल्का, सुपाच्य भोजन दें। बाह्य रूप से सोये के तेल का मर्दन ठीक रहता है।

वृद्धिवाधिका वटी, मुक्ताशुक्ति भस्म ३००-३०० मि० ग्रा०, २ बार मधु से प्रात साय देवें।

भोजनोपरान्त—पुनर्नवारिष्ट २५ मि० ली०, जल २५ मि० ली० २ बार पिलावें।

शोथारि लौह ३०० मि० ग्रा०, आरोग्यवर्धिनी ३०० मि० ग्रा०, २ बार प्रात साय मधु से दिया जाना चाहिए।

ऐलोपैथी मे शोथनाशक योग यथा—स्ट्रैप्टो पेनसिलीन एक ग्राम रोजाना शोथ उतारने तक देवें। अथवा एम्पिसिलीन पाच सो मिग्रा. प्रति छः घण्टे पर देवें।

यदि चिकित्सा में मुख द्वारा द्रव्यों से लाभ न हो तो शल्य चिकित्सा का सहारा लेना चाहिए। जैसे प्रोस्टेट ग्लेण्ड को सिकोडने हेतु सेक अथवा स्थानीय सूचीवेधो का भी कई चिकित्सक प्रयोग करते हैं।

५–शिश्न-सुपारी का शोथ (बेलेनिटिस)

इस रोग मे शिश्न की सुपारी (अग्रभाग) की आवरक झिल्ली पर सूजन आ जाती है। पीडित स्थान लाली, जलन, दर्द और खुजली युक्त हो जाता है।

चिकित्सा—खाने के लिए गन्धक रसायन १ मिग्रा, रस माणिक्य १२५ मिग्रा. दोनों वक्त शहद से चटावें।

भोजनोपरान्त—खदिरारिष्ट, सारिवाद्यासव २५-२५ मिग्रा समान जल मिलाकर दोनों वक्त पिलावें। जात्यादि तैल का फोआ सिक्तकर स्थानीय रूप में पीड़ित स्थान पर रखकर हल्की पट्टी या लंगोट बाध दें।

एलोपैथी मे साधारणतया ओरिप्रिम डी० एस० १-१ गोली दिन में ३ बार देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

६–शिश्न की उल्टी चमडी (पैराफाइमोसिस)

कारण—विसर्प, शैकर, प्रमेह, शिश्न मुण्ड प्रदाह, शिश्नावरक मुख अति सूक्ष्म होने और इस प्रकार शिश्न मुण्ड अति काल तक खुला रहने से भी यह व्याधि हो जाया करती है।

लक्षण—शिश्नाग्रत्वक्-श्लेष्मिक कला फूल जाती है। आभा पीचिमा युक्त, अनुभूति शून्य, निष्क्रिय और उष्मा युक्त लिंग मुण्ड हो जाता है। अन्त में प्रमाद करने से चिकित्सा के अभाव में गैंग्रीन हो सकता है।

चिकित्सा—यथा सम्भव शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिए। शिश्न को दोनो हथेलियो की पहली और दूसरी अंगुलियो में पकडकर शिश्न मणि के नीचे जोड वाली झिल्ली मे इन्जेक्शन वाली सुई से चारों ओर सावधानी से कई स्थानो पर भेदन कर दबाकर स्राव निकाल देवें। फिर कीटाणु नाशक दवा का अच्छा-सा घोल (जिससे जलन न हो) लगाकर शिश्नाग्र त्वचा को खींचकर सामने की ओर कर देवें।

७–युवापिडिका (एक्नि)

नवयुवको के मुह पर कीलें निकल आती हैं, उन्हें युवापिडिका (मुहांसे) कहते हैं।

चिकित्सा—जल वाष्प देकर रोमकूप खुलने से ये शीघ्र ठीक हो जाते हैं। मुहासो को फोडना नहीं चाहिए। रात में सोते वक्त भी जल वाष्प लें। खाने के लिए शुद्ध गन्धक, त्रिफला चूर्ण और लगाने के लिए महामरिचादि तैल अच्छा रहता है।

एलोपैथी में लगाने के लिए एस्केमोल मरहम और खाने के लिए ओरिप्रिम डी० एस० खूब लाभ करते हैं।

८–शीघ्रपतन

सहवास मे शीघ्र वीर्यपात होने का ही नाम शीघ्रपतन है। वास्तव मे अधिकाशत यह भ्रम ही होता है। किन्तु फिर भी शीघ्रपतन का उपाय करना अच्छा है।

चिकित्सा—रात्रि मे गरिष्ठ भोजन न लेकर हल्का और सुपाच्य भोजन लें।

कामिनीविद्रावण रस, शुद्ध शिलाजतु दूध के साथ लेवें। श्वेत मूसली और शतावरी चूर्ण भी दूध से लेवें। शुक्रवल्लभ रस, वग भस्म लेने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। शीघ्रपतन हेतु उक्त योग और अन्य चिकित्सा द्रव्यों का योग्य चिकित्सक की देखरेख मे ही उपयोग करना चाहिए। रसो की मात्रा १२५ मिग्रा और चूर्णों की मात्रा ३ ग्राम काफी है। शिलाजत्वादि वटी, स्वर्णमकरध्वज वटी भी बहुत लाभदायक है।

शीघ्रपतन का चिकित्सा सूत्र—वगभस्म २०० मिग्रा., शुक्रवल्लभ रस २०० मिग्रा, श्वेत मूसली चूर्ण १॥ ग्रा,

शतावरी चूर्ण १।। ग्राम । २ वार प्रात साय मधु से चाटकर दूध पिलावें ।

शिलाजत्वादि वटी १ गोली, स्वर्ण मकरध्वज वटी १ गोली । २ वार प्रात साय मधु या मलाई से देवें । ऊपर से दूध पिलावें ।

९-स्वप्नदोष

कारण—सोते वक्त कल्पना लोक में पहुचते हुए शुक्र स्खलन होना प्राय उन पुरुषों में पाया जाता है जो निरन्तर विषय-भोग और कामोद्दीपक विचारो मे डूबे रहते है । गर्म उत्तेजक पदार्थों का सेवन, कब्ज रहना और कामोद्दीपक नजारे देखना, ये सभी स्वप्नदोष होने में सहायक हैं ।

सप्ताह में एकाध वार स्वप्न होना कोई दोष नही है । अत इस वारे में अधिक सोचकर अधिक भ्रम नही पालना चाहिए । सच तो यह है कि इससे इतनी हानि नही होती जितनी समझी जाती है । हा, बार-बार दूसरे, तीसरे दिन यदि होता है तो निम्न चिकित्सा की जानी चाहिए । चिकित्सा के साथ कब्ज न रहने दें ।

वगभस्म २५० मिग्रा., मुक्ताशुक्ति भस्म २५० मिग्रा. इमली की गुठली का कपडछन चूर्ण १।। ग्राम । प्रात - साय मधु से दो बार चटाकर दूध पिलावें ।

शुद्ध शिलाजीत चने प्रमाण दूध से प्रात साय पिलावें ।

एलोपैथी मे एट्रोपीन इन्जेक्शन चर्म मे दें । टिंचर कैंथराइडिस ६० बूंद और टिंचर फेरीक्लोराइड १८० बूंद मिलाकर एक औंस पानी मिला लेवें । अब इसे २० बूंद थोडे-थोडे पानी में मिलाकर दिन में ३ बार पिलावें ।

१०-हस्तमैथुन

स्वय के हाथ के घर्षण से रति सुख लेने की दृष्टि से किया गया कार्य ही हस्तमैथुन कहलाता है ।

कारण—अश्लील साहित्य का पढ़ना, अश्लील दृश्यावलियों का विभिन्न स्थलो द्वारा अवलोकन, जननेन्द्रिय का गन्दा रहना, आंत्रकृमि, शिश्नेन्द्रिय के आस-पास खुजली, दाद होना, ये सभी उसके मुख्य कारण हैं ।

लक्षण—एकान्त प्रियता, लज्जा का भाव, भय, उदासी, स्वरभंग, कर्कश स्वर, स्मरण शक्ति का कम होना, शिश्न का शिथिल सा रहना (इस कारण ही मूर्ख लोगो को शिश्न की आकृति टेढी, निर्बल, नसे तनी हुई जैसे स्वरूपों में दिखाई देती है), सिर का भारीपन, चक्कर से आना, कान एव नेत्रों के कार्य का कम होना, नेत्रो के नीचे कालापन, शरीर का निस्तेज और दुर्वल होना, इन लक्षणों के आधार पर इसके वारे मे वहुत कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है ।

हस्तमैथुन भी वास्तव में कोई व्याधि न होकर अधिकतर अविवाहितों, युवकों का गलत विज्ञापनो एव लोकोक्तियों के आधार पर भ्रमवशात हुआ रोग है । स्वप्नदोष की भाति ही अधिक मात्रा में ही यह हानिकर है । हा इसके करने से लम्बे समय के परिणामस्वरूप शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोरी अवश्य आती है ।

चिकित्सा—अश्लील दृश्य, साहित्य, सग छोडकर अच्छे दृश्य, साहित्य एव सग करने चाहिए । कब्ज न रहने दें ।

ब्राह्मी २ ग्राम, छोटी इलायची १ नग, भीगे हुए वादाम १० ग्राम, काली मिर्च ४ दाने, इन सवको अच्छी तरह पीसें और थोडी मिश्री मिलाकर पेय पदार्थ वनाकर पिलावें । थोडी मात्रा मे कपूर खिलाते रहने से भी उत्तेजना कम रहती है ।

चन्द्रप्रभा वटी या शिलाजीत का सेवन भी (दूध के साथ एक-एक गोली सुवह शाम) लाभदायक और शक्तिदायक रहता है ।

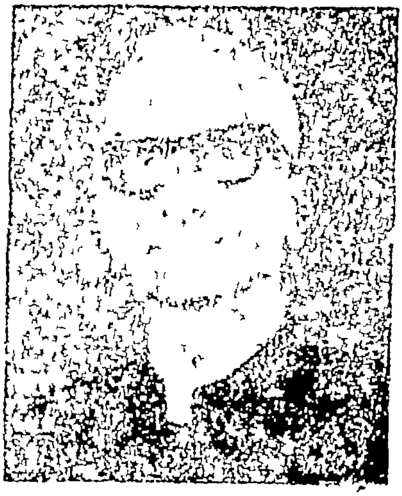
शिश्न पर हिमकोलीन नामक दवाई की रात मे सोते वक्त मालिश करावें । जलन होने पर बन्दकर पुन. मालिश करावें । यह ट्यूव में मरहम के रूप में आती है ।

स्पीमैन या टैस्टैक्स की एक-एक गोली दिन में तीन वार दें ।

—✱★०★✱—

पुरुष जननेन्द्रिय का कैन्सर

कविराज आचार्य हरिबल्लभ मन्नूलाल द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री चिकित्सा चक्रपाणि, आयु० बृह० विद्या० वाच०, आयु० भूषण, आयु० प्रभाकर, आयुर्वेदाचार्य, आयु० रत्न, साहित्य–आयुर्वेद व्याकरण उपाध्याय, आयु० केशरी, आयु० सूरि वैद्य सर्जन, स्वामी निरजन निवास, चकराघाट, सागर (म प्र.)



सागर विभाग के वयोवृद्ध, आयुर्वेद ज्ञान वृद्ध वैद्य महोदय कवि० श्री हरिबल्लभ द्विवेदी मध्य प्रदेश के जाने माने आयुर्वेद मनीषी हैं। आप वर्तमान मे जिला आयुर्वेद परिषद-सागर, जि भार्गव ब्राह्मण सभा सागर, जिला सक्रिय स्वतंत्रता संग्राम सैनिक सघ-सागर के अध्यक्ष हैं एवं मध्य प्रदेश आयु. यूनानी चिकित्सा पद्धति एव प्राकृतिक चिकित्सा बोर्ड भोपाल के सदस्य हैं। एवम् अखिल भारतीय आयु महासम्मेलन, मध्य प्रदेश आयु. मंडल के सक्रिय सदस्य हैं। वृद्धावस्था होने पर भी आप आयुर्वेद विकास–प्रचार-प्रसार मे सक्रिय रहते हैं। ६५ वर्षो से आपने आयुर्वेद मे ओतप्रोत रहकर संशोधन भी किया है। आपके अनेक लेख 'धन्वन्तरि' एवम् अन्य हिन्दी पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए हैं। होते रहते है। आपने मयर ज्वर चिकित्सा एवम् 'सर्व सुलभ देहाती दवायें' पुस्तकें लिखकर प्रकाशित की हैं। अब आपने 'कैंसर और उसका उपचार ग्रन्थ,लिखा है जो प्रकाशित है। आपके सुन्दर स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हैं।–वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

पुरुष जननेन्द्रिय का कैंसर अधिक भयानक कष्टकारक होता है। यह कैंसर इस जन्म के कुकृत्य किम्वा पूर्वजन्म मे किये हुए दुष्कर्मो का फल है। यह कई कारणो से उत्पन्न होता है किंतु उनमे से प्रधान निम्न प्रकार हैं—

१ अत्यधिक सम्भोग करने से, शिश्नमुण्ड के चर्म के फट जाने से, उत्पन्न घाव की उपेक्षा करने से जननेन्द्रिय का कैंसर होता है।

२ उपदश का उपचार उचित नही होने से अथवा स्थाई उपचार न कराने से यह कैंसर उत्पन्न होता है।

३ अधिक काल तक अयोनि अथवा पशुयोनि मे या मुष्टि-मैथुन करना।

४ स्वल्प-सुख के लिए लिंग के ऊपर उत्कट् (स्थूलीकरणार्थ) द्रव्यो द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के लेप, तिला या तेल इत्यादि के उपयोग करने से भी इस कैंसर की उत्पत्ति होती है।

५ गर्भ-निरोध के लिए अनेक प्रकार के अस्वाभाविक प्रयोग और मैथुन करना।

६ शिश्नमुण्ड के नीचे की ग्रन्थियो का स्राव जो सुपारी (मुण्ड) को चिकना रखता है। यदि वह स्राव सुपारी के नीचे एकत्रित हो जाय और वाहर न निकले तो उस स्थान पर खराश पैदा होने लगती है। काफी समय तक इस स्राव के रहने से कैन्सर उत्पन्न होजाता है। शिश्नमुण्ड के मास को हटा (लौटा) कर प्रतिदिन स्वच्छ जल से धोने से कैन्सर की सम्भावना नही रहती।

क्या खतना कैंसर को रोकता है ?

भारतीय चिकित्सक अनुसन्धान परिषद द्वारा एकत्रित किये आंकडो से यह निष्कर्ष निकला है कि बंगलौर, मद्रास एवं चडीगढ मे ८७१ कैन्सर के रोगी मुस्लिम युवको मे एक भी जननेन्द्रिय-कैन्सर से पीडित नही पाया गया। इसके विपरीत कुल कैन्सर ग्रस्त हिन्दु युवको मे से बंगलौर मे ३ (६) प्रतिशत, मद्रास मे ४ (७) तथा चडीगढ में (३)४ प्रतिशत रोगी थे। इन निष्कर्षो से इस



पुरानी परिकल्पना के प्रति पुन: उत्सुकता जागी है कि क्या मुसलमानो मे प्रचलित 'खतना' इस प्रकार के जननेन्द्रिय कैन्सर को रोकने मे सहायक होता है।

लक्षण—

पुरुष जननेन्द्रिय कैन्सर की प्रथमावस्था—

प्रारम्भ म लिङ्गमणि के किसी एक भाग मे एक छोटी सी फुन्सी अथवा घाव होता है। साधारणत पहले इस पर ध्यान नही दिया जाता। शनै -शनै यह फुन्सी वढ़कर फूलगोभी का रूप धारण कर लेती है। आरम्भ मे इसमे किसी प्रकार की पीडा नही होती। परन्तु जव इसकी वृद्धि होती है, तव वृद्धि के साथ ही पीडा प्रारम्भ होने लगती है और दिन प्रतिदिन कष्ट वढता जाता है। कभी कभी लिङ्ग मणि के किसी भाग में फेन के समान सफेद फुन्सी अथवा घावो की वृद्धि होती है। शनै -शनै यह घाव वढने लगता तथा अन्त प्रविष्ट हो जाता है। इस घाव को थोडा सा दवाने से रक्त प्रवाह होने लगता है।

द्वितीय अवस्था—इस द्वितीय अवस्था के जननेन्द्रिय कैन्सर मे अर्बुद इतने वडे हो जाते हैं कि लिङ्ग मणि का चर्म खोला या वन्द नही किया जा सकता तथा शनै शनै इस घाव का क्षय होने लगता है और इसके साथ-साथ लिङ्गमणि गलने लगता है और साथ ही रक्तस्राव होने लगता है। एक या २ वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण लिङ्ग गलकर नष्ट हो जाता है। लिङ्ग क्षय के साथ-साथ निम्न उपद्रव उत्पन्न होने लगते है—

सर्व प्रथम रक्तस्राव मे वृद्धि होजाती है, थोडा भी आघात लगने से अधिक रक्तस्राव होने लगता है। घाव मे जलन एव पीडा होने लगती है, कभी-कभी घाव पर सफेद पर्त (पपडी) जम जाती है। धीरे-२ कष्ट मे वृद्धि होती है।

तृतीय अवस्था—इस अवस्था मे रोगी अधिक अशक्त हो जाता है। यक्ष्मा रोगी के समान नियमित रूप मे ज्वर होने लगता है। इस तृतीयावस्था मे रोगी का सम्पूर्ण लिङ्ग नष्ट हो जाता है। मूत्र निकलने के लिए केवल अत्यल्प मार्ग खुला रहता है धीरे-२ रोगी के चलने फिरने की शक्ति क्षीण हो जाती है। मूत्राघात तथा दुर्बलता आदि दारुण दुर्लक्षण दिखाई देते हैं।

चतुर्थ अवस्था—जननेन्द्रिय कैन्सर की चतुर्थ अवस्था मे सम्पूर्ण रूप से लिङ्ग नष्ट हो जाने के वाद भी अधिकतर रोगी जीवित रहते हैं। इस दशा में रोगी के अण्डकोष मे घाव हो जाता है। यह घाव वढकर उदर की मास पेशी को आक्रात कर देता है। शनै -शनै मूत्राशय के दोनो पार्श्व पीडित होजाते हैं। इस अवस्था मे रोगी को पेशाव करते समय काफी कष्ट होता है। शनै-२ रोगी का कष्ट वढता जाता है। अत्यधिक कष्ट के कारण रोगी मूर्च्छित हो जाता है।

चिकित्सा—

(१) रोगी की अवस्था के अनुसार व्यवस्था कर प्रथम विरेचन, वस्ति और उत्तर वस्ति देकर उदर तथा मूत्राशय शुद्धि के उपरान्त निम्न उपचार करें।

(२) प्रथमावस्था—चन्द्रप्रभावटी १ माशा, त्रिफला गुग्गुल १ माशा, रस माणिक्य २ रत्ती। सबको मिलाकर एक मात्रा तैयार कर लेना। दिन मे २ से ४ वार तक अथवा आवश्यक्तानुसार। अनुपान—त्रिफला क्वाथ २॥ तोला में मधु मिलाकर सेवन करावें।

(३) सारिवाद्यारिष्ट २ तोला, उशीरासव २ तोला, ताजाजल ४ तो मिला भोजनोपरान्त दिन मे २ वार दें।

(४) द्वितीयावस्था मे—काचनार गुग्गुल १ माशा, वङ्ग भस्म २ रत्ती, रत्नभागोत्तर रस २ रत्ती। तीनो को

—शेषांश पृष्ठ २७६ पर देखें।

शूक संबंधी विकृतियां एवं निराकरण

डा० पी० सी० जैन एम०ए०, ए०एम०एस० (बी०एच०यू०), (गोल्ड मेडलिस्ट)
दर्शनाचार्य, न्यायतीर्थ, सेवा निवृत्त-प्रोफेसर, प्रधानाचार्य एवं अधीक्षक
राजकीय आयुर्वेदिक-कालेज, २८८/६५ आर्यनगर, लखनऊ (उ०प्र०)
एवं
डा० प्रमोद मालवीय एम०डी० (आयु०), डिप्लोमा योग।



उत्तर प्रदेश आयुर्वेद का धाम है, वाराणसी तो आयुर्वेद तीर्थ है, उनके साथ लखनऊ की भूमि आयुर्वेद विद्वानों का उत्पादक केन्द्र है। ख्यात नाम आयुर्वेदीय ज्ञान वृद्ध विद्वान लखनऊ में निवास करते हैं, उनमें डा० पी० सी० जैन जी आयुर्वेद के महान विद्वान हैं। आप भूतकाल मे राजकीय आयुर्वेद कालेज के प्राध्यापक, प्रधानाचार्य एवं अधीक्षक रह चुके हैं तथा आपकी सेवा सारे उत्तर प्रदेश को मिली है, आप भूतकाल मे फेकल्टी आफ आयुर्वेद, लखनऊ यूनिवर्सिटी के डीन, आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बी एकेडेमी उत्तर प्रदेश के सचिव, सेन्ट्रल कौंसिल आफ इण्डियन मैडीसिन न्यू देहली के सभ्य तथा बोर्ड आफ इण्डियन मैडीसिन उत्तर प्रदेश के सभ्य रह चुके हैं। अत. आप विद्वान तो हैं, साथ साथ निष्णात चिकित्सक एव लेखक भी हैं। यहा आपने शूक व्याधि पर कृपा करके लेख भेजा है, जो उपयोगी बनेगा। साथ साथ इस अंक हेतु डा० प्रमोद मालवीय एम० डी० (आयु०) जो आपके पुत्ररत्न हैं, के दो लेख आपने भेजे हैं। मैं आपसे आशा करूंगा कि इस तरह भविष्य मे भी हमको सहयोग देंगे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शूकजदोष लिङ्ग अथवा शेफस् मे उत्पन्न व्याधिया हैं। मधुकोषकार के अनुसार उपदश व्याधि के अनन्तर शूक व्याधि का वर्णन किया गया है। उपदश और शूक दोष समान स्थान लिङ्ग मे उत्पन्न होते हैं। उपदश मे प्रदुष्ट योनि के प्रसङ्ग से लिङ्ग में व्याधि उत्पन्न होती है जबकि शूकदोष भी लिङ्ग में उत्पन्न व्याधि है जो लिंग की वृद्धि या स्थूलता चाहने वाले मूढ पुरुषों द्वारा शास्त्रीय योगो के विपरीत औषधियो के सेवन अथवा लेप से शूक दोषजन्य होती हैं। शूक, जल शूक अथवा पोधा को कहा जाता है। उसी प्रकार की वृद्धि लिङ्ग मे होने से इस व्याधि को शूकदोष अथवा शूक व्याधि कहते हैं। लिंग वृद्धिकर योगो मे मधुकोषकार एव डल्हण ने वात्स्यायन द्वारा प्रस्तुत योगों का उद्धरण दिया है। जो नीचे दिये गये हैं—

> भल्लातकास्थि जलशूकमथाब्जपत्र-
> यन्तर्विदह्य यतियान् सहसैंधवेन।
> एतद्विरुद्धबृहती फलतोयपिष्टम्,
> आलेपन महिषविडवियलीकृतेङ्गे॥
> स्थूलमहत्तरतुरङ्ग मतुल्ययाशु-
> शेफकरोत्यभिमत नहि सशयोतेऽस्ति॥

मधुकोपकार का यह भी कहना है कि वाजीकरण योगो में जल शूकरहित लिङ्ग वृद्धिकर तैलो द्वारा शूक दोष उत्पन्न नही होता। यथा—

अश्वगन्धावरीकुष्ठ मासी सिंही फलान्वितम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचितम् ॥
स्तनलिङ्ग कर्णपालिवर्धन भ्रक्षणादिदय ।।

उपर्युक्त तैल का प्रयोग शूक दोष के बिना या स्तन कर्णपाली एव लिङ्ग वृद्धि के लिए प्रयुक्त होता है । गदाधर के मत से कामवासना से पीडित पुरुष इन्द्रिय सुख के लिए दुष्ट बुद्धि से जो विविध उपक्रम लिंगवर्धन के लिए प्रयुक्त करता है वे सभी शूक हैं और उनसे विभिन्न दोष शूक व्याधि के नाम से कहे गये हैं ।

भारतीय सस्कृति एव दर्शन में इन्द्रिय सुखो हेतु योगो का सेवन अच्छा नहीं कहा गया है और उसे स्वास्थ्य को हानिकारक कहा है । पुरुषार्थ चतुष्टय में काम का स्थान तृतीय है और धर्म, अर्थ एव काम का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है । जहा वेदनाओ का पूर्ण शमन हो जाता है । इन्द्रियो के सुख वास्तविक आनन्द उत्पन्न करने वाले नही हैं । इसीसे चरक ने इन्द्रियो पर विजय आनन्दवर्द्धक कहा है । इहलोक चलाने एव ससार में कर्त्तव्यपूर्ति हेतु ही सन्तानोत्पत्ति का विधान कहा है । कामवासना की तृप्ति वास्तविक सन्तोष उत्पन्न नही करती, किन्तु अनेक कुठाओं को जन्म देती है और प्राणी को मानसिक दुखो से पीडित करती है । आचार्यों ने आहार, निद्रा एव ब्रह्मचर्य, इन तीन की गणना जीवन सिद्धि एव ऐश्वर्य प्राप्ति के उपस्तम्भ के रूप में की है । अत केवल विविध प्रकार से कामवासना की तृप्ति को हेय कहकर उसके लिए विविध उपक्रमों मे प्रवृत्त पुरुष को मूढ की सज्ञा दी गई है । जिस प्रकार शूक विष प्रधान जलजन्तु है जिससे विष की प्राप्ति होती है उसी प्रकार काम परायण निंदित पुरुषों द्वारा प्रयुक्त लिगवृद्धिकर योग शूक कहलाते हैं । उनके असम्यक् प्रयोग से शूक उत्पन्न दोष अथवा व्याधि उत्पन्न होती हैं ।

शूकज व्याधि के लक्षणों एव इसकी उत्पत्ति प्रक्रिया का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस वर्ग मे लिङ्ग से सम्बन्धित व्याधियों का समावेश किया है जो सयोग द्वारा उत्पन्न नहीं है किन्तु लिंग पर स्थानीय क्षोभक प्रभाव के कारण विभिन्न विकृति उत्पन्न होती हैं । इन विकृतियों में भी शारीरिक दोषों की प्रतिक्रिया रहती है और उन दोषो के कारण स्थानीय विकृति के अतिरिक्त सार्वदैहिक लक्षण भी देखे जाते हैं । स्थानिक विकृति अधिकतर पिडिकाओ के रूप में होती है जो इस बात को घोषित करती है कि पिडिकाओ की उत्पत्ति क्षोभ के परिणामस्वरूप शोथ की प्रक्रिया द्वारा होती है अथवा लिंगवृद्धिकर योगो के असात्म्य प्रभाव स्थानीय अथवा सार्वदेहिक असात्म्यता (Allergy) उत्पन्न करते हैं जिससे विभिन्न शूकजन्य व्याधिया उत्पन्न होती हैं । चरक एव वाग्भट्ट ने पृथक् शूकज व्याधियो का उल्लेख नहीं किया है । वाग्भट्ट ने उपदश रोग के उपरान्त गुह्य रोगों का वर्णन किया है । इस अध्याय मे सुश्रुत एव माधवकार के शूकज रोगों के वर्णन के अतिरित्त लिंगार्श, निवृत्त, अवपाठिका एव निरुद्धमणि व्याधियों का भी उल्लेख किया गया है ।

लिंग (शेफस्) की बनावट—

लिंग को शेफस् भी कहते है । इसे उपस्थ कर्मेन्द्रिय भी कहा है जिसका कार्य आनन्द प्राप्त करना है । इसे शिश्न एव मेढ़ भी कहते हैं । इसके अग्रभाग को लिंगमणि, मध्यभाग को लिंगगात्र एव आधार भाग को लिंग मूल कहते हैं । इसका आधार भाग भगास्थि के मेहराव (Pubic arch) से सम्बन्धित होकर लटका हुआ रहता है । यह तीन अवकाशयुक्त ऊतकों की सहति से निर्मित है जो ऊपर से सौत्रिक ऊतक एव त्वचा से आवृत हैं । किनारे की दोनों दण्डाकार पेशियों को शिश्नपार्श्विका तथा मध्य की गोल दण्डाकार सहति को मूत्रप्रसेक धारा कहते हैं । इन्हीं के मध्य से मूत्र नलिका का अवकाश भाग निकलता है । यह तीनों पेशिया प्रहर्षणशील ऊतक से निर्मित हैं और आपस मे स्नायुओं द्वारा बधी रहती हैं । शिश्नपार्श्विका के आधार भाग को ही शिश्न मूल कहते हैं जो भग सधानिका के दोनों ओर सबन्धित होते हैं । इनके अग्रभाग को शिश्नपार्श्विक वर्त्तुल कहते हैं जो आगे जाकर गोल रूप धारण करती हैं ।

मूत्र प्रसेक धारा के अग्रभाग को शिश्नमुण्ड कहते हैं जो जो लिंगमणि भी कहलाता है। शिश्नमुण्ड के आधार की उभरी धारा को शिश्ननेयिका कहते हैं।

लिंग की पेशियो मे स्पज के समान बहुत से अवकाश पाये जाते हैं जो लिंग की शिथिलावस्था में रिक्त रहते हैं और मैथुन की अवस्था मे रक्त से भर जाते हैं जिससे लिंग कडा हो जाता है। इसकी रक्त आपूर्ति गुदोपस्थिका धमनी (Internal Pudendal artery) से होती है जिसकी मूत्रस्रावीमूलिका, शिश्नमासगा एव शिश्नपृष्ठिका शाखाओं से लिंग को रक्त की आपूर्त्ति होती है। लिंग एव उसकी पेशियो के विकास से अधिवृक्क ग्रन्थि एव वृषण ग्रन्थि के एन्ड्रोजन हार्मोन्स सहायक होते हैं।

लिंग विकृति से सम्बन्धित व्याधिया—

लिंग की विकृति से सम्बन्धित व्याधियो को तीन वर्गों मे विभाजित करते हैं—

(१) औपर्गिक व्याधि—इसके अन्तर्गत दुष्ट एव औपसर्गिक व्याधि से पीडित स्त्री की योनि मे लिंग के प्रवेश कराने से उत्पन्न व्याधिया आती हैं। इन्हें मैथुन-जन्य व्याधिया (Venereal diseases) कहते हैं।

इसमे १. उपदंश (Soft chancer) जो ड्यूक्रे बेसीलस से होता है।

२. फिरंग (Syphylis)—जो ट्रेपोनीमा पेलिडम जीवाणु से होता है।

३. पूयमेह—जो गोनोकोकस से होता है एव

४ बद (Lymphogranuloma)—जो विषाणु से उत्पन्न होती है।

आती हैं। इनका विवेचन स्वतन्त्र विषय है।

(२) शूकजन्य व्याधि—सुश्रुत एवं माधवकार ने शूक दोष निमित्तक १८ व्याधियो का विवेचन किया है। सर्षपिका, अष्ठीलिका, ग्रथित, कुम्भिका, अलजी, मृदित, समूढपिडिका, अवमन्थ, पुष्करिका, स्पर्शहानि, उत्तमा, शतपोनक, त्वक्पाक, शोणितार्बुद, मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि एव तिलकालक। वाग्भट्ट ने गुह्य रोगो के अन्तर्गत इन व्याधियों को गिनाते हुए निम्न व्याधियों को भी गुह्य रोगो में गिनाया है।

(३) गुह्य रोग व्याधि—इसके अन्तर्गत मासकीलक, निवृत्त, अवपाटिका एव निरुद्ध मणि आते हैं। सुश्रुत एव माधवकार ने लिंग से सम्बन्धित व्याधियों मे क्षुद्र रोगाधिकार मे परिवर्त्तिका, अवपाटिका एव निरुद्ध प्रकश व्याधियों का उल्लेख किया है।

शूकजन्य व्याधियां एवं उनकी चिकित्सा—

सर्षपिका—कफ एव रक्त के प्रकुपित होने से श्वेत सरसो के समान आकृति की लिंग के आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रदेश मे उत्पन्न पिडिकाऐं सर्षपिका हैं। सर्पपी पिडिकाऐं प्रमेह मे भी उत्पन्न होती हैं तथा दाह एवं पीडायुक्त होती हैं। इन पिडिकाओं का लेखनकर पिडिका रोपण को जीवाणुनाशक वटादिगणोक्त कषाय वृक्षों के चूर्ण को छिडकना चाहिये अथवा कषाय वृक्ष के कल्को का तैल पाक कर तैल लगाना चाहिये।

अष्ठीलिका मे वायु के प्रकोप से पिडिका विषम एवं कठिन होती हैं। ग्रन्थिया मे भी श्लेष्मा के प्रकोप से शूक के समान पिडिकाओ से लिंग भर जाता है। अष्ठीलिका मे रक्त मोक्षण के साथ श्लेष्म ग्रन्थि के समान उसके भेदन की चिकित्सा की जाती है। ग्रथित में नाडी स्वेद से स्वेदन कर स्निग्ध एव उष्ण उपनाह (पोल्टिस) का प्रयोग करना चाहिये।

सर्षपिका, अष्ठीलिका एव ग्रथित रोगो मे लिंग में शोथजन्य पिडिकायें उत्पन्न होती हैं। इसे शोथ पिण्ड (Boil) कह सकते हैं जो अष्ठीलिका एव ग्रथित में कठोर घन तथा सर्षपिका में कोमल एवं मृदु होते हैं। इनकी चिकित्सा मे प्रोकेन पेन्सिलिन ४ लाख प्रात सायम् पेशी में इजेक्शन द्वारा देवें अथवा ट्रेट्रासाइक्लीन या एम्पीसिलीन २५० मि०ग्रा० की १ कैप्सुल दिन मे चार बार देवें। उक्त व्याधिया विषाणुजन्य हर्पिस की पिडिकाओं, औषधि द्रव्य की प्रतिक्रिया, सोरियासिस अथवा कन्डिग एव लिचनप्लान्स उपसर्ग के समान होती हैं।

कुम्भीका रक्त एव पित्त के कारण उत्पन्न होती हैं। इसकी लिंगस्थ पिडिका जामुन की गुठली के समान कड़ी

एव वेदनारहित होती है। इस प्रकार की स्थिति लिंग के समीप स्थित त्वग्वसीय अथवा अन्य ग्रन्थियो में शोथ के कारण होती है। अलजी–प्रमेह पिडिका के समान लिंग पर पिडिका होती है। शूक के कारण वायु प्रकुपित होने से लिग पर हलकी खुजली होती है इस कारण लिंग को हस्त से मर्दन करने के कारण उत्पन्न पिडिका उदित होती है। यदि हस्त के मर्दन से व्रणोत्पत्ति हो जाय तो उसे समूढ़ पिडिका कहते हैं।

इनकी चिकित्सा में सामान्य व्रण के समान उपचार करना चाहिये। कुंभीका मे रक्त मोक्षण के साथ उसके पकने पर व्रण के समान पाटन एव रोपण चिकित्सा करनी चाहिये। अलजी मे तथा समूढ पिडिका मे भी इसी प्रकार शोधन, रोपण एव पाटनादि क्रिया की जानी चाहिये। समूढ पिडिका मे जलौका द्वारा रक्त मोक्षण से शीघ्र लाभ होता है। रोपण क्रिया मे तिन्दुक, लोध्र एव त्रिफला का कल्क विशेष उपयोगी होता है।

अधिमन्थ पिडिकाये सख्या में अधिक एव दीर्घ होती है और वे मध्य से विदीर्ण होना प्रारम्भ करती हैं। कफ एव रक्त के प्रकोप से इनमे वेदना होती है और रोमहर्ष उत्पन्न करती हैं। वाग्भट्ट ने इन्हें अवमन्थ नाम दिया है। पित्त एव रक्त के प्रकोप से अनेक पिडिकायें कमल की कर्णिका के आकार की शिश्न पर उत्पन्न होती हैं उन्हें पुष्करिका कहते हे। लिंग के स्पर्श ज्ञान को नाश करने वाला स्पर्श हानि है तथा रक्तपित्त की दुष्टि से मूंग अथवा उडद के आकार की रक्तवर्ण की उत्तमा पिडिकायें होती हैं। उत्तमा पिडिकाओं को वडिश शस्त्र से पाटन कर मधुयुक्त कषाय द्रव्यों के चूर्ण को व्रण पर छिड़के। पुष्करिका मे पित्तशामक चिकित्सा करनी चाहिये। इसमे शीतल क्रियाओं का प्रयोग, जलौका द्वारा रक्तमोक्षण तथा घृत का परिषेक करना चाहिये। स्पर्श हानि में रक्तमोक्षण कर जीवनीय एव बृंहणीय गण की मधुर औषधियों के कल्क का लेप, घृत, इक्षुरस एव शीत दुग्ध का परिषेक करना चाहिये अथवा किन्चित् उष्ण बला तैल का परिषेक कर मधुर द्रव्यो के कल्क से उपनाह करना चाहिये।

शतपोनक वात एव रक्त से उत्पन्न व्याधि है जिससे शिश्न सूक्ष्म मुख वाले अनेक छिद्रों से व्याप्त हो जाता है। त्वक्पाक में शिश्न की त्वचा का वात एव पित्त दोष के द्वारा पाक होकर ज्वर एव दाह उत्पन्न होता है। यह अवस्था सेलुलाइटिस (Cellulitis) से अधिक साम्यता रखती है। विद्रधि में तीनों दोषो की उत्कटता रहती है जिससे शिश्न का पाक होकर नाना वेदना उत्पन्न होती हैं और दुर्गन्धित स्राव स्रवित होता है। यह अवस्था त्वक् पाक मे वृद्धि होकर विद्रधि बनने से होती है। शतपोनक की चिकित्सा मे व्रणो का लेखन कर पृष्ण पर्ण्यादि गण की औषधियों के क्वाथ को घन करके रस क्रिया करे, तथा इन औषधियो से सिद्ध तैल का प्रयोग करे। त्वक् पाक एव विद्रधियों का शोधन एव पोषण क्रिया विसर्प के समान करे।

शोणितार्बुद एवं मासार्बुद शिश्न के अर्बुद हैं। शोणितार्बुद में शिश्न लाल एव काले स्फोटो एव पिडिकाओ से पीडित रहता है। वस्ति प्रदेश मे पीड़ा के साथ शिश्न पर गोभी के समान अकुरयुक्त वृद्धि देखी जाती है जो स्पर्श से रक्तस्राव करती हैं। यह दशा शिश्न के कर्कटार्बुद से साम्यता रखती है जिससे स्क्वेयस कोषो की वृद्धि होती है और असाध्य मानी गई हैं। मासार्बुद में शिश्न पर मांस की वृद्धि होती है। इसमें विशेष पीडा नहीं होती जिससे यह अवस्था साधारण अर्बुद से साम्यता रखती है। मास पाक की अवस्था में रक्त की अल्पता अथवा थ्रम्बोसिस आदि के कारण शिश्न की रक्त आपूर्ति बन्द हो जाने से शिश्न में कोथ उत्पन्न होता है। कोथ क्रिया मे शोफ क्रिया के मिलने से मास गलने लगता है और वेदना के साथ तीव्र दुर्गन्ध शिश्न से आती है। तिलकालक भी इसी प्रकार की असाध्य व्याधि है जिससे शिश्न पर भल्लातकादि विषयुक्त शूकों के प्रयोग से कृष्ण अथवा चित्र विचित्र वर्ण के धब्बे अथवा व्रण हो जाते है। धीरे धीरे इसमें वृद्धि होकर सम्पूर्ण लिङ्ग पाक को प्राप्त होता है और शिश्न पर काले तिल के समान स्थान

उत्पन्न होते हैं जो क्रमशः गल कर नष्ट होने लगते हैं। यह अवस्था भी शिश्न की धमनियो मे इम्बोलिज्म (Embolism) के परिणामस्वरूप होती है और अन्त में शिश्न गेंग्रीन अवस्था मे परिणत होकर सम्पूर्ण शरीर मे विषाक्तता उत्पन्न करता है।

आचार्यो ने अर्बुद, मासपाक, विद्रधि और तिलकालक को असाध्य कहा है परन्तु जीवाणु नाशक दवाओं के आ जाने से तथा शल्य कार्य के अधिक विकसित होने से अब उक्त व्याधिया साध्य एव याप्य वर्ग में आती हैं। शोणितार्वुद एव अन्य अर्वुदो मे शल्य कर्म के साथ शिश्न के कर्कटार्वुद में रेडियम चिकित्सा से मनुष्य की आयु में वृद्धि होती देखी गई है। इसी प्रकार मांसपाक एवं तिलकालक में शल्य कर्म एव यक्का विरोधी औषधियों से तथा एन्टीवायटिक औषधियो द्वारा पाक बिरोधी क्रिया प्राप्त कर शिश्न की रक्त आवृत्ति को पुन. सचालित किया जा सकता है।

शूक दोष की सामान्य चिकित्सा—

शूकदोषेपु सर्वेपुपित्तघ्नी कारयेत् क्रियाम् ।
हित च सपिप पानम् पथ्यचापि विरेचनम् ॥
हित. शोणित मोक्षण्च यक्वापि लघु भोजनम् ।
सर्वेषा शूकदोषाणा क्रिया व्रणवदाचरेत् ॥
उपदंशाधिकारोक्तयौषधं शूक दोषत ॥

आचार्यों ने उपरोक्त वाक्यो मे सभी शूक रोगों की चिकित्सा सक्षेप मे कही है। सभी शूक दोषों में लिङ्ग वृद्धि कर योगो के दुष्ट प्रभाव से असात्म्यता (Allergy) स्थानिक शोथ, कोथ एव सार्वदेहिक विषाक्तता उत्पन्न होती हैं। इनमे अधिकाश लक्षण पित्तज होते हैं अत: पित्तघ्नी क्रिया मे शोथ बिरोधी क्रियाओ द्वारा चिकित्सा का विधान किया गया है। इसमे स्थानिक जीवाणु नाशक दार्वी तैल, रसाँजन लेप आदि द्रव्यों का लेपन तथा सार्वदेहिक बिषमयता एव स्थानीय शोथहर द्रव्यों में विभिन्न एन्टीवायटिक का समुचित मात्रा में उपयोग, वरुणादि कषाय सरीखे शोथहर द्रव्यो का सेवन साथ ही शल्य कर्म की आवश्यकता होवे पर शोधन रोपण एव पाटनादि क्रियाओं द्वारा सद्योव्रण के समान सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये।

शोथ के अन्य विकारो मे शिश्न मणि शोथ (Belanitis) तथा शिश्नचर्मच्छद शोथ (Posthitis) एव शिश्नमणि चर्मच्छद शोथ (Balanoposthitis) व्याधि होती है। इनमे स्वेदन एव लवण जल अथवा मेगनीशियम सल्फेट के घोल से सेंकना चाहिये। साथ ही एन्टीवायटिक औषधियों—पेनसिलीन, एम्पीसिलीन, ट्रेट्रासाइक्लीन आदि औषधियों के प्रयोग से शोथ एव स्राव बन्द हो जाता है। इसके वावजूद यदि शिश्न चमच्छद पूर्णरूप से न खुले तो उसका खतना (Cirumcision) किया जाना चाहिये।

लिंग की अन्य व्याधियां

इनका विवेचन वाग्भट्ट ने गुह्य रोग प्रकरण मे तथा चरक सुश्रुत तथा माधव ने क्षुद्र रोगों में किया है। इनमे निम्न प्रमुख हैं—

१. निरुद्ध प्रकश (Phimosis)—

वातादि दोषों से शिश्नचर्म के दूषित होवे से शिश्नचर्म शिश्नमणि को पूर्णतया ढक लेता है और पुन. पीछे की ओर न होकर वहीं स्थिर हो जाता है। इससे मूत्र मार्ग छोटा तथा अवरोधयुक्त हो जाता है। शिश्नमणि नही खुलती, उसमें स्राव के चिपकवे से शोथ हो जाता है और मूत्र मन्द धार से निकलता है। स्त्री सभोग में पीडा होती है और सफलतापूर्वक सम्पन्न नही होता। यह स्थिति जन्मजात और जन्मोत्तर दोनों प्रकार की हो सकती है। इनकी चिकित्सा मे स्वेहन एव स्वेदन के साथ शिश्नमणि पर स्निग्ध द्रव्यो की पुल्टिस बाधकर शिश्नमणि को खोलवे का प्रयास करना चाहिये। मणि के न खुलने पर, मूत्र का अवरोध होने, मूत्रकृच्छ होवे, शिश्नमणि पर शोथ होवे तथा उसकी सफाई न होने पर शल्यकर्म से खतना (Circumcision) करना चाहिये। खतवे में शिश्नच्छद के दोनों स्तरो को प्रथक् कर देना चाहिये।

साथ ही इस बात का ध्यान रखें कि शल्यकर्म के उपरांत शिश्नच्छद का भाग इतना शेष रहे कि शिश्न नेमिका (Corona glandis) को आच्छादित कर सके। वाग्भट्ट ने इस व्याधि को निरुद्धमणि के नाम से कहा है।

२. परिवर्त्तिका (Para Phimosis)—

इस व्याधि में सर्वसंचारी वायु विभिन्न कारणो से—हस्तमैथुन द्वारा, शिश्न के मर्दन से, मैथुन के समय शिश्न मणि को बलपूर्वक खोलने से शिश्नचर्म मे प्रविष्ट हो जाती है। शिश्नमणि के पीछे वलयाकार कठिन पट बन जाने से शिश्नच्छद मणि के ऊपर नहीं आने पाता और नीचे शोथ उत्पन्न कर ग्रन्थि के रूप में लटक जाता है शिश्नमणि के चारो ओर शोथयुक्त पट बन जाता है जो क्रमश. पीडा दाह एवं पाक उत्पन्न करता है। इसकी चिकित्सा मे भी स्नेहन एव स्वेदन करना चाहिये। स्वेदन क्रिया बर्फ को पीसकर शिश्न के चारो ओर पट्टी से बाधकर करें। दक्षिणहस्त के अंगुष्ठ एव दो अंगुलियों को शिश्नमणि पर रखकर-शिश्नच्छद के विरुद्ध दिशा में दवाना चाहिये। साथ ही शिश्नमणि को स्निग्ध द्रव्यों से पूरित रखना चाहिये। इस क्रिया को १०-१५ मिनिट तक करना चाहिये। इससे स्थिति न सुधरने पर शिश्न मणि के पीछे को दबाव रखने वाली गोल पट्टिका को संदश यन्त्र से दबाकर प्रयत्न करना चाहिये। इससे सफलता न मिलने पर दबाव देने वाली पट्टिका को शल्यकर्म से काटकर मणि एव शिश्नच्छद को स्वाभाविक अवस्था मे लावें। कुछ दिनों पश्चात् खतना करे।

३ अवपाटिका (Tear in prepuce)—

इसमे विभिन्न कारणो से शिश्नच्छद फट जाता है तथा उसमें पीडा एव जीवाणु उपसर्ग हो सकता है। इसकी चिकित्सा भी परिवर्त्तिका के समान करनी चाहिये।

४. लिंगार्श (Papilloma, warts of Penis)—

सुश्रुत एव वाग्भट्ट ने इस अवस्था का वर्णन किया है। प्रकुपित दोष शिश्न में जाकर वहा मांस एवं रक्त को दूषित करते हैं। इससे शिश्न मे मणि के ऊपर मास के अंकुर हो जाते हैं जिन्हे मास कीलक कहते हैं। ये मासांकुर स्निग्ध रक्तयुक्त स्राव स्रवित करते हैं और आगे चलकर ये मासाकुर छत्र का रूप धारण कर पुरुषत्व शक्ति नष्ट कर देते हैं। इस अवस्था को लिङ्गार्श कहते हैं। यह स्थिति अर्श की न होकर लिङ्ग मे अर्बुद की अवस्था है। यह कर्कटार्बुद की पूर्वावस्था है जिसमें प्रारम्भिक स्थिति मे ही शल्यकर्म द्वारा शिश्न को अलग कर दिया जाता है। यदि अवस्था घातक अर्बुद की नही है तब अंकुरों को इलेक्ट्रोकाटरी (Electrocautery) द्वारा जला दिया जाता है।

— पृष्ठ २७० का शेषांश —

मिलाकर एक मात्रा तैयार कर लें। दिनमे दो बार प्रात साय १०-१० वजे देवें।

(५) उत्तर वस्ति—त्रिफला क्वाथ मे स्वल्प प्रमाण में फिटकरी का चूर्ण डालकर रबर कैथीटर द्वारा जननेन्द्रिय मार्ग से मूत्रेन्द्रिय एव मूत्राशय का प्रक्षालन करें।

(६) तृतीयावस्था में—ताम्र भस्म, वङ्ग भस्म, स्वर्ण-मालिनी वसन्त २-२ रत्ती, चोपचीनी का चूर्ण १ मासा सबको मिलाकर एक मात्रा बना लें। दिन मे ३ बार दें। अनुपान—त्रिफला क्वाथ मे मधु मिलाकर प्रयोग करें।

(७) चतुर्यावस्था मे—त्रिफला गुग्गुल १ माशा, वङ्ग भस्म २ रत्ती, रसमाणिक्य २ रत्ती। सबको मिला एक मात्रा कर लें। अनुपान—मधु मिश्री मिश्रित गौ दुग्ध

पुरुष जननेन्द्रिय के कैन्सर की चिकित्सा

१॥ पाव। दिन मे ३ बार अथवा रोगी और रोग की अवस्थानुसार।

(८) महामजिष्ठादि क्वाथ २ तोला, मधु २ तोला मिलाकर देवे।

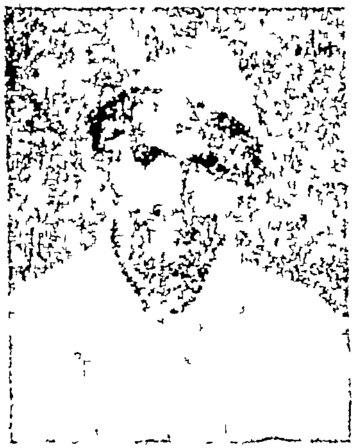
(९) स्थानीय—दशाग लेप मे हल्दी का चूर्ण मिला कर घृत के साथ जननेन्द्रिय पर लेप लगाना।

(१०) जात्यादि घृत को जननेन्द्रिय पर प्रलेप करें।

पथ्यापथ्य—नमक, खटाई, लालमिर्च, गुड, गरम मसाले, शीत एव वायुकर पदार्थों का परित्याग। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन तथा मिस्सी रोटी नमक रहित घृत के साथ और गौदुग्ध का सेवन करना। मौसम्बी मीठी, सेव अंगूर, अन्जीर, मुनक्का, गाजर, अमरूद।

वृद्धि में कर्णवेध एवं दाह कर्म

वैद्य शामजी भाई तलाविया, आयुर्वेद विज्ञान शिरोमणि आर० एम० पी०, पी० आर० सी०
भारद्वाज आरोग्य मन्दिर, चरखड़ीया, सावर-कुन्डला (भावनगर) गुजरात



वैद्य श्री शामजी भाई तलाविया गुजरात-सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य हैं। आप वयोवृद्ध होते हुए भी आयुर्वेद विकास में रस लेते रहते हैं। आज तक आपने सैकड़ो निदान यज्ञ किये हैं। आयुर्वेद पद्धति से आप दन्त निष्कासन करते हैं। श्वास, अपस्मार एव वृद्धि रोग में आप कर्णवेध तथा दाह कर्म द्वारा चिकित्सा करते हैं। अत: आप सिद्धहस्त वैद्य हैं। भूतकाल मे आपको तत्कालीन राज्यपाल श्री के० के० विश्वनाथ द्वारा सुवर्णचन्द्रक मे सम्मानित किया गया है। पुरुष रोग चिकित्सा के विशेष सम्पादक वैद्य श्री अशोक भाई तलाविया के आप पिताजी हैं। यहा आपने वृद्धि रोग में कर्णवेध और दाह कर्म पर प्रकाश डाला है जो उपयोगी सिद्ध होगा।

—डा० दाऊदयाल गर्ग

आयुर्वेद को अष्टांग आयुर्वेद कहा गया है। आयुर्वेद शास्त्र मे मुख्य आठ अङ्ग को स्वीकार किया गया हैं। उनमे भी अनेक पेटा अङ्ग सम्मिलित है। निदान का अनेक प्रकार है, उस तरह चिकित्सा भी अनेक प्रकार की है। अत आयुर्वेद मे विविधता हैं। मैं यहा 'धन्वन्तरि' मासिक के सहस्त्रो विद्वान पाठको के सामने 'वृद्धि' रोग पर अपना अनुभव पेश करूगा।

वृद्धि-अर्थ—सामान्य दृष्टि से वृद्धि को बढ़ना या शोथ शब्द से जाना जाता है। यकृत एव प्लीहा मे शोथ आ जाता है, तो उसको यकृत वृद्धि एव प्लीहा वृद्धि से जाना जाता है। इस तरह पुरुष के वृपणो मे सूजन आ जाय तो उसे वृषण वृद्धि या वृपण शोथ कहते हैं। मगर आचार्यो ने यहा वृषण वृद्धि को सिर्फ 'वृद्धि' शब्द उपयुक्त किया हैं। 'वृद्धि' एक ही शब्द से वृषण वृद्धि अभिप्रेत है।

प्रकार—१ वातज वृद्धि, २ पित्तज वृद्धि, ३ कफज वृद्धि, ४ रक्तज वृद्धि, ५ मेदज वृद्धि, ६ मूत्र जन्य वृद्धि तथा ७ आन्त्र जन्य वृद्धि।

निदान व कारण—

मल-मूत्रादि त्रयोदश वेगों का धारण करना, जोर से व लापरवाही पूर्वक साईकिल चलाना, ऊचे नीचे स्थानों से दौडना, अत्यन्त व्यायाम, अतिमार्गगमन, गरिष्ठ भोजन, खड़े-खड़े जलपान, जीर्ण कोष्ठबद्धता, अपानवायु का दूषित होना या अवरोध और अधिक मैथुन आदि से प्राय: वृद्धि रोग हो जाता है।

सम्प्राप्ति—उपरोक्त कारणों से दूषित हुआ वायु दोष अपने प्रमुख स्थान पक्वाशय से चलायमान होकर शोथ व भयकर शूल करता हुआ फलकोष वाहिनी शिरा-

धमनी में आकर अण्डकोषो में आकर वृद्धि रोग को उत्पन्न करता हैं। तद्यथा—

वृद्धि करोतिकोषस्थो फलकोषाभिवाहिनी.।
रुद्ध्वा क्रुद्धगतिर्वायुर्धमनीर्मुष्कगामिनी ॥(भा प्रकाश)

यह वृद्धि सात प्रकार की होती है। यद्यपि मूत्रज तथा आन्त्र वृद्धि दोनों वातज वृद्धि ही हैं तथापि हेतु भेद से अलग-अलग गणना की गयी है। सामान्यतः आन्त्रवृद्धि को छोड शेष छह वृद्धि अन्त मे मूत्रज में परिणित हो जाती हैं।

वातज, पित्तज, कफज, रक्तज और मेदज वृद्धि को आधुनिक मे ओरकाईटीस, मूत्रज व्याधि को हाईड्रोसील और आन्त्र वृद्धि को हर्निया शब्द से जाना जाता है।

चिकित्सा—

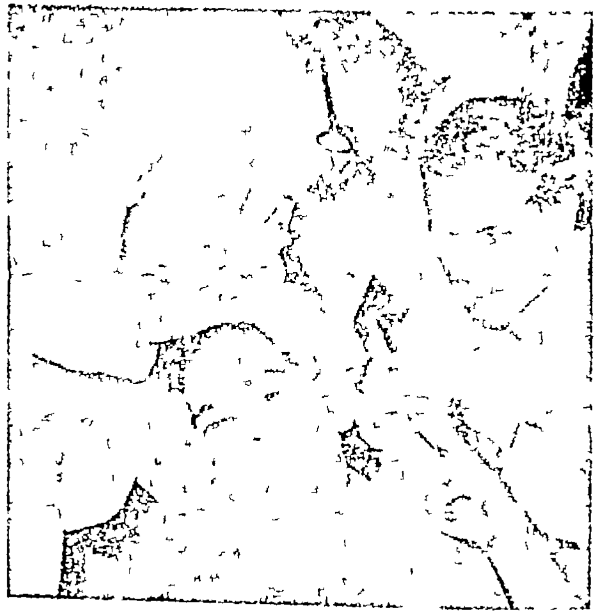
वर्षों से मैं वृद्धि रोग की विशेष चिकित्सा करता हूँ। अनेक निदान-चिकित्सा यज्ञो मे भाग लिया है। वहां भी वृद्धि रोग की सारपार की हैं। धन्वन्तरि भगवान की कृपा से मुझे अधिकांश सफलता मिली हैं।

कर्णवेधन—

भारत भर में वर्षों से कर्णवेधन क्रिया चली आती हैं। स्त्रियों में कर्ण वेधन महत्व का कर्म माना जाता है। कुछ प्रदेशों में पुरुषों में भी कर्ण वेधन कराया जाता है। कर्ण वेधन से व्याधि क्षमत्व प्राप्त होता है। श्वास रोग नही होता, प्रतिश्याय नही होता, अपस्मार नही होता, वृद्धि रोग नही होता। यह प्रक्रिया शास्त्रोक्त है। काश्यप संहिता में, हारित सहिता में बाल प्रकरण मे उल्लेख भी मिलता है। वेदों में भी इस कर्म की जानकारी दी है।

पद्धति—पुरुष को जब वृद्धि रोग होता है, तब कभी एक तरफ की वृषण वृद्धि होती है, तो कभी दोनों वृषणो मे भी शोथ हो जाता है।

जब वाम प्रदेश के वृषण मे शोथ देखा जाय तो दक्षिण कर्ण की कर्ण पाली में वेधन किया जाता है। और जो दक्षिण प्रदेश की ओर वृषण वृद्धि हो जाती है तो वाम कर्ण की पाली में वेधन किया जाता है। और



चश्मा पहने हुए वैद्य श्री शामजी भाई तलाविया कर्णवेध क्रिया विधि वैद्य श्री शाति भाई अग्रावत को सिखाते देखे जाते हैं।

गुजरात आयुर्वेद भवन (आश्रम रोड, अहमदाबाद) के उद्घाटन समारोह निमित्त पर विविध रोग निदानचिकित्सा यज्ञ का आयोजन हुआ था। श्वास,वृद्धि एवं अपस्मार के विभाग में वृद्धिके रुग्णको कर्णवेध करते हुए लेखक वैद्य शामजी भाई तलाविया, सामने टार्च लेते बैठे हुए विशेष सम्पादक वैद्य श्री अशोक भाई तलाविया, साथ में ध्यानपूर्वक देखते हुये वैद्य श्री वसाणी, वैद्य श्री हेमन्तदवे, रुग्ण के पीछे बैठे हुए-गुजरात आयुर्वेद विकास मंडल के सभ्य सचिव वैद्य श्री शाति भाई अग्रावत······इत्यादि।

दोनों वृषणों मे शोथ हो जाय तो दोनो कर्णों की पाली मे वेधन किया जाता है।

साधन—१ स्टील या ताबा की सुई, २ पतला पक्का धागा, ३. टार्च, ४ नीम तेल, ५ कर्तरी।

स्थान—वन्द कमरे में दर्दी को बिठाकर ही उसके पीछे वैद्य को बैठना चाहिए, दर्दी के सामने टोर्च लेकर परिचारक को बैठना चाहिए। टार्च द्वारा कर्ण पर प्रकाश डालने से कर्ण की तमाम-शीरा-धमनी दिखाई देंगी। कर्ण पाली के बराबर नीचे की ओर त्रिशूलाकार नाडी समूह होता हैं, उनके मध्य में सुई से वेधन करना चाहिए। ध्यान रखे कि सुई धागा से युक्त होनी चाहिए। जब धागा कर्ण वेध विन्दु मे आ जाय तब सुई को छोडकर धागे के अन्य भाग को कर्तरी से काट लेना चाहिए, और गाठ बाध लेना। धागा फिरता रहे इस प्रकार बाधना जरूरी है। सात आठ दिन तक वेधन विन्दु पर नीम तेल डालते रहना जरूरी है। उसके बाद साबे के पतले तार की वाली पहना देनी चाहिए।

कर्ण वेधन से अधिकाश सफलता मिलती है। १ छोटे वालक को भी वृद्धि हो जाती है। उनको कर्ण वेधन एव दाह कर्म से आशातीत फायदा देखा गया है।

दाह कर्म—यह कर्म भी सम्पूर्ण शास्त्रोक्त है। कई रोगो मे दाह कर्म द्वारा चिकित्सा का विधान किया गया है। उसमे वृद्धि भी हैं। वाम वृषण मे वृद्धि हो तो दक्षिण दिशा में और दक्षिण वृषण वृद्धि हो तो वाम दिशा मे दाह कर्म करना जरूरी है।

हस्त के अगुष्ठ मूल मे मणीवन्ध पर त्रिशूलाकार की नस पर सुई गर्म करके दाह कर्म करना चाहिए। तथा पद के अगुष्ठ मूल मे नस देखकर दाह कर्म जरूरी है। गुल्फ सन्धि पर भी दाह कर्म करना जरूरी है। इस तरह बालको मे वृषण के ऊपर वृक्षण सधि में भी दाह कर्म किया जाता है।

आभ्यन्तर चिकित्सा—१ एरण्ड तेल दो चम्मच दूध के सा। नियमित देना चाहिए।

२ महारास्नादि क्वाथ १ तोला और एरण्ड तेल आधा तोला देना चाहिए।

३. महामञ्जिष्ठादि क्वाथ भी देना चाहिए।

४ आरोग्य वर्धनी रस १ रत्ती, गन्धक रसायन २ रत्ती, बङ्गभस्म २ रत्ती, मञ्जिष्ठादि चूर्ण १ माशा, त्रिफला चूर्ण १ माशा। मात्रावत् पुडियां बनाकर १-१ पुडिया तीन बार पानी से दें।

५ त्रिफला गुग्गुल २-२ गोली ३ बार पानी से

६ किशोर गुग्गुल २-२ गोली ३ बार पानी से

७ वृद्धि बाधिका वटी २-२गोली ३ बार पानी से

८ नित्यानन्द रस १-१ गोली ३ बार पानी से

बाह्योपचार—

लेप—दशाग लेप में सम्भालु (निर्गुण्डी) के पत्तों का रस डालकर, घोंटकर यह लेप वृषण पर रोज करना चाहिए।

रक्त चन्दन, यष्टीमधु, कमल, उशीर और नीलोत्पल को दूध में घोटकर लेप करने से शोथ का शमन हो जाता है।

बगला पान २-३ लेकर सैंधवादि तैल या नारायण तैल लगा गरम कर बांध लेवे। बाधने के पूर्व यदि धीरे-धीरे सैन्धवादि तैल से अण्ड पर मालिश करली जाय तो और अच्छा रहता है।

यहा जो चिकित्सा क्रम दर्शाया गया है, यह हमारा अनुभूत है। वर्षों से हम इस विधि से वृद्धि की चिकित्सा करते हैं। गुरू ज्ञान बिना यह कर्म नही सीखा जाता। सिद्ध हस्त चिकित्सक ही यह चिकित्सा करते हैं। एक्युपक्चर पद्धति भी आयुर्वेदीय है और यह कर्ण वेधन एक्युपक्चर का एक प्रकार है।

अत अन्त में मैं आशा करता हू कि भारत के विभिन्न आयु० महाविद्यालयो और अस्पतालों मे कर्ण वेध तथा दाह कर्म विभाग अलग बनाकर सशोधन करना अनपेक्षित नहीं होगा। यह प्रयोग शास्त्रोक्त है, और कई विद्वान वैद्य भारत में हैं। विद्वानों को इस कर्म पर ध्यान देना जरूरी है। रोगी को लाभ मिलेगा और शिष्यों को अनुभव होगा और इस विद्या का विकास होगा।

वृद्धि में कर्णवेधन

श्रीमती नलिनी पी. राठोड (विभागाध्यक्ष–स्वस्थ वृत्त विभाग),
श्री पी एस. अंशुमान (रीडर–कायचिकित्सा विभाग),
श्री एच. वी राज्य गुरु (लेक्चरर–शल्य शालाक्य विभाग),
शेठ जी प्र सरकारी आयुर्वेद कालेज, भावनगर (गुज०)

परिचय—

आयुर्वेद मे वृद्धि रोग शीर्षक से जिस व्याधि विशेष का वर्णन है वह एक रोग समूह है जिसमें फलकोश/अ ड के उत्सेद प्रधान कतिपय रोगो का समावेश किया गया है। विकृति विज्ञान की दृष्टि से इन रोगों मे निज दोषजन्य कुछ अवस्थाओ तथा आगन्तु कारण जन्य रोग रूप अवस्थाओ का वर्णन विविध वृद्धियो के रूप मे किया गया है।

सुश्रुतादि ने सात प्रकार की वृद्धियों का वर्णन किया है। इन मे—वातजन्य, पित्तजन्य, जलजन्य, रक्तजन्य, मेदोजन्य, मूत्र जन्य एव अन्त्रजन्य वृद्धियो का समावेश किया गया है। इनमे से मूत्र एव अन्त्रजन्य वृद्धियो को वायुजन्य माना गया है। तथापि मूत्रजन्य मे मूत्र रूपा दोष सचय एव अन्त्रजन्य मे अन्त्र का वक्षण या फलकोश में स्थान च्युत होकर आजाना ही प्रमुख कारण शास्त्र-कारों ने माना है।

प्रस्तुत लेख मे कर्णवेधन का विचार अन्त्रवृद्धि के सदर्भ मे ही किया गया है, क्योकि एक तो व्यवहार मे इसका प्रचलन देखा गया है और दूसरे कुछ अस्पष्ट समर्थन भी मिलता है।

आन्त्रवृद्धि—

इसके कारणो मे—भार को उठाना, बलवान के साथ युद्ध, वृक्षादि से गिरना तथा इसी प्रकार के परिश्रम जन्य कारण रूप कहे गये हैं।

सभी वृद्धियों के लिये बस्ति मे वेदना, कटिशूल, मुष्क (अण्ड) शूल, शिश्नशूल, वातरोध, फलरोध, शोफ कहे हैं।

इसमे वायु स्वस्थान मे अति प्रकुपित हो एवं वृद्धि को प्राप्त हो, स्थूलान्त्र (सुश्रुत के अनुसार परन्तु वाग्भट के अनुसार क्षुद्रान्त्र) के एक उत्तर भाग को टेढ़ा करके वक्षण संधि मे नीचे की ओर ले जाकर ग्रंथि रूप स्थित होजाता है। (यही वंक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि है)। चिकित्सा न करने पर कुछ समय के बाद यही अन्त्र नीचे की ओर फलकोश मे उतर कर मुष्क शोफ को करती है (यही फलकोषस्थ अन्त्र वृद्धि है)

इस अवस्था मे फलकोष मे आध्मान का रूप वस्ति के समान विस्तृत एव लम्बा होता है। दबाने से अन्त्र आवाज के साथ ऊपर उदर गुहा में चला जाता है। छोड़ने पर पुन: नीचे फलकोशादि मे उतर आती है। सामान्यतया औषधि चिकित्सा से यह असाध्य कही गई है।

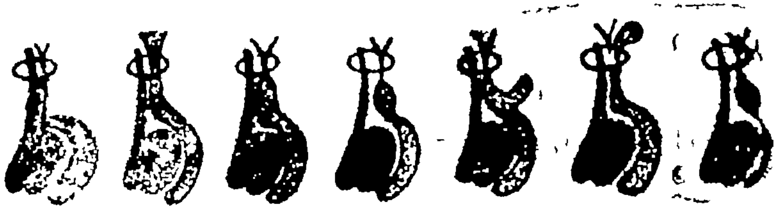
कर्णवेधन—जहा तक कर्णवेधन का प्रश्न है, यह एक प्रकार का वेधन शस्त्रकर्म है। किसी अङ्ग या अवयव में बीधने-छेद करने या छिद्रित करने को वेधन के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

कर्ण वेधन एक सस्कार एव उपक्रम विशेष के रूप में प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित है। इसका प्रयोग अन्त्रवृद्धि मे अनागत बाधा प्रतिषेधात्मक उपक्रम के रूप मे विशेष उपयोगी माना गया है। यद्यपि लोक व्यवहार मे इसका प्रयोग अन्त्र वृद्धियो मे भी किया जाता देखा जा सकता है। (देखे सु सं १६/३ पर अत्रिदेव)। कुछ क्षेत्रो में तथा कतिपय चिकित्सा पद्धतिओ मे इसका प्रयोग श्वास कासादि मे भी देखने को मिलता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार पहलवानो मे काम शक्ति कम करने के लिए भी कान तोडने का प्रचलन रहा है। एक्युप्रेशर मे अन्य अनेक रोगो मे भी कान का उपयोग देखने को मिलता है।

उद्देश्य—इस प्रकार देखा जा सकता है कि कर्णवेधन का प्रयोग दो प्रमुख कारणो मे किया जाता है यथा—

(१) रक्षा निमित्तार्थ—इसमे भी दो प्रकार कल्पित किये जा सकते हैं—

(क) रोग से रक्षा—कर्ण वेधन से रोगो से रक्षा की परिकल्पना रही है। यह भी दो प्रकार से हो सकती है—



वृषण वृद्धि (हाइड्रोसील) की सात अवस्थायें

[१] अनागत बाधा प्रतिषेधात्मक रूप मे जैसाकि अन्त्र वृद्धि आदि मे माना जाता है। लोक परम्परा मे जिनके पुत्र मर जाया करते हैं, उनमें भी पुत्र के दक्षिण वेधन का रिवाज देखने को मिलता है। यह एक टोटका के रूप मे मिलता है। परन्तु कर्ण वेधन से एक प्रकार की रोग प्रतिकार शक्ति उत्पन्न होने की भी कल्पना की जा सकती है। सम्भव है इसी से कर्णवेधन द्वारा अनेक रोग नही होते थे।

[२] रोग शामक उपक्रम—उत्पन्न रोग के शमन के लिए इस उपक्रम का प्रयोग देखा जा सकता है। विशेपतया श्वास, कास आदि मे। कुछ के अनुसार अण्ड वृद्धि आदि में भी कर्ण वेधन किया जाता है। एक्युपचर पद्धति में अपस्मार आदि में भी कर्णवेधन का वर्णन मिलता है।

[३] भूत से रक्षा—राक्षस, भूतादि के अभिषङ्ग से रक्षा भी इसका एक कारण माना गया है। (यद्यपि टीकाकारो ने बालको में कर्णवेधन के समय राक्षसादि के ग्रहण का, रक्तादि की उपस्थिति के कारण भय प्रस्तुत किया है तथापि आने वाले रोगो से रक्षा की दृष्टि से इसी योग्य माना गया है।

(२) भूषण निमित्तार्थ—कान में आभूषण धारण करने का रिवाज लोक व्यवहार में मिलता है। इसके लिए निम्नलिखित कारण दिये जाते हैं—

१ सौन्दर्य अभिवृद्धि—स्त्री पुरुषों के रूप बोध मे

२ दिव्य शक्ति प्राप्ति—कर्ण आदि की कथा से स्पष्ट है।

३ धातु आदि के सम्पर्क से—स्वास्थ्य लाभ/रोग नाशादि।

शिरावेधन के सदर्भ में मूत्रज अन्त्रवृद्धि में वृषण/फलकोष, पार्श्वस्थ सिरावेध का उल्लेख सुश्रुत ने किया है। (सु.शा ८/१७) साथ ही अन्त्रवृद्धि की चिकित्सा के सदर्भ में शङ्ख प्रदेश के ऊपर कान के पार्श्व पर सेवनी बचाकर यत्न पूर्वक विरुद्ध-पार्श्व की सिरा का वेधन करने को कहा गया है। (सु चि २५)

परन्तु हिन्दू परम्परा के अनुसार प्रचलित कर्णवेधन ही यहा हमारा विवेच्य विषय है। अत उस पर सक्षिप्त विचार उचित होगा।

मूलस्रोत—

कर्णवेधन को अपेक्षतया कम प्रचलित एव नवीन सस्कार माना जाता है। यद्यपि बाद के कर्म काडीय ग्रन्थो में इसका समावेश देखने को सर्वत्र मिलता है। कई बार इसका लोक सस्कृति या दक्षिण भारतीय सस्कृति (विन्ध्य सस्कृति) से सम्बद्ध भी माना जाता है। फिर भी इसके मूल को अथर्व वेदादि में ढूंढा जा सकता है। गृहसूत्रो में भी इसके सदर्भ मिलते हैं। परन्तु सर्वाधिक स्पष्ट वर्णन परिशिष्ट कात्यायन सूत्रो में ही पाया जाता है। अथर्व के जिन मन्त्रो का सबन्ध कर्णवेधन से माना जाता है उनका निपात कौशिक ने पशुओ को चिह्नित करने में किया है।

काल—जन्म के बाद १० वें, १२ वें, अथवा १६ वें दिन इसे करने का विधान है। कुछ अन्यो के अनुसार ३ सरे, ५ वे ६ वे, ७ वे, ८ वें, १२ वे मास में भी इसके किये जाने को कहा गया है। तथापि बालक के दांत आने के पूर्व ही इस सस्कार को किये जाने पर भार दिया है। आयुर्वेद के ग्रथों में सुश्रुतादि ने ६ वें, ७ वे, ८ वे मास में कर्ण वेधन का विधान किया है। इसको सस्कार रूप में सम्पन्न करने के लिये शुभ दिन

मास आदि का भी विचार मिलता है। डल्हण ने ६ वें या ७ वें मास (माघ या फाल्गुन) में कर्ण वेधन करने को शिशिरता की दृष्टि से कहा है। यो भी कर्ण वेधन एक प्रकार का शस्त्रकर्म है अतः शस्त्रकर्म के सदर्भ में कहे गये शुभ दिन नक्षत्र, मुहूर्त्त, करण आदि का विचार भी शास्त्र सम्मत है। इसी से रक्षा कर्म भी किये जाते।

कर्त्ता—विधि की दृष्टी से कर्त्ता पर भी विचार किया गया है। सुश्रुतादि ने वैद्य (शस्त्रकर्म विज्ञ), श्रीपति आदि ने सौचिक (सुनार) तथा कात्यायन आदि ने पिता को ही इस सस्कार का कर्त्ता कहा है तथापि शस्त्रकर्म विद वैद्य ही इसका अधिकृत कर्त्ता माना जाना चाहिए।

उपकरण—कर्णवेधन के लिये शोभादायिनी सुई जोकि स्वर्ण, रजत, ताम्र, लोहादि की बनी हो, के द्वारा कर्म करने को गया है। विधि ग्रन्थों में वर्णानुसार राजपुत्र के कान स्वर्ण सुई द्वारा, ब्राह्मण एव वैश्य पुत्र के कान रजत सुई के द्वारा तथा शूद्र पुत्र के कान लोह सुई के द्वारा करने का भी विधान किया गया है। यह सुई ३ से ८ अगुल लम्बी तथा द्विगुण सूत्र युक्त होनी चाहिए।

विधि—पूर्व निश्चित शुभ दिन को, मध्याह्न पूर्व में इस सस्कार को सम्पन्न किया जाना चाहिए। सामान्यतया शुक्ल पक्ष में शुभ तिथि, करण, मुहूर्त, नक्षत्र आदि मे कर्म किया जाता है।

बालक को पूर्वाभिमुख बिठाकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक दक्षिण या वाम कर्णवेधन का विधान है। प्रत्येक कान के लिये इन कर्मकाडीय विधियो मे अलग-अलग मन्त्र भी देखने को मिलते हैं।

आयुर्वेद के ग्रन्थो में वर्णित विधि के अनुसार—बच्चे को धात्री की गोद में बिठाकर, खेलने के लिये खिलौने आदि देकर कर्ण वेधन किये जाने का वर्णन है। इसमे वैद्य वाम हाथ से बच्चे के कान को पकडकर दाहिने हाथ में सुई लेकर, (प्रकाश मे देवकृत छिद्र देख) देवकृत छिद्र में वेधन किया जाता है। लडके का प्रथम दक्षिण कान और कन्या का प्रथम वाम कान बींधा जाता है।

कान को बींध कर छिद्र में सूत्र या वर्त्ति पिरो दी जाती है या बाध दी जाती है जिससे छिद्र वेधन होजाये। तदनन्तर छिद्र विवर्धन एव व्रणरोपणादि का विधान है।

विष्णुधर्मोत्तर आदि मे भी लगभग यही विधि मिलती है। धार्मिक दृष्टि से केशव, हर, ब्रह्म, सूर्य, चन्द्र, दिक्पाल, नासत्य, सरस्वती, ब्राह्मण, गौ आदि का पूजन, कुल गुरू को आसन वस्त्र दान, बालक के कान पर सिन्दूर लगाने तथा अन्त में ब्राह्मण, ज्योतिषी, वैद्यादि को दान देने, स्त्री, मित्र, सम्बन्धियों को सत्कार एव भोजन कराने का भी वर्णन है।

एक अवलोकनात्मक अध्ययन

हम यहा अन्त्रवृद्धि रोगियों के कर्णवेधन के सन्दर्भ में किये गये अवलोकन को सक्षेप मे प्रस्तुत कर रहे हैं। इस अध्ययन में शामिल आतुरो का सक्षिप्त विवरण निम्नानुसार था—

(क) धर्मानुसार

क्र०	धर्म	आतुर स०
१	हिन्दू	५७
२	मुस्लिम	१३
	कुल	७०

(ख) वय समूहानुसार

क्र०	वय समूह	रोगी स०
१	२१ से ३० वर्ष	२
२	३१ मे ४० वर्ष	१२
३	४१ से ५० वर्ष	१८
४.	५१ से ६० वर्ष	१८
५	६१ से ७० वर्ष	१३
६	७१ से ८० वर्ष	७
	कुल	७०

(ग) अन्त्र वृद्धि प्रकारानुसार

	क्र०	वृद्धि प्र०	रोगी स०
द=दक्षिण	१	दक्षणस्थ	द० २६ वा० १० उ० १२
वा=वाम	२	फलकोशस्थ	द० १५ वा० ७ उ० ०
उ=उभय			
		कुल	द० ४१ वा० १७ उ० १२

इन रोगियों में से कर्ण वेधनता के आधार पर किया अनुमान यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

(६) कर्ण वेधनानुसार रोगियो की सख्या निम्न थी—

क्र० कर्णवेधन	कुल	प्राप्त वृद्धि
१—द० कर्ण वेधित रोगी	६	द० २ वा० ४ उ०
२—वाम कर्ण वेधित ,,	४	द० ३ वा० १ उ०
३—उभय कर्ण वेधित ,,	५	द० ३ वा० २ उ०
४—कर्ण अवेधित ,,	५५	द० २३ वा० १० उ० १२
कुल	७०	द० ४१ वा० १७ उ० १२

निष्कर्ष—

इस अवलोकन से निम्न बातें स्पष्ट होने का अनुमान किया जा सकता है—

(१) जिनमें कर्ण वेधन नहीं कराया गया था ऐसे रोगियों की सख्या ५५ थी जो सर्वाधिक थी।

(२) दक्षिण-कर्ण विद्ध ६ रोगियो में से दक्षिण तरफ वृद्धि २ में तथा वाम तरफ की वृद्धि ४ मे पाई गई। इसी प्रकार वाम वृद्ध ४ में से दक्षिण तरफ की वृद्धि ३ में और दक्षिण तरफ की वृद्धि १ में मिली। जिनमें उभय कर्ण बिद्ध थे उन ५ मे से दक्षिण की वृद्धि ३ में वाम की वृद्धि २ में पाई गई।

इस अवलोकन के द्वारा कर्ण वेधन और वृद्धि न होने मे किसी स्थूल सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है। यह अनायास भी हो सकता है। अत इस प्रकार का अध्ययन विस्तृत फलक पर कर ही किसी निश्चय पर पहुचा जा सकता है। साथ ही विविध वृद्धि के रुग्णो में भी कर्ण वेधन का परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

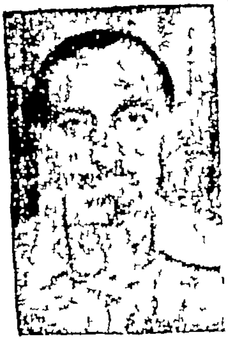
आभार—इस कार्य मे मिले सहयोग के लिये लेखक श्री के० पी० सिंह तथा श्री एम० एच० वारोट (आचार्य-शे० जि० प्र०स२० आयुर्वेद कालेज भावनगर) के सहयोग के लिये आभारी है।

आधार संदर्भ—

१ जन्मतो दशमे वाहि द्वादशे वाऽथ षोडशे(वृह)
२ शातकुम्भमयी सुची वेधने शोभनप्रदा।
राजती वाऽयसी वाऽपि यथा विभवत शुभा ॥
× × वि०मि०स० (वृहस्पति)
३. शिशोरजात दन्तस्य मातुरुत्सगसर्पिण।
सौचिको वेधयेत्कर्णौ सूच्या द्विगुणसूत्रया ॥
सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययो।
शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाष्टागुलात्मिका॥
× × (वि०मि०स०भा० १ पृ० २६१)
४ कर्णरन्ध्रे प्रवेशछाया न विशेदग्रजन्मन।
त दृष्ट्वा विलयंयान्ति पुण्योघाश्च पुरातना ॥
तस्मै श्राद्धं न दातव्य यदि चेदासुर भवेत् ॥
वि०मि०स० में (देवल)
५ कौ० सू० ६
६ पा० गृ० सू० परिशिष्ट १–२
७ स्मृति महार्णव वि०मि०स० मे उद्धृत
८ विष्णुधर्मोत्तर वि०मि०स०भा०१ पृ०२६२
९ सौत्रिको वेधयेत्कर्णौ सूच्या द्विगु सूत्रया (श्रीपति)
१०. भद्रं कर्णेभि श्रणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्रा। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवासस्तनूभिर्व्येशेमहि देवहित यदायु। ऋ०वे० १।८९।८
११ वक्ष्यन्ती वेदा गनी वस्ति कर्ण प्रिय सखाय परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्जय इम समने पारयन्ती। ऋ०वे० ६।७५।३
१२ कर्ण वेधन संस्कार,पी एस. अंशुमान,प्रेरणा ४।७४
१३ कर्ण व्यधे कृते वालो न ग्रहैरभिभूयते। भूम्यतेऽस्य सुख तस्मात् कार्यस्तत् कर्णयोर्व्यध ॥

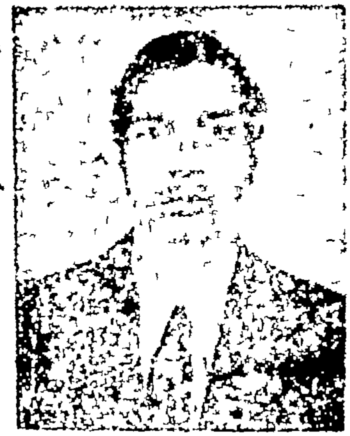
—शेषाश पृष्ठ २८५ पर देखें।

पित्तज वृद्धि की सफल चिकित्सा



← लेखक–वैद्य शोभन वसाणी
२१२–सर्वोदय कामर्सियल सेन्टर, अहमदाबाद

अनुवादक–वैद्य भानुप्रताप आर. मिश्र बी एस ए एम →
विवेचक—वाला हनुमान आयु० महाविद्यालय,
लोदरा (महेसाना) उत्तर गुजरात



सफेद दाग को दूर करने हेतु किसी वैद्य की चिकित्सा प्रारम्भ की। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ दाहिने हाथ पर उग्र फुन्सी मिटाने हेतु श्री नारायण भाई देव हमारे चिकित्सालय में आये थे। उससे संतोष मिलने पर हमारे ऊपर काफी प्रसन्न थे। उसके बाद तो उनके यहा गम्भीर बीमारी मे मुझे ही चिकित्सा प्रदान करने जाना पडता था।

तारीख १२-१०-७३ को उनका लडका श्री इन्द्रवदन मुझे घर पर मुलाकात ले जाने हेतु बुलाने आया। १९, शक्तिनगर शाहपुर दरवाजा बाहर अहमदाबाद उनके घर जाकर जाच किया तो रोग गम्भीर लगा। वृषण ऊपर लाल पीली भयङ्कर सूजन आ गई थी। पास के डाक्टर को बताया और चिकित्सा लेने पर भी पीडा दाह तथा सूजन कम नही हुआ और दो दिन से नींद नही आयी। इसलिए एक सर्जन डाक्टर की सलाह ली गई। सर्जन डाक्टर ने तुरन्त आपरेशन करा देने को कहा। रोगी की आयु ६३ वर्ष की थी। इसलिए घर के सभी लोग एकाएक आपरेशन कराने के लिये सहमत न थे। पित्तज वृद्धि, रक्तज वृद्धि, वृषण पाक जैसे निदान का मैंने अनुमान किया। नारायण भाई की प्रकृति पित्त की थी और चालू ऋतु शरद भी पित्त प्रकोप अर्थात पित्त दोष, सूजन (शोथ), पाक वेदना, दाह आदि का विचार करके ही मुझे योग्य तात्कालिक परिणामदायी औषधि देनी थी। केस चेलेन्ज रूप था। इसलिए मैंने हिम्मत देते हुए कहा घबराने की कोई आवश्यकता नही है। आपरेशन कराने की तो जरूरत नहीं पडेगी। मैं लेप भेज रहा हू। उससे सूजन, दर्द जलन कम हो जायेगी। नीद की गोली भी भेजता हू। आज रात को तो जरूर नीद आ ही जायेगी। चार ही दिन में तो आप स्वय हमारे चिकित्सालय में आ सकोगे। इतना अच्छा हो जाओगे।

नारायण भाई मणिशकर देव केस न० २/४०६ नाम पर मैंने निम्न दवा तैयार कराकर भेजी—

(१) वृद्धिहरी सोगठी पानी मे पीसकर वृषण पर पतला लेप बार-बार करने के लिए दिया।

(२) वृद्धि बाधिका वटी २-२ गोली प्रात शाम निम्नलिखित क्वाथ के साथ खाने को दिया।

(३) वरुणादि क्वाथ और पुनर्नवादि क्वाथ ताजा बना कर वृद्धिवाधिका वटी के साथ प्रात शाम पीने को दिया।

(४) वेदनान्तक १-१ गोली प्रात साय तथा रात को सोते समय २ गोली पानी के साथ खाने के लिए दिया

वेदना भुलाने तथा मन को व्यस्त रखने एव आयुर्वेद और मुझ में श्रद्धा की वृद्धि हो इसलिए सफल हुए एक सौ केस की हमारी पुस्तक "अनुभवबिन्दु अमृत" पढ़ने के लिए भेजा। दूसरे ही दिन उन्होंने अपने आभार पत्र के साथ प्रकाशन सस्था को भेंट के रूप मे ग्यारह रुपया भेजा। श्री नारायण भाई मणिभाई देव जी ने अपने आभार पत्र मे लिखा था कि "हमारे रोग के विषय मे आपने जो चिकित्सा की और जो औषधिया लेप आदि भेजा इस उपचार से मुझे मेरे रोग मे दो आना लाभ हुआ है। सूजन उतरने लगी है। अन्दर के भाग में जो असह्य पीडा थी वह एकदम कम हो गई है। सक्षिप्त मे आप द्वारा भेजी गई औषधियो ने बहुत ही चमत्कारिक काम किया है। ईश्वरेच्छा से हमारा रोग मिट जायेगा। ऐसा लग रहा है"।

उस दिन चालू दवा के अतिरिक्त मलशुद्धि हेतु हर्रे की ६ गोली दिया था।

तारीख १७-१०-७३ को उनका पत्र आया उसमे उन्होंने लिखा था कि "आपकी सावधानीपूर्वक प्रदान की गई चिकित्सा, बहुत ही सोच समझकर दी गई दवायें तथा परम कृपालु परमात्मा की असीम कृपा से हमारे रोग मे बताये गये समय चार दिन मे मुझे लगभग ८५ प्रतिशत का फायदा हुआ है। इसके लिये आपका हार्दिक आभार मानता हू।"

तारीख १८-१०-७३ को तो श्री नारायण भाई दवे खुद ही चिकित्सालय मे आये। तब मुझे काफी आश्चर्य हुआ। उनकी मैं परीक्षा कर रहा था। तब वे कह रहे थे। "अब तो मैं १०० प्रतिशत अच्छा हो गया हू। फिर भी पुन यह रोग न हो इसके लिये आपकी इच्छा हो तो चार दिन की दवा और दो।"

इस बात को आज बराबर तीन वर्ष बीत गये। पुन. इस रोग ने शिर उठाने की कोशिश तक नही की।

—✱✱—

✱ वृद्धि मे कर्णवेधन ✱ — पृष्ठ २८३ का शेषाश —

यद्यपि कर्णव्यधेन प्रणिमि काले रक्षोभव भवति तथापि तद्दाल्पकाल प्रति कर्त्तव्य च तेन चिरकाल रक्षार्थी तदल्प व्यजत एव (भानुमति)
(कुमार तन्त्र)

१४ सु० नि० १२।३ ६

१५ रक्षाभूषणनिमित्त वालस्य कर्णौ विध्येते। तौ षष्टे मासि सप्तमे वा शुक्ले पक्षे प्रशस्तेषु तिथिकरण मुहूर्त्तनक्षत्रेषु कृत मङ्गल स्वस्तिवाचन धात्र्यङ्के कुमारधराङ्के वा कुमारमुपवेश्य वालक्रीडनकै प्रलोभ्याभि सान्त्वन भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्ण दैवकृते छिद्र आदित्यकरावभासिते शनै र्दक्षिण-हस्तेनर्जु विध्येत्, प्रतनुक सूच्या, बहलमास्या पूर्वं दक्षिण कुमारस्य वाम कुमार्या तत पिचुवर्ति प्रवेशयेत्। —सु०सु० १६।३

१६. शखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम।
व्यत्यासाद्वा सिरा विध्येदन्त्रवृद्धिवृत्तये ॥
—सु०चि० १९।२७

१७. षटसप्ताष्टमासेषु नीरुजस्य शुभेऽहनि।
कर्णोहिमागमे विध्येद्धात्र्यङ्कस्थस्य सान्त्वयन् ॥
प्राग्दक्षिण कुमारस्य भिषग्वामतुपोषित।
दक्षिणेन दधत्सूचीं पालिमन्येन पाणिना ॥
मध्यत कर्णपीठस्य किंचिद्गण्डाश्रयप्रति।
जरायुमात्रे प्रच्छन्ने रविरश्मवभासिते ॥
धतस्य निश्चल सम्यगलक्तकरसाङ्किते।
विध्येद्दैवकृते छिद्रे सकृदेवर्जु लाघवात् ॥
—अ० हृ० नि०, अ० हृ० उ० १।२८ ३१ ✱

अन्त्रवृद्धि-एक क्लीनिकल अध्ययन

श्री पी०एस० अशुमान एच०पी०ए०, रीडर-काय चिकित्सा विभाग,
श्री के० पी० सिंह एच पी ए, रीडर/ विभागाध्यक्ष–काय चिकित्सा विभाग,
श्रीमती के जी आशरा, एम आशरा एम. डी (आयु), लेक्चरार का चि. वि.
शेठ जी. प्र. सरकारी आयुर्वेद कालेज, भावनगर (गुजरात)

परिचय—

अन्त्रवृद्धि सज्ञा मूलत आन्त्र का वक्षण गुहा सुरग अथवा फलकोष मे आ जाने पर दी जाती है। सुश्रुत के अनुसार परिश्रमजन्य विविध निदान सेवन से वायु स्वस्थान मे अतिशय प्रवृद्ध होकर स्थूलान्त्र (सुश्रुत) क्षुद्रान्त्र (वाग्भटानुसार) के इतर भाग के १ इतर भाग को टेढा कर वक्षण सधि मे नीचे की ओर ले जाकर (प्रथम) वक्षण प्रदेश में वक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि रूप ग्रन्थि रूप मे रहती है। चिकित्सा न करने पर कुछ समय के बाद यही अन्त्र फलकोश मे प्रवेश कर मुष्कशोथ रूप फलकोशस्थ अन्त्रवृद्धि को उत्पन्न करती है। इस प्रकार का वर्णन वाग्भट ने भी दिया है। चरक ने सभवतः ब्रध्न नाम से वक्षणस्थ अन्त्र वृद्धि का वर्णन किया है।

सामान्यतया अन्त्रवृद्धि असाध्य कही गई है। कुछ लोगो का कहना है कि यह औषध द्वारा असाध्यता की बात है। परन्तु जैसा कि सुश्रुत के वर्णन से प्रतिध्वनित होता है कि प्रारम्भ मे वक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि साध्य है। उसकी उपेक्षा करने पर धीमे-धीमे यह वक्षण से फलकोश ग्रीवा और वहा से फलकोश में आने पर यह असाध्य बन जाती है।

इसी जिज्ञासा तुष्टि के लिये यह अध्ययन किया गया है। इसके लिये शास्त्रीय चिकित्सा सूत्र एव कल्पों का अवलम्बन लेकर किया गया है तथा परिणामों को वैद्य समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है।

साधन एवं सामग्री—

इस अध्ययन के लिये रोगियों का चयन शेठ जी प्र. आयुर्वेद कालेज भावनगर के साथ सलग्न श्रीमती तापीबाई आयुर्वेदिक हास्पिटल भावनगर के ओपीडी विभाग से किया गया। रोगियों का इतिवृत्त एव परीक्षा शास्त्रीय लक्षण एव पद्धति के अनुसार किया गया। मल, मूत्र परीक्षा की गई।

औषध चयन की दृष्टि से निम्नलिखित समूहो की औषध योजना की गई।

(क) समूह—

दशमूल क्वाथ ४ तो., एरण्ड तैल १ तो प्रतिदिन १ बार १ से ४ सप्ताह तक।

(ख) समूह—

समूह (क) की औषध के साथ—

१ आरोग्यवर्धिनी १ गो०, पुनर्नवादि मण्डूर १ गो०, चन्द्रप्रभा वटी १ गो०, वृद्धिबाधिका वटी १ गो० प्रति मात्रा २ बार जल से।

२ हिंग्वष्टक चूर्ण १ ग्राम घी के साथ भोजन पूर्व प्रयोग १ से ४ सप्ताह तक किया गया। तथा आवश्यकता अनुसार अनुपानार्थ रात्रि में हरडे, इसबगोल, सण्टी एव गुण्ठी के समान भाग मिश्रण की ३ ग्राम मात्रा दी गई। रात्रि मे विम्लापन एव पीडन द्वारा अन्त्र को यथास्थान बिठाकर सोने की सलाह दी गई।

चर्चा—

जिन ४० रोगियों पर यह प्रयोग किया गया उनमें से ३१ हिन्दू, ९ मुस्लिम थे। लिंगानुसार सभी रोगी पुरुष थे। आय समूह अनुसार प्रवर आ स के ८०, मध्यम आ स. के १२, अवर आय समूह के २० रोगी थे। वय समूह के अनुसार २१ से ३० वर्ष के १, ३१ से ४० वर्ष के ६, ४१ से ५० वर्ष के ९, ५१ से ६० वर्ष के ९,

६१ से ७० वर्ष के ८, ७१ से ८० वर्ष के ६ रोगी थे।

रोग विज्ञान की दृष्टि से वक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि के २४ रोगियों में से र व अ वृ के १३, वा व अ वृ के ५, उ. व अ वृद्धि के ६ रोगी थे। फलकोशस्थ अन्त्रवृद्धि के १६ रोगियों मे से द फ अ व के ६, वा. फ अ. व. के १६ रोगी थे। अवधि एवं रोग की जीर्णता की दृष्टि से ६ मास से १ वर्ष पुराने १२, १ से २ वर्ष पुराने ६, २ से ४ वर्ष पुराने ६, ६ या उससे अधिक पुराने रोगी १६ थे।

जो रोगी हमारे पास आये वे सभी जीर्ण प्रकार के होने से भारहरण, वलवृद्धिग्रह, वृक्ष प्रपतन जैसे तीव्र रोगकर निदान नही मिले। आयाकर एवं पदगमन जैसे निदान (अतिश्रम एवं साइकिल) १६ मे, अतिवात् अन्न ५ में, मलवातरोध प्रवृत्ति ५ में, वलात मलवात प्रवृत्ति २० में मिली।

उपलब्ध लक्षणों के लिये १ तालिका देखें। इनमे से बस्ति वेदना २० में, कटि वेदना ५ मे, मुष्कवेदना ५ में, मेढ़ वेदना ५ में, मारुतनिग्रह ३५ मे, फलकोश उत्सेद प्रारम्भ में ५ में बाद मे १६ रुग्णों में मिला। २४ रुग्णों मे निरीक्षण करने पर वक्षण प्रदेश में ग्रन्थिवत उत्सेद मिला।

१६ में फलकोश आध्मान फलकोश में अन्त्र आने के कारण मिला जिसको दबाने पर सशब्द ऊपर चढ़ जाने और छोडने पर पुन आते देखा गया। इनमें से १० रुग्णों में वेदना एवं मूत्र पुरीष स्तम्भन (रोध) विशेष कष्टकर रूप में मिला।

इन रोगियो में से जीर्ण विबंध के २०, शुष्कार्श के ५, उदर विकार के १०, जलोदर के ३, श्वास कास के २ रोगी थे। यह रोग इनमें अनुसागिक रूप से पाये गये।

प्रथम औषध योजना समूह "क" का प्रयोग २० रुग्णों पर किया गया। उसी प्रकार औषध योजना "ख" समूह का भी २० रुग्णों पर प्रयोग किया गया जिससे कि तुलनात्मक परिणाम मिल सकें।

जैसाकि विदित है सभी सहिता ग्रन्थों में दशमूल क्वाथ एवं एरण्ड तैल का प्रयोग अन्त्र वृद्धि मे मिलता है। आरोग्यवर्धिनी, पुनर्नवा मण्डूर एवं चन्द्रप्रभा का प्रयोग स्नायुओं की शिथिलता एवं ढीलापन दूर करने के लिये किया। इसी प्रकार वृद्धिबाधिका वटी का प्रयोग रोगानुसारी औषध के रूप में किया गया। शेष बात एवं पुरीष अनुलोमन व्यवस्था के भाग रूप मे औषधिया दी गई।

इस प्रयोग मे परिणाम या प्रभाव की दृष्टि से निम्नलिखित बातें सामने आई—

१ समूह "क"—में रुग्णो पर प्रयुक्त औषध योजनानुसार सिर्फ वक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि पर ही (८ मे मध्यम एवं ४ में अवर प्रकार का) लाभ देखने में आया जबकि फलकोषस्थ मे (२ मे अवर ६ मे अ लाभ) नहीवत प्रभाव मिला।

२ समूह 'ख"—मे रुग्णों पर प्रयुक्त औषध योजनानुसार वक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि मे अच्छा प्रभाव देखने को मिला। तदनुसार ६ मे प्रवर, ४ मे मध्यम, २ मे अवर लाभ मिला। फलाकोषस्थ अन्त्रवृद्धि मे २ अवर, ६ मे अलाभ।

निष्कर्ष—

इस अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष पर आया जा सकता है—

१ यह रोग प्राय हिन्दुओं (३१) में अधिक मिला।

२ आय समूह के अनुसार अवर आय समूह में सर्वाधिक २० रुग्णो मे मिला।

३ वय समूह अनुसार ४० से नीचे के रुग्णो में कम (सिर्फ ७ मे) तथा ४१ से ऊपर के रुग्णों में सर्वाधिक ३३ रुग्णों मे मिला।

४ रोग विकृति की दृष्टि से दक्षिण वक्षणस्थ (१३ रूग्ण) मे अधिक मिला इसी प्रकार फलकोषस्थ में भी द० फलकोषस्थ रुग्ण अधिक मिले।

५ लक्षण समूह की दृष्टि से—

१ बस्ति—वक्षण वेदना २० रुग्णो में मिली।

२ मारुत (एवं पुरीष विबंध) ३५ रुग्णो में मिला।

३. उत्सेद की दृष्टि से वक्षण उत्सेद एवं फलकोश उत्सेद प्रत्याय लिंग के रूप में देखने को

मिला (जो वन्क्षण पर विशेष रूप से स्पष्ट दृष्टव्य था)

४ जीर्ण विबन्ध २० रुग्णों मे तथा उदर विकार १० रुग्णो मे मिला जो इन विकृतियो से इससे सम्बन्ध को स्पष्ट करता है।

६. औषध परिणाम के अनुसार—

१ प्रवर लाभ (वेदना एवं उत्क्लेद में यथेष्ट लाभ) प्रथम औषध योजना के स्थान पर द्वितीय औषध योजना उपयोगी रही तदनुसार ६ रुग्णों को लाभ हुआ।

२ मध्यम लाभ (वेदना शमन, उत्क्लेद अल्पशमन) इस प्रकार का लाभ दोनों औषध योजना से मिला। ८+४ रुग्णों मे देखने में आया।

३. अवर लाभ (वेदना या उत्क्लेद मे किंचित लाभ)—दोनों ही औषध योजना में देखने को मिला (६+४ रुग्णों मे मिला)

४ अलाभ—(वेदना एवं उत्क्लेद में कोई लाभ न होना) दोनों औषध योजना द्वारा मिला। (६+६ रुग्णों मे)

इससे यह सिद्ध हुआ कि वंक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि का यापन किया जा सकता है जबकि फलाकोशस्थ में मात्र वेदना शमन या निरोध को दूर किया जा सकता है।

तालिका स० १—अन्त्रवृद्धि एवं जीर्णता प्रकारानुसार

अनुक्रम	घटक	वंक्षस्थ		फलकोषस्थ				
		द०	वाम	उ०	द०	वा०	उ०	कुल
१	रुग्ण	१३	५	६	१०	६	०	४०
२		६ माह्-१ वर्ष		१-२ वर्ष	२-४ वर्ष	४ से ६ वर्ष या अधिक		
	जीर्णता	१२		६	६	१६		

तालिका स० २—औषध प्रयोग

अनुक्रम घटक	रुग्ण	परिणाम/लाभ			
		प्रवर	मध्य	अवर	अलाभ
१ समूह "क"					
वक्षणस्थ अं० वृ०	१२	०	८	४	०
फलकोशस्थ अं० वृ०	८	०	०	२	६
२ समूह "ख"					
वक्षणस्थ	१२	६	४	२	०
फलकोशस्थ	८	०	०	२	६

तालिका सं० ३—परिणाम

अनुक्रम घटक	परिणाम		
	शूलशमन	उत्क्लेद शमन	मूत्र पुरीष निग्रह
१ "क" समूह वंक्षणस्थ	८	८+४	१२
फलकोशस्थ	–	२	८
२ "ख" समूह-वक्षणस्थ	६+४+२+२	६+४	१२
	२	–	८
	२४	२४	४०

तालिका स० ४ वयसमूहानुसार वर्ष में

अनुक्रम	घटक	२१–३०	३१–४०	४१–५०	५१–६०	६१–७०	७१–८०
१.	रुग्ण	१	६	९	९	९	६
२.	प्रतिशत	२.५०	१५.००	२२.५०	२२.५०	२२.५०	१५.००

तालिका स० ५ उपलब्ध लक्षण तालिका

अनुक्रम		रुग्ण स०
क.	सामान्य लक्षण/पूर्वरूप	
	१ बस्तिवेदना (सु)	२०
	२ कटिवेदना (सु)	५
	३. मुष्क (फलकोष) वेदना	५
	४ मेढ्र (शिश्न) वेदना (सु)	५
	५ मारुत निग्रह (सु)	३५
	६. फलकोष शोथ (उत्सेद)	५
ख	वंक्षणस्थ अन्त्रवृद्धि	
	१ वंक्षणसंधि ग्रन्थि	२४
	१ रूप उत्सेद (सु) (अ)	
	२. फलकोषग्रीवाशोथ	५
	२ आध्मान	
	३. वेदना	
	४ वात–पुरीष रोध	
ग	फलकोशस्थ अन्त्रवृद्धि	
	१ फलकोष आध्मान (सु) (आ)	११
	२ वस्तिवत प्रदीर्घ शोथ (सु)	१
	३ अवपीडन से सशब्द ऊर्ध्वगमन (सु)	१६
	४ छोडने पर पुन. नीचे आकर आध्मान करना (सु)	१६
	५ वेदना (अ)	१०
	६ स्तम्भन (वात-पुरीष) (अ)	१०
घ	अन्य सम्बद्ध रोग	
	जीर्ण विबंध २० जलोदर	३
	शुष्कार्श ५ अन्य	२
	उदर विकार १०	

तालिका स० ६ निदान दर्शक

अनुक्रम		निदान		रुग्ण
क.	१	भारहरण	(सु)	०
	२	बलवद्विग्रह	(सु)	०
	३	वृक्षप्रपतन	(सु)	०
	४.	व्यायाम विशेष	(सु)	
	५.	पदयात्रा (साइकिल)		१५
	६.	विषम चेष्टा (अंगचालन)		१
ख.	१	वात प्रकोपक आहार		५
		१ तिक्त/कषाय		
		२. रूक्ष/शीत		
		३. रूक्षान्न		
ग	१	शीतजल स्नान (अवगाहन)		०
घ.	१	मलवात रोध		५
	२.	बलात मल वात प्रवृत्ति– (सतत अनुलोमन) या कुंथन		२०

तालिका स० ७ धर्मदर्शक

अनुक्रम	घटक	हिन्दू	मुस्लिम	कुल
१.	रुग्ण	३१	९	४०
२	प्रतिशत	७७.५०	२२.५०	१००

तालिका स० ८ आयसमूहानुसार

अनुक्र	घटक	प्र आ स	म आ.स	अ आ स	कुल
१	रुग्ण	८	१२	२०	४०
२	प्रतिशत	२०.००	३०.००	५०.००	१००

आभार—इस कार्य में मिले सहयोग के लिये संस्था के आचार्य श्री एम०एच० बारोट का लेखक आभारी है।

पैत्तिक वृद्धि-सफल चिकित्सा

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एस. ए एम.
भारद्वाज औषधालय, सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात

वृद्धि का सामान्य अर्थ है—बढना। यहा शास्त्राचार्यों ने वृषण शोथ को 'वृद्धि' शब्द से स्वतन्त्र रूप से व्याधि की पहिचान दी है। यह व्याधि केवल पुरुषो को ही होती है क्योंकि केवल पुरुषों मे वृषण विद्यमान है। दोनो जघाओ के बीच मे शिश्न के बराबर नीचे वृषण स्थान है। वृषण की सख्या २ है। वृषण में शुक्राणुओ का उत्पादन होता है इसीलिए वृषण का महत्व है।

वृषण वृद्धि मे जब शोथ आ जाता है, तब हम उनको वृषण शोथ भी कहते हैं। आयुर्वेद सहिता ग्रन्थो में सात प्रकार की वृद्धि का वर्णन मिलता है। जो इस प्रकार है—१. वातज वृद्धि २. पित्तज वृद्धि ३. कफज वृद्धि ४. रक्तज वृद्धि ५ मेदज वृद्धि ६ मूत्रज वृद्धि और ७ आन्त्र वृद्धि।

सामान्यतया लोक भाषा में उनको 'वधरावल' नाम से जाना जाता है। ग्राम्य भाषा में 'सारण गाठ' से जाना जाता है। यह शब्द ठीक नहीं है। क्योंकि केवल आन्त्र वृद्धि को ही सारण जानना चाहिए। यहा वृद्धि रोग सात प्रकार का है और सबका नाम अलग अलग है और लक्षण एव चिकित्सा भी अलग अलग है। आधुनिक मत से इस व्याधि को इस प्रकार जाना जाता है—वातज, पित्तज कफज और मेदज वृद्धि को सामान्यत ओरकाइटिस कहा जाता है। मूत्रज वृद्धि हाईड्रोसील और आन्त्र वृद्धि को हर्निया शब्द से जाना जाता है।

हम यहा केवल पित्तज वृद्धि का विश्लेषण करना चाहते हैं।

पित्तज वृद्धि निदान—

भावप्रकाश माधव निदान आदि ग्रन्थों मे वृद्धि रोग का निदान (कारण) इस प्रकार बताया है—मल मूत्रादि त्रयोदश वेगो का धारण करना, जोर से व लापरवाहीपूर्वक वाहन चलाना (साईकिल) ऊचे नीचे स्थानों से दौडना, अत्यन्त व्यायाम, अतिमार्ग गमन गरिष्ट भोजन, खडे-२ जलपान, जीर्णकोष्ठबद्धता, गैस (अपान वायु का दूषित होना या अवरोधादि) मैथुनाभिक्यतादि प्राय वृद्धि रोग के प्रमुख कारण हैं।

सम्प्राप्ति—

उपरोक्त कारणों से दूषित हुआ वायु दोष अपने प्रमुख स्थान पक्वाशय से चलायमान होकर शोथ व भयङ्कर शूल करता हुआ फलकोष वाहिनी शिराधमनी में आकर अण्डकोषो में आकर वृद्धि रोग उत्पन्न करता है।

लक्षण—

> वृद्धि करोतिकोषस्थो फल कोषाभि वाहनी।
> रुध्वा क्रुद्धगतिर्वायुर्धमनीर्मुष्क गामिनी.।
> —भा० प्र० मध्यम खड–३

यहा मुख्य रूप से वायु ही प्रधान कारण है। फिर भी दोषादि भेद होता है।

पित्तजन्य वृद्धि का लक्षण बताते हुये कहते हैं कि—

> पक्वोदुम्बरसकाश. पित्ताद्दाहोष्मपाकवान।

अर्थात—पक्व उदुम्बर फल सदृश और पित्त से दाहयुक्त और उष्ण स्पर्श युक्त वृद्धि को पैत्तिक वृद्धि जानना चाहिए।'

हमने देखा है कि और सभी विद्वान आचार्यों का नम्र मत है कि सभी प्रकार की इस व्याधि मे अण्डकोष में शोथ देखा जाता है। इसीलिए अण्डकोषवृद्धि, वृषण शोथ और वृषणवृद्धि नाम दिया गया है।

पैत्तिक वृषण वृद्धि मे—दाह होता है। वृषण में दाह होना मुख्य लक्षण है। वेदना होती है। वेदना वायु का लक्षण है और शोथ होना यह लक्षण कफ का है। अत यहा दाह होना प्रमुख लक्षण बताया है और वृषण शोथ देखने में पीताभ रक्त वर्ण का होता है। कहा है—पक्व उदुम्बर फल सदृश।

पैत्तिक वृद्धि से युक्त एक केश रिपोर्ट

रुग्ण नाम —ताहेर अली, फकरुद्दीन अली ।
उम्र—१६ साल ।
कर्म—अभ्यास (शिक्षा) ।
स्थान—सावर कुण्डला (भावनगर) ।

रुग्ण का पूर्व इतिहास—

ताहेर अली अभ्यास करता था । यकायक उसको कर्णमूल शोथ हुआ । हमारे पास से आयुर्वेदिक दवा लेने से सम्पूर्ण आराम मिला । कर्णमूल शोथ की बारबार हमने आठ दिन की दवा दी थी और स्पष्ट सूचना दी गई थी कि इस रोग की १ मास तक बारबार लेनी होगी । मगर एक सप्ताह मे उसको स्पष्ट आराम मिल गया । इसलिये उसने चिकित्सा बन्द कर दी । फिर एक मास के बाद उदरशूल की शिकायत हुई । कारण मे उन्होने बताया कि अगले दिन उपवास (लंघन) करके सारे दिन साईकिल चलाई । खूब पानी पिया गर्मी के दिन थे । भूखा रहकर अति श्रम किया पानी भी बहुत मात्रा मे दिया । दो दिन बाद उसने वृषण मे सूजन की शिकायत की । शरम के कारण उसने पहले नही बताया था । हमने देखा तो दाहिनी ओर का वृषण बढ़ गया था । भारी सूजन आ गयी थी । वेदना बहुत थी । चल भी नहीं सकता था । उसके पिता जी ने हमे बताया कि इस रोग का नाम है वृद्धि पित्तज वृद्धि है । क्योंकि उनको वृषण मे दाह होता था । पीतवर्ण दिखाता था अपक्व व्रणशोथ में जब वेदना होती है उसी तरह उनको वृषण मे वेदना होती थी। मैंने सलाह दी कि इस रोग को मिटाने में दो तीन मास लग जाते हैं । ताहेर अली की निम्न प्रकार चिकित्सा प्रारम्भ की—

पथ्य व्यवस्था—

वाहन की मुसाफरी बन्द, जोर से चलना-फिरना बन्द । अति मार्ग गमन बन्द । बटाटा, उडद, बाजरी, तला हुआ पदार्थ, मिर्च, दही, बैंगन, मास-मछली अण्डा जागरण, दिवास्वाप इत्यादि बन्द कराया ।

सिर्फ गेहू, चावल, मूग, भाजी, परवल, तक्र, सुंठ, शिग्रु इत्यादि पर रखा गया ।

औषधि उपचार—

प्रथम दिन से लेकर अंतिम दिन तक एक ही प्रकार की चिकित्सा की गई थी । बीच मे औषधिक्रम बदला नही था । लगभग १०५ दिन चिकित्सा की गई और सम्पूर्ण आराम दिलाया गया था ।

औषधि व्यवस्था—

१—आरोग्यवर्द्धनी रस, गंधक रसायन, महालक्ष्मी विलास रस २-२ रत्ती, मंजिष्ठादि चूर्ण १ म.शा, त्रिबंग भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण १ माशा—मात्रावत् पुडिया बनाकर दिन मे तीन बार १-१ पुडिया मधु से लेने की सलाह दी थी ।

२—त्रिफला गुग्गुल २-२ गोली तीन बार पानी से ।

३—वृद्धिबाधिका वटी १-१ गोली ३ बार पानी से ।

४—नित्यानन्द रस १-१ गोली ३ बार पानी से ।

५—नित्य-एरण्ड तेल दो चम्मच-१ ग्राम शुण्ठी के साथ दो बार दिया जाता था ।

६—लेप कर्म—नित्य सुबह और रात्रि को निर्गुण्डी पत्र स्वरस में दशांग लेप को खूब घोंटकर वृषणशोथ पर लेप कराया जाता था ।

इस प्रकार की चिकित्सा से दिन व दिन सूजन घटता गया, वेदना एव दाह कम होने लगी । साढे तीन मास तक चिकित्सा से शोथ मे वृषणशोथ मे सम्पूर्ण आराम मिला । शास्त्रो मे इस रोग की अलग-अलग चिकित्सा बताई है । मुख्यत महारास्नादि क्वाथ, दुग्ध और एरण्ड तेल, महामंजिष्ठादि क्वाथ और अन्य वनस्पति जन्य औषधियों का उल्लेख मिलता है । भावप्रकाश मे केवल वृद्धिबाधिका वटी जो रसौषधि है—का उल्लेख किया है। हमने यहा विविध रसौषधियों का प्रयोग किया है । साथ-साथ गुग्गुल का भी प्रयोग किया गया है ।

एक मेदवृद्धि वाले को हमने न०१ का क्रम दिया था साथ में त्रिफला गुग्गुल और महा मंजिष्ठादि क्वाथ दिया था । साथ-२ वृद्धिबाधिकावटी और नित्यानन्द रस भी

दिया था। इस चिकित्सा क्रम से मेदवृद्धि रोग मिटाया है। इस मेदजन्य वृद्धि में महामंजिष्ठादि क्वाथ का महत्व है। महा मंजिष्ठादि क्वाथ मेद पिघलाता है, और रक्तवाहिनी मे रक्त शुद्ध होता है। वृद्धि रोग में लेपकर्म करने से पर्याप्त मात्रा में सफलता मिलती है। दशांग लेप आयुर्वेद का प्रसिद्ध योग है। दशांग लेप से शोथ हटाया जाता है और दशांग लेप से दाह में लाभ होता है। निर्गुण्डी वनस्पति प्रसिद्ध है। यह वातनाशक है। वातव्याधि मे निर्गुंडी लाभदायक देखी गयी है और सभी त्वक् रोगों मे उपयोगी सिद्ध हुई है। यहा वृद्धि रोग में वायु दोष मुख्य है। और वृषण की त्वचा मे सूजन आती है। अत. त्वक् दुष्टि भी होती है। इसलिये निर्गुंडी पत्र स्वरस मे दशांगलेप मिलाकर स्थानिक चिकित्सा हेतु लेपकर्म करने से चिकित्सा मे सफलता प्राप्त होती है।

वातजवृद्धि, पित्तजवृद्धि, कफज वृद्धि, रक्तजवृद्धि और मेदज वृद्धि में शल्यकर्म की जरूरत नही है यह हमारा अपना अनुभव है। मूत्रज वृद्धि मे कभी-कभी शल्यकर्म की जरूरत उत्पन्न होती है और शल्यकर्म करने से सम्पूर्ण फायदा नही मिलता। मूत्रज बृद्धि मे–शल्यकर्म द्वारा वृषण मे से पानी निकाला जाता है। बाद मे फिर से वृषण में पानी भर जाता है। बार-बार पानी निकालना भी ठीक नहीं है। अत. १-२ बार पानी निकालने के बाद शमन चिकित्सा करने से फिर पानी भरता नही है। आन्त्रज वृद्धि में शल्यकर्म आवश्यक चिकित्सा है। फिर भी जब अप्राप्त आन्त्रवृद्धि देखी जाय, तब आयुर्वेदिक विधि से जरूर लाभ मिलता है। कभी-२ आन्त्र वृद्धि मे दाहकर्म और कर्णछेदन कर्म से भी फायदा देखा गया है। यह दाह कर्म और कर्णवेधन कर्म सिद्ध हस्त वैद्य ही कर सकते हैं। दाहकर्म से वृषण मे आया हुआ आन्त्र ऊपर यथा स्थान चला जाता है। और वृषण के ऊपरी भाग में जहां से आन्त्र नीचे उतरता है उस जगह पर लेपकर्म करने से टूटा हुआ पर्दा ठीक हो जाता है।

यहा एक बात का ध्यान रखनी चाहिये कि रोगी को विबन्ध नहीं होने देना चाहिये। विबंध से अपान वायु का प्रकोप होता है और वृषणवृद्धि मे अपानवायु मुख्य दोष है। इसीलिये अपानवायु की समावस्था के लिये चिकित्सा करनी चाहिये। इसके लिये इस व्याधि में एरण्ड तेल रामबाण औषधि है। एरंड तेल परम वात नाशक है और एरंड तेल से अपानवायु समावस्था मे आ जाता है। एरंड तेल से विबन्ध नष्ट हो जाता है। इसलिये एरण्ड तेल का इस व्याधि मे उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद में आरोग्यवर्धनी रस का बहुत गुणगान गाया है। आरोग्यवर्धनी स्रोतोवरोध को नष्ट करती है। त्वक् रोग मे भी उपयोगी सिद्ध हुई है और शोथ हटाती है। महालक्ष्मीविलास रस तो अनेक रोगो की दवा है। हम इसके बारे में कह सकते हैं कि यह महा लक्ष्मी विलास रस एण्टीसैप्टिक समान काम करती है। महालक्ष्मीविलास रस देने से अण्ड निर्बल नही होता। अण्ड में शुक्राणु का उत्पादन होता है। शुक्राणु उत्पादन मे यह औषधि मुख्य रूप से सहायता देती है और अंड का रक्षण करती है। क्योंकि कभी-२ वृषणशोथ होने से अंड में जो शुक्राणु उत्पादन कार्य होना है, वह कार्य नष्ट हो जाता है और शुक्राणु मर जाते हैं। आगे भविष्य मे भी वृषण शोथ के कारण कभी भी शुक्राणु का उत्पादन नहीं हो सकता है और व्यक्ति नपुंसक हो जाता है। यह कर्म रोकने के लिये महालक्ष्मी विलास रस दिया जाता है। महालक्ष्मी विलास रस से शुक्राणु की मृत्यु नही होती है और शुक्राणु को रक्षण मिलता है। उत्पादन कर्म अनवरत चालू होता रहता है।

वृद्धि रोग में कभी-२ काचनार गुग्गुल, किशोर गुग्गुल, एरंडभृष्ट हरीतकी, चोंचिन्यादि चूर्ण, रस माणिक्य, वङ्ग भस्म इत्यादि औषधियों का प्रयोग होता रहता है। श्रद्धा से धीरजपूर्वक यह सभी औषधि में से चुनकर वृद्धि रोग में दी जाये तो रुग्ण ठीक हो जाता है। शल्यकर्म से बचा सकते हैं और आयुर्वेद पद्धति को इस तरह लोक भोग्य बना सकते हैं।

उष्णवात, उपदंश, फिरंग

श्री पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक—रामानन्द दातव्य औषधालय, अहिरीटोला, कलकत्ता

संस्कृत मे उपदंश। हिन्दी मे—सोजाक, गर्मी का घाव। अंग्रेजी मे-गोनोरिया (Gonorrhoea) कहते हैं।

क्यो हुआ करते हैं ?

इसके विषय मे शल्य शास्त्रो के प्रवर्त्तक सुश्रुताचार्य उक्त रोग होने का कारण इस प्रकार बताते है—

तत्रातिमैथुनादति ब्रह्मचर्याद्वा तथाऽति ब्रह्मचारणी-षिरोत्सृष्टा रजस्वला दीर्घरोमा, कर्कशरोमा निगूढरोमा मल्पद्वारा महाद्वारामप्रिया सकामा मचौक्षत्मलिल प्रक्षालितयोनिमप्रक्षालितयोनिमादि विषय-भोग निमित्त कारणे स्वयमुपजनयन्तितमुपदंशमित्याचक्षते ।

अर्थात्- अति स्त्री प्रसग मे, जो कभी पुरुषगमन न की हो ऐसी ब्रह्मचारणी के सग संगम मे, कर्कसयोनि मे अनुगमन मे तथा तत्सम्बन्धी मलीर्णता मे रजस्वला के साथ प्रसग मे, गुप्ताङ्ग के समीप बडे एव कडे रोमवाली स्त्री के साथ सगम करने मे लिग मे उक्त रोम मे कट जाने पर, तथा अति मलीणताजन्य इतस्तत होने से लिग उक्त रोओ के द्वारा घर्षण प्रयुक्त कट जाने मे, तग योनि मे बलात्जोर मे, विशद योनिवाली मे, प्रीति रहित स्त्री मे प्रसग करने मे तथा जाघो को सकुचित करने वाली, अनिच्छा व्यक्त करने वाली स्त्री से, अपवित्र योनि वाली श्वेतस्राव-रक्तस्राव, योनिरोगयुक्त या याप्य योनि रोगो मे पीडित दूषित योनि वाली से सगम करने पर तथा पशु योनि मे गमन करने, स्वय हस्तमैथुन करने मे, लिग मे नख, दात, विष, मकडे, जोक, घोघे आदि के कट जाने, आघात होने या घिस या पिच जाने मे, मूत्र-शुक्र के वेग को रोकने मे, मैथुन के पश्चात गुप्तांग को न धोने से तथा तत्काल कोई उपदश रोगी मूत्र त्याग कर गया है और उस स्थान पर जो मूत्र त्याग करता है उसे भी उपदश रोग उत्पन्न होता है।

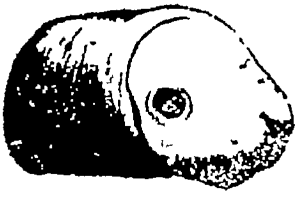
यह कितने प्रकार के होते हैं? इनकी पृथकता क्या है?

इस रोग को शास्त्रकारो ने पाच भागो मे विभक्त किया है-पित्तज, कफज, रक्तज एव सन्निपातज अर्थात तीनो दोषो को अलग अलग दूषण से और उसके द्वारा रक्त के प्रदूषण मे तथा तीनों दोषो के एक साथ कुपित होने से हम सन्निपातज कहते हैं।

आयुर्वेद भाष्यकार ने इन पाच प्रकार के उपदशों के लक्षण तो दर्शाये होगे ?

बेशक ! प्रथमत शरीरगत वात की करामात होती है। आघात चोट आदि से स्थानीय वातज प्रदूषण इस प्रकार होता है—ऊपरी त्वचा का फटना, शिश्न मे जडता (अकडापन), सूजन कठोरता और सूई चुभने जैसी वेदना होती है।

वही वात के उकसाये पित्त के प्रभाव से स्थानीय प्रदूषण से रोगी को ज्वर हो जाता है, लिग मे जलन होती, लिङ्ग में पाक होता है तथा उदम्बर के समान पीले हो जाते हैं, तीव्र जलन के समय वेदना होती है, मूत्र रुक-रुककर होता है तथा वही वात यदि कफ के साथ उस स्थान पर पहुच गया तो लिग में खुजली, कठोरतायुक्त सूजन, चिकना तथा अल्प वेदना के साथ शिथिलता का बोध होता है।



उपदश-द्वारा आक्रान्त शिश्नमुण्ड

यदि रक्त के साथ मिलकर लिग प्रदेश में पहुच कर स्थानीय प्रदूषण के साथ लिग काले छल्लो के परत की उत्पत्ति कर अतिशय रक्तस्राव, जलन, दर्द तथा पित्तजन्य उपदश के सभी लक्षण, ज्वर आदि उपद्रवो से युक्त

होते हैं। यदि तीनो दोषो के कोप एक साथ होते हैं तो शिश्न का चमडा फट जाता, रक्त-पीव का स्राव होता है, शिश्न या उसके शरीर मे विषाक्त कीटाणु उत्पन्न



अण्ड और उपाण्ड का उपदश

होते हैं। उसका समस्त शरीर विषाक्त हो जाता है और रोगी की असह्य कष्ट के साथ मृत्यु हो जाती है, इसलिये आयुर्वेद भाष्यकारो ने सन्निपातज उपदश को असाध्य या अचिकित्स्य कहा है।

उपदश या सोजाक और फिरग रोग में अन्तर क्या है? उसकी जानकारी सूक्ष्म लक्षण के द्वारा परीक्षण किया जा सकता है जो बहुत से चिकित्सक नही कर पाते हैं। क्योकि फिरग रोग के नाम से आयुर्वेद शास्त्रकार चरक, सुश्रुत, वृद्ध वाग्भट्ट आदि ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही मिलता है, किन्तु पाश्चात्य ग्रन्थो एव अर्वाचीन आयुर्वेद ग्रन्थकारो ने इस रोग की व्याख्या की है।

इसके अनुसार फिरग शब्द की निरुक्ति इस प्रकार कही गयी है कि यह रोग बहुधा फिरगियो के देश मे होता था इसलिये इसका नाम फिरग रोग पडा है।

यह रोग विदेशियो और अग्रेजो मे पाये जाते हैं जो शीत प्रधान देश मे रहते हैं और कदाचित ही स्नान करते हैं। उनकी गन्दगी से गुह्य प्रदेश सर्वथा विषाक्त बना रहता है और उनकी पत्नियो की योनि भी विषाक्त होती है, उनके साथ प्रसग प्रयुक्त, विपरीत देश काल और पात्र के विषमता प्रयुक्त रक्तानुगत प्रदूषण से यह रोग होता देखा गया है।

यह रोग तीन प्रकार का होता है— पहला वह जो केवल मूत्रनली के भीतर विस्फोटक फुन्शिया उत्पन्न होती हैं और वे जलन युक्त अल्पवेदना से पीडित होती हैं।

दूसरा—बाहर लिंग के ऊपरी भाग पर फैला हुआ फोडा अल्प पीडा युक्त शीघ्र थककर बहने वाला जो सुख साध्य माना गया है।

तीसरा—लिंग के बाहर और भीतर दोनो भागो मे उत्पन्न होते है जिसमे उपर्युक्त लक्षण ही दीख पडते हैं, जो दीर्घकाल तक रहता और बडी कठिनाई से कदाचिद् रोगमुक्त होता है।

फिरग या पुराना उपदश से पीडित रोगियो के शरीर व्यागी विषाक्त रक्त के प्रभाव से शरीर कमजोर-दुर्वल हो जाते है,समस्त शरीर पर काले धब्बे पड जाते है, नाक चिपटे हो जाते, पाचन क्रिया मन्द पड जाती और शरीर की हड्डिया सूखकर टेढी-मेढी हो जाती हैं, उसके सन्धिस्थल पर दर्द बना रहता है। इस अवस्था वाले पुराने रोगी को डाक्टर लोग सिफलिस के असाध्य रोगो मे गिनते है। आज के समय उपदश या फिरग दोनो रोगो को एक ही समझकर चिकित्सक चिकित्सा करते हैं, किन्तु दोनो रोगों के उत्पन्न होने के कारण और लक्षण मे कुछ भिन्नता अवश्य पाई जाती है।

शरीर मे फिरग रोग का विष प्रविष्ट होकर पाच-सात दिन मे पुरुषेन्द्रिय के अग्रभाग या लिङ्ग के पार्श्व भाग मे एक विशेष प्रकार का घाव उत्पन्न होता है, किन्तु उपदश मे भी इसी प्रकार पुरुषेन्द्रिय मे ही घाव होते हैं, इसलिये दोनों को एक ही मानकर चिकित्सक दोनों की समान चिकित्सा करते हैं।

उपदश वशानुगत, ठडे देशो मे रहने वाले, मैल-कुचैले स्नान और सफाई से वचित, मल-मूत्रादि के बाद तथा मैथुन के पश्चात् भी उसी कपडे को धारण किये

रहने से, पशु आदि अप्राकृतिक मैथुन से विषाक्त दानेदार घाव सूजन के साथ लिङ्ग मे उत्पन्न होता है। किन्तु फिरंग रोग स्त्री और पुरुष दोनो को होता है, इसका प्रमाण यह है कि जिस स्त्री को फिरग रोग है उसके साथ पुरुष के सहवास के पश्चात् उसे भी उक्त रोग पकड लेता है। प्रसव के समय परिचारिका के हाथ मे यदि घाव है तो उक्त प्रसवा का फिरग विषाक्त प्रदूषण परिचारिका के रक्त मे प्रविष्ट हो रोगाक्रान्त कर देता है। फिरग रोग भयकर ससर्गज है। उपदश मे लिङ्ग फूलता है या शोथ होता है किन्तु फिरग रोग मे यह कम देखा जाता है। यदि शोथ होता भी है तो रोग के बहुत बढ जाने पर फिरग रोग के रोगी को समस्त शरीर मे काले दाग-झाईं चकत्ते, खुजली, व्रण, सूजन, गांठो मे दर्द आदि कतिपय विकार देखने को मिलता है, फिरग रोग समस्त शरीर का रक्त विषाक्त कर विकृत बना देता है। नासिका बैठ जाती है, अस्थिक्षय होने लगता है। परन्तु उपदश मे ये सब उपद्रव नहीं होते यह स्थानीय केवल पुरुष लिङ्ग मे रोग आक्रान्त करता है। किन्तु ससर्गज यह भी है। परन्तु रोगी के अन्य अगो को प्रभावित नही करता है। किन्तु फिरग रोग समस्त शरीर को प्रभावित करता है. इस रोग को अग्रेजी मे सिफलिस (Syphilis) कहते हैं।

उपदंश-फिरङ्ग का चिकित्सा क्रम—

साध्य रोगी को स्नेहन (तेल घृत को औषध सिद्ध कर पिलाना) स्वेदन (औषध सिद्ध काढा मे गरम-गरम वाष्प देना), मेहन (मूत्रनली) के बीच मे शिरावेधन या सूचीवेध के द्वारा मूत्रनली को परिष्कृत करना अथवा जलौका विधान से लिङ्ग मे जोक लगाना, किन्तु उपद्रव युक्त उपदंश मे जिसमे लिङ्ग मे गम्भीर रूप से विष भर गया हो तो शिरावेध के द्वारा विषाक्त विकार को निकाल देना आवश्यक होता है। यदि लिङ्ग मे गांठ पड गया हो तो जलौका लगाकर उक्त गाठ और सूजन दोनो के दूषित रक्त का अपहरण कर देना चाहिये।

वातज उपदश मे - (१) प्रपौन्डरीक, मुलेठी, पुनर्नवा, कूठ, देवदार, चीड का गोन्द, अगरु, रास्ना इन द्रव्यो के कल्क बना गरम-गरम सुहाता लेप करें।

(२) वेतल—एरण्ड के बीज, यव-गेहूँ के सत्तू इन द्रव्यों को बारीक पीसकर तेल मे मिलाकर गरम-गरम सुहाता लेप करना हितकर है।

(३) प्रपौन्डरीक निम्ब आदि के काढा से उपदश या फिरग युक्त लिङ्ग को धोना चाहिये।

पित्तज उपदश मे—(१) गेरू, रसौत, मुलेठी, सारिवा, खस, पद्माख, चन्दन, कमल इन सभी द्रव्यो को महीन पीसकर गोघृत मे मिलाकर लेप करें।

(२) कमल, नीलकमल, मृणाल (कमल के डठल) सर्ज रस, अर्जुन छाल, अम्लवेत और मुलेठी को गोघृत मे महीन पीसकर स्निग्ध करके उपदश पर लेप करने से आराम हो जाता है।

(३) बरगद आदि के क्षीरी वृक्षो के शीतल कषाय या फाट से उपदश को धोना चाहिये।

कफज उपदश में—(१) हरिद्रा, अतीस, मुस्ता, तुलसी, देवदारु, तमालपत्र, पाठा, मछँरी इनके पत्ते को पीसकर सुहाता गरम-गरम लेप करें।

(२) आरग्वधादिगण और सारिवादिगण के काढा से उपदश युक्त लिङ्ग को धोना चाहिये।

सभी उपदशों पर सौराष्ट्र मिट्टी, गेरु, तुत्थ, पुष्पाजन (जस्ता का फूला) कसीस सैन्धवलवण, लोध, रसौत, दारु हल्दी, हरताल, मैनसिल, रेणुका, छोटी इलायची इन सभी द्रव्यों के क्वाथ से लिङ्ग का प्रच्छालन करें।

और इन सभी द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण बना मधु में मिलाकर उपदश या फिरग रोग के विषाक्त घाव पर मरहम जैसा लगाने से विषाक्त घाव के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

उपदश और फिरग रोग पर— चिकित्सा

चन्द्रोदय मे उद्धृत औषध

सिद्ध शेखर रस

शुद्ध पारा १ तोला (१२ ग्राम), अफीम १ तोला। इन दोनो को खरल मे डाल श्याम तुलसी के स्वरस को

डाल नौ घण्टे तक खरल करने के बाद टकण भस्म १ तोला (१२ ग्राम) तुलसी स्वरस से खरल कर मिलालें। तत्पश्चात् जावित्री, खुरासानी अजवायन, जायफल और अकरकरा २॥-२॥ तोला प्रत्येक का कपडछन किया हुआ चूर्ण वनाकर उसमें मिलाकर तुलसी स्वरस से खूब घोते जाय और तुलसी स्वरस देते जाय। फिर २४ तोला या २८८ ग्राम वशलोचन को कूट कपडछन चूर्ण मिलाकर तुलसी स्वरस से खूब मर्दन कर चने के वरावर गोली वना छाया मे सुखाकर रख लें। २ से ३ गोली सुवह-शाम जल के साथ दें।

(२) वरादि गुग्गुल-घटक—हर्र, वहेडा, आवला, नीम छाल, अर्जुन छाल, खैरसार, विजयसार, अडूसे के पत्ते इन सभी को महीन पीसकर कपडछन चूर्ण कर लें। चूर्ण के वरावर शुद्ध गुग्गुल मिलाकर खूब कूटें, जव चूर्ण के साथ मिल जाय तव आधा-आधा तोला (६ ग्राम) की गोली वना छाया मे सुखा रख लें। १ से २ गोली गरम दूध या जल से दिन मे २-३ वार दें।

(३) मल्ल सिंदूर, गन्धक रसायन, रस माणिक्य, पीतल भस्म प्रत्येक ३-३ ग्राम, चोपचिन्यादि चूर्ण ६० ग्राम मिलाकर रख लें। ३ ग्राम की मात्रा मे मधु से दिन में ३ से ४ वार दें। उपदश या फिरग रोग मे विरेचन देकर प्रतिदिन पेट साफ रखना चाहिये।

(४) सनाय पत्ती ५ तोला, सैंधव लवण १ तोला, घी में सेकी हुई शिवा (जोंगी हर्रे), सोंठ तथा सौंफ प्रत्येक एक-एक तोला लेकर चूर्ण कर रख लेना चाहिये।

रात मे सोते समय गरम जल से ६ ग्राम की मात्रा मे लेना चाहिये अथवा १ पाव दूध मे १ चम्मच एरन्ड तेल मिलाकर इस अनुपात मे लेना चाहिये।

उपदश या फिरग रोग पर मूत्र मे कडक या रास्ता सूजन के कारण तग हो जाते और मूत्र खुलकर नही आते हैं। अतएव तारकेश्वर रस, गोक्षुरादि गुग्गुल, चन्द्रप्रभा वटी, चन्दनादि वटी प्रत्येक १-१ गोली एक साथ वरुणादि काढा से देनी चाहिये। किम्वा चन्दनासव १ औंस समान जल के साथ दिन मे दो वार देते रहें।

फिरंग या उपदंश रोग पर—अनुभूत प्रयोग—रस तरंगिणी के षष्ट तरग के प्रसङ्ग-८४ से उद्धृत। इस रसायन का प्रयोग निम्न प्रकार है—

घटक—काश्मीरी केशर, कालीमिर्च, लाल चन्दन, जावित्री इन सभी को कपडछन चूर्ण कर पाच मासा तैयार कर लें। उसमे शुद्ध रसकपूर १ रत्ती मिलाकर इन सभी को खूब खरल कर नीबू के रस मे मर्दन करके १-१ रत्ती की गोली बनाकर सुखा शीशी मे रख लें। इस वटी को 'रस कपूर वटी' कहते हैं। इसकी मात्रा १ से २ गोली मक्खन के साथ दिन मे दो वार दें।

(१) फिरङ्ग एव उपदंश रोग पर लगाने के लिये मरहम—रसकपूर ४ रत्ती, मक्खन १ तोला (१२ ग्राम) को अच्छी तरह खरल कर एक सौ वार ठंडा जल मे धो कर शीशी मे रख लें। उक्त मलहम घाव पर लगायें। रोगगत विष का नाश होगा और घाव का जल्दी रोपड होगा।

(२) रस कपूर ४ रत्ती, एक भाग, मोम छ. भाग तिलतेल मिला हुआ सिक्थ तेल १ तोला को खरल में खूब मर्दन कर मलहम तैयार करलें। उक्त मलहम भी फिरङ्ग एव उपदश के विषाक्त घाव को दूर करता है।

फिरंगरोग पर चन्दनादि वटिका—

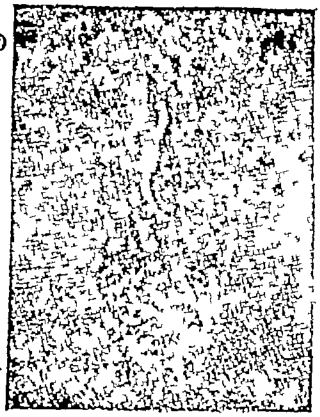
घटक—लाल चन्दन, कालीमिर्च, खाड, रसकपूर, लवग, इनको समान मात्रा मे घोट जल के साथ खूब मर्दनकर १-१ रत्ती की वटी वनाकर रखलें। इनको प्रतिदिन १ से २ वटी १ से २ तोला मक्खन के साथ प्रयोग करें। भोजन के वाद खदिरारिष्ट, सारिवाद्यरिष्ट १ औंस समान जल के साथ प्रयोग करना चाहिए।

फिरग या उपदश रोग को धोने के लिये रस कपूर द्रव (घोल) बहुत ही उपयोगी है। इससे उस रोग के घाव नष्ट हो जाते हैं-पीव युक्त उपदश या फिरग रोग के कीटाणुओं को नष्ट कर देता है।

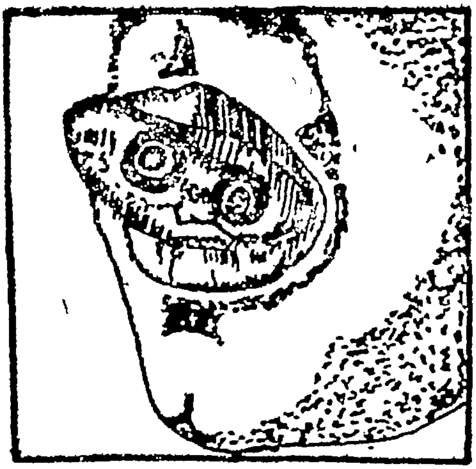
चालमोगरा तेल, विपरीत मल्लतेल का व्यवहार लिंग के घाव पर लगाना चाहिए जिससे खुजली भी नही होगी और घाव भी जल्द सूख जायेगा। यह आयुर्वेद सार संग्रह से उद्धृत है।



निम्न ओष्ठ पर उपदंशज कठिन व्रण



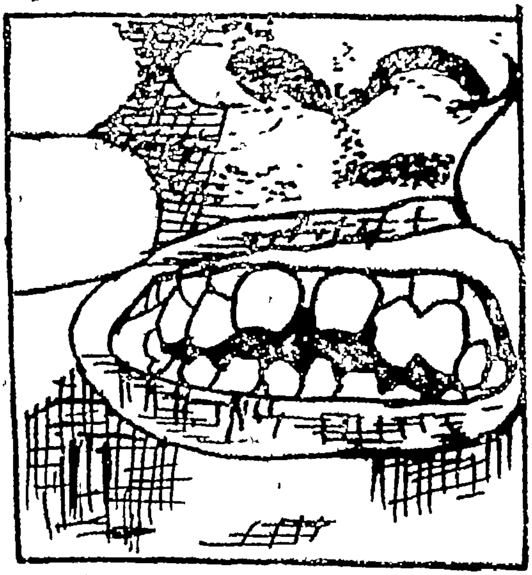
गुदद्वार तथा योनि द्वार पर उपदंशज व्रण तथा छाले



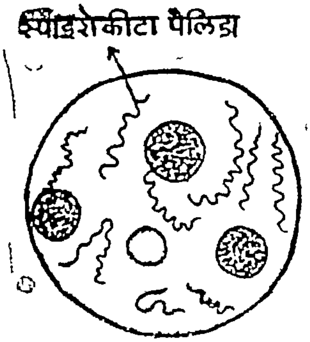
जिह्वा के किनारे पर फिरङ्गज व्रण



त्वचा पर विकीर्ण फिरङ्गज व्रण



हचिन्सन टीथ (सहज फिरंग का एक निश्चित लक्षण)



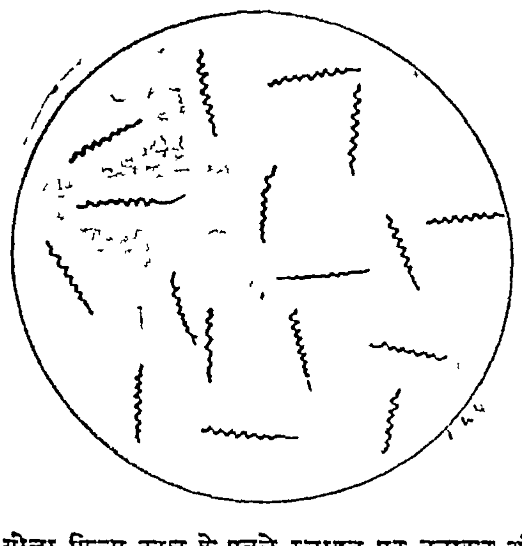
उपदंश के निर्णय हेतु परीक्षायें

डा० अनोखेलाल शर्मा 'प्याज वाले', बेगम बाग, अलीगढ़

लाक्षणिक सांकेतिक तथा रोगी परीक्षा द्वारा निर्णीत उपदंश के निदान की प्रयोगशाला मे पुष्टि, तन्तुओं या क्षत के निश्राव मे इस रोग के कारक रोगाणु ट्रिपोनेमा पैलीडा, तथा रक्तरस मे तद्‌जनित ऐन्टीबाडी या प्रतिपिण्डकों के प्रदर्शन द्वारा की जाती है।

उपदंशज निश्राव की परीक्षा—

उपदंश की प्राथमिक तथा द्वितीयावस्था में प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा रोगाणुसंक्रमण का बहुत भय रहता है, इसलिए ऐसे निश्राव को एकत्रित और परीक्षा करते समय पूरी सावधानी बरतनी चाहिए और दस्ताना पहनने चाहिए। क्षत या व्रण को पहले सामान्यजल, लवणजल से भिगोया जाता है और साफ किया जाता है। इसके बाद उसके किनारा को खुरच कर उसे क्षतमूल के पास दाबकर रक्तरस निकालते हैं, किन्तु इस रक्तरस में रक्तकण बिलकुल नही होना चाहिए, अन्यथा इसे पोंछकर फिर से स्वच्छ रक्तवारि या रस निकाला जाता है। इस रक्तरस से



अब गोला फिलम काच के पतले स्लाइड पर बनाकर और कवरस्लिप डालकर डार्क-ग्राउन्ड-माइक्रोस्कोप पर रखकर जांचते हैं। यदि दूर कहीं दूसरी प्रयोगशाला में भेजना हो तो रक्तरस को कुछ केशिक नलिकाओं में भरकर तथा ज्वाला द्वारा इसके दोनों छोर बन्दकर देते हैं। परीक्षा के पहले यदि जख्म पर कोई रोगाणुनाशक दवा डाली गयी हो तो उसे साफकर २४-४८ घन्टों तक सामान्यलवण जल में भिगोया गया गाज रखते हैं और इसके बाद फिर परीक्षा के लिए रक्तरस निकालते हैं अन्यथा रोगाणुओं के पाये जाने की सम्भावनायें कम हैं। भरते हुए जख्म में भी रोगाणुओं के पाये जाने की सम्भावना कम होती है इसलिए ऐसी हालत मे वर्धित लसीकाग्रन्थियों में सूई घुसाकर रस निकालना चाहिए। उपरोक्त विधि द्वारा परीक्षा करने पर उपदंश के रोगाणुओं (ट्रिपोनेमा पैलीडम) का प्रत्यक्ष देखा जाना इस रोग के निदान के लिए सबसे अधिक विश्वसनीय परीक्षा है। इसे सूक्ष्म सर्पिला संरचना, मन्दगति तथा कोणरूप में देखा जाना इसकी पहिचान के लिए विशेष चिह्न हैं। (देखें चित्र) उपदंश की द्वितीयावस्था मे त्वगीय उद्भेदों को खुरच कर रस निकालकर या मुख की श्लैष्मिक कला पर अवस्थित व्रण योनि या गुदद्वार पर अवस्थित कण्डाइलोमाटा या चर्मकीलो के रस की परीक्षा करने पर उपदंश रोगाणु पाये जाते हैं।

सिरोलोजिकल या रक्तरसीय प्रविधियां—

उपदंश के संक्रमण के बाद रक्त में ३ प्रकार के ऐन्टीबाडीज या प्रतिपिंडिकायें उत्पन्न होती हैं। पहली को "Reagin रियेजिन" कहते हैं, जो वासरमैन रिऐक्शन टेस्ट या डब्लू. आर, या Kahn कान फ्लकुलेशन टेस्ट या ऐसी परीक्षाओं द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है। रियेजिन को प्रदर्शित करने वाली परीक्षाओं को Standard Test For Syphlis (S T. S) or Conventional Tests कहते हैं। दूसरे प्रकार के ऐन्टीबडीज के लिए किये जाने वाली प्रक्रिया को Reiter Protein Complement Fixantion Test या (R P. C. F.) कहते हैं। तीसरे प्रकार की परीक्षा को Treponema Immobilisation (T P I) और Fluorescent Treponemal Anti-Body Tests या (F. T A.) कहते हैं।

उपदश के लिए परीक्षायें

(१) वासरमैन रिएक्शन या डब्लू आर

प्राथमिक व्रण की उत्पत्ति के दो तीन सप्ताह बाद यह परीक्षा मन्द रूप मे धनात्मक या Positive पायी जाती है, और धीरे-धीरे ६वें सप्ताह में पूर्णरूप से पाजिटिव हो जाती है। उपदंश की शका रहने पर डब्लू आर ऋणात्मक या निगेटिव पाये जाने पर इसका सदेह दूर हो जाता है, किन्तु उपदश की तृतीयावस्था तथा कुछ अप्रकट या गुप्तावस्थाओ में ऋणात्मक परिणाम से इस रोग का अपवर्जन नही होता जैसे कि टेबिस के २०-३० प्रतिशत रोगियो में इस परीक्षा का फल ऋणात्मक होता है। इस लिए उपदश की तृतीयावस्था मे रक्त रस तथा मस्तिष्क सुषुम्ना तरल दोनों की ही परीक्षा करनी चाहिए। सार्वदैहिक पक्षाघात के प्राय. सभी और डोर्सेलिस के अधिकतर तथा मेनिन्गो वैस्कुलर सिफलिस के प्राय ५० प्रतिशत रोगियो में मस्तिष्क सुषुम्ना तरल का डब्लू आर. परीक्षा धनात्मक पाया जाता है।

(2) KAHN or VDRL (TESTS काह्न तथा वी डी आर एल परीक्षायें) एव अन्य FLOCCULATION TESTS यानि ऊर्णीभवन परीक्षायें—

अपेक्षाकृत सरल होने के कारण उपदश के निदान के लिए अधिक व्यवहृत होती हैं। सम्भव होने पर इनके साथ साथ डब्लू आर परीक्षा भी करनी चाहिए। साधारणतया फ्लकुलेशन परीक्षायें डब्लू आर परीक्षा से अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मग्राही किन्तु कम विशिष्ट होती हैं। स्मरण रहे कि डब्लू आर परीक्षा उपदश के अतिरिक्त मलेरिया, शीतला, कोलाजन रोग लेप्रसी तथा कुछ अन्य रोगो मे भी धनात्मक पाया जाता है।

(3) TREPONEMAL ANTIBODY TESTS

(१) रिटर प्रोटीन कम्पलीमेंट फिक्सेशन टेस्ट (R.P C F.) यह परीक्षा उपरलिखित परीक्षाओं की अपेक्षा साधारणत अधिक सूक्ष्मग्राही और विशिष्ट हुआ करती है। इसका तकनीक भी अधिक कठिन नही, और इसका एन्टीजेन आर्गनन लैबोरेटरीज से प्राप्य है इसलिए चिकित्सकगण यह परीक्षा भी कर सकते हैं।

(4) TREPONEMA PALLIDUM IMMOBILISATION TEST (T P I.)

इस परीक्षा में जीवित उपदश रोगाणुओं (स्पाइरोकिट्स) को उपदशज रक्त रस या सीरम के साथ इन्क्युबेशन करने पर स्थिर या अचल किए गए या बन गए हुए रोगाणुओं के प्रतिशत मान पर निर्भर करता है। इस प्रतिशत मान को ज्ञात धनात्मक नियत्रक सीरम के साथ किए प्रतिशत मान के साथ तुलना करते हैं। यह परीक्षा उपदश के लिए किए जाने वाली सभी परीक्षाओ में अधिकतम विशिष्ट मानी जाती है किन्तु सूक्ष्म ग्राहिता S T S के समान नही होती और प्राथमिक एव प्रारम्भ मान द्वितीयावस्था तथा जन्मजात उपदश के रोगियों में कभी कभी ऋणात्मक परिणाम देता है। इसकी उपयोगिता गुप्त तथा उपदश की तृतीयावस्था में S T S परीक्षाओ का फल सदिग्ध होने पर सन्देह दूर करने में है।

(5) FLUORESCENT TREPONEMAL ANTIBODY (FTA) TEST

उपर लिखित परीक्षा की अपेक्षा यह परीक्षा सरल है। इसमें रक्तरस का स्लाइड पर स्मीयर या फिलम बनाकर मानवीय गामाग्लोब्युली के साथ सयुग्मित फ्लुरेसीन ऐन्टीसीरम Fluorescein labelled antiserum to human gamma globulin द्वारा रञ्जित कर फ्लुरेसैन्ट माइक्रोस्कोप द्वारा परीक्षा की जाती है। यह परीक्षा बहुत सूक्ष्मग्राही तथा विशिष्ट होती है।

सर्वाधिक प्रचलित परीक्षण

दैनिक साधारण निदानकीय परीक्षण के लिए एक से अधिक सिरोलोजिकल परीक्षाओं का प्रयोग करना चाहिये। Reagin antibody के लिये दो तरह की परीक्षा करनी चाहिए—(१) अतिसूक्ष्मग्राही जैसे VDRL or Kahn test और दूसरा (२) साधारणसूक्ष्मग्राही जैसे W R। उपरोक्त परीक्षाफलों में भिन्नता रहने पर अन्तिम रूप में T P I परीक्षा करनी चाहिए।

अब हम सक्षेप में दो सर्वाधिक प्रचलित परीक्षाओ के तकनीक की रूपरेखा का वर्णन करेंगे—

(१) वासरमैन रिएक्शन या डब्लू आर. परीक्षा

सावधानियों के साथ इसे एकत्र कर ५६ डिग्री सैन्टग्रेट ताप पर ३० मिनट तक गर्म करके इसे 'निष्क्रिय' बना दिया जाता है। यानि Complement Activity नष्ट कर दिया जाता है। सीरम बिल्कुल स्वच्छ एवं रोगाणु-रहित होना चाहिए। परीक्षा में देर रहने पर इसे प्रशीतक यन्त्र (रैफ्रिजिरेटर) में रखा जा सकता है।

(2) TITRATION OF COMPLEMENT– यथा आवश्यक परिवर्त्तनों के साथ निम्नलिखित रूप में किया जाताहै। Incubation का समय निम्नलिखित प्रकार से नोट किया जाता है—

कमरा के साधारण तापमान पर— ३० मिनट

३० अंश से. ताप वाले वाटर बाथ पर— ३० मिनट

इसके बाद इसमें लाल रक्तकण मिलाये जाते हैं, और तत्पश्चात ३७ अंश से ताप पर ३० मिनट तक वाटर बाथ पर गर्म करने के बाद रीडिङ्ग लेते देखा है।

गर्म किये गये निगेटिव सीरम तथा ऐन्टीजन की विद्यमानता में कम्प्लीमेन्ट का M.H.D. निम्नलिखित प्रकार से जाचा जाता है—

कतार संख्या	परखनली संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	
१	कम्प्लीमेंट ०.२+ सी. सी.	१/२०	१/२५	१/३०	१/३५	१/४०	१/४५	१/५०	१/५५	१/६०	१/७०	M. H. D. के लिये
	०.८५ प्रतिशत लवण जल सी. सी. मे	०.४	०.४	०.४	०.४	०.४	०.४	०.४	०.४	०.४	०.४	
२	कम्प्लीमेंट ०.२ सी.सी +	१/२०	१/२५	१/३०	१/३५	१/४०	१/४५	१/५०	१/५५	१/६०	१/७०	ऐन्टीजन की ऐन्टी कम्प्लीमेंटरी क्रिया के लिये
	अवमन्दित ऐन्टीजन +	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	
	गर्म किया हुआ डब्लू. आर. निगेटिव सीरम	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	
३	कम्प्लीमेंट ०.२ सी.सी +	१/२०	१/२५	१/३०	१/३५	१/४०	१/४५	१/५०	१/५५	१/६०	१/७०	निगेटिव परीक्षा की M H D. के लिये
	०.८५ प्रतिशत लवण-जल + सी.सी गर्म किया हुआ डब्लू-आर. निगेटिव सी सी. सीरम (१:५)	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	
४	कम्प्लीमेंट ०.२ सी.सी. +	१/२०	१/२५	१/३०	१/३५	१/४०	१/४५	१/५०	१/५५	१/६०	१/७०	सीरम के निगेटिव कन्ट्रोल के लिये
ऐन्टीजन रहित	०.८५ प्रतिशत लवण-जल + गर्म किया हुआ डब्लू आर निगेटिव सीरम (१ ५)	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	
		०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	
५	कम्प्लीमेंट ०.२ सी.सी. +	१/२०	१/२५	१/३०	१/३५	१/४०	१/४५	१/५०	१/५५	१/६०	१/७०	सीरम के पौजीटिव कन्ट्रोल के लिये
	०.८५ प्रतिशत लवणजल +	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	
	गर्म किया हुआ डब्लूआर. पौजिटिव सीरम (१ ५)	०.२	०.२	०.२	०.२	०.१	०.२	०.२	०.२	०.२	०.२	

इस तरह विभिन्न कतारों में किसी एक अवमन्दन का क्रम विन्यास निम्नलिखित रूप में होता है—

कतार	कम्प्लीमेंट का अवमन्दन (२.२सी सी.	अवमन्दित ऐन्टीजन	गर्म किया हुआ और १.५ के अनुपात में अवमन्दित सीरम	लवण जल
१	०.२	—	—	०.४
२	०.२	०.२	—	०.२
३	•२	•.२	०.२ (सामान्य)	—
४	•२	—	०.२ (सामान्य)	•२
५	०.२	—	०.२ (पोजिटिव या धनात्मक)	०.२

परखनलियो को बेञ्च पर ३० मिनट तक छोड दिया जाता है। फिर ३७ डिग्री तापमान पर ३० मिनट तक वाटर-बाथ पर इन्क्युबेट किया जाता है और उनके बाद प्रत्येक परखनली में ०.२ सी. सी. सेन्सीटाइज्ड रेड ब्लड सेल्स डाले जाते हैं और फिर ३७ डिग्री तापमान पर ३० मिनट तक इन्क्युबेट किया जाता है, जिसके बाद परीक्षाफल देखा जाता है। दो प्रकार के परिमाण में कम्प्लीमेंट की आवश्यकता होती है। एक सीरम कन्ट्रोल के लिए और दूसरा नैदानिक परीक्षा के लिए।

(३) ऐण्टीजेन—उचित ऐण्टीजेन का यथोचित (१.१५) अवमन्दन लवणजल में तैयार करें।

Sensitised Red Cell Suspension

३ प्रतिशत सेन्सिटाइज्ड रेड सेल सस्पेन्शन (H.I.B. का ५.१० M. H D) तैयार किया जाता है। लाल रक्तकण ताजा और मान निर्धारित होना चाहिए।

(४) मुख्य परीक्षा (गुणात्मक)

सीरम के प्रत्येक प्रादर्श के लिए ४ परखनलियों की आवश्यकता होती है। परीक्षापात्र सीरम के साथ-साथ ज्ञात पोजिटिव तथा निगेटिव सीरम भी इस परीक्षण में सम्मलित किए जाते हैं।

परखनली संख्या	रोगी का सीरम या रक्तरस १/५ सी.सी.	कम्प्लीमेन्ट (२०.२ सी.सी.	अवमन्दित (१.१५) ऐन्टीजनन	उचित उद्भवन या इन्क्युबेशन के बाद	सेन्सिटाइज्ड लालरक्तकण सी. सी. में
१	•२	३ M. H D.	०.२		०.२
२	०.२	५ M H. D.	०.२		•.२
३	०.२	८ M. H. D.	•.२		० २
४ (कन्ट्रोलर या नियन्त्रक)	•.२	३ M. H. D.	•.२सी.सी. केवल लवणजल		०.२

कमरा के साधारण तापमान पर ३० मिनट और फिर बाद मे वाटर-बाथ पर ३७ डिग्री तापमान ३० मिनट तक इन्क्युबेट करना चाहिए। इसके बाद सेन्सिटाइज्ड.लाल रक्तकण डाला जाता है। इसके बाद अच्छी तरह हिला डुलाकर फिर ३७ डिग्री तापमान पर ३० मिनट तक वाटर-बाथ पर रखा जाता है। इसके बाद जाचफल देखा जाता है।

(५) परीक्षाफल की जांच—ऐन्टीजनरहित परखनली ४ में पूर्ण रक्तलयन या Hemolysis दिखाना चाहिए। ज्ञात पोजिटिव तथा निगेटिव सीरमों में भी यथागुण फल मिलना चाहिए। परीक्षाफल निम्न प्रकार का हो सकता है और निम्नलिखित रूप में लिखा जाता है—

	निम्नलिखित द्रव्ययुत परखनली			W R. का फल
	3 M H D	5M H.D	8 M H D.	
१	+	—	—	+——
२	+	+	—	++—
३	+	+	+	+++
४	—	—	—	———

+ = कोई रक्तलयन नहीं, — = पूर्ण रक्तलयन आंशिक हीमोलाइसिस ५० प्रतिशत से कम रहने पर

पौजिटिव या धनात्मक और ५० प्रतिशत से अधिक रहने पर निगेटिव या ऋणात्मक माना जाता है ।

(२) ऊर्णी भवन (Flocculation) परीक्षायें

इन परीक्षाओं के लिए केवल २ चीजों की आवश्यकता होती है–ऐन्टीजन तथा रोगी का रक्तरस या सीरम। फ्लोकुलेशन टेस्ट के ऐन्टीजन में अत्यधिक या dispersed अवस्था में मेदस या स्नैहिक कण रहते हैं। लवणजल डालने पर ये कण आपस में मिलकर बड़ा कण बनाते और ऊन (Wool) के समान हो जाते हैं। उपदंशज सीरम द्वारा और अधिक बड़े-२ कण बनते है। यह अवक्षेप मुख्यतः लीप्वायड या भेद होता है। इसकी सूक्ष्म ग्राहिता बढ़ाने के लिए कोलेस्टेरोल या कुछ विशेष रजक द्रव्य डालते हैं जिससे ऊनवत् अवक्षेपों को देखने में सुविधा होती है। कुछ फ्लकुलेशन परीक्षाओं में ताजा बिना गर्म किया हुआ सीरम व्यवहृत होता है, जबकि कुछ अन्य परीक्षाओं में गरम किया हुआ सीरम, जिससे परीक्षण समय बहुत कम लगता है।

काह्न परीक्षा (Kahn test)

(१) ऐन्टीजन का निर्माण एव माननीकरण यथा अवमन्दम एव टाइट्रेशन आदि—यह एक जटिल क्रिया है जिसे गोहृत मासानसार से अनेक जटिल प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है। प्रत्येक चिकित्सक के लिए इसे करना सम्भव नहीं इसलिए इन्हे किसी विश्वसनीय ओषधिशाला या लेबोरेटरी से करा लेना चाहिए।

(२) सीरम या रक्तरस—लाल रक्तकण रहित इसे बिल्कुल स्वच्छ तथा जीवाणुरहित होना चाहिए। सीरम को ५६ डिग्री तापमान पर ३० मिनट तक गर्म किया जाता है जिससे Flocculation या ऊर्णीगठन का अवरोधक द्रव्य नष्ट हो जाता है। यदि २४ घन्टों के बाद परीक्षा करनी हो तो इसे फिर १०-१५ मिनट तक गर्मकर लेना चाहिए।

(३) मूल काह्न परीक्षा (Kahn test)—

(१) सबसे पहले ऐन्टीजेन-लवणजल-मिश्रण तैयार कर १०-३० मिनट तक वैसे ही रख दिया जाता है।

(२) प्रत्येक सीरम के लिए ३ वाशरमैन परखनली लेकर उनमे ०.०५, ०.०२५ और ०.०१२५ सी.सी. ऐन्टीजेन लवणजल, मिश्रण डाला जाता है।

(३) इन प्रत्येक परख नलियों में १ सी. सी पीपेट द्वारा परीक्षण वाले सीरम का ०.१५ सी सी. और ४ थी नली मे ०.१५ सी. सी. लवण जल डाला जाता है, जिससे सीरम-ऐन्टीजन अनुपात पहली नली में ३ .१, दूसरी नली में ६ · १, तीसरी नली मे १२: १, हो जाता है। इसके बाद शेकिङ्ग या हिलाने वाले रैक पर उन्हे रखकर ३ मिनट तक खूब हिलाया जाता है।

(४) ऐन्टीजन टाइट्रेशन के समान और लवणजल इनमे डाला जाता है। पहली नली में १ सी. सी और दूसरी तथा तसरी नली में ०.५ सी. सी डालते हैं।

इसके बाद परीक्षाफल देखा जाता है। इसके लिए परीक्षानली को तिरछा रख कर काले पट के सामने रख कर तेज प्रकाश मे परीक्षा की जाती है। फल निम्न लिखित रूप में आंका जाता है—

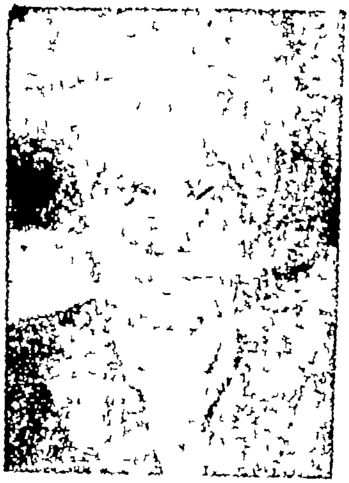
०—तरल सामान्य रूप से गन्दा रहता या दिखता है।

१—सम्पूर्ण तरल मे सूक्ष्म ऊन के समान कण (Floccules) दिखाई देते हैं।

४—बड़े-२ थक्कों में फ्लोक्युल्स परखनली में नीचे अवक्षिप्त होकर बैठ जाते हैं।

२ और ३ Flocculation क्रिया में मध्यवर्ती चरण हैं। परीक्षा फल निम्नलिखित रूप में सारिणीबद्ध किया जा सकता है।

परखनली	१	२	३	परिणाम	नैदानिक
१ सीरम–क	०	०	०	०	(१) निगेटिव
२ सीरम–ख	+ ४	+ ३	+ ३	+१०/३ + ३	(२) स्ट्रोङ्ग पौजिटिव
३ सीरम–ग	+ ३	+ २	+ ३	+ ७/३ + २	(३) पौजिटव
४ सीरम–घ	+ २	+ १½	+ १	+ ४/३ + १	(४) अल्प धनात्मक या पौजिटिव
५ सीरम–च	— १	०	०	+ १/३ — १	(५) संदिग्धरूपेण ऋणात्मक या डाउटफुल पौजिटिव



पूयमेह

वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य, स्थान—मिसरी,
जि० भिवानी (हरियाणा)

वैद्य श्री मोहर सिंह जी आर्य हरियाणा प्रदेश के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य हैं। आप 'धन्वन्तरि' के पुराने स्थायी आधार स्तम्भ लेखक एवं सहयोगी तथा मार्गदर्शक हैं। 'धन्वन्तरि' मे आपके लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं जो 'धन्वन्तरि के प्रति आपकी सहृदयता दर्शाते हैं। लेखक महोदय ने यहा 'पूयमेह' लेख भेजकर उपकृत किया है। यह विषय सूची में नहीं था फिर भी लेख की दृष्टि से और पाठक वर्ग की जानकारी हेतु प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया है। भविष्य में भी आप सहयोग अवश्य देंगे-अपेक्षा है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

कारण—

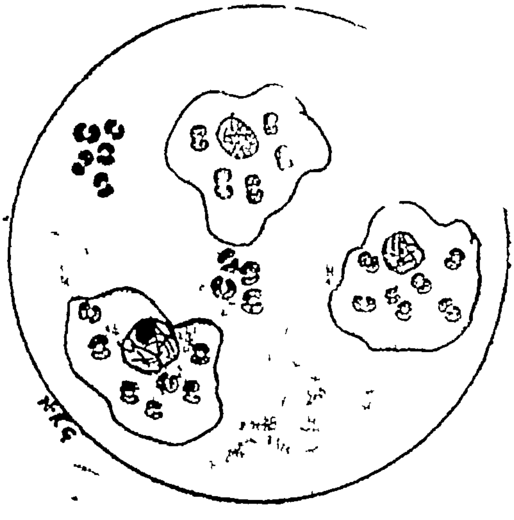
१. गोनोकोकस (Gonococcus) नामक जीवाणु

२. जिस स्त्री की योनि अनेक रोगों के कारण क्लिन्न-क्लेद युक्त एवं कण्डू युक्त हो या जो रजस्वला हो एवं अनेक मनुष्यों द्वारा जो सम्भोग कराती हो ऐसी स्त्रियों के साथ कामान्ध होकर मनुष्य यदि सम्भोग करता है तो वह भयंकर पूयमेह को प्राप्त होता है।

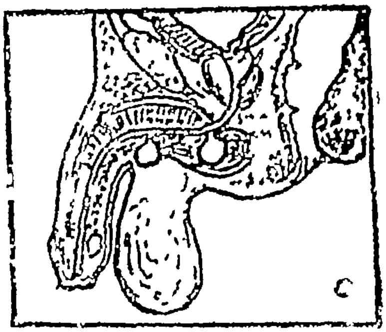
लक्षण—

पूयमेह में लिंग का उत्थान बार बार होता है, मूत्र नली का छिद्र लाल तथा शोथयुक्त हो जाता है। लिङ्ग के अग्र भाग में कण्डू होती है। मूत्र त्याग के समय तीव्र जलन होती है। टीस मारती है। शोथ के कारण लिंग का आकार बढ जाता है। मूत्र त्याग करने की इच्छा बार-बार होती है। मूत्र मार्ग से स्वय अथवा शिश्न मणि को दबाने से नीलाभ एवं दुग्ध मिश्रित जल के तुल्य स्राव निकलता है। मूत्र त्याग के समय तीव्र कष्ट होता है।

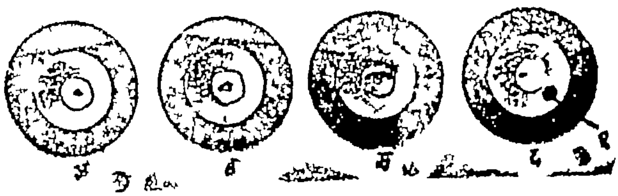
रोगारम्भ से ३ दिन से ८ दिन तक मृदु स्थिति रह कर तत्पश्चात तीव्र लक्षण प्रारम्भ होजाते हैं। शिश्नेन्द्रिय प्रदाहित होकर लाल हो जाती है; आकार मे कुछ बढ जाती है। मूत्र थोडा-थोडा बार बार तथा अत्यन्त जलन एव वेदना के साथ आता है। शिश्नेन्द्रिय स्पर्शासह्य हो जाती है कि तनिक सा वस्त्र भी छू जाये तो रुग्ण को



सुजाक (पूयमेह) के जीवाणु



मूत्रप्रसेक नलिका के समीपस्थ प्राय होने वाली विद्रधियां जिनके मूत्रप्रसेक नलिका मे फूटने तथा उनके व्रणपूरित होने के बाद नलिका मे निकोच उत्पन्न हो जाते हैं।



मूत्रप्रसेक नलिका दर्शक यन्त्र द्वारा देखी गई मूत्रमार्गनिकोचन की विभिन्न स्थितिया अ—बारीक निकोचन ब—सामान्य प्रकार का सकोच स—ऊपर की ओर का लटकवे वाला सकोच द—निकोचन के साथ एक ओर कृत्रिम नलिका बन गई है जो न० १ से प्रदर्शित है।

अत्यन्त कष्ट होता है। मूत्र मार्ग से पीला या हरिताभ पूय प्रचुर मात्रा मे निकलना आरम्भ हो जाता है। कभी कभी पूय के साथ रक्त भी निकलता है। जघाओं की ग्रन्थियां सूज जाती हैं। रुग्ण को अति कष्ट होता है। बहुधा रोगियो को इस दशा में ज्वर भी हो जाता है।

रोग का उग्र रूप होने पर यदा कदा जननेन्द्रिय सूज कर इतनी असह्य हो जाती है कि उस पर थोडा सा कपड़ा छू जाए तो असह्य पीड़ा होती है। मूत्र नली का प्रदाह [illegible] कि मूत्रमार्ग बिलकुल [illegible] रक्त आने लगता है। उपर्युक्त अवस्था २-३ सप्ताह रह कर पीछे शनैः शनैः लक्षणों में न्यूनता आने लगती है। चिकित्सा के अभाव मे रोग जीर्ण हो जाता है।

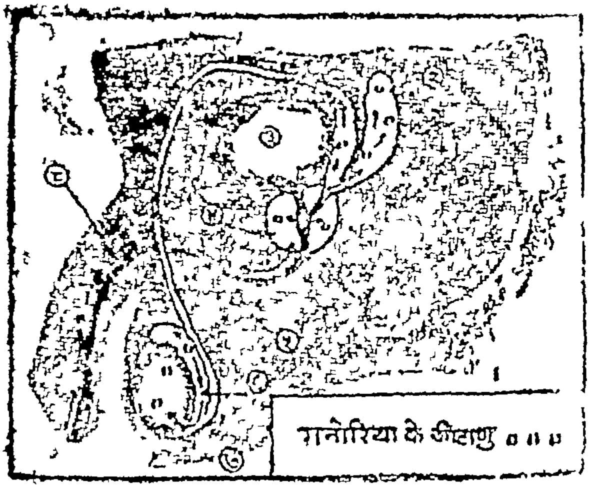
रोग की तरुण अवस्था में मूत्रनली के ऊपर का उपत्वग् भाग नष्ट हो जाता है। वहा छोटे-छोटे व्रण बन जाते हैं। उन व्रणों मे छोटे छोटे दाने उत्पन्न हो जाते हैं। मूत्र नलिका का मार्ग अत्यन्त सकीर्ण हो जाता है। मूत्र विसर्जन रुक-रुक कर बूद बूद आता है। मूत्र त्याग में रोगी को इतना कष्ट होता है कि वह मूत्र त्याग करने में भय खाता है। इस दारुण अवस्था में रोगाणु रक्त में प्रविष्ट हो जायें तो प्राय. सम्पूर्ण शरीर मे रोग का प्रभाव फैल जाता है यथा—सधियो मे विष पहुचने पर सन्धि शोथ तथा पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। हृदय में भी प्रदाह हो जाता है। पूयमेह गठिया का मुख्य कारण है। रोग की उपेक्षा अथवा उपयुक्त चिकित्सा का अभाव होने पर रोग पुराना पड जाता है। सौत्रिक तन्तु उत्पन्न होकर मूत्रनलिका को शनै शनै सकीर्ण बना देते हैं। अन्ततोगत्वा मूत्रमार्ग पूर्ण रूप से बन्द हो जाता है। सलाई से भी मूत्र निकालना कठिन हो जाता है। मूत्राशय में मूत्र अधिक समय रहने से शरीर मे मूत्र विष फैल जाता है।

पुरुषों मे पूयमेह जन्य उपद्रवो के लक्षण—

रोग की उपेक्षा अथवा चिकित्सा के अभाववश औपसर्गिक मेह विस्तृत होकर मूत्र प्रणाली के उपाङ्गों को आक्रान्त कर सकता है। यथा—

१ शिश्नमणि प्रदाह—पूयमेहाणुओ का आक्रमण शिश्नमणि पर ही होता है। मूत्र प्रणाली का छिद्र शिश्नमणि के मध्य मे ही होता है। पूयमेह के जो लक्षण उत्पन्न होते हैं, उन में शिश्नमणि प्रदाह सर्व प्रथम प्रकट होता है, साथ ही शिश्नमणि में लाली पैदा हो जाती है। बस यही से पूयमेह आरम्भ होता है।

२. अष्ठीला ग्रन्थि प्रदाह (Prostatitis)—पूयमेह सक्रमण का विस्तार ऊपर की ओर होने से मूत्रस्रोत के पश्चिमी भाग में अष्ठीला ग्रन्थि प्रदाह उत्पन्न



पुरुष के मूत्र संस्थान एवं प्रजनन संस्थान के वह स्थल जहाँ पर कि पूयमेह का संक्रमण प्रसार कर सकता है।

१—उदर गुहा	५—शुक्र नलिका
२—शुक्राशय	६—उपाण्ड
३—मूत्राशय	७—अण्डकोष
४—पौरुष ग्रन्थि	८—मूत्र प्रसेक नलिका
९—मूत्र वहिद्वार	

हो जाता है। इस अवस्था मे मूत्र विसर्जन में कष्ट; मूलाधार पीठ प्रदेश मे पीडा, मलत्याग के समय में वृद्धि, कफ के साथ ज्वर, कमर के नीचे पीड़ा तथा मूत्रनिरोध भी सम्भव है। दौर्बल्य, क्षुधाल्पता तथा अधिक तापक्रम का अनुभव होता है

परीक्षण—गुदद्वारीय परीक्षण करने पर स्पर्श असह्यता एवं स्थानीय तापक्रम मे वृद्धि, ग्रन्थि के तल भाग में असमानता, यदा कदा विद्रधि मिलना।

३–अधिवृषणिका प्रदाह (Epididymitis)—पूयमेह के सक्रमण का विस्तार मूत्रस्रोत के पश्चिम भाग एव अष्ठीला ग्रन्थि से होता हुआ वीर्यवाहिनी की ओर गमन कर जाए, तो अधिवृषणिका शोथ उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था मे वृषण ग्रन्थि में शोथ तथा पीडा लाली और कठोरता मिलती है। स्पर्श असह्यता तथा ज्वर भी होता है। साधारणतया एक पार्श्वीय वृषणिक प्रदाह ही होता है। रेतोवाहिनी प्रदाह होवे पर स्पर्श से एक कठोर नली सी अनुभव होती है।

४–मूत्र-विषमयता (जहरबाद-Uraemia-मूत्र रक्तता)—इस अवस्था में पूयमेह के कीटाणु रक्त में प्रविष्ट होकर रक्त को विषैला बना देते हैं। इस दशा मे रोगी के हृदयावरण मे शोथ होकर उसमें व्रण हो जाते हैं। यह घातक उपद्रव है।

५–परिमूत्र नलिका प्रदाह (Puriurethritis)—इस अवस्था में मूत्रस्रोत द्वार मे शोथ हो जाता है। परिमूत्र नलिका मे व्रण बन जाते हैं। उदर के अधोभाग में दबाने में पीड़ा प्रतीत होती है। मूत्र स्रोत से पूय निकलता है।

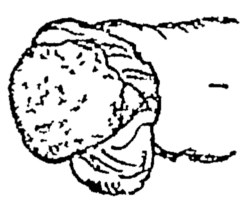
६–सन्धिशोथ—पूयमेय के कीटाणु रक्त में प्रविष्ट होकर प्राय सम्पूर्ण देह मे रोग का प्रभाव फैला देते हैं। फलत. सन्धियों में रोग का विष पहुचने पर सन्धिप्रदाह तथा पीडा उत्पन्न करता है। सन्धिया विशेषतया बड़ी सन्धिया सुज जाती हैं। पूयमेह गठिया का प्रधान कारण है।

७–मूत्राशय प्रदाह—इस अवस्था में मूत्र विसर्जन बार बार होता है। मूत्र त्याग में पीड़ा होती है। मूत्र बिसर्जन रक्तयुक्त होता है। यदा-कदा पीड़ासह शिश्नोत्थान का अनुभव होता है।

जीर्ण पूयमेह—

पूयमेह की जीर्णावस्था में रोगी की दशा नवीन रोगी से भिन्न होती है। इस अवस्था में रोगी जब प्रात. सो कर उठता है तो जननेन्द्रिय को दबाने से पीप आता है। यदा-कदा मूत्र विसर्जन के समय मूत्र मार्ग से श्वेत वर्ण की लेसदार चिकनी पीप निकलती है। मूत्र त्याग के समय जलन तथा पीडा कम होती है। वस्त्र पर चेप (पीप) के धब्बे पड जाते हैं। मूत्र द्वार के किनारे चेप से चिपक जाते हैं। लिंग में कुछ सख्ती आकर टेढ़ा सा पड जाता है। मूत्र में सूक्ष्म बाल जैसे सूत्र निकलते हैं। लिंगोत्थान होवे पर अत्यन्त पीडा होती है।

जब यह रोग अधिक समय तक रहता है तो मूत्र प्रणाली के क्षतो में मांसतन्तु बढ़ जाता है जिसको कुरण्ड (Gleet) कहते हैं। इस मांस वृद्धि में मूत्रनलिका संकुचित-तंग हो जाती है। मूत्रमार्ग के संकोच से मूत्र कष्ट



मूत्रद्वार का शोथ एवं
संकोच

के साथ बूंद-बूंद निकलता है। कभी कभी अवरुद्ध हो जाता है।

आयुर्वेद वाङमय में पूयमेह नामक किसी व्याधि का वर्णन उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वान उष्णवात को ही पूयमेह (Gonorrhoea) मानते हैं। उष्णवात में मूत्राशय जननेन्द्रिय में दाह, मूत्र का वर्ण लाल, कभी कभी रक्त भी स्रवित होना, यन्त्रणा के साथ बार बार मूत्र त्याग आदि लक्षणों से साम्य रखते हैं, ऐसा उन वैद्यों का विचार है। परन्तु इन लक्षणों से ही पूयमेह को उष्णवात नहीं कह सकते। उष्ण वात का वर्णन सुश्रुत ने निम्न प्रकार किया है—

व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्यानिलान्वितम्।
वस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहत्स्रावयेदध ॥
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा।
कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं ब्रुवन्ति तम् ॥

अर्थात् व्यायाम, पैदल मार्ग गमन एवं आतप या सूर्य की गर्मी लगने से, वायु द्वारा आवृत्त पित्त वस्ति में पहुंचकर वस्ति (मेहन गुद को जलाता हुआ) मूत्र को नीचे की ओर प्रवृत्त करता है। इसमें मूत्र का वर्ण हल्दी के समान या रक्त मिश्रित या केवल रक्त ही आता है। कठिनाई से प्रवृत्त होता है। इसको उष्ण वात कहते हैं। वाग्भटोक्त उष्णवात का वर्णन—

पित्तं व्यायामतीक्ष्णभोजनाध्वोष्णपादिभिः।
प्रवृद्धं वायुनाक्षिप्तं वस्त्युपस्यातिदाहवत् ॥
मूत्रं प्रवर्तयेत् पित्तं सरक्तं रक्तमेव वा।
उष्णं पुनः पुनः कृच्छ्रादुष्णवातं वदन्ति तत् ॥

व्यायाम, तीक्ष्ण एवं उष्ण आहार, मार्ग गमन तथा आतप धूपादि के सेवन से बढ़ा हुआ पित्त वायु द्वारा रक्त के साथ शरीर में व्याप्त होकर मूत्रवह स्रोतों में जाकर वैसे मूत्र को प्रवृत्त करता है जिससे मूत्र वस्ति एवं मूत्रमार्ग में वेदना तथा बार बार कष्ट के साथ मूत्र उतरता है।

उष्णवात का वर्णन दोनों संहिताओं में मूत्राघात के अन्तर्गत किया है। उष्णवात मूत्राघात के अन्तर्गत दशवां भेद है। मूत्राघात १२ प्रकार का है। इनमें से वातकुण्डलिका के लक्षण भी पूयमेह के लक्षणों से समानता रखते हैं। यदुक्तं—

'मूत्रमल्पमथवा सरुजं संवर्तते'

अर्थात् मूत्र त्याग थोड़ी थोड़ी मात्रा में पीड़ा के साथ होता है। इसी प्रकार कुछ लक्षण मूत्रोत्सर्ग से भी मिलते हैं—

वस्तौवाऽप्यथवा नालेमणौ वासस्यदेहिनः।
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥
स्रवेच्छ नैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नो रुजम्।

अर्थात् जिस व्यक्ति की वस्ति, मूत्रमार्ग या मणि में आता हुआ मूत्र रुक जाता है, कांखने पर रक्त सहित थोड़ा-थोड़ा पीड़ा युक्त अथवा पीड़ा रहित धीरे-धीरे निकलता है।

माधवाचार्य ने आठ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र लिखे हैं। उनमें अनेकलक्षण पूयमेह के लक्षणों से मिलते हैं। यथा—

'तीव्रार्तिरुग्वंक्षण वस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात्।'

अर्थात वातिक मूत्रकृच्छ्र में वंक्षण गवीनी, मूत्राशय, मूत्रमार्ग से मूत्र निकलते समय अत्यन्त पीड़ा होती है। मूत्र थोड़ा तथा बार बार निकलता है।

और भी—'पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात्।"

अर्थात् पीला रक्तसहित पीड़ा एवं दाह से युक्त कष्ट पूर्वक बार बार मूत्र पित्त से निकलता है। (त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण पूयमेह के लक्षणों से साम्य रखते हैं।)

इस प्रकार मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात के कुछ भेदों के लक्षण पूयमेह के लक्षणों से साम्य रखते हैं। परन्तु पूयमेह के लक्षणों में कुछ विशेषताएं हैं—

पूयमेह रोगाक्रान्त होने पर पूयमेहाणु (Gonococcus) मिलना आवश्यक है। यह कीटाणु सर्वप्रथम मूत्रमार्ग के अग्रिम भाग पर आक्रमण करते हैं। पीछे मूत्रमार्ग के पिछले भाग पर अपना प्रभाव जमा लेते हैं और वहा से पौरुष ग्रन्थि तथा मूत्राशय को रोगाक्रान्त करते हैं। रोग के कीटाणु रक्त मे प्रविष्ट होने पर पुरे शरीर को ही प्रभावित करते हैं। पूयमेह जीर्ण होने पर पूय स्रवित होती रहती है। परन्तु उष्णवात् आदि उक्त रोगों में पूय आदि के स्रवित होते रहने का उल्लेख नही है।

— सापेक्ष निदान —

उष्णवात	औपसर्गिक मेह
१-उष्णवात के हेतु-व्यायाम आतप अध्व, तीक्ष्णोष्ण भोजन तथा वेगों को रोकना।	पूयमेह का हेतु मुख्यतः गोनोकोकस नामक कीटाणु एव रजस्वला गमन।
२-आक्रमण स्थान–वस्ति, मेढ्, गुदा।	आक्रमण स्थान जननेन्द्रिय एवं सम्पूर्ण देह है।
३-मूत्र वर्ण–हारिद्र एव लाल सरक्त।	मूत्र वर्ण–प्राकृत् पूय युक्त।
४-मूत्र त्याग में दाह,पीड़ा, बार बार विसर्जन।	मूत्राशय मे प्रदाह पीडा कष्ट।
५-जननेन्द्रिय में शोथ नही होता।	मूत्रमार्ग मे शोथ होता है।
६-शिश्न सकोच या बढता नही।	दोनो लक्षण मिलते हैं।
७-मूत्रावरोध नही होता।	मूत्रावरोध हो जाता है।

उष्णवात के वर्णन मे किसी भी ग्रन्थकार ने पूयस्राव का उल्लेख नही किया, जबकि मूत्रमार्ग से पूयस्राव पूयमेह का प्रत्यात्म लक्षण है। उष्णवात के वर्णन मे जननेन्द्रिय में शोथ का उल्लेख उपलब्ध नहीं है, जबकि पूयमेह मे मूत्रमार्ग में शोथ होता है। उष्णवात मे रोगी बार बार मूत्रत्याग करता है, और मूत्र विकृत हो जाता है। उष्णवात में मूत्र के स्थान पर केवल रक्त का ही स्राव होता है। किन्तु पूयमेह में मात्र रक्त का स्राव नहीं होता, अपितु पूय (पीप) रक्ताभ अथवा पीताभ होता है। उष्णवात के लक्षणों मे शिश्न के संकोच या बढने का कहीं उल्लेख नही मिलता परन्तु पूयमेह में मूत्रमार्ग के व्रण शोथ के कारण शिश्न का आकार बढ जाता है। व्रण रोपण होने के पश्चात एव शोथ दूर होने पर शिश्न सकोच हो जाता है, जिससे यदा कदा मूत्रमार्ग पूर्णतया बन्द हो जाता है। सौत्रिक तन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। उष्णवात के लक्षणों मे मूत्रावरोध का कही उल्लेख नहीं परन्तु पूयमेह में शिश्न सकोच होने से मूत्रत्याग मे अवरोध पाया जाता है।

उष्णवात के लक्षण कब प्रारम्भ होते हैं, ऐसा कहीं स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। पूयमेह के लक्षण मैथुन के २ या ५ दिन के पश्चात प्रकट हो जाते हैं। उष्णवात औपसर्गिक व्याधि होने का कहीं उल्लेख नही परन्तु पूयमेह औपसर्गिक रोग है। पूयमेह से आक्रान्त व्यक्ति के ससर्ग से पूयमेहाणु मूत्रनली मे प्रविष्ट होकर शोथ उत्पन्न कर देते हैं। उष्णवात के उपद्रवों में ऐसा सकेत नहीं मिलता कि यदि गर्भवती स्त्री पूयमेह से आक्रान्त हो, तो प्रसव के समय शिशु की आंखों में पूय लगने से अभिष्यन्द उत्पन्न हो जाता है। परन्तु उष्णवात मे ऐसा नही होता। उष्णवात में शिश्न के मुण्ड भाग में तीव्र कण्डू उत्पन्न नही होती किन्तु पूयमेह में ऐसा होता है।

उष्णवात मूत्राघात रोग का एक भेद है। मूत्राघात का अर्थ मूत्र का अवरोध हो जाना है अर्थात् मूत्र के वस्ति में उपस्थित रहने पर भी उसका त्याग या प्रवृत्त न होना। इस रोग का प्रत्यात्म लक्षण मूत्रावरोध मूत्र की रुकावट है। परन्तु पूयमेह में मूत्रावरोध उस समय पाया जाता है जब मूत्र प्रसेक में तीव्र शोथ उत्पन्न हो जाये अथवा सौत्रिक तन्तु उत्पन्न होकर मूत्रनली को बन्द कर दें।

उष्णवात मे तत्काल शान्ति के लिये सचित मूत्र का निष्कासन मूत्रशलाका यन्त्र से किया जा सकता है। परन्तु पूयमेह में मूत्रशलाका यन्त्र से असह्य वेदना

होवे से कार्य सिद्ध होना कठिन हो जाता है।

उष्णवात निदान परिवर्जन से दूर हो जाता है। परन्तु पूयमेह एक बार होने पर कठिनता से दूर होता है।

उष्णवात मे औषधि युक्त पिचकारी देने की आवश्यकता नही अपितु मूत्रल औषधियों से ही शान्ति मिल जाती है। अतएव उष्णवात मे शिश्नेन्द्रिय के भीतर व्रण नही होते परन्तु पूयमेह मे औषध युक्त पिचकारी दिये बिना रोग ठीक होवे में संशय है क्योंकि पूयमेह में जननेन्द्रिय के भीतर व्रण होते हैं।

मूत्रल योगों को छोड़कर उष्णवात तथा पूयमेह की औषधिया भिन्न भिन्न होती हैं। जैसे पूयमेह मे रसकपूर उत्तम काम करता है। परन्तु उष्णवात में वह सफल नही है। पूयमेह मे रसकपूर युक्त पिचकारी दी जाती है परन्तु उष्णवात में पिचकारी का विधान नहीं है।

पूयमेह चिकित्सा सिद्धान्त—

चिकित्साक्रम—

१ सर्वप्रथम रुग्ण को मलावरोधनाशक औषधि देकर उदर शोधन करें। एतदर्थ—

गुलाब के फूल ८४ ग्राम लेकर दो लिटर जल में रात को भिगो दें। प्रातःकाल क्वाथ करें। जब चतुर्थांश जल शेष रहे तो उतार कर मसल कर छान लें। फिर इस क्वाथ जल में मिश्री ८४ ग्राम मिलाकर पर्याप्त घृत आदि डालकर पुलाव बनावें। यह रुग्ण को खिला दें।

इससे बिना कष्ट सुख विरेचन हो जायेगा। इस विरेचन के २-३ दिन पश्चात तक खिचडी दें।

२ जननेन्द्रिय विरेचन योग—कासनी १२ ग्राम, काहू १२ ग्राम, खुरफा, खयार मज्जा, खरबूजा की बीज मज्जा प्रत्येक ६-६ ग्राम, ककडी बीज मज्जा, कलमीशोरा ४ ग्राम, गोखरू १२ ग्राम लेकर कूट पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण बनाकर इसकी ६ मात्रायें बना लें। गोदुग्ध की लस्सी के साथ एक मात्रा प्रातः एक मात्रा मध्यान्ह और एक मात्रा सायंकाल दें। इस प्रकार २ दिन दें। इससे इन्द्री विरेचन होकर पीड़ा, जलन, टीस दूर हो जावेंगी। मूत्रमार्ग की शोथ शमन हो जाती है।

३. कलमीशोरा, रेवन्दचीनी ७-७ ग्राम, यवक्षार ६ ग्राम, श्वेत जीरा ३ ग्राम लें। सबको कूट पीस वस्त्रपूत चूर्ण बना २३ ग्राम उत्तम खांड मिला लें। इसमें से १० ग्राम प्रात साय बकरी के दूध की लस्सी के साथ दें। इसको २-३ दिन देवें, व्रण स्वच्छ होता है।

४. शीतलचीनी, रेवन्दचीनी २०-२० ग्राम, कलमी शोरा १५ ग्राम, कच्ची फिटकरी, छोटी इलायची १०-१० ग्राम लेकर कूट पीस कपड़छन चूर्ण बना ४ ग्राम की मात्रा में दूध की लस्सी के साथ दिन मे ३ बार दें। दाह जलन तथा रुक-रुक कर मूत्र आना नष्ट होते हैं।

५ शीतलचीनी, चोबचीनी, रेवन्द चीनी, कलमी शोरा, सूक्ष्मेला बीज, जीरा सफेद, गोखरू, खयार बीज गिरी ६-६ ग्राम ले कूट पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण बना लें।

६. फिटकरी १०० ग्राम कलमीशोरा ५० ग्राम लें। फिटकरी को सूक्ष्म पीस ले। इसमे से आधी मिट्टी के पात्र में रखें और इसके ऊपर शोरा पीसकर डाले। पीछे शेष फिटकरी चूर्ण को शोरा के ऊपर डालें। तत्पश्चात मृत्तिका पात्र पर शराव रख कपड़मिट्टी कर १० किलो उपलों में फूंक दें, ठंडी होवे पर हांडी मे पाषाणवत्त जमी हुई श्वेत औषध निकाल लें। सूक्ष्म पीसकर सुरक्षित रखें। मात्रा—१ से २ ग्राम तक। अनुपान—दूध की लस्सी के साथ दें। यह योग मूत्रल है। मूत्र प्रणाली के व्रण का रोपण करता है। मूत्राश्मरी को निकालता है। नवीन पूयमेह के लिए अत्युत्तम औषधि है।

७. कलमी शोरा, शीतलचीनी, श्वेत जीरा, सूक्ष्मेला १०-१० ग्राम लें, सूक्ष्म पीस १० ग्राम की मात्रा में दूध की लस्सी से दें।

पिचकारी योग—

१—मुर्दासंख, फिटकरी श्वेत, रसौत, कत्था श्वेत, सुरमा काला १२०-१२०ग्रा., नीलाथोथा १५ग्रा., रसकपूर १५ ग्राम और जल सवा लीटर लें। सब द्रव्यों को कूट पीस सूक्ष्म श्लक्ष्ण वस्त्रपूत कर लें। फिर इनको जल में घोल दें। प्रयोग करते समय जल को खूब हिलाकर इसमें से ४ मि. लि कांच के पात्र, में डालें। इसमें ८ नग

पिचकारी जल डालकर मिलालें। इसमें से ३ पिचकारी प्रातः, ३ मध्याह्न और ३ ही सायकाल करें। नवीन तथा जीर्ण पूयमेह नाशन मे श्रेष्ठ है।

२–शुद्ध रसौत, कत्था श्वेत १२-१२ ग्राम, शुद्ध अहिफेन, कर्पूर, फिटकरी फूला १-१ ग्राम, मयूरतुत्थ ४ मि ग्राम, रसकपूर १ मि.ग्राम लें। सब द्रव्यों को सूक्ष्म श्लक्ष्ण वस्त्रपूत चूर्ण बना २ लिटर जल में साय काल डालकर रख दें। प्रातः निथरा हुआ पानी लेकर २ पिचकारी करें। इसी प्रकार सायं ३ पिचकारी जल रखें। इससे नवीन तथा जीर्ण पूयमेह में लाभ होता है।

३–गिले अरमनी, सफेदा काशगरी १२-१२ ग्राम, अहिफेन ९ ग्राम; मयूरतुत्य भर्जित ३ ग्राम लें। सब द्रव्यो को सूक्ष्म पीसकर वस्त्रपूत करलें। फिर गधी के दूध १ लिटर में मिलाकर इसमे से दिन मे दो बार ३-३ पिचकारी करें। यह जीर्ण पूयमेह कुरहा (Gleet) के लिये उत्तम है।

४–शुद्ध रसौत १२ ग्राम, अफीम ६ ग्राम, बबूल की ताजी फली ६० ग्राम सबको १ लिटर जल में २४ घन्टे भिगोकर नितार लें। यथाविधि पिचकारी दें। नवीन तथा जीर्ण पूयमेह में लाभप्रद है।

५–शुद्ध रसौत, श्वेत कत्था १२-१२ ग्राम, अफीम कपूर १-१ ग्राम लें, १ लिटर जल में घोल कर रात भर पड़ा रहने दें। प्रात निथरा जल लेकर ३ पिचकारी करें। यह नवीन पूयमेह के लिए लाभप्रद है।

६–हरीतकी दल, बहेड़ा दल, आवला दल २४-२४ ग्राम लेकर १ लिटर जल में उबालें। जब आधा जल शेष रहे तो उतार छानकर दो बोतलों में डालें। इनमें से १ बोतल में भुना तूतिया १ ग्राम पीसकर डाल दें और दूसरी बोतल में १ ग्राम काला सुरमा पीस कर मिला दें। पहले दिन तूतिया वाली बोतल को हिलाकर दिन में ३ बार पिचकारी दें। दूसरे दिन सुरमा वाली बोतल से ३ पिचकारी दें। इस प्रकार बदलते हुए पिचकारी दें।

पिचकारी लगाने की विधि—रोगी मूत्र त्याग कर उकड़ू बैठे। एक पिचकारी में ३० मि. लि द्रव भर कर उसका मुंह शिश्न में प्रविष्ट कर धीरे-धीरे पिस्टन दबा कर औषधि को शिश्न मे प्रवेश करा दें। ५ मिनट मूत्र नलिका को दबाकर रखें फिर छोड़ दें। पानी निकल जाने दें। ऐसी पिचकारी एक समय में ३ बार दें और दिन मे ३ बार करें।

यह पिचकारी आप निर्मल आयुर्वेद सस्थान से मगा सकते हैं। पुरुषों एव स्त्री के लिये प्रथक-प्रथक आती हैं।

अन्तः प्रयोज्य भेषज—

(१) रस कपूर सत्व—रस कपूर १२ ग्राम, कपूर २४ ग्राम लेकर दोनों को खरल करलें। फिर इसको मिट्टी की कोरी हाडी में डालें और एक साफ ढक्कन रख सम्पुट कर सुखालें। फिर चूल्हे पर चढ़ाकर अगूठे समान मोटी बेरी की दो लकड़ियां जलावो। ४५ मिनट में सत्व उठकर ढक्कन पर लग जायेगा। शीतल होने पर सावधानी से सत्व प्राप्त करें। मात्रा—२ से ४ चावल तक। कवच में भर कर दें। यह जीर्ण पूयमेह तथा तज्जन्य उपद्रव कुरहा के लिए विश्वसनीय औषधि है।

सूचना—यदा-कदा अग्नि की कमी के कारण रस उडता नहीं, ज्यों का त्यों ही निचले पात्र में पडा रहता है। कपूर उडकर ऊपर वाले ढक्कन पर लग जाता है। ऐसी स्थिति में पुन रस कपूर सत्व को मिला खरलकर पूर्व विधि से सत्व पातन करें।

(२) बिरोजा सत्व, श्वेत कत्था, श्वेत फिटकरी फुला, सूक्ष्मेला बीज, श्वेत चन्दन, रेवन्द चीनी, गिले अरमनी, संगजराहत, प्रवाल भस्म, गेरू, हजरल यहूद भस्म १०-१० ग्राम लेकर सूक्ष्म पीस रखलें। मात्रा—३ ग्राम दूध की लस्सी या शरबत बजूरी के साथ दें। दिन में ३-४ बार दें। इससे नया या पुराना पूयमेह समूल नष्ट हो जाता है।

(३) रीठे का छिलका ६० ग्राम, कत्था पपरिया ३० ग्राम, कलमी शोरा १५ ग्राम, शुद्ध तुत्थ ६ ग्राम लें। सबको कूट पीस जल के संयोग से ५०० मि ग्राम प्रमाण औषधि कवच में भर लें। १-१ कवच प्रातः सायं काल

जल के साथ दें। चाहे कितना ही पुराना पूयमेह, सुजाक, आतशक हो इस औषधि से २१ दिन में सदैव के लिये नष्ट हो जाता है।

(४) बिरोजा तैल, चन्दन तैल, कबाबचीनी तैल समभाग लें। तीनो को मिलाकर ४ बूद बताशे मे डाल या कवच मे भर दिन में ५ बार दें। ऊपर से दुध पिलावें। भयङ्कर पूय तथा वेदनाहर है।

(५) बिरोजा सत्व, सूक्ष्मेला बीज, शीतलचीनी ६०-६० ग्राम, चन्दन तैल ३० मि लि लें। तीनों द्रव्यों को सूक्ष्म पीस तैल मिला सुरक्षित रख लें। मात्रा—३-३ ग्राम प्रात साय दूध की लस्सी से दें। पूयमेह नाशक है।

(६) गन्धक तथा कलमी शोरा समान भाग लेकर पीसकर एक लोहे की कढाही मे डालें, दुसरी कढ़ाही उस पर ढक कर दोनो को कपड मिट्टी कर फिर चूल्हे पर रख कर नीचे मन्द-मन्द आच जलावें। जब शोरा तथा गन्धक जलकर श्वेत हो जावें तो उतार कर इसमे दोनों से आधा भाग फिटकरी का फूला मिला खरल करलें। मात्रा—१।। ग्राम। अनुपान—शर्बत बजूरी। यह नये तथा पुराने पूयमेह की अनुभूत दवा है।

(७) शर्बत बजूरी—सौफ, कासनी बीज, खरबूजा बीज, खीरा बीज, गोखरू, कासनी मूल, सौंफ १५०-१५० ग्राम चीनी १।। किलो से यथाविधि शर्बत बनावें। मात्रा—१५ मि लि। यह मूत्रल है। पूयमेह नाशक है।

(८) अक्सीर सुजाक—गन्धक आमलासार १२ ग्रा., कलमीशोरा ६० ग्रा, हरताल भस्म १२ ग्रा, बिना बुझा चूना (कलई) तथा शुक्ति ९६-९६ ग्रा., श्वेत सोमल १८ ग्रा और श्वेत फिटकरी २४ ग्राम लेकर सबको सूक्ष्म पीस, घृतकुमारी स्वरस मे २४ घटे खरल कर टिकिया बना सुखा एक सकोरे मे रख ऊपर ढक्कन रख कपड मिट्टी कर सुखा कर ५ किलो जगली उपलों की आच दें। शीतल होने पर निकाल सुरक्षित रखलें। मात्रा—६० से १२० मि ग्रा. तक मलाई में लपेट कर दें। यह औपसर्गिक मेह की चोटी की औषधि है। व्रण शोधक है। पुय निस्सारक है।

—✱✱—

✱ इच्छित सन्तान-पुत्र प्राप्ति ✱ — पृष्ठ ३१४ का शेषाश —

निर्माण भी वास्तविक अनेक कारणो के सयोग से होता है। इसलिए उपयुक्त आहार-विहार और औषध आदि सब उपायो के अङ्गीकार करने से पुत्र उत्पन्न होने की सम्भावन बढती है।

ऋतुकाल के प्रारम्भिक नौ दिन में समागम करो, समागम के पूर्व आठ दस रोज या इससे अधिक ब्रह्मचर्य धारण करो, और स्त्री के लिए अल्पाहार से लघन कराओ। समागम के पूर्व तथा समागम के समय पुत्र की इच्छा मन मे धारण करो, तथा शुक्र का उत्सर्ग गर्भद्वार के पास न कर योनि द्वार के पास करो। यदि योनि में कुछ अम्लता हो तो मैथुन के पूर्व योनि मार्ग में पचपल्कल क्वाथ की बस्ति देना। और गर्भाधान के एकाद मास पूर्व आगे बताये गये पथ्य आहार का प्रयोग करो। यह सब करने से पुत्र उत्पन्न होने की सम्भावना बढती है।

इच्छित सन्तान स्वरूपवान बनाने का उपाय—

स्त्री पुरुप मे से एक भी श्याम या कृष्ण वर्ण का हो तो बालक भी ऐसा ही आता है। तब बालक स्वरूपवान और गौर वर्ण का आये उसके लिए निम्नोक्त प्रयोग करना आवश्यक है—

★ गर्भाधान के प्रथम मास से यष्टिमधु का चूर्ण ३५० मिली ग्राम प्रात और साय गोदुग्ध के साथ लेना।

★ बबूल पत्र का चूर्ण एक ग्राम प्रात और साय देने से बालक गौर वर्ण का आता है।

★ गोदुग्ध, जल और श्वेत तिल के तैल में बनाया गया भोजन सगर्भा को देना। ✤

पश्चिम की खौफनाक बीमारी—एड्स

कवि० वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य, बसन्तपुरी, पो० मीरदैती, भागलपुर (बिहार)

हमारे आयुर्वेद शास्त्र में जो वर्णित भाव का चरक सुश्रुत ने जो वर्णन किया है वह दर्शनीय है। 'एड्स' से मिलता जुलता ही रोग 'सोशा' एक रोग का जिक्र किया गया है। इस बीमारी को उस समय लोग बीमारी का बादशाह कहा करते थे। संहिताओं मे वर्णित यह बीमारी यौन रोग से सम्बन्धित है। जिसका नाम 'सोशा' पड़ा। वेद एवं शास्त्र (आयुर्वेद शास्त्र) में जो कथा है वह इस प्रकार है। सर्व प्रथम यह रोग चान्द्रमस को हुआ जिसकी २८ पत्निया थी। चान्द्रमस को जब 'सोशा' जैसे यौन रोग ने पकड़ा तो ब्रह्मा ने एक यक्ष को भेजकर चान्द्रमस की जाच परख (निदान) करा उसकी चिकित्सा करवाई तब चान्द्रमस पूर्ण स्वस्थ हुए। ठीक इसी प्रकार एड्स भी यौन रोग है। यहा यह ध्वनार्थ होता है कि अति राग से रोग होता है। क्योकि (कथा प्रसंग) अतिशय प्रसग करने से चान्द्रमस को यह रोग ग्रसित किया था। इसका मतलब स्पष्ट हो जाता है कि अतिशय प्रसंग करने से वीर्य का नाश हो जाता है वीर्य को मणि कहा गया है यदि मणि (ओज) ही क्षय हो गया तो उसका नाश अवश्यम्भावी है। शक्ति सामर्थ्य जाता रहेगा। शक्ति सामर्थ्य के नाश से वातादि दोष प्रकुपित शरीरस्थ दोषो में विषमता सोशा यानी एडस जैसे रोग की उत्पत्ति होगी ही। जबकि आधुनिक चिकित्सक (एलोपैथिक) इस बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं होंगे। वे दलील पेश करेंगे यह वायरस जनित रोग है, जीवाणु जनित रोग है। क्योंकि इनकी भित्ति वायरस एवं जीवाणु जनित पर खड़ी है। एलोपैथी के एक विद्वान जानकार का कथन है कि सतत खोजों के बाद एड्स के रोगी के अन्दर पाया गया कि उसके अन्दर एक प्रकार का विषाणु (Virus) पाया गया जो रक्त की श्वेत कणिकाओं ल्युकोसाइट्स (Leucocytes) पर आक्रमण कर उन्हें खाकर नष्ट कर दिया। श्वेत रक्त कणिकाओं में एक लिम्फोसाइट्स (Lympohocyts) भी होता है जो वास्तव में शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता के लिए विशेषत जिम्मेदार होता है। जब श्वेत रक्त कणिकाओं के लिम्फोसाइट्स ही नष्ट कर दिये जाते हैं तो शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता ही नष्ट हो जाती है। भला रोगी जीवित रहे तो कैसे ?

रोग से बचने के उपाय में इन विद्वानों ने जो मार्गदर्शन किया है वह ग्रहणीय एव सोचनीय है।

(१) कामुकता से ओत प्रोत स्वच्छन्द यौन जीवन राहों में नहीं भटकें।

(२) समलैंगियों के यौन सम्बन्ध पर रोक लगे।

(३) संक्रमित व्यक्ति का रक्त दूसरे को न देना (पूर्ण जांच के बाद रक्त लेना।)

(४) सक्रमित व्यक्ति का चुम्बन, आलिंगन या वस्त्र का प्रयोग नही करें।

(५) विषाणु युक्त नीडल्स एव सीरिंज का प्रयोग न करें तथा ग्रसित व्यक्ति की लार में भी विषाणु विद्यमान हो सकते हैं।

(६) कृत्रिम गर्भाधान की सिफारिस

(७) अन्त मे टीका हेतु वेक्सीन बनाया जाय

इस उपर्युक्त चिकित्सा में कहीं भी रोग की चिकित्सा नहीं कही गयी है।

भारत मे नीचे लिखी जगहों मे नेशनल रेफरेन्स सेंटर स्थापित किए गए हैं जो जाच कर बतला देंगे, कि एड्स रोग हुआ, दवा कहां हो, इसकी व्यवस्था आप करें।

शहर—	अस्पताल के नाम—
१–दिल्ली	ऑल इण्डिया इन्स्टीट्युट ऑफ मेडिकल साइन्सेज एव नेशनल इन्स्टीट्युट
२–चन्डीगढ़	पी० जी० आई०
३–श्रीनगर	शेरे काश्मीर इन्स्टीट्युट ऑफ मेडिकल

४–पटना राजेन्द्र मेमोरियल रिसर्च इन्स्टीट्युट ऑफ मेडिसन
५–कलकत्ता नेशनल इन्स्टीट्युट कॉलराएन्ड एटरिक
६–भुवनेश्वर रिजनल मेडिकल रिसर्च सेंटर
७–पुणे नेशनल इन्स्टीट्युट ऑफ बाइरोनोजी
८–मद्रास मद्रास मेडिकल कॉलेज
६–वेगलोर क्रिश्चयन मेडिकल कॉलेज

इसके अतिरिक्त अन्य बडे-बडे शहरों में भी सेंटर की स्थापना की जा रही हे। वैज्ञानिक अथक परिश्रम में लगे हुए हैं लेकिन औषधि निर्माण मे असफल हो रहे हैं। इसका मुख्य कारण विषाणुओं के निर्माण करने मे असफल हैं। विषाणु विभाजन के जीन्स को प्रति स्थापित करने में विफल हो रहे है क्योंकि विषाणु में जीन्स परिवर्तन बहुत तेज होता है। थोड़े ही जीन्स निर्माण कर पाते हैं कि पुनः उससे अधिक जीन्स तैयार हो जाते है इससे वैज्ञानिक असफल हो रहे हैं। प्रयास जारी है सफलता मिल नहीं रही है।

आयुर्वेद मे इस रोग की अनेकानेक दवाइया भरी पडी हैं लेकिन प्रयास कीजिए ढूढ़िए तब मिलेगा अन्यथा यह जान लेवा बीमारी जान लेती रहेगी। सर्व प्रथम हम अस्वस्थता को आने नहीं दें पौष्टिक भोजन करना चाहिए। रसायन एवं बाजीकर दवा का सेवन भी बहुत जरूरी है। इन दवाओ के सेवन से रस से रक्त, रक्त से मेद, मेद से मज्जा से वीर्य जैसे तत्त्व का निर्माण होगा जो हमारे शरीर का मुकुट मणि है, सरताज है। फिर श्वेत कीटाणु अपने आप स्वस्थ हो जायेंगे।

दिल्ली के एसिएन्ट साइंस ऑफ लाइफ के सम्पादक श्री राव गोयल ने अपने लेख में बतलाया है कि उल्लिखित विभिन्न रसायनों तथा शरीर के विभिन्न अवयवों को पुनरुज्जीवित करने वाली कायाकल्प संबंधी औषधियों का प्रयोग किया जाये तो एड्स का इलाज सम्भव है। इनके अनुसार अप्राकृतिक तथा प्राकृतिक यौन संबंध, अत्यधिक मदिरापान अत्यधिक शोक, क्रोध, असंतोष आदि के कारण शरीर मे ओज की कमी होने लगती है। शरीर में ओज की कमी होने की वजह से शरीर की प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास होने लगता है। ओज की कमी के कारण रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। ओज की कमी होने से अशुद्धिया एव अनावश्यक पदार्थ एकत्रित होने लगते हैं जो रोग मे भयकरता उत्पन्न कर देता है। मेरे कहने का मूल भाव यही है कि मनुष्य को पौष्टिक आहार का सेवन रस रसायन आदि का भरपूर सेवन समझदारी से करना चाहिए जिससे ओज की कमी नहीं होने पावे फिर रोग काहे को। भोग से रोग होगा ही यह ध्रुव सत्य है।

रसायन मे—च्यवनप्राश, आमलकी रसायन, मकरध्वज, हरीतकी रसायन।

रस में–वृहद वात चिन्तामणि रस, बसन्त कुसुमाकर रस, स्वर्ण बसन्त मालती रस का सेवन वांछनीय है।

जो लक्षण एड्स मे बताए गये हैं वही लक्षण सुश्रुत ने सोशा रोग मे भी विराजमान हैं।

एड्स के लक्षण निम्नांकित हैं—

एड्स मे वारम्वार बुखार होना, गले मे, बगल की ग्रन्थियो में सूजन होना, मुंह या खाने की नली में घाव होना, रोगी को अधिक दस्त होना, रोगी का वजन कम होना, रोगी को बुरे सपने दिखलाई पडते हैं।

जो लक्षण एड्स में पाये जाते हैं ठीक वही लक्षण सोशा नामक रोग मे भी पाये जाते हैं फिर एड्स को सोशा कहना क्या अनुचित है ? सोशा में भी वजन का कम होना पाया गया है—

गले में सूजन का होना, कुछ बुरे सपनों का देखा जाना, रोगी को ज्वर होना आदि पाये जाते हैं।

अब मैं आयुर्वेद विद्वानों से कहना चाहूंगा कि वे ग्रन्थ ढूढे एव एड्स रोग की चिकित्सा बतावें। यह कार्य आयुर्वेद ही कर सकता है। इस रोग को हौवा नही बनावें।

—✻✤✻—

इच्छित सन्तान-पुत्र प्राप्ति

वैद्य दिलीप के० दल, एम० डी० (आयुर्वेद) कन्सल्टन्ट फिजीशियन
कन्सल्टींग रूम एण्ड गेस्ट्रो एन्ट्रोलोजी सेन्टर, दीवानपरा रोड,राजकोट (गुजरात)

—✱★०★✱—

राजकोट (गुजरात) के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य श्री कनक भाई दल के सुपुत्र वैद्य श्री दिलीप भाई दल एम० डी० आयुर्वेद ने आजकल अपनी विद्वता राजकोट मे सिद्ध कर दिखाई है। आप शुद्ध आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा व्यवसाय करते हैं। निदान मे आधुनिक साधन जैसे—एक्सरे एवं लेबोरट्री अपने निदान केन्द्र मे स्थापित उपयोग करते हैं और सिद्धान्त आयुर्वेद का पालते हैं। यह आपकी विशेषता है। आप फिटेक्स सेक्स डिटेक्टर से गर्भ की जाति परीक्षा भी करते हैं। यहा श्री दल ने अपने लेख में पुत्र प्राप्ति के बारे में मार्गदर्शन दिया है जो चिकित्सकों को और पाठक वर्ग को मार्गदर्शन रूप है।

मैं श्री दल को धन्यवाद देता हूं। और आप "धन्वन्तरि" पत्रिका द्वारा अपना मार्गदर्शन देते रहेंगे-ऐसी अपेक्षा करता हूं।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

इच्छित संतान-पुत्र प्राप्ति के लिए आहार-विहार और औषध का यथा योग्य प्रमाण में उपयोग करना चाहिए।

आहार—पथ्य-अंजीर, काजू, शुष्क बदर, फल स्वरस चाय, बड़े, बव, चावल, सोयाबीन, कच्चा लसुन (ताजी पत्ती वाला) शर्करा, मधु वनस्पति घी, नारियल, आचार, आम, केला, खजूर, सन्तरा, चेरी, कोबी, भींडी, खीची मलाई (ताजी मलाई), मटर, टमाटर, नमक ज्यादा लेना।

अपथ्य—बादाम, अखरोट, चोकलेट, कोको, दुग्ध, दुग्ध विकृति (दुग्ध की मिठाई), मिल्क ब्रेड, दुग्ध के साथ चावल (खीर), आइस्क्रीम; अण्डे की बनावट, ग्रीन सलाद (कच्चे खाये जाने वाले शाक भाजी), शुष्क लसुन, नमक का प्रमाण कम करना।

पुत्र इच्छुक दम्पत्ति को समागम के पूर्व स्त्री को अल्प भोजन लघु भोजन या उपवास करना, पुरुष को पौष्टिक आहार, दुग्ध, घी, मिठाई खिलाना-बाद में समागम करने से पुत्र होता है। इसका कारण देखा जाय तो अल्प या लघु भोजन से स्त्री बीज निर्बल बनता है और पौष्टिक आहार से पुंबीज बलवान होता है। निर्बल स्त्री बीज और बलवान पुंबीज द्वारा उत्पन्न सन्तान पुत्र होता है।

विशेष प्रकार के आहार कैसे पुत्रोत्पादक होता है। उसके बारे में देखा जाय तो लोबीन नामक विद्वान ने इसके बारे में बताया है कि विशेष प्रकार के आहार का सेवन करने से स्त्री के अपत्य मार्ग में रसायनिक परिवर्तन हो जाता है। जिससे वह पुरुष बाहुल्य (y) रज्जु सूत्र या स्त्री बाहुल्य (x) रज्जु सूत्र की वृद्धि या क्षय के लिए अनुकूल बना देता है।

विहार—आयुर्वेद मे समागम के लिए नियत काल भी बताया गया है। आर्तव स्राव बद होने के बाद ८ से १२ दिन गर्भाधान के लिए योग्य समय है। उनमें समदिन [(आर्तव शुरू हुआ उस दिन से जानना) (४-६-८-१०-१२ और १४)] पुत्र के लिए और विषम दिन (५-७-९-११ और १५) कन्या के लिए योग्य है। तेरवा दिन अयोग्य है।

प्रथम नौ दिन मे समागम करने पर गर्भाधान हो तो पुत्र होता है, या तेईसवें दिन के बाद गर्भाधान हो तो

पुत्र होता है। लेकिन तेईसवें दिन के बाद गर्भाधान होना मुश्किल है। एक से नौ दिन में स्त्री बीज अपरिपक्कव होता है, और तेईसवें दिन के बाद स्त्री बीज हो तो अति परिपक्व होने के कारण निर्बल होता है। निर्बल स्त्री बीज द्वारा उत्पन्न सन्तान पुत्र होता है।

समागम काल में पुरुष का शुक्र प्रथम उत्सर्गित हो और समागम की उत्तेजना के पश्चात स्त्री बीज उत्सर्गित हो तो वह स्त्री बीज अपरिपक्व अर्थात अल्प बल वाले होने के कारण पुत्र होता है। यदि समागम काल में स्त्री बीज पहले उत्सर्गित हुआ है और पश्चात शुक्र उत्सर्गित हो तो स्त्री बीज परिपक्व अर्थात प्रबल होने के कारण कन्या उत्पन्न होती है। इसी प्रकार बारह दिन के बाद समागम किया हो या पुरुष ने वीर्य स्तम्भक औषधों का प्रयोग किया हो तब होता है। जिसे कन्या होती है।

समागम काल में वीर्य का स्राव गर्भाशय मुख के पास न करके योनि मुख के पास करने से पुत्र सन्तान होती है। कारण देखा जाय तो वीर्य में दो प्रकार के शुक्राणु होते हैं। एक पुरुष बाहुल्य (y) जो लबा अन्तर लाघ सकते हैं। दूसरा स्त्री बाहुल्य (x) जो निर्बल होने के कारण लबा अन्तर नही लाघ सकते। योनि मुख के पास वीर्य को स्राव किया जाय तो शुक्राणु को स्त्री बीज को मिलने के लिए डिम्बनली तक जाना पड़ता है। यह लंबा अन्तर नापते समय स्त्री बाहुल्य शुक्राणु रास्ते में ही मर जाते हैं या मन्द गति के कारण ज्यादा समय लगता है। जबकि पुरुष बाहुल्य शुक्राणु बलवान और तेज गति वाले होने के कारण त्वरित स्त्री बीज के साथ मिल जाता है। पुरुष बाहुल्य शुक्राणु के द्वारा उत्पन्न गर्भ पुत्र ही होता है।

ब्रह्मचर्य का पालन करने से पुंबीज बलवान होता है और बलवान पुंबीज द्वारा उत्पन्न सन्तान पुत्र होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से वीर्य की वृद्धि होती है जिसे समागम काल में अल्प समय में ही वीर्य स्राव होता है। आगे देखा गया है कि स्त्री बीज उत्सर्गित होने के पूर्व वीर्य स्राव हो जाय तो पुत्र सन्तान होती है। ब्रह्मचर्य का पालन करने के कारण वीर्य चिर काल के बाद बाहर निकलता है, जिससे समागम काल में स्त्री बीज के बाद वीर्यस्राव होने से कन्या उत्पन्न होती है।

औषध—

पुत्रोत्पादक औषध का प्रयोग करने से पुत्र सन्तान होती है।

पुत्र प्राप्ति के लिए गर्भाधान से पूर्व स्त्री पर किये जाने वाले कर्म—

★ एक पलास पत्र लेकर ऋतु स्राव के चतुर्थ, पंचम, षष्ठं और सप्तम दिन गोदुग्ध के साथ पान करना।

★ लक्ष्मणा मूल का चूर्ण एक ग्राम गोदुग्ध के साथ चतुर्थ दिन से एकादश दिन तक प्रात. साय पान करना।

★ कपित्थ मज्जा, कौचमूल, शिवलिंगी बीज का चूर्ण कर एक ग्राम गोदुग्ध के साथ ऋतुस्राव के चतुर्थ दिन से एकादश दिन तक प्रात· काल पान करना।

★ पारस पीपल के फल और जीरक चूर्ण, श्वेत शरपुंखा चूर्ण एक-एक ग्राम लेकर चतुर्थ दिन से एकादश दिन तक गोदुग्ध के साथ पान करना।

★ लक्ष्मणा मूल का कल्क बनाकर चतुर्थ दिन से एकादश दिन तक प्रात २० ग्राम कल्क गोदुग्ध के साथ पान करना।

★ गर्भाधान पूर्व तीन चार मास फल घृत २० ग्राम और यथावश्यक शर्करा मिला के प्रातः लेना।

★ लक्ष्मणा, नवीन वटजटा के अग्रभाग, पीत सहदेवा, विश्वदेवा यह चारों औषधों का स्वरस या चूर्ण गोदुग्ध में पीसकर ऋतु स्राव के चतुर्थ दिन से एकादश दिन तक दक्षिण नासा पुटक में प्रातः नस्य प्रयोग करना। नस्य की मात्रा चार बूंद लेना।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि पुत्र सन्तान प्राप्त करने के लिए कोई भी एक उपाय पर्याप्त नहीं है, अनेक उपायों का सयोग करना चाहिए। गर्भ का लिङ्ग

—शेषांश पृष्ठ ३१० पर देखें।

इच्छित सन्तान

आयु वृह० आचार्य डा० महेश्वरप्रसाद 'सर्जन' प्राणाचार्य, आयु. सम्राट, एम.डी. (ए)
एवं श्रीमती डा शशि उमा देवी (धर्मपत्नी–डा. महेश्वरप्रसाद) मगनगढ (समस्तीपुर)

मंगलगढ़ (बिहार) क्षेत्र के मामांकित निष्णात सर्जन एवं आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित डा महेश्वरप्रसाद की धर्मपत्नी श्रीमती शशि उमा देवी जी आयुर्वेद एलोपैथी तथा होम्योपैथी में श्रद्धा रखकर अपने डा पति के साथ होस्पीटल मे निरन्तर सहारा देती हैं। वर्षों से आप लेख लिखती हैं और पति के शोध कार्य मे विविध प्रमुख उपकरणों, ग्रन्थो तथा लेखों को आवश्यकतानुसार संग्रह एवं नियोजित कर बहुमूल्य सहयोग प्रदान करती है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आज इच्छित सतान की लालसा से जो व्यक्ति चिन्तित हैं उनके लिए निम्नलिखित अनुभव सिद्ध योग प्रस्तुत हैं जिनसे अभीष्ट लाभ उठायें और हमे सूचित करें।

(१) सुपुत्र प्रदाता रसायन—रविवार पुष्य नक्षत्र के दिन मयूरपंख की चन्द्रिका (चाद वाले अंश) को पृथक् काटकर इस प्रकार पाच चन्द्रिका को अलग-अलग खरल में भली भाति सूक्ष्म घोटकर गुड के साथ दृढ हाथो से घोंट मिलाकर पांच गोलिया बनाकर छाया में या जलवाष्पयन्त्र (Water bath) पर सुखालें। सेवन विधि–गर्भ ठहरने के तीसरे महीने के शुरू में प्रथम दिन एक गोली, दूसरे दिन एक गोली और तीसरे तीन एक गोली खाली पेट (निराहार) बछड़े वाली गाय (यदि गाय काली हो तो और भी उत्तम) के दूध से निगलवायें। इस प्रकार पांच दिनों तक निगलवायें। जिन स्त्रियों का मासिक धर्म नियमित समय पर हर मास होता है उन्हें केवल ३ गोली ही (तीन दिनों तक) खिलायें।

सावधानी—गोली को आर्द्रता से बचाने के लिए इन्हें पोलीथीन के पैकेट (थैले) में बाधकर रखें। प्रत्येक दिन केवल एक गोली प्रात. निराहार खिलायें।

लाभ—स्त्री को चाहे लड़की ही लड़की क्यों न जन्म लेती हों, इसके प्रयोग से उसे अवश्य ही लड़का (पुत्र) उत्पन्न होगा। किसी प्रकार का विकार न होगा। पूर्ण निरापद योग है।

(२) पुत्र उत्पादक योग—हाथी दात का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण, देशी खाड प्रत्येक ५ ग्राम तथा छोटी इलायची के बीज का सूक्ष्म चूर्ण २ ५ ग्राम लें। अब इन तीनों औषधियों को खरल में दृढ हाथों से घोटकर समसर्वत्र बनालें तथा १५ बराबर-बराबर भागों में बांटकर १५ मात्राए बनालें।

सेवन विधि—जब गर्भ धारण किये हुए ४० दिन हो चुके तो उपर्युक्त १ मात्रा सुबह और १ मात्रा साय बछड़े वाली गाय के दूध के साथ सेवन करायें। इस प्रकार कुल १५ मात्राएं सेवन करा देवें।

सावधानी—इस बात का ध्यान रखें कि गर्भ ठहरे हुए (सम्भोग दिन से जोड़कर) ४० दिन अवश्य हों, न एक दिन कम और न ज्यादे।

लाभ—इस दिव्य योग के सेवन से अवश्यमेव पुत्र उत्पन्न होगा।

(३) पुत्र प्रदाता योग—गर्भ ठहर जाने के तीसरे महीने के शुरू में (दूसरे महीने के अन्त के बाद मे) गर्भवती को प्रतिदिन स्नान के बाद प्रातः शिवलिंगी बीज सात सख्या तथा भांग के बीज तीन सख्या एक साथ निगलवाकर ऊपर बाछरा वाली काली गाय के धारोष्ण दूध (२५० मि०लि०) के साथ प्रतिदिन निरन्तर एक महीना तक सेवन करने से अवश्य ही पुत्र की उत्पत्ति होती है। यह निरापद व अनुभूत है।

❋ पुरुषत्व सदैव रखने में अश्वगन्धा का कार्मुकत्व ❋

वैद्य श्री हरि भाई के. त्रिवेदी डी.ए पी. (आयुर्वेद विशारद) सौराष्ट्र एच. पी.एस ए. (आयुर्वेद भूषण)
रीडर एवं प्राध्यापक–द्रव्य गुण विभाग–सेठ जी. प्र. राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, भावनगर (गुजरात)



वैद्य श्री हरि भाई के त्रिवेदी हमारे आयुर्वेद विद्यागुरु हैं। वर्तमान समय में आप भावनगर के आयुर्वेद कालेज के प्राध्यापक हैं। आप विशेषतः आयुर्वेद, वेद, पुराण आदि आर्ष ग्रन्थो में विशेष श्रद्धा रखते हैं। गुजराती भाषा मे आपने आजतक द्रव्य गुण सिद्धान्त, दोष-धातु-मल विज्ञान, निदान-चिकित्सा–ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित कराये हैं और पचकर्म विज्ञान एव बाल रोग चिकित्सा-ग्रन्थ प्रेस मे हैं, जो शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। आपने आज तक १० सशोधन पत्र लिखे हैं। और पचकर्म विषयक एव बनस्पति के कर्मों के बारे मे १०५ लेख निरामय, आयु, आयु. डायजेस्ट और आरोग्य प्रदीप-गुजराती मासिकों में प्रकाशित हो चुके हैं। आप गुजरात आयु वि विद्या जामनगर के एम. डी के परीक्षक हैं। एवम् युनिवर्सिटी ओफ राजस्थान-जयपुर के बी. ए एम एस- एस. और हिमाचल प्रदेश यूनि शिमला के बी ए एम. एस. परीक्षा के भी परीक्षक हैं। आप करीब २३ साल से आयुर्वेद महाविद्यालय में अध्यापन कार्य करते हैं। आपके बडे भाई स्व० वैद्य श्री हिम्मत भाई त्रिवेदी–गुजरात के विद्वान वैद्य थे। स्व० श्री हिम्मत भाई त्रिवेदी विदेश में जाकर आयुर्वेद का प्रचार करते थे। अकस्मात ही सूरत शहर मे उनकी दु खद मृत्यु हुई।

वैद्य श्री हरि भाई का मिलनसार स्वभाव है। निर्मोही, नि.स्वार्थी और सदैव दयाभाव रखते हैं। यहा हमारे विशेष आग्रह पर आपने हिन्दी भाषा में प्रथम प्रयास किया है। श्री त्रिवेदी जी से आशा की जाती है कि आप हर समय 'धन्वन्तरि' को सर्वाङ्गीण मदद करेंगे। —वैद्य अशोकभाई तलाविया भारद्वाज

शुक्र क्षय का प्रधान हेतु शास्त्रकारो ने अतिमैथुन वेगावरोध विषमाशन, चिन्ता, भय इत्यादि जो वायु दोष का प्रकोपक है वो बतलाये हैं।

वायोधातु क्षयात कोपो मार्गस्यावरणेन च।

रसादि धातुओं का क्षय एव मार्ग यानी स्रोतों के आवरण से, रस से शुक्र पर्यन्त धातुओ की सम्यक पुष्टि नही होती है। अर्थात् शरीर के धारण पोषण में शुक्र धातु अनुग्रह करता है।

उपरोक्त दोनों अवस्था धातु क्षय और मार्ग के आवरण में अश्वगन्धा का प्रयोग तत्काल लाभप्रद होता है। दोषो की अशांश कल्पना मे अश्वगन्धा का प्रभुत्व पुरुषत्व का ह्रास प्रधान रूप से शुक्रक्षय से होता है। परिणाम वायु की वृद्धि होती है। इस अवस्था में अश्वगन्धा स्निग्ध गुण से धातु के रूक्षत्व को शात करता है। शरीर में स्नेह मृदुता और आर्द्रता उत्पन्न करता है। वातहर और श्लेष्म वर्धक है। धातु पुष्टि करके वर्ण को बढ़ाता है। शुक्रक्षय से मनुष्य का वर्ण काला हो जाता है। वायु की विषमावस्था में, अपान वायु की विकृति से विबन्ध रहता है। अश्वगन्धा इस विबन्ध को तोडकर मलों का सरण करता है। जैसे अश्वगन्धाघृत स्निग्ध गुरु मल का सारक है।

—शेषांश पृष्ठ ३२८ पर देखें।

शतावर

पण्डित श्री घनशंकर जी गौरीशंकर जी वैद्यशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य
भूतपूर्व प्राध्यापक—राजकीय अखण्डानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय, अहमदाबाद-गुजरात
पता—भारद्वाज औषधालय, १६१३-हिंगलोक जोशी नानी पोल, वाला हनुमान, खाडिया, अहमदाबाद-१

शतावरी का उपादेयाग मूल प्राधान्यता का ही निर्देश करने हेतु ही इस औषधि के मूल करीब शत-शत सख्या परिमित होने से इस औषधि का नाम भी शतावरी, शतमूली, शताह्वा, शतपदी, वहुसुता, शतवीर्या, सहस्रवीर्या इत्यादि नामो ये सलग्न है एव अन्य भी इस प्रकार के नाम हैं। भीरु, इन्दीवरी, वरी नारायणी, पावरी, महाशतावरी, अर्द्ध कण्टिका हेतु ऋष्या, महोदरी ये सभी नाम गुण धर्मानुसार हैं।

शतावरी गुरु शीता, तिक्ता स्वाद्वी रसायनी।
मेधाग्निपुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मातिसारजित्॥
शुक्र स्तन्यकरी वल्या वात पित्तास्रशोथजित्।
महाशतावरी मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी॥
शीतवीर्या निहन्त्यर्शोग्रहणी नयनामयाम्॥

शतावरी और वडी शतावरी दो प्रकार की है—

शतावरी—गुरु शीतवीर्या तिक्त रसयुक्ता एव स्वादु, रसायन गुणयुक्त, मेधा, अग्नि तथा पुष्टता को बढ़ाने वाली है। स्निग्ध गुणयुक्त, नेत्रो को हित करने वाली, गुल्मरोग और अतिसार को नष्ट करती है। शुक्र को, स्तन्य को, वल को वढाने वाली, वात-पित्त-लोही एव शोथ विकार को मिटाती है।

महाशतावरी, मेधा हृदय और वीर्यवल वढाती है। रसायन गुणयुक्त है। शीतवीर्या है। अर्श ग्रहणी और नेत्र रोगो को मिटाती है।

हिन्दी—सतावर, वडी सतावर, व०—शतमूली,
म०—लघु शतावर, शतमूली, आसवली, वडी शतावर, सहस्रमूली
गु०—शतावरी एकलकटो शापनाशुवा
क०—किरिपआसडी, परडु आसडी
तै०—एदुमहीटेङ्गाचल्ल, चल्लगड्डलु
इ०—एस्पेरेगस् रेसिमोसम्, ले०—एस्पेरेगस
फा०—गुर्जदस्ति

शतावर्यं हिमे तिक्ते मधुरे पित्तजित्परे।
कफवातहरे वृष्य महाश्रेष्ठे रसायने॥
महतीकफवातघ्नी तिक्ता श्रेष्ठ रसायने (रा नि.)
शतावरी तु मधुरा शीता वृष्या च तिक्तका।
रसायनी गुरु स्वादु स्निग्धा दुग्धप्रदामता॥
अग्निदीप्तिकरी वल्या मेध्या शुक्रकरीमता।
चक्षुष्यापुष्टिकृत्पित्त कफवात क्षयापहा॥
रक्त दोषश्च गुल्म च शोथातीसारनाशिनी।
तैलेघृतेप्रयोगार्थं प्रशस्ता मुनिभिर्मता॥
महाशतावरीहृद्या मेध्याचाग्निप्रदीपनी।
शुक्रला शीतवीर्या च, वृष्या वल्या रसायनी॥
अर्श सग्रहणी रोग नेत्र रोग विनाशिनी।
गुणाह्यस्यास्तु विज्ञेया पूर्वाया सहशागुणै॥
शतावरी द्रव्य वृष्य मधुर पित्तजिद्धिमम्।
शतावर्यङ्कुर गुणा।
शतावर्याय्यकुरस्तु तिक्ता वृष्योलघु स्मृत।
हृद्यस्त्रिदोषघ्नो वातरक्तार्शसा हर॥
क्षय सग्रहणी रोग नाशनस्तिक्तो लघु। (नि र)

दोनों शतावर शीतल, कडवी, मधुर पित्तनाशक कफवातघ्न वीर्यवर्द्धक और रसायन कर्म मे अति श्रेष्ठ हैं।

शतावर—मधुर, शीतल, धातुवर्द्धक, कडवी रसायन भारी, स्वादिष्ट, स्निग्ध, दुग्धप्रद, अग्निप्रदीपक, वलकारक, मेधाजन्य शुक्रद, नेत्रो की शक्ति बढाने वाली, पुष्टिकारक, कफपित्तवात क्षय, रक्तविकार गुल्म, सूजन एव अतिसार को मिटाती है।

वडी शतावर—वल, हृदय वल, मेधा वल, अग्निवल, शुक्रवल वढावे वाली शीतवीर्य रसायन तथा—अर्श सग्रहणी दूर करती है। नेत्र रोगो को दूर करती है। अन्य

सतावर के समाग गुण हैं। शतावर के अकुरो के गुण—

कडवे, धातुवर्द्धक, हलके हृदय को हितकारी तथा त्रिदोष, पित्त, वात रक्त, बवासीर, क्षय एव सग्रहणी को गिराते हैं।

परिचय—शतावरी की वेल होती है। वेल का रंग श्वेत होता है। पत्ते सोये के समान होते हैं। शतावर का तेल निकलता है।

विविध प्रयोग—

शतावरी क्षीर पिष्टा पीतास्तन्यविवर्द्धनी ।।

—वृ नि र.

सतावर को दूध मे पीस के सेवन करने से मा का दूध वढता है।

शतावरीदाडिमतिन्तिडीकं

काकोलीमेदे मधुक विदारीम् ।

पिष्ट्वा च मूलफलपूरकस्य

घृत पिवेत क्षीर चतुर्गुण ज्ञ. ।।

कासज्वरानाह विवन्ध शूल

तद्रक्त पित्त च घृत निहन्यात् ।

शतावरी अनार तिन्तिडीक काकोली मेदा महामेदा मुलहठी, विदारी कन्द एव विजौरा नीवू की जड कल्क लेकर कल्क से चौगुना घी और घी से चौगुना द्रव से घृत पाक करें। यह घृत रक्तपित्त, कास, ज्वर, आनाह विवन्ध और उदरशूल को नाश करता है।

शतावरी घृत—(१) शतावरी, घी, एवं दूध प्रत्येक ६४-६४ तोला मे किया घी अम्लपित्त सताप, तृषा, श्वास, रक्तपित्त, मूर्च्छा एव वातपित्त सम्बन्धी विकारो को मिटाता है।

शतावरी घृत—(२) शतावरी कल्क ४ तोला, दूध ४० तोला, घी ४ तोला को सिद्धकर करके पीपर मधु, शक्कर मिलाकर सेवन करने से पित्त विकार नष्ट होते हैं। वीर्यवर्द्धक एव पुष्टिदायक है।

शतावर्यादि क्वाथ—शतावरी, कसेरु, दर्भमूल, गोखरू, भोकोला, कासमूल, गन्नामूल और शाली के मूल क्वाथ मे शहद मिश्री के साथ सेवन से पित्तज, मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

फल घृत—शतावरी रस १५ सेर, सवत्स गो दुग्ध १५ सेर, हल्दी, दारुहल्दी, अजवायन, अश्वगन्धा, मजीष्ठा, मेदा, कोष्ठ मुलहठी, वलावीज, त्रिफला, श्वेत कूष्माड हिंग कटु काकोली क्षीर काकोली दोनो चन्दन द्राक्ष्य कृष्ण कमल दो-दो तोला भर कल्क सवत्स गाय के दूध ४ सेर मे सिद्ध किया घी उन्माद वध्यत्व योनि रोग मिटाता है। परम वृष्य है।

शतावरी क्वाथ दूध मे शहद मिला कर सेवन से पित्तज शूल और दाह शान्त होता है। हृदय वस्ति उदर शूल मे शतावरी रस शहद मे लें।

गाय के दूध म शतावरी रस लेने से अश्मरी एव श्वान विप शान्त होता है। वीर्यवृद्धि के लिए शतावरी चूर्ण १ तोला मिश्री मिलाये दूध मे नित्य लें।

अपस्मार मे—शतावरी मूल १ तोला दूध मे घिस कर सेवन करें।

रक्त शुद्धि के हेतु-शतावरी मूल को यव कूटकर २० तोला पानी ६४० तोला मे से ४० तोला पानी रहे तव तक क्वाथ वनाकर कपड़छन करके मिश्री ८० तो० मिला के शरबत जैसा घट्ट वनाकर इलायची जावित्री जायफल मिलाकर १-२ तोला ४२ दिन तक सेवन करें।

शतावरी मूल, पवाड मूल और वला मूल को समान भाग लेकर ३२ गुने जल मे अष्टमाश शेप काढ़ा वना कर दुगुनी मिश्री से शरवत वनाकर इलायची मिला सेवन करने से रक्तशुद्धि होती है।

शतावरी मूल वला मूल, पवाड मूल का चूर्ण घी मे पकाकर इससे १।। गुना दूध का मावा और शक्कर मिलाकर पाक वना के लौंग जातपत्री जातिमूल इलायची बादाम गोक्षुर चूर्ण और वीदाना का चूर्ण मिश्रित करके इसमें घी डालकर नित्य दो समय २-२ तोला धारोष्ण दूध के साथ सेवन से रक्तशुद्धिकर, वल एवं पुष्टिप्रद है।

प्रमेह मे—दूध मे शतावरी रस का नित्य सेवन करें।

पुरुष रोगों में इस्तेमाल की जाने वाली औषधि →

अश्वगन्धा

वैद्य राजेन्द्र खण्डेलवाल बी. एस. सी., आयुर्वेद रत्न,
व्यवस्थापक–खण्डेलवाल आयुर्वेदिक औषधालय, सुकेत (कोटा) राज०

नाम—संस्कृत—गन्धाता, वरदा, बलदा, कुष्ठ, गन्धिनी, तुरङ्गगधा। हिन्दी–असगन्ध, ढोरगुज, मराठी–आसगन्ध, गुजराती–आसोंध, आसुन, घोडाहन, बगाली–अश्वगन्धा, अंग्रेजी—विंटरचेरी (Winter cherry)।

उत्पत्ति स्थान—बिहार, खानदेश, बम्बई, सिन्ध, गुजरात, भारत के पश्चिमी प्रदेश, राजस्थान, बगाल, असम बर्मा आदि में।

विवरण—असगन्ध विशेषतया वर्षा मे उत्पन्न होती है। कई स्थानो पर बारह मास भी मिलती है। असगन्ध मे पुरुषत्व देने की शक्ति होने के कारण उसको वाजीकर भी कहते हैं। अश्व के गन्ध–जैसी गन्ध इस बनस्पति में से आती होने से यह वाजिगन्ध–अश्वगन्धा इत्यादि से जानी जाती है। यह स्वाद में कडुवी होती है।

गुण—'अश्वगन्धाऽनिलकुष्ठ श्लेष्मशोथ क्षयापहा।
बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला॥

असगन्ध बलदायक, पौष्टिक, रसायनरूप, कडवी, गरम, वीर्यवर्धक, कामोत्तेजक और वायुकफ, श्वेतकुष्ठ, सूजन तथा क्षय को नष्ट करने वाली है। शक्तिप्रदान करने और वीर्य बढाने में काष्ठौषधियों में सर्वोपरि है। यह एक परम वाजीकरण औषधि है। जैसाकि महर्षि चरक ने कहा है—

येन नारीषु सामर्थ्यः वाजिवल्लभते नर।
तेन वाप्यधिकं वीर्यं, वाजीकरणमेव तत्॥

जिस प्रयोग के सेवन से पुरुष स्त्री प्रसंग में घोड़े के समान समर्थ होती है, अथवा जिस के प्रयोग से वीर्य उत्पत्ति अधिक होती है, उसको वाजीकरण कहते हैं। इस औषधि के सेवन से दुर्बल मनुष्य मोटे और ठिगने बडे होते हैं।

प्रकार—असगन्ध दो प्रकार की होती है।

छोटी बडी असगन्ध—छोटी असगन्ध को नागोरी असगन्ध कहते हैं। उसका क्षुप भी छोटा होता है। प्रयोग में नागोरी असगन्ध ही ग्रहण की जाती है। यह राजस्थान के नागौर में बहुतायत से पैदा होती है।

बड़ी असगन्ध—इसका क्षुप बड़ा होता है। यह बम्बई की ओर बाजारों मे बिकती है।

विवरण—इसके क्षुप २ से ५ फुट ऊचे बहुत सी टेढी मेढी शाखा युक्त वर्षाकाल में पैदा होते हैं। आकार मे यह क्षुप छोटी कटेरी जैसे किन्तु काटे रहित होते हैं। पत्र–जोड़े जोडे से युग्म आमने सामने अण्डाकार २ से ४ इञ्च लम्बे और रोमयुक्त होते हैं। ये पत्ते आकार में लम्बगोल होते हैं।

पुष्प—छोटे-छोटे लम्बे चिलम के आकार के एवं पीताभ हरित वर्ण के होते हैं।

फल—छोटे-छोटे गोल मटर के दाने जैसे होते हैं।

मूल—४ से ८ इञ्च लम्बे शकु के आकार की निम्न भाग में मोटी और ऊपरी भाग में पतली गोल चिकनी चिकनी होती है।

गुण—धातुदौर्बल्य, हाथ पैर तथा जांघों का दर्द, आमवात दाह, ज्वर, जोड़ों मे दर्द, गिल्टी, फोड़े, कास, श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं।

प्रयोग—

अश्वगन्धा चूर्ण (कल्प)—अश्वगन्धा की महीन कपडछन करके उसके चूर्ण से चौथाई भाग उत्तम गोघृत मिला खूब खरल कर डिब्बे में भर रख लें।

मात्रा—१ से तीन माशा उष्ण (गर्म) जल के साथ या दूध के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के दर्द शमन होते हैं। बल वीर्य की वृद्धि होती है।

२ काया कल्प चूर्ण—नागोरी असगन्ध व विधारा समभाग महीन चूर्ण कर बराबर मिश्री मिलाकर गाय के धारोष्ण दूध के साथ दो मास तक सेवन करने से दुर्बल, कृश व्यक्ति मोटा तगडा हो जाता है। वातव्याधि आदि तकलीफ से दूर हो जाता है।

३. कामदेव घृत—असगन्ध ५ सेर, गोखरू २॥ सेर, खरैंटी, गिलोय, शतावर, पुनर्नवा, पीपल की छाल, अजीर, कमलगट्टा, सोंठ, धोई हुई उडद की दाल १०-१० छटांक, उक्त सब द्रव्यो को कूटकर ६४ सेर पानी में डाल किसी कलईदार बर्तन मे धीमी २ आंच मे पका कर काढा बनावें। जलते-२ जब चोथाई पानी रह जाये तब उतार कर उसे बारीक कपड़े में छान लें। काकोली, क्षीर काकोली, असगन्ध, सालमपजा, मिश्री, शकाकुल मिश्री, जोवन्ती, मुलहठी, वनमूग, बन उड़द, कूठ, कमल गट्टा, लाल चन्दन, तेजपात, पीपल, दाख, कोंच बीज, नाग केशर, खरैंटी, कधी ये सभी औषधिया १०-१० माशा लेकर कूटकर रात को चोगुने पानी में भिगो दें। प्रात काल चटनी की भाति पीसकर ऊपर लिखे काढे में खिलावें और उसमें १०० ग्राम खाड ४ सेर सफेद ईख का रस, गाय का घी ४ सेर यह सब उक्त काढे मे मिला लें, फिर किसी कलईदार बर्तन में चढाकर धीमी-धीमी आच मे पकावें, जब सब जलकर घी रह जावे तब उतार लें और छानकर बडे मुह वाली बोतल मे भरके डाट लगाकर रख दें।

यह कामदेव घृत परम पुरुषार्थ शक्ति कर्त्ता है। इसकी मात्रा १ तोला प्रतिदिन है। यह दवा धातु क्षय, छाती की जलन, शारीरिक निर्बलता आदि को दूर करती है। यदि किसी पुरुष ने बाल्यावस्था मे किन्ही कारणो से वीर्य का नाश कर लिया हो तो उनको यह औषधि वीर्य दाता, शक्तिवर्धक और रसायन है।

४. नपुसकता और शिश्न शैथिल्य पर—उक्त अश्वगन्धा चूर्ण का सेवन करे व अश्वगन्धा १ तोला, विदारीकद और कोंच बीज ६-६ माशे इन तीनों का महीन चूर्ण एकत्र शेर की चर्बी १॥ तोला में खरल करे। डिब्बों में भर कर रखें और इन्द्रिय पर मला करें। अथवा अश्वगन्धा के महीन चूर्ण को चमेली के तेल में पीसकर लगाने से इन्द्रिय की शिथिलता दूर होकर वह कठोर व दृढ हो जाता है।

५ स्वप्नदोष नाशक—असगन्ध, विधारा, जायफल, छोटी इलायची, नागरमोथा, कोंच के बीज, गोखरू, शतावर, त्रिफला, लाजवन्ती, खस, वंशलोचन, प्रत्येक १-१ तोला, इनको कूट पीस कपड़छन कर समान मिश्री मिला ६ माशा सायकाल गोदुग्ध से सेवन करे। यह योग स्वप्नदोष निवारणार्थ बडा हितकारी है।

६ असगन्ध, सफेद मूसली, शतावर, गिलोय सत्व, तालमखाना, सेमल का मूसला, विनियार की जड ये सब २-२ तोला, कोंच के बीजों की गिरी १॥ तोला, बडा गोखरू १॥ तोला, बीजबन्द १ तोला—उपरोक्त सभी औषधियों को कूटकर चूर्ण करके समान मिश्री मिलावें तथा ६ माशा प्रात.काल गाय के धारोष्ण दूध के साथ सेवन करें और इसी प्रकार रात्रि को सेवन करे, इसकी ४०/४० दिन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक सेवन करने से अनिःमित विषयभोग से उत्पन्न इन्द्रिय शिथिलता, दुर्बलता, निर्बलता एव नपुसकता दूर होती है और वीर्य की वृद्धि तथा पुष्टि होती है।

७. पौष्टिक योग—असगन्ध, और चिरायता बराबर लेकर चूर्ण करके एक चिकने पात्र मे रखलें। मात्रा—१-१ तोला, प्रातः साय दुग्ध से सेवन करें। यह पौष्टिक है

८. मर्दाना शक्ति वर्धक योग—

(१) असगन्ध नागोरी, कोंच के बीज की गिरी, सालब मिश्री समभाग लेकर मेवा की तरह चूर्ण करके रखलें व ३ ग्राम चूर्ण १२ ग्राम मधु मिलाकर प्रात साय दूध के साथ खिलावें, जबरदस्त मर्दाना शक्ति उत्पन्न होती है।

(२) पान की जड, असगन्ध, नागोरी, सफेद मूसली समभाग लेकर मैदा की भाति बनाये, तमाम दवाओं के समभाग खांड मिलाकर रखलें। ६ ग्रा प्रात सायं गर्म दूध से सेवन करें। मर्दाना शक्ति के लिए अनुभूत है। ✱

पुरुष रोगों में उपयोगी महत्व के प्रयोग

वैद्य राजेन्द्र कुमार खडेलवाल बी.एस.सी. आयु. रत्न, खडेलवाल आयुर्वेदिक औषधालय, सुकेत (कोटा) राज.

—✱✱—

१. नपुसक सजीवन रस—शुद्ध कुचला, मकरध्वज लोहभस्म १-१ भाग, अकरकरा १२ भाग, स्वर्ण भस्म १/८ भाग सबको एकत्र कर ३ दिन पान के रस में खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लें। १ से २ गोली मधु के साथ लें। यह योग बल बढाता, स्नायु मण्डल की दुर्बलता और नपुंसकता को दूर करता है। अत्यन्त बाजीकर है।

२ धातुपुष्ट चूर्ण—गोखरू, कौच के बीज, तालमखाना, खरेंटी के बीज सममाग लेकर चार दिन तक शतावर के रस में खरल कर २ माशा की गोलिया बना लें या चूर्ण कर २ से ४ माशा दूध के साथ प्रात.सायं सेवन करें। धातु विकार नाशक में सर्व श्रेष्ठ अनुभूत है।

३ स्वप्न दोप नाशक—कान्त लोह भस्म ४ रत्ती, स्वर्ण बङ्ग २ रत्ती, इनकी दो मात्रा बनावें। प्रात सायं मधु ६ माशा मे मिलाकर लेवें, रात्रि को सोते समय २ गांठ लहसुन की कच्ची कली निगल जायें। कुछ समय में स्वप्नदोष अवश्य ही नष्ट होगा।

४. उपदश व फिरङ्ग रोग पर—चने की दाल (छिलके रहित), सफेद मिर्च,बड (वट) की डाढ़ी, पीपल की डाढ़ी, फालसे की छाल, इनको २-२ तो. लेकर शाम को ३० तोला जल मे भिगो दें। सवेरे मल छानकर २ तोला मिश्री मिला पिला दें। ३ दिन में ठीक होजावेगा।

५ प्रमेह (स्वप्न) मे—शतावर का चूर्ण ३ माशा, शिलाजीत १ माशा, मिश्री का महीन चूरा २ माशा, प्रतिदिन दूध के साथ सुबह-शाम लें।

६. शीघ्रपतन नाशक स्तम्भक योग—एरण्ड की मज्जा, पनवाड, बावची के बीज १-१ तोला, अकरकरा ६ माशा, केशर ३ माशा, कस्तूरी, वर्कसोना, वर्क चादी, २-२ माशा सबको खरल कर चने के बराबर गोली बना लें। मैथुन से ३ घन्टे पूर्व १-२ गोली दूध से खावें से स्तम्भक शक्ति मिलती है।

७ अंडवृद्धि—(१) गन्धक, अजवायन, एरण्ड की मींग पीसकर सूखा लेप १५ दिन तक करें, अडवृद्धि नष्ट हो जायेगी।

(२) एरण्ड तैल मे गुग्गुल मिलाकर गोमूत्र के साथ पीने से बहुत दिन की पुरानी वातज अडवृद्धि भी शीघ्र नष्ट होती है।

८. स्वप्नदोष रोगाधिकार—बेलपत्र, धनिया, और सौंफ बराबर-२ लेकर रात का आधा पावपानी मे भिगो दीजिये। दूसरे दिन सुबह उस पानी को कपड़छन कर पिलाइये। अत्युत्तम स्वप्न दोष नाशक है।

९. बाजीकरण—आवले के रस को घी मे मिलाकर पीने से वीर्य वृद्धि होती है। परम बाजीकर है।

१०. कामदेव रस—स्वर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, स्वर्ण माक्षिक भस्म, भीमसेनी कपूर, जावित्री, जायफल, लौंग, वङ्ग भस्म, चादी भस्म २०-२० ग्राम, चातुर्जात ८० ग्रा. लें सबको मिला शतावर के रस में सात दिन खरल करे व १-१ रत्ती की गोलिया बना लें। १ से २ गोली प्रात. व साय धारोष्ण दूध से मिश्री मिला सेवन करें। यह वीर्यहीन, गये बीते बूढ़े को भी जवान के समान बल देता है। कष्ट साध्य नपुसक को भी मर्द बनाता है।

११. कामदेव चूर्ण—गोखरू, तालमखाना, सफेद-काली मूसली, शतावर, कौंच के बीज, उटङ्गन के बीज सकाकुल व शालम मिश्री, ईसबगोल की भुसी, ढाक का गोंद, बहमन लाल व सफेद,लोदरी, (तोदरी ?) लाल व सफेद, लिसोडा, रूमी मस्तङ्गी, गिलोयसत, छोटी इलायची, वंशलोचन १०-१० ग्राम, वङ्ग भस्म, मूगा भस्म शिलाजीत ५-५ ग्राम मिश्री १८० ग्राम, काष्ठोषधियों का चूर्ण कर शेष दवा मिला खरल कर रख लें। ६ ग्रा. मिश्री मिला धारोष्ण दूध के साथ लें। यह बल वीर्य पैदा करता है। मुख की कांति बढ़ती है। शरीर मे स्फूर्ति

★ ★ ★ ★ पुरुष रोग चिकित्सा ★ ★ ★ ★

आती है। धातु बहती है। शीघ्रपतन में लाभ होता है। स्त्री प्रसङ्ग में आनन्द न हो उनको यह चूर्ण पूरा लाभ देता है।

१२ कामशक्ति बढाने के लिए—मोती भस्म १२० मि.ग्रा (१ रत्ती), स्वर्ण बङ्ग १२० मि.ग्रा. चादी भस्म ३० मि.ग्रा (१/४) मिला घी, मक्खन या मलाई के साथ सेवन करे। इससे काम शक्ति बढती है।

१३ गुप्त अनुभूत योग—एक अंडे को फेंटकर उसमें गाजर का रस, प्याज का रस, घी हर चीज बराबर मिलाकर भली प्रकार फेंटकर गर्म करके ४० दिन तक हर रोज पीते रहें। इसके साथ पौष्टिक मेवे जैसे बादाम भी खाते रहे, खटाई न खावे। यह योग वीर्य पैदा करता, शरीर को मोटा ताजा करता है। मनुष्य का चेहरा गुलाब की भांति खिलता है। अधिक स्त्रिया रखने वाले युवक के लिये यह योग अत्युत्तम है।

१४ प्रमेह तथा शुक्र तारल्य नाशक योग—कौंच के बीज, बरियारा की जड, शतावर, गोखरू पहाडी, कघी की जड, तालमखाना सभी समभाग लेकर चूर्ण कर लें। मात्रा ६ माशा। गो दुग्ध के साथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

१५ प्रमेह पर अनुभूत योग—सेमल की छाल के रस मे शहद व हल्दी का चूर्ण मिलाकर पीने से, अथवा केवल बङ्ग भस्म के सेवन करने से प्रमेह शात होता है।

१६ सुजाक तथा मूत्रकृच्छ पर—रालश्वेत ५ तोले, इलायची छोटी १ तोला, मुलेठी १ तोला, कपूर डली का २ माशा इनका बारीक चूर्ण करके कपडछन कर लो। फिर ८ तोला मिश्री मिलाकर रखलो। ६ माशा प्रात:-काल शीतल जल से लें।

१७ शिश्न शैथिल्य नाशक लेप-कालीमिर्च ११ नग, लौंग टोपीदार १३ नग, भीमसैनी कपूर १ माशा सबका बारीक चूर्ण करके लिंग पर मर्दन करे, यह क्रम १५ दिन तक करने से लाभ हो जाता है।

१८. नपुंसकता व ध्वजभङ्ग की अचूक तिला—संखिया, अफीम, मीठा तेलिया, जायफल, जमालगोटा, सभी १-१ तोला, श्वेत कनेर की जड़ ४ तोला, इन सबको कूट पीसकर दूध मे जमावे। जब दूध जम जावे तो मथकर मक्खन निकाले। इस मक्खन को उपस्थ पर मलें, यह नपुंसकता को नष्ट कर देता है। ध्वजभङ्ग को भी शीघ्र ठीक कर देता है।

१९ धातु दौर्बल्य निवारक योग—बबूल की कोमल फली छाया में सुखाई हुई, गोखरू पहाड़ी, कबाबचीनी, सेमल की मूसली, नागौरी असगन्ध—सभी १-१ तोला, भाग घुली हुई २ माशा लेकर सबको कूटकर बारीक चूर्ण बना लें—३-३ माशा प्रात.साय दूध से ४० दिन तक सेवन करें।

२०. कामोत्तेजना कम करने लिए योग—लाजवन्ती की जड तथा फिटकरी की भस्म दोनों का बारीक चूर्ण २-२ माशा की मात्रा में प्रात. व साय १५ दिन तक दूध के साथ सेवन करे।

२१ मधुमेह नाशक अनुभूत योग—(१) आम के पत्ते (छाया मे सुखाये हुए) १ तोला लेकर पावभर जल में उबालकर १ छटाक रहने पर छानकर प्रात सायं काल पिलावें। (२) छोटी दुधी, गुडमार बूटी, जामुन की गुठली समान भाग लेकर जल के साथ घोटकर बेर के समान गोली बनाकर प्रात व सायं जल के साथ सेवन करावें।

२२. मूत्र में शुगर को रोकने का उपचार—गेहूँ, चना, जौ १-१ भाग मिला आटा पिसवा कर दोनों समय रोटी लेने से शुगर आना बन्द हो जाता है।

२३ वीर्य वर्द्धक योग—(१) प्याज का रस ६ माशे, घी ४ माशा, शहद ३ माशा सबको मिला प्रात:साय चाटने से वीर्य अधिक बढता है। (२) उटङ्गन की जड का चूर्ण ६ माशा गर्म दूध के साथ प्रात. सायं सेवन करें। वीर्य की अधिक वृद्धि होती है।

२४ गर्भ धारण योग—गाजर को पानी में उबालें, बाद में छीलकर मसलें। फिर गाय के घी में, मधु मे ५ दिन तक रखें। पश्चात २॥ तोला नित्य सेवन करे, वीर्य की वृद्धि अवश्य होती है और गर्भ धारण होता है।

२५ स्तम्भन व शीघ्रपतन नाशक योग—शुद्ध भांग

१२ ग्राम, जायफल, बबूल की गोंद भुनी हुई, चुनिया गोद, मस्तगी, प्रत्येक ३ ग्राम, इमली के बीजो की गिरी, जामुन की गुठली की गिरी प्रत्येक ६ ग्राम, विशुद्ध केसर १॥ ग्राम सबको विशुद्ध गुलाब जल में खरल करके चने के बराबर गोलिया बनालो। २ से ३ गोलिया रात को सोते समय खिलायें। स्तम्भन तथा मैथुन आनन्द शक्ति उत्पन्न करने के लिए अत्युत्तम दवा है। इसके प्रयोग से शीघ्रपतन दूर हो जाता है।

२६. उपदंश की चिकित्सा—

(१) रस कपूर आधा तोला बहुत महीन चूर्ण करके एक छटाक घी मिलावें, यह आतशक घाव के लिए बढ़िया मरहम है। यदि सम्भोग काल के पश्चात इसे शिश्न मे भली भाति लगा दिया जावे तो आतशक होने का भय नहीं रहता है। आतशक के कीटाणु बडे सख्त होते हैं; सहज मे नहीं मरते इसलिए मरहम भलीभाति लगावे।

(२) हरड़ के चूर्ण को शहद के साथ मिलाकर व्रणों पर प्रलेप करने से लिङ्ग की पीड़ा दूर होती है, एव उपदश के व्रणों मे लाभ होता है।

(३) उपदश नाशक घृत—चिरायता, नीम, त्रिफला, पटोल पत्र, करंज आंवले, खेरसार और बिजयसार इनके कल्क और क्वाथ से घृत को पकावें। यह घृत सब प्रकार के उपदशों को शीघ्र नष्ट करता है।

२७. वृद्ध को जवान बनाने वाला योग—

(१) बिदारी कन्द का काढा १ तोला, घी व दूध के साथ पीवें तो बूढ़ा भी जवान हो जायेगा (लम्बे समय तक उपयोग करना चाहिए)।

(२) ४ तोला उड़द पीसकर मधु और घी मिलाकर चाटें और ऊपर से दूध पीवें। इससे पुरुष अश्व के समान हो जायेगा।

२८ जीवन सखा चूर्ण—असगन्ध नागोरी, शतावर सोंठ, सफेद मूसली, सफेद चन्दन, इसबगोल की भुसी, छोटी हरड प्रत्येक १-१ तोला, मिश्री ७ तोला इन सबको कूटकर कपडछन कर लो। मात्रा—३-३ माशा गोदुग्ध में मिश्री मिलाकर प्रात व रात को सोते समय ले। इसके सेवन से आम स्वच्छ होती हैं बल वीर्य बढता है। प्रमेह, स्वप्नदोष में लाभप्रद है। कम से कम ४० दिन अवश्य ही सेवन करें।

२९. अश्वगन्धादि रसायन—असगन्ध, सोंठ, सौंफ २॥-२॥ तोला, बड़ी हरड, काला नमक १॥-१॥ तोला मिश्री ५ तोला सबको कूट कपडछन कर देशी घी का मोया लगाकर ढक्कनदार शीशी मे रख लें। ३ से ६ माशा तक प्रात.साय दूध से या भोजन के बाद जल से लें। यह धातु की दौर्बल्यता, उत्तेजना का अभाव, पाचन क्रिया की दुर्बलता आदि को दूर करता है।

३०. मीठी निशासी, लौंग, पान की जड़; असगंध शतावर, शुद्ध शिलाजीत, सफेद मूसली, सालबमिश्री सफेद प्याज के बीज, उटंगन के बीज, चिड़े का मस्तिष्क, प्रत्येक ६ ग्राम, शुद्ध कुचला, विशुद्ध केसर लोह व चादी भस्म प्रत्येक ३ ग्राम, अफीम कस्तूरी प्रत्येक १॥-१॥ ग्राम सब दवाओ को मैदा के समान कूटकर खरल कर मुर्गा के अण्डे की जर्दी मिलाकर भली भाति घोटकर काली मिर्च के बराबर गोलिया बना लें। प्रति दिन रात को सोते समय या शाम को २ से ४ गोली ३७५ ग्राम गाय के दूध के साथ जिसमें मुर्गा के अडे की जर्दी और मधु ३६ ग्राम मिलाकर भली प्रकार फेंटकर पिलायें। यह मर्दाना शक्ति उत्पन्न करता है, व गुजरी जवानी जोर शक्ति को वापिस लाना इन गोलियों का विशेष चमत्कार है। इसके अलावा यह गोलिया स्नायु दौर्बल्यता को दूर करतीं और स्तम्भन शक्ति उत्पन्न करती है। हस्तमैथुन वाले नपुंसक युवकों को यह जीवन साथी है।

—✱✱—

पुरुष रोगों में बंग भस्म का प्रभाव

वैद्य श्री मूलराज भाई जेठालाल, विभागाध्यक्ष–शल्य शालाक्य
राजकीय अखण्डानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय भद्र, अहमदाबाद–१



वैद्य श्री मूलराज भाई सरल स्वभावी एवं मितभाषी हैं। आप आयुर्वेद छात्रों को हर समय मार्गदर्शन देते रहते हैं। आप शुद्ध आयुर्वेद के पक्षधर हैं। आप आयुर्वेद के लेखक भी हैं। अत: आज तक आपके अनेक गुजराती एवं हिन्दी मे प्रकाशित हुए हैं। भूतकाल में आप गुजरात आयुर्वेद युनियन के सेनेटर भी थे। आप वर्तमान समय में गुजरात आयुर्वेद स्नातक मंडल के अध्यक्ष हैं। इस तरह आप आयुर्वेद क्षेत्र मे अमूल्य सेवा प्रदान करते हैं। यहा आपने विशेष आग्रह से वंग भस्म पर लेख लिखा है जो वैद्यों एवं पाठकों के लिए उपयोगी होगा। मैं 'धन्वन्तरि' द्वारा श्री मूलराज भाई से अपेक्षित हूँ कि आप 'धन्वन्तरि में अपना अमूल्य सहकार देते रहे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज।

शुक्रपात के दारुण एवं दुष्ट स्वभाव के कारण अनेक नवयुवकों की पाडु रोगी के समान स्थिति हो जाती है। कोई भी कार्य करने का उत्साह नहीं होता। शरीर निस्तेज, पीला सा, शुष्क और कृश हो जाता है। इस पर 'बङ्गभस्म' का मेरा अनुभव अच्छा है। कई रुग्णों को इससे अच्छा लाभ हुआ है।

शुक्रपात के अतियोग के बाद शक्ति ह्रास होता है और इस शक्ति ह्रास को दूर करने के लिए 'बङ्गभस्म' सर्वोत्तम है। इससे इन्द्रिय समूहों को शक्ति प्राप्त होकर दुष्ट लालसा भी दूर हो जाती है।

'वग भस्म' उत्तेजक औषधि नहीं है। फिर भी शक्तिवर्धक अवश्य है और इसी गुण के कारण यह 'वृष्य' मानी गई है। बङ्गभस्म शुक्रपात सस्थान और शुक्रधातु दोनो को पुष्टि देने वाली है। शुक्र धातु का कार्य बल और वुद्धि उत्पन्न करने का है। इन कार्यो की सिद्धि से सारा शरीर और सब इन्द्रियां प्रबल हो जाती हैं। सप्त धातुएं और इन्द्रिया दृढ होने से देह का वर्ण सुन्दर होता है। शरीर तेजरूपी-स्फूर्तियुक्त और देदीप्यमान बनता है। बुद्धि तेजस्वी और स्मरण शक्ति बढ जाती है।

शास्त्र मे शुक्रधातु के दो कार्य प्रमुख माने हैं।—

शुक्रधातु के कार्य

१ ↓ गर्भसंजनन

२ ↓ बुद्धिवर्धन

गर्भसजनन के लिए उपयोग न होवे पर जो वीर्य सचित रूप से रहता है, उससे बुद्धि और स्मरण शक्ति को लाभ पहुचता है। इस दृष्टि से वग भस्म को बुद्धि और प्रज्ञा बढाने वाली कहा है। शास्त्रकारों ने वग भस्म के लिये कहा है कि—

वग भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षय।

पुरुष रोगों में व्यवहार की जाने वाली उपयोगी औषधियां

कवि० बैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य, बसन्तपुरी, पीरपैंती (भागलपुर) बिहार

पुरुष रोगो से मेरा तात्पर्य है—पुरुष प्रजनन सस्थान। भारतीय चिकित्सा पद्धति में इन बनौषधियो में बलवीर्य वर्धक, धातु पौष्टिक तथा स्वास्थ्य वर्द्धक गुण विराजमान हैं। आचार्यों ने बाजीकरण द्रव्यों को मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया है—

(१) शुक्र वृद्धिकर (२) शुक्र स्रुतिकर

(३) स्रुति वृद्धिकर

प्रथम शुक्र वृद्धिकर मे ऐसे द्रव्यों को माना जाता है जो शुक्र की वृद्धि करें। आचार्य शार्ङ्गधर ने इसमें—अश्वगधा, मूसली, शर्करा तथा शतावर को माना है। फिर महर्षि चरक ने इसमे द्रव्यों के नामों की गणना की है जैसे—जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, मैदा, शतावरी, जटिला एव कुलिगा।

आचार्य चक्रपाणि ने-यष्ठी मधु, गोक्षुर, गुरुची सत्व, वशलोचन, आमलकी, भल्लातक को शुक्र वृद्धिकर माना है।

द्वितीय शुक्र स्रुतिकर- द्रव्यो का अर्थ है जो द्रव्य कामोत्तेजक तथा शुक्र वर्द्धक हैं। ऐसे द्रव्य जननेन्द्रिय को उत्तेजित करते हैं यथा—कस्तूरी, कपूर मद्य आदि।

द्वितीय-स्रुति वृद्धिकर द्रव्यों का अर्थ होता है जोकि द्रव्य शुक्र की मात्रा तथा स्राव दोनों को बढावे जैसे—बला, जीवन्ती, काकोली, वृहद् गोक्षुर, मधुक, द्राक्षा, मुगाक्षीरी, श्रृंगाटक, वाराहीकन्द तथा कोकिलाक्ष आदि हैं।

एक चौथे प्रकार को भी आचार्यों ने माना है जिसे शुक्र स्तम्भक कहा जा सकता है। ऐसे द्रव्यों में-जायफल, गांजा, भांग आदि हैं।

मकरध्वज का उपयोग—

मकरध्वज की १ से २ गोली प्रात साय मिश्री मिले दूध मे लेने पर स्मरण शक्ति, कांति बढावे वाला, बाजीकर तथा बुढ़ापा दूर करने वाला है।

नपुंसकता मे—मकरध्वज १ रत्ती, असगन्ध चूर्ण १ माशे तथा बसन्त कुसुमाकर रस १ गोली दूध मक्खन के साथ लें।

स्तम्भन हेतु—मकरध्वज 1/२ रत्ती, माजूफल ४ रत्ती, जायफल ४ रत्ती मधु से मिलाकर सेवन करें।

राजयक्ष्मा हेतु—मकरध्वज २ रत्ती, सितोपलादि ३ माशा शहद के साथ सेवन करें।

शीघ्रपतन मे—असगन्ध १ माशा, मकरध्वज शहद के साथ लें।

सुजाक मे—मकरध्वज १ रत्ती, यवक्षार १/२ रत्ती मिलाकर गर्म पानी से लें।

धातु स्राव मे—गिलोय, आवला, सेमल मूल, कच्ची हल्दी का रस, नीम की छाल किसी एक के रस के साथ मधु मिलाकर सेवन करें।

शक्ति प्रदान में—मकरध्वज १ रत्ती, वेदाना का रस, अगूर का रस, शतावरी रस, पान के रस और शहद के साथ दें।

गर्मी (आतशक)—मकरध्वज १ रत्ती, अनन्त मूल का फाण्ट ५ तोला शहद के साथ दें।

मूत्र कृच्छ में—मकरध्वज १ रत्ती, गिलोय का रस मधु से लें।

मूत्राघात में—मकरध्वज १ रत्ती मधु से सेवन करें। ऊपर से तृण पंचमूल क्वाथ पीवें।

बग भस्म—आचार्यों ने स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है जो दर्शनीय है—

वीर्यं स्तम्भाय कस्तूर्या नागबल्लीदले नवा।
मदाग्नौ मगधा चूर्ण कस्तूरी सयुक्त भजेत्॥
ककोलस्य रजोयुक्त, मदाग्नौ भजेन्नर।
खदिर क्वाथ सयुक्त वर्त्मरोगे प्रशस्यते॥

अर्थात बंग भस्म वीर्य स्तम्भक है। कस्तूरी एव

पान के साथ, मंदाग्नि में पीपल और कस्तूरी के साथ नेत्र के पकल रोग में खैर के क्वाथ के साथ सेवन करें। फिर आचार्यों ने लिखा है—

दिव्य समुद्र फलाभ्या वंग संमर्धनागवल्लि जलैः।
प्राण प्रिये विलिम्पति नायादि लिंग॥

लवंग और समुद्रफल के साथ वग नागवेलि (पान) के साथ पत्ररस में मर्दन कर लिंग पर लेप करें तो लिंग कड़ा होता है।

वंग को यदि पुत्र प्राप्ति हेतु गधी के दूध मे वात गुल्म में मट्ठा के साथ और नपुंसक में ककटी के साथ प्रयोग किया जाय तो पुंस्त्व प्राप्त होता है।

धातु विकार मे जावित्री के साथ, लवंग तथा जायफल मिश्रित कर व्यवहार करें।

मनुष्य के बल वीर्य के लिए वगभस्म को तुलसी पत्र स्वरस के साथ व्यवहार करना चाहिए।

यष्टी मधु—

यह कामशक्ति एव वीर्य उत्पन्न करने वाली महौषधि है। इसको मधुक तथा मुलेठी भी कहते हैं। मुलेठी का चूर्ण बनाकर मधु से सेवन करें और ऊपर से दुग्ध पीवे तो वीर्य शक्ति बढ़ती है एव घोडे के समान रमण कर सकते हैं।

आमलकी—

आचार्य चरक ने हरीतकी के समान ही सभी गुण आंवले में वर्णित है परन्तु हरीतकी उष्णवीर्य है तो आमलकी शीत वीर्य है। इसलिए आमलकी रसायन में बहुलता से प्रयोग होता है। आमलकी आयुवर्द्धक, बलवर्द्धक तथा शक्तिवर्द्धक भी है।

आमलकी का प्रयोग—आमलकी स्वरस, शर्करा, मधु और घृत इनको मिलाकर चाटे तो बूढा भी जवान होता है। आमलकी चूर्ण, वायविडग चूर्ण, विजयसार चूर्ण, तैल, घृत, मधु और लोह भस्म का सेवन करें तो पुरुषत्व बना रहता है।

आमलकी, गोक्षुर तथा गिलोय के चूर्ण को घी और मधु मिलाकर चाटे तो पुरुष वीर्यशाली शतायु होवे।

कौंच—

इसकी बेल सेम के आकार की होती है। कौंच के बीज छिलका उतार कर चिकित्सा के काम में आता है। बीजों को कुछ घन्टे पानी में भिगो दें और छिलका उतार कर रखलें। गिरी को सुखाकर चूर्ण करें और इसको पाक बनाकर सेवन करें। यह वीर्यवर्द्धक एव वाजीकरण प्रयोग में व्यवहृत होता है।

विदारीकंद—

इसकी बेल मोटी होती है। इसके पत्ते ढाक की तरह होते हैं। इसकी जड़ें कन्द आकार वाली होती हैं। इन कंदों का स्वाद मुलेठी जैसा होता है। इनके कन्दों को काटकर सुखा लिया जाता है जो बाजार में विदारी कंद के नाम से बिकते हैं। इसके स्वरस को तथा चूर्ण के सेवन से पुरुष में वीर्य की वृद्धि होती है। यह वाजीकरण भी है। इसका विशेष प्रभाव प्रजनन संस्थान पर पड़ता है। चरक की वृष्य गुटिका इसी का योग है।

मूसली—

मूसली दो तरह की होती है काली मूसली एव सफेद मूसली। इनकी जड़ों का ही चिकित्सा में व्यवहार होता है। दोनों मूसली वाजीकर, वीर्य वर्द्धक तथा पौष्टिक होती हैं। नपुंसकता दूर करने में लाभकर हैं। अश्वगन्धा तथा शतावर के साथ मिलाकर इसका चूर्ण बछल्ले के साथ चिकित्सक लोग व्यवहार करते हैं।

तालमखाना—

यह धान के क्षेत्रों में अधिक होता है। इसके बीज तालमखाना के नाम से बाजारों में बिक्री होता है। इसके बीज को १॥ से ३ ग्राम तक सेवन किया जाता है। इसके बीज वीर्यवर्द्धक हैं, शरीर को पुष्ट करते हैं। धातु पौष्टिक चूर्णों तथा योगों में प्रयोग होता है। वाग्भट् ने इसका बडा ही सुन्दर वर्णन किया है। यथा गोखरू आंवला तथा गुडूची का चूर्ण मधु के साथ लेवे तो वीर्यवर्द्धक, गोखरू को तालमखाना कौंच के बीज, शतावर तथा उडद के चूर्ण को प्रयोग करें। बल वीर्यवर्द्धक है।

❋ पुंसत्व शक्तिवर्धक योग ❋

प्रधानाचार्य डा० भागचन्द जैन आयुर्वेद बृह. आयु. रत्न, आयु वाचस्पति, आयु विभूति,
संचालक–भारतीय आयुर्वेद शोध संस्थान, संस्थापक–अखिल भारती आयु महा विद्या.,
जनता आयुर्वेद औषधालय, परकोटा वोर्ड, सागर सभाग, सागर (म. प्र)

—०❋०—

(१) दालचीनी १०० ग्रा, काली तिली ५० ग्रा भाग १ तोला–७-७ माशे की गोलिया वना लें। मैथुन के समय १ गोली खायें।

(२) अकरकरा २० माशे, रिहा के बीज २४ माशे, मिश्री २७ माशे इनको कूट पीस छानकर ३ माशे चूर्ण कर लें।

(३) लौंग ८ माशे, जायफल १२ माशे, अफीम १६ माशे, कस्तूरी २ रत्ती पीस कूटकर शहद मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। विषयभोग के पहले १-२ गोली बंगला पान में रखकर खायें।

(४) पान में जरा सा सुहागा स्त्री को खिला दें। स्त्री शीघ्र द्रवित हो जायेगी।

(५) असगन्ध, अकरकरा, जायफल, जावित्री, चिनिया कपूर, खुरासानी, वच, धुली भाग, रस सिन्दूर ७-७ माशे लेकर कूट पीसकर छान लें। २६ माशे मिश्री। जल के साथ चार माशे की गोलियां बना छाया में सुखा कर चांदी के वर्क लपेट दो। ४ या ४॥ माशे चूर्ण या गोली सन्ध्या समय मूली के रस के साथ खावें।

(६) छिपकली की पूछ का अगला भाग काट कर सफेद धागे में लपेट कर अगूठी में मढवा कर उस अगूठी को छोटी अगुली में पहन लो। जब तक अगूठी न उतरेगी तब तक वीर्य स्खलित न होगा।

(७) हीरा हींग को शहद में पीसकर लिंग पर लेप कर आधा घंटे बाद साफ कर दें। लिंग खड़ा रहेगा।

(८) सुबह-शाम २-२ छुहारा सेवन करते रहें। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। ८-१५ दिन में १ बार सहवास करना चाहिए।

विला स्पेशल की मालिश प्रतिदिन करनी चाहिए। हीरा हींग, शहद लिंग पर लगाना चाहिए। स्नान करते समय ४-६ लोटा पानी २ फुट ऊंचे से डालना चाहिए। लंगोट नहीं बांधना चाहिए। सहवास के बाद छुहारा डला दूध पीना चाहिए।

(९) उटगन के बीज, मदन मस्त, विदारी कन्द अमराज, सफेद मूसली ५०-५० ग्राम, लाजवती १० ग्राम, मिश्री २०० ग्राम समस्त द्रव्यो को पीस छानकर दो दो आने भर सुबह-शाम भैंस के दूध के साथ ४० दिन तक सेवन करें। घोड़े के समान मर्द बन जायेगा।

(१०) अकरकरा २० ग्रा,, असगंध १०० ग्रा, भाग २० ग्रा, शुद्ध दालचीनी ५० ग्रा, काली तिली ५० ग्रा, समस्त द्रव्यों को पीस छानकर शहद मे वेर समान गोली वना लें। १-१ गोली सुवह शाम पानी या दूध से सेवन करें। ६० दिन में समस्त नामर्दी के दोष ठीक होकर नामर्द से मर्द बन जावेगा। अजमाया हुआ प्रयोग है।

(११) असगन्ध १०० ग्रा, विधारा १०० ग्रा, गोरख मुंण्डी ५० ग्रा., शक्कर १०० ग्रा, समस्त द्रव्यो को पीस छानकर चूर्ण १ चम्मच सुबह-शाम दूध से ७० दिन तक सेवन करें। मर्द बन जायेगा।

लड़का ही होगा कन्या नहीं

मासिक धर्म से स्त्री निवृत होने पर ४-६-८ १०-१२ १४-१६ इन तिथियों में सम्भोग करने पर लडका ही होगा।

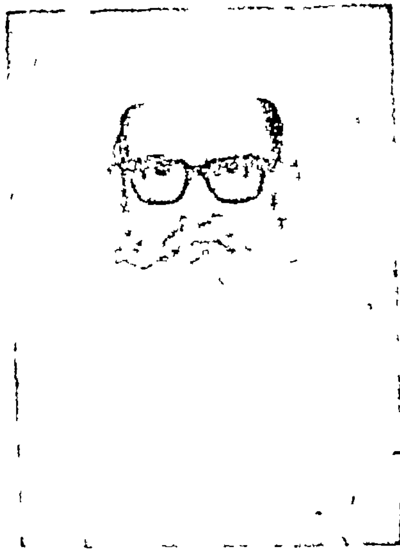
प्रयोग–१. पलासपत्र ४, शिवलिंगी ११ दाने, मोर शिखा ६ दाने, चादी के वर्क १, असगंध १ ग्रा खाली पेट स्त्री को प्रात काल वछडे वाली गाय के दूध से देवें। गर्भ रुकने के प्रथम मास से ३ माह तक। लडका होगा।

पहले जब गर्भ न ठहरा हो, पुरुष ब्रह्मचर्य से रहकर अश्वगन्धादि चूर्ण सेवन करके वीर्य में गाढापन लगायें।

★★

पुरुष रोगों में मेरे सफल प्रयोग

राजवैद्य पं० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित डी.एस.सी ए, त्रिवेणीगन्ज (नौबस्ता) लखनऊ-३



१. भूषोष्ण वातारि चूर्ण

ईसबगोल की भुसी, बबूल की फली, विरोजे का सत्व २०-२० ग्रा, गोदकतीरा, सिंगनरास, ताल मखाना, रार देशी, कलमीशोरा, सोना गेरू, छोटी इलायची के दाना, तज कलमी, फिटकरी की भस्म १०-१० ग्राम सबको कूट कपडछन करके रख लें। मात्रा ३ से ६ माशे तक दिन मे ३ बार कच्चे दूध से दें।

यह योग सुजाक (पूयमेह) तथा मूत्रावरोध व पेशाब मे जलन होने पर, मवाद हो जाने पर उत्तम लाभप्रद है।

२. क्लीवान्तक योग

२० तो कान्त लोह भस्म (वारितर) १ तो, शुद्ध भिलावे का चूर्ण २ माशा देशी कपूर मिलाकर घीकुवार रस मे घोटकर छोटी-२ टिकिया बनाकर एक मिट्टी के कुल्हड में रखकर कपड मिट्टी कर ५ सेर जंगली कंडो में रखकर फूक दें। फिर निकालकर १ तो शुद्ध तबकी हरताल २ माशे कपूर देशी मिलाकर घी कुवार के रस में घोटें, टिकिया बनाकर कुल्हड मे रखकर फूक दें। फिर निकालकर १ तो. शुद्ध गन्धक, २ माशा कपूर देशी मिलाकर घीकुवार के रस मे घोटकर टिकिया बनाकर उसी तरह फूक दें। इसमें १ तो शुद्ध पारद २ माशे कपूर मिलाकर घीकुवार के रस मे घोटकर फूक दें। इस तरह प्रत्येक को ३-३ आच दें। बाद मे निकाल कर पीस लें। ५ तोला बीरबहूटी लेकर कढाई में डाल करजला दें और राख को मुह से फूककर धीरे से उड़ा दें। शेष जो बचे उसे इस भस्म मे मिला दें। खरल में खूब घोटकर शीशी में भरलें। मात्रा १-१ रत्ती सुबह शाम मक्खन या मलाई से दें।

यह योग नपुंसकता नाशक, शक्तिवर्धक, श्वास रोग नाशक, गर्भदायक श्वेत प्रदर रोग मे हितकारी है।

— पृष्ठ ३१६ का शेषांश —

स्नेह मार्दवकृत स्निग्धा बल वर्णकरस्तथा।

(सुश्रुत)

स्निग्ध वातहर श्लेष्मकारि वृष्य वकायपम् ॥

(भावप्रकाश)

अश्वगन्धा का मधुर रस शरीर को सात्म्य होने से सप्त-धातुओ को बढाता है। आयु की वृद्धि करता है। प्रीणन, जीवन, तर्पण, बृंहण और शरीर को दृढ़ बनाता है।

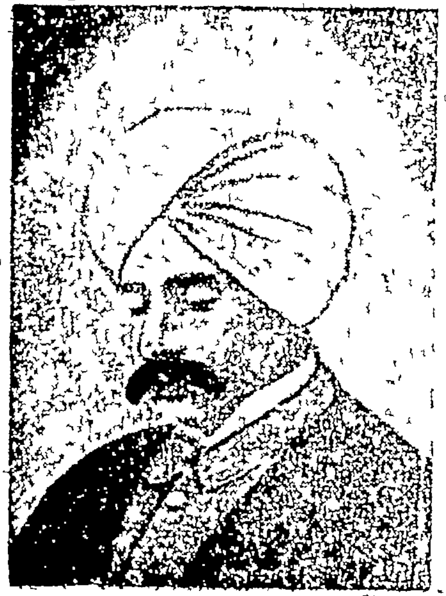
अश्वगन्धा उष्णवीर्य है। अत शुक्र क्षय मे वात वृद्धि को शांत करता है। आवरण मे कफ का जो अवरोध होता है, उसको तोडकर दीपन पाचन गुण से आहार रस को पकाकर धातुओ का पोषण करता है। अश्वगन्धा का प्रयोग बलप्रद है।

कामशोक भयाद वायु। कामोत्तेजना की अतृप्ति से नाडी संस्थान की गतिविधिया भी प्रक्षुब्ध होती हैं। जिससे अनिद्रा भय और मनोद्वेग का प्रादुर्भाव होता है। अश्वगन्धा बल्य एव निद्राजनक होने से मन का प्रसादन करके सभी विकारो को निर्मूल बनाती है।

विविध पुरुष रोगों पर अनुभूत प्रयोग

कवि विनोद स्व० प० ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्यभूषण

—✱—



१—गर्म दूध मे घी, मिश्री, शहद तथा एक चुटकी पीपल का चूर्ण मिलाकर नित्य प्रति पीना बहुत पुष्टि-दायक और रसायन है। बोलिम्बराज में तो लिखा है कि घी दूध मिलाकर पीने के समान कोई पौष्टिक योग ही नही।

२—कौंच बीज और तालमखाना का चूर्ण १-१ तोला गाय के धारोष्ण दूध के साथ खावें तो वीर्य कभी निर्बल न होगा और पुरुषार्थ खूब बढ़ेगा।

३—कौंच बीज, गोखरू, उटगन बीज समभाग चूर्ण करके रखें और १ तोला चूर्ण १ सेर दूध में पकावें। गाढ़ा हो जावे तो मिश्री मिलाकर पीवें। यह सुश्रुत का योग है, वे लिखते हैं—

इसको खाकर पुरुष रात भर मैथुन-शक्ति से आनन्दित रहते हैं।

४—उड़द, विदारीकन्द, उटङ्गन बीज समभाग चूर्ण करके २ तोला गाय के दूध में औटावें। जब गाढ़ा हो जावे तो मिश्री डालकर पीवें। लिखा है कि इसके प्रयोग से पुरुष रात भर चिड़े के समान मैथुन में प्रवृत्त रह सकता है।

नोट—ऐसी गाय का दूध, जिसने पहिली ही बार बछड़ा दिया हो और बछड़ा दो तीन मास से कम आयु का न हो, उस गाय को खाने के लिए उड़द के पत्ते, फली आदि दिये जाते हों, उस गाय का दुग्ध अत्यन्त पौष्टिक और बलकारी होता है। यह भी सुश्रुत में ही लिखा है।

५—कौंच बीज और उड़द पीस कर रखें। इन्हें ४ तोला दूध में औटाकर खाया करें, इससे वीर्य गाढ़ा हो जावेगा।

६—विदारीकन्द का काढ़ा १ तोला घृत और दूध के साथ पिये तो बूढ़ा भी जवान हो जायगा।

७—चार तोला उड़द पीस कर मधु और घृत मिला कर चाटें और फिर ऊपर से दूध पीवें। इससे पुरुष अश्व के समान हो जाता है।

८—गेहूं और कौंच बीज का दलिया बनाकर दूध में डालकर खीर बनावें और घृत मिलाकर खावें। मीठा करने के लिये मधु या मिश्री मिला सकते हैं।

९—पीपल वृक्ष के फल, जड़, छाल और कोंपल इनसे सिद्ध किया हुआ दूध (अर्थात् इनका काढ़ा करके दूध में डाल कर औटावें) और खाड व मधु मिला कर पीवें तो चिड़े की तरह मैथुन शक्ति होती है।

१०—विदारीकन्द को विदारीकन्द के ही रस में दो दिन खरल करके उसमें घृत और मधु मिला कर चाटा करें। इससे दस स्त्रियों का संग कर सकते हैं।

११—इसी प्रकार आमला के चूर्ण को आमला के रस की पुट देकर (या ७ दिन खरल करके) खाड़, मधु और घृत मिलाकर चाटें और ऊपर से दूध पीवें तो इससे ८० वर्ष का बूढा भी युवा हो सकता है।

नोट—इन योगों में जो शब्द वहां लिखे हैं वही हमने उद्धृत कर दिये हैं। ऐसे गुण आजकल के मनुष्यों पर तो देखने में नही आते। हा, देर तक खाते रहने से अच्छा लाभ होता है।

कुछ और ऐसे ही प्रयोग यहां पर लिखे जाते हैं।

पुष्टिवर्धक कतिपय हलवे—

१२—हलवा बनाने की तरकीब साधारण है। जैसे-सूजी या गेहूं का आटा बराबर घी में भूनें। जब लाल हो जावे तो सूजी से दुगुनी मिश्री में, सूजी से चार गुना पानी डाल कर बनाई हुई चाशनी को इसमे डाल कर मिला देवें, ताकि हलवा की तरह हो जावे।

इसमें मगज बादाम चार, मगज नारियल, किशमिश, चिलगोजा मिला लेना चाहिए। इस हलवा को अधिक पौष्टिक बनाने के लिये आटे के बराबर बादाम पीसकर मिलादें तो मस्तिष्क और शरीर के लिये अति पुष्टिकर होगा, परन्तु पानी इसमें कम डाला जावेगा। इसमें सफेद चने का आटा मिला लिया करें तो मांस-मज्जा को बढ़ाता है। अगर उड़द और चने की दाल का हलवा बनावें तो शारीरिक तथा पुंसत्व शक्तिवर्धक है। यदि मूग की दाल का बनावें तो गर्म प्रकृति वालो को हितकर है तथा उन स्त्रियो को जिन्हे श्वेत प्रदर की शिकायत हो अति गुणप्रद है।

१३—सिंघाडे का भी हलवा बनाया जाता है। इसी प्रकार सिंघाड़े के आटे को घी में भूनकर चाशनी डालते हैं। पानी जितना खप सके। यह वीर्य को गाढ़ा करता है और शुक्रमेह, शीघ्रपतन आदि को लाभदायक है।

कई लोग निशास्ता का भी हलवा बनाते हैं। यह सूजी तथा आटे की अपेक्षा नजला जुकाम को अधिक लाभदायक है। इस प्रकार शीत ऋतु में बहुत से हलवे बनाकर मनुष्य शक्ति उपार्जित कर सकता है। ऐसी खुराकें खाने वाले को व्यायाम भी खूब करना चाहिए ताकि वह खुराकें शरीर का भाग बन जावें। बिनौला (कपास का बीज) कूट कर छान लें तो इसकी गिरी निकल आती है। इसको वैसे ही या किसी आटे में मिला-कर हलवा बना कर खाना शरीर के लिए पुष्टिकर है। इसमे चिलगोजा की गिरी मिलाकर बनावें तो बड़ी बड़ी पौष्टिक औषधियों की समानता करता है।

गेहूं के लड्डू—

यह लड्डू मास मज्जा को बढाते हैं और मस्तिष्क तथा पुंसत्व शक्ति को भी बढ़ाते हैं—

१४—मिश्री, गेहूँ का आटा १००-१०० तोला, घी ५० तोला, शहद ३५ तोला, गाय का दूध ५ तोला। सबको एकत्र करके धीमी आग पर पकावें। यहां तक कि बिलकुल ही पक जावें। कच्चा रहने से जल्दी खराबी हो जाती है। फिर १-१ छटाक के लड्डू बनावें। एक या दो दैनिक रात्रि को सेवन करें। इससे पुरुष और स्त्री में प्रेम बढ़ता है।

शक्तिवर्धक मोदक—

१५—कद्दू, तरबूज, पेठा, घिया, खरबूजा, खीरा, ककडी, काहू इन सबके बीजों की गिरी हरएक १०-१० तोला लें। कीकर का गोंद ४० तोला, मखाने की खील २० तोला इन सब चीजों को घी में तल लें। इतना ही भूनें जिससे कूटने पर बारीक हो जायें। सब गिरियों को एक जगह और गोंद व मखाना को जुदा जुदा भूनें। फिर खूब भूनकर और कूट कर सबको मिलालें और दो सेर पक्की मिश्री की चाशनी करें और तार बधने पर सबकी सब चीजें मिला दें। बाद मे ५ तोला छोटी इलायची के दाने भी डाल दें। इन सबको मिलाकर अच्छी तरह ठण्डी होने पर २-२ तोला के लड्डू बांध लें। एक खुराक में १ लड्डू दें। जो अधिक पचा सके, वह अधिक भी खा सकता है। जिसको एक भी न पच सके वह इससे भी कम खावें। ऊपर से जरा गरम दूध मिश्री डालकर पीवें। यह हर प्रकृति के अनुकूल होते हैं और प्रत्येक ऋतु मे खाये जा सकते हैं। बालकों को बाजारू लड्डुओं की जगह यही लड्डू दिया जावे तो बहुत पुष्टिकर होता है। इन्हें प्रत्येक ऋतु मे जो लोग खावेंगे उनको शिर पीड़ा और कटि पीड़ा कभी न होगी। यह एक प्रकार का उत्तम रसायन है और अत्यन्त उत्तम स्वादिष्ट बनते हैं।

शरीर तथा मस्तिष्क पुष्टिकर

[वीर्य गाढ़ा करने वाली तथा शरीर पौष्टिक विधियाँ]

१६—उड़द की दाल (धुली हुई) लेकर चक्की मे पीस लें। उड़द का आटा, घी ३-३ सेर, गोंद कीकर, गोंद भिम्वरी, बादाम की गिरी तीनों १-१ पाव। चारो मगज किशमिश दोनों १०-१० तोला। नारियल, छोटी इलायची, पिस्ता तीनों १-१ छटांक। खांड ४ सेर, खोया १ सेर। घी को आग पर गर्म करें और गोंद लेकर डाल दें, जब यह यह फूल कर तल जावे और लाली आ जावे तो शीघ्र निकाल लें। फिर गोंद भिम्वरी डाल दें। यह डालते ही फूल जाता है। ख्याल रहे कि जल न जावे। इसको भी निकाल कर पृथक रख लें। बादाम की गिरी पानी मे भिगोकर छील लें और किशमिश को छीलें तथा पिस्ता को छोटा-छोटा करें। नारियल को कुतर लें। फिर घी मे आटा (उड़द की दाल का) भूनें। जब आधा भुन जावे तो खोया डाल दें और भूनें, जब यह सब लाल हो जावे तो उपर्युक्त सब चीजें मिलाकर ४॥ सेर खाड़ की चाशनी तारी करके सब उसमें डाल दें और पृथक रखें। जब ठण्डी होकर गाढ़ी हो जावे तो पिन्निया बनावें और एक चिकने बर्तन में रखें। चांदी या सोने के वर्क जो मिलाना चाहे मिला लें। प्रतिदिन ५०-१०० ग्राम तक खाया करें। ऊपर से दूध पीवें तो अच्छा है। इससे वीर्य गाढा होता है। मस्तिष्क की पुष्टि होती है और मस्तिष्क की निर्बलता के कारण हुई सिर पीडा दूर होती है।

१७—जौ, गेहू, चावल, उड़द का आटा लेकर इनमे थोडी पीपल मिलाकर और दूध मे गूंथ कर गाय के घी में पूरी तल कर खाया करें और इसके अनन्तर खाड़ मिलाकर दूध पिया करें या अलग दूध में मिलाकर खावें। यह योग शक्तिवर्धक है और वीर्य को गाढा करता है। पीपल होने के कारण भारी भी नही है। सदा खा सकें तो कभी शक्ति कम न होगी।

शक्तिदायक पूरी

१८—उड़द और चावलों को पीस कर आटा बनावें और इस आटे को गूंथ कर पूरी बनाकर घी मे तल लेवें। नमक आदि के बिना यह पूरी खाकर ऊपर से दूध (शहद और मिश्री मिला हुआ) पीवें तो बहुत शक्तिदायक है। ऐसी वस्तुयें तो नवाब-राजे बहुधा खाते ही रहते हैं।

शारीरिक तथा दिमागी शक्ति बढ़ायें

चावलों की खीर—

खीर को यद्यपि प्रत्येक मनुष्य जानता है, परन्तु यदि इसे पूरा लाभदायक बनाना हो तो इसे कुछ काल तक नित्यप्रति खाना चाहिये। तब न केवल शक्ति ही देती है बल्कि साथ ही शरीर को भी सुन्दर बनाती है और मस्तिष्क को पुष्ट करती है। साथ ही शीघ्रपतन को लाभदायक और शुक्रमेह को भी दूर करती है।

१९—आध पाव चावलो को पहले पाव भर घी में भून लो। बहुत जलने न दें। फिर १॥ सेर दूध लेकर इसमें केशर १ रत्ती, छोटी इलायची, दालचीनी दोनो १-१ माशा पीसकर मिलावें और आच पर रखें। जब दूध तीन पाव रह जावे तो चावल घी सहित उसमे डाल दें और नरम आग पर पकने दें। कुछ दिन अवश्य खायें।

नारियल की खीर—

२०—नारियल को बारीक कुतर लेवें और दूध मिला कर नरम आग पर पकावें। जब खीर की भाति हो जावे, तो इसमें घी डालकर पकावें और मिलाकर खा जावें। इस खीर के खाने से पतले लोग मोटे होते है, शारीरिक शक्ति बढ़ती है और मस्तिष्क ताजा होता है। शरीर पीड़ा दूर होती है, रक्तपित्त दूर होता और वीर्य पुष्ट करती है।

जलेबी—जो कि शरीर को मोटा करने वाली और शक्तिवर्धक हैं—

२१—उड़द (धुले हुए) का आटा, निशास्ता मैदा, सफेद मूसली का आटा, कतीरा बारीक किया हुआ प्रत्येक १-१ सेर। बादाम, पिस्ता, खीरा की गिरी, रीठा की गिरी, नारियल, बडा मुनक्का, छुआरा, इलायची का दाना प्रत्येक १-१ तोला। जायफल, जावित्री, पान की जड़ तीनों २-२ माशा। केवड़ा २ तोला, उड़द का आटा, निशास्ता, मैदा, सफेद मूसली का आटा, कतीरा एक बर्तन में डालकर गाय के १ सेर दूध में बादाम, पिस्ता,

खीरा, रीठा, नारियल के बीज निकालकर, मुनक्का, छुहारा तथा इलायचीदाना खूब पीस-छान लिया जावे और यह दूध आटे मे मिलाकर जाविश्री, जायफल, केवडा पान की जड डालकर गरम जगह मे रख आवे। जब खमीर उठ आवे तो किसी हलवाई से जलेबी बनवा लें। यह काम अभ्यास पर निर्भर है। मगर इसकी तरकीब यह है कि यदि खमीर तैयार हो जावे तो थोडा मैदा और मिला लिया जावे और एक कपडे मे छेद करके खमीर इसमे मिलाकर जलेबी की तरह गरम किये हुए घी मे छोडकर तल ली जावें और उसी समय चाशनी मे छोडते जावें और निकाल कर सुरक्षित रखते जावे। यह अद्भुत पुंस्त्वशक्ति देने वाला और शरीर के लिए पुष्टिकर योग है, जिसको खाने मे बहुत स्वाद आता है। एक-२ जलेबी प्रातःकाल निराहार ही दूध मे डालकर खा लिया करें। खटाई तथा मैथुन से परहेज रखें। यह शरीर को पुष्ट करने वाला अद्वितीय योग है।

चने के लड्डू—

२२—चने की दाल (छिलका उतारी हुई) १ सेर रात को दूध मे भिगो रखें और सवेरे उसको सिल-बट्टे से पीसकर और फिर घी मे इसके बडे तल लेवें। इन गरम गरम बडों को हाथ से बारीक करते जावें। फिर इनको दोबारा घी मे भूनें और जब लाल हो जावे इसमे सब मगज और खांड समभाग डालकर एक एक छटांक के लड्डू बनावें। ये पुंस्त्व शक्ति बढ़ाने वाले और शीघ्रपतन को दूर करने वाले हैं। मूंग की दाल के भी ऐसे ही बना सकते हैं जो स्त्रियों के लिये अधिक लाभदायक हैं।

निशास्ता के लड्डू—

जो हृदय, मस्तिष्क, यकृत और सारे शरीर को बहुत ही विशेष लाभ पहुंचाते हैं।

२३—निशास्ता, कीकर का गोंद दोनो १-१ छटांक घी, खांड १-१ सेर, पिस्ता की गिरी ४ छटाक, चिलगोजा की गिरी, किशमिश, हरे नारियल की गिरी, तीनो २-२ छटाक, अखरोट की गिरी २ छटांक, शतावर, तालमखाना, ईसबगोल की भुसी, सफेद मूसली, शकाकुल, मिश्री प्रत्येक २-२ तोला, खोया आधासेर, जाविश्री, छोटी इलायची दोनों १-१ तोला।

विधि—घी मे गोंद भूनकर प्रथम रखलें, फिर घी में निशास्ता भूनकर इसमें सब मगज, दवाइयां, खोया और गोंद मिलाकर रख छोडें। फिर खाद की चाशनी बनाकर तैयार की हुई चीजों को मिलाकर लड्डू बनावें। प्रातःसायं २५-५० ग्राम मात्रा मे निराहार खावें।

नारियल के लड्डू—

२४—जाविश्री, जायफल, केशर तीनो ६-६ मा। ईसबगोल की भुसी १ तोला।

एक नारियल लेकर इसमे छेदकर और उपरोक्त चारों चीजें डाल दें, फिर वही नारियल का टुकडा लेकर वहां जरा सा आटा लगा दे और उसे ५ सेर दूध मे उस गोला (नारियल) को डाल दे और साथ ही छोहारा, चिरौंजी, अखरोट की गिरी, बादाम की गिरी, नारियल की गिरी प्रत्येक १-१ छटाक डाल दें। जब खोया हो जावे तो उतार कर पीस लें और बारीक होने पर दो सेर के लगभग मिश्री पीसकर मिला देवें। एक-एक छटाक के लड्डू बनावें। आधा या एक नित्य प्रति दूध के साथ खावें।

शक्कर आना, मधुमेह और शीघ्रपतन को दूर करता है। शक्ति को देता है, वीर्य को गाढा करता है और स्तम्भन शक्ति पैदा करता है।

पुष्टिकारक दूध—

२५—सुश्रुत मे लिखा है कि पीपल वृक्ष के फल, जड़, छाल और कोपल इनसे सिद्ध किया हुआ दूध (इनका काढ़ा करके दूध मे डालकर उबालें) थोडी खाड और शहद मिलाकर पीवें, तो चिडे की भांति शक्तिवान हो।

उड़द की खीर—

२६—उडद की दाल घी में भूनकर दूध मे पका कर रोजाना खाया करें तो वीर्य बढेगा और गाढा होगा। यह शीघ्रपतन को भी हितकर है।

उड़द के लड्डू—

२७—उड़द की दाल का आटा, गेहू का आटा दोनों २०-२० तोला, छिलका उतारा हुआ जौ का आटा और चावलों का आटा २०-२० तोला। इनको कड़ाही मे गाय का घी डालकर भून लें। फिर १॥ सेर खाड़ की चाशनी तीन सेर पानी में डाल कर करें। जब यह चाशनी पाक बनने योग्य हो जावे तो उपर्युक्त चीजें इसमें डाल दे और १-१ छटांक के लड्डू बनावें। रात को खाकर ऊपर से दूध पीवें। खट्टी, खारी वस्तुओ से परहेज करें। इसके सेवन से वीर्य गाढ़ा होता है और बहुत शक्ति आती है।

चावल तथा उड़द की खीर—

२८—उड़द की दाल और चावल जुदा जुदा घी मे भूनकर मिला लेवें। इनको इच्छानुसार दूध मे उबाल कर खीर बनावें और खाकर रात को सो रहे। ऐसे ही प्रतिदिन करने से मस्तिष्क शक्तिवान् हो जाता है और मसाने की गर्मी आदि सब रोग दूर हो जाते हैं। यह पुंसत्व-वर्धक और वीर्य को गाढ़ा करने वाला है एवं अन्य सब वीर्य रोगो मे लाभ देता है।

पुंसत्ववर्धक दूध—

२९—प्याज का रस आध सेर, गाय का दूध आध सेर दोनो को मिलाकर जोश दें। जब आधा सेर रह जाय तो गरम गरम पीलें। इसके पश्चात् पान का बीड़ा चालें। पुंसत्व-शक्ति अत्यन्त बढ़ती है। अनुभूत है।

पुंसत्ववर्धक खीर—

३०—उड़द की धुली हुई दाल २ सेर, कौंच की गिरी २ सेर दोनों को कूट छानकर गाय के घी मे भूनें। एक तोला लेकर पाव भर गाय के दूध में जोश देकर मिश्री मिलाकर पीवे।

वज्रशालिनी योग—

३१—सफेद पुनर्नवा की जड़ को सेमल के रस को सात भावना देवें। फिर इसके बराबर सेमल का गोंद और दोनों के समान गन्धक मिलावे। चूर्ण करके रखलें। ३ माशा सेवन करें। पीछे ८ तोला दूध पीवें। यह अवश्य से भी गमन करावेगा। यदि स्त्री पास न हो तो मृत्यु हो सकती है।

धातुक्षीणता और शुक्रमेह की अचूक औषधि—

३२—वरगद (बड़) के पत्र जो वृक्ष के साथ ही पक कर पीत हो गये हो, तोड़ लें। आशय यह है कि पीले भी हो और ताजा भी हों, उनको हाथ से ही तोड़ तोड़ कर एक बड़े मटके के भीतर भरें और दबा दबा कर भरें। फिर उसमे इतना पानी डालें कि वह मटका पानी से भर जावे। मटका ऐसा होना चाहिए कि जिसमें पहले दो चार दिन पानी रहा हो, ताकि औषधि का पानी उसमे शुष्क न हो जावे। आठ पहर के पश्चात् पानी समेत लोहे के एक बड़े कड़ाहे में उसे डालदें और नीचे मन्द अग्नि जलावें। जब आधा पानी रह जावे, उतारकर किंचित् शीतल होने पर उसको खूब मलें, यहां तक कि सब रस निकल आवे। फिर छानलें। इस छाने हुए पानी को मन्द अग्नि पर पकावें। जब यह मधु के समान गाढ़ा हो जावे तो उतार कर निम्नलिखित औषधि डालदें। यदि रस १० तोला हो तो औषधियों की मात्रा इस प्रकार होगी—

बङ्गभस्म न. १ एक तोला, इमली की गिरी २ तोला, प्रवाल भस्म १ तोला, बबूल की फली जिनमें बीज न पड़े हो १॥ तोला। सब औषधियों को मिलाकर चने के समान गोलियां बनावें। मात्रा—१-१ गोली प्रातःसाय। यदि प्रकृति गरम है तो ईसबगोल का छिलका २ माशे मे १ गोली रखकर शर्बत नीलोफर के साथ खावें। यदि प्रकृति बावज तथा कफज है तो लौंग, केशर, जायफल, जावित्री, वज, दालचीनी—ये सब समान भाग लेकर महीन पीसलें और आधो रत्ती चूर्ण के साथ १ गोली थोड़ी मलाई में रखकर खावें। यदि रूक्षता करे तो चूर्ण की मात्रा और भी न्यून कर दें।

इन गोलियों से प्रमेह दूर होने के अतिरिक्त स्वप्न-दोष और शीघ्रपतन दूर होकर स्तम्भन बढ़ता है।

इमली—

३३—इमली के बीज निकाल लें और उनके २-२

३-३ टुकडे करके पानी मे ३ दिन भिगोवें, इससे छिलका सहज मे ही उतर जावेगा (इनको भूनकर जो छिलका उतारते हैं वह ठीक नही है। इससे उसकी शक्ति जाती रहती है। छिलका उतारने की उपरोक्त विधि बहुत उत्तम है। पानी के साथ दुग्ध डाल दें तो और भी उत्तम है।

३४—कचूर नागरमोथा, धाय के फूल प्रत्येक ४०-४० तोला। पीली हरड़, शीतलचीनी, अकरकरा, देवदारु, कालीमिर्च प्रत्येक २०-२० तोला। लोवान, लौंग, इलायचीदाना, जायफल, खुरासानी अजवायन, अजमोद, पान की जड़, तुखम मखाना, नागकेशर, वायविडग, श्वेत चन्दन, हरमल, भाग, वहेड़ा आमला, प्रत्येक १०-१० तोला। सब औषधियों को जवकुट करके एक मन पानी मे दो दिन भिगोकर उसका अर्क निकाले। जिस टोटी से अर्क जाता है, उसके मुख पर केशर कस्तूरी ६-६ माशा की पोटली बाधकर रख, ताकि अर्क उसमे से होकर पौष्टिक और सुगन्धित होता जावे, पृथक-पृथक सेवन करें, इसकी मात्रा-४ तोला है, प्रात. सायं दोनों समय पीना चाहिए। यदि पहले अर्क के साथ मिलावें तो ३ तोला यह और ६ माशा प्रथम अर्क मिलाकर प्रात. साय पी सकते हैं।

महत् वाजीकरण औषधि—

३५—सिंगरफ भस्म, सखिया भस्म, लोह भस्म, प्रवाल भस्म, वङ्ग भस्म, मोती भस्म, कुक्कुटाण्ड भस्म, भीमसेनी कपूर, चांदी भस्म, स्वर्ण भस्म, कृष्णाभ्रक भस्म, माडूर भस्म, सगजराहत भस्म, त्रिधातु (कलई सीसा, जस्ता) भस्म, पारद भस्म, सिघाड़ों की मैदा, समुद्र शोष ब्राह्मी, गोखरू, मालकांगनी, मखाना, भाग के बीज, काले धतूरे के बीज, जुन्दवेदस्तर, अफीम, कस्तूरी, चिरौंजी, शिलाजीत, इमली की गिरी, सालव, तालमखाना, मोच रस, मूसली स्याह, मूसली श्वेत, खरैटी, सेमल का मूसला, कौंच बीज, जायफल, गगेरन के बीज, पलाश के बीज, लौंग, जावित्री, अकरकरा, केशर, तज, श्वेत कतीरा, गाजर के बीज, शकाकुल, छोहारे, बहमन श्वेत, वहमन लाल, तोदरी लाल, तोदरी श्वेत, मस्तगी, दालचीनी हरड़ का वक्कल, आमला, बहेड़े की छाल, श्वेत चन्दन, वंशलोचन, श्वेत इलायची, शुद्ध कुचला, बबूल की फली, चन्दन, बहुफली, कपास की गिरी सब औषधिया समान भाग लेकर कूट पीसकर बारीक करके ईसबगोल के लुआब में २-२ रत्ती की गोलिया बनावे।

मात्रा—१ या २ गोली प्रात. गाय दूध के साथ।

गुण—धातु सम्बन्धी सर्व रोगों को हितकर है। प्रमेह, शुक्रमेह, शीघ्रपतन, नपुंसकता आदि सब रोगों को दूर करती है। घृत, दुग्ध बहुत पचाती है। पट्ठों को पुष्ट करती है। साधारणावस्था मे जबकि कोई विशेष रोग न हो और वीर्य के सर्व रोगों की 'टानिक' सेवन करने की इच्छा हो, तो इसको बनाओ।

जो निर्धन लोग हैं और वह भस्मो को सम्मिलित नही कर सकते, वह केवल काष्ठादिक औषधियों का चूर्ण तैयार करके ३-३ माशा प्रात. सायं गाय के दूध के साथ खावें तो भी वीर्य बढ़ता है और प्रमेह नष्ट होकर शीघ्रपतन को पूर्णतः लाभ होता है।

उत्तम पौष्टिक व स्तम्भक

३६—श्वेत संखिया भस्म ४ माशा, सिंगरफ भस्म, केशर ६-६ माशा, अफीम ४ माशा सबको खरल में डालें और अर्क-प्याज ८ तोला, वट (बरगद) का दूध ३ तोला मिलाकर थोडा-२ डालकर खरल करना आरम्भ करे। जब सब मिल जावे तो गोली बनाले और श्वेत प्याज लेकर उसमे छिद्र करके वह गोली उसके भीतर डालकर ऊपर से वास की पतली तीली इस प्रकार लगावें कि मुख बन्द हो जावे। फिर गेहू का आटा गूध कर ऊपर से लेप करके गोला सा बनावें और उपलो को सुलगा दें, जब जल जावे तो उनके मध्य मे रख दें। जब ऊपर का आटा लाल हो जल जावे तो निकाल लें। फिर दूसरे प्याज मे इसी प्रकार डालकर करे। इसी प्रकार ५ प्याजो मे करें और भी जितने प्याज इस प्रकार के हो उन सबको कूटकर रस निकालें। फिर औषधि को इस रस मे खरल करें। रस खुश्क होवें पर मोठ प्रमाण वटी बनावें।

मात्रा—दैनिक १-१ गोली प्रातः सायं दुग्ध के साथ दें। गरम प्रकृति वालों को ईसबगोल के सत्व के साथ दें। २ से ६ गोली सामर्थ्यानुकूल तीसरे पहर लेवें। दूध मलाई खावें परन्तु खटाई, लवण वाले भोजनादि न खावें तो इच्छानुसार स्तम्भन होता है और दूध, घृत खूब पचता है। बल बढ़ाने में अनुपम है।

नोट—यदि संखिया भस्म व शिंगरफ के स्थान पर ये वस्तुयें शुद्ध और कच्ची भी डाली जावे तो भी लाभ अधिक होता है। जैसी वह भस्में उत्तम होंगी वैसा ही लाभ भी अधिक होता है। निम्नलिखित भस्मे अत्युत्तम हैं और इसीलिए नामर्द को पूर्ण मर्द बना सकती हैं—

३७—संखिया भस्म विधि—संखिया (श्वेत) १ तोले, मेंथी का पानी, अदरख का रस दोनों २०-२० तोला। संखिया को पहले मेंथी के रस में डालकर खरल करें यहां तक कि २० तोला शोषण हो जावे। फिर अदरख के रस में डालकर खरल करें। पश्चात् टिकिया बनाकर मेंथी (आध पाव) की लुगदी करके मध्य मे टिकिया देकर, ऊपर एक पतला कपड़ा लपेट देवें, फिर आग लगा देवे, यह अपूर्व बलकारी भस्म तैयार होगी। पहले ही दिन इसके खाने से बल प्रतीत होता है। मात्रा—१ चावल मक्खन में दें।

३८—शिङ्गरफ भस्म विधि—शिंगरफ ५ तोला, बैरोजा १ सेर। एक खुले मुंह वाले लोह पात्र मे डाल कर अग्नि पर रखें। अग्नि नीचे १ घण्टा मन्द रहे, फिर तेज करदें। ऊपर बैरोजा को भी अग्नि लग जावेगी। कुछ परवाह नहीं, जलने दो। जब बैरोजा जल जावे तो शिंगरफ को निकाल लें और एक कलछे में रख कर उसके ऊपर तेल फास्फोरस की बूंद गिराते जावें। यहां तक कि एक पाव फास्फोरस तेल शोषण हो जावे। फास्फोरस तेल डाक्टरी दुकानों से मिलेगा, इसको डालने से चमक सी निकलेगी।

पश्चात् इसी कलछे में—

मिजावा मालकांङ्गनी दोनों ५-५ तोला पीसकर डाल दें और इसके ऊपर घृत, मधु, दोनों ५-५ तोला डालकर मन्द, किञ्चित तेज और सतेज अग्नि क्रमशः दें। अर्थात् १२ घण्टे अग्नि देकर उतारें और शिङ्गरफ की डली निकाल कर फिर मिजावा, मालकागनी, घी, मधु ऊपर से डालकर चार पहर तक इसी प्रकार अग्नि दें। इसी तरह की एक और अग्नि दें। यह शाबरङ्ग की उत्तम भस्म होगी।

यदि बहुत ही पौष्टिक अद्वितीय भस्म बनाना हो तो आगे की विधि और करें—

इसके पश्चात इस पर आक (मदार) का दूध चुवावें, यहा तक कि १ सेर आक का दूध शोषण कर दें। इसके पश्चात् मदिरा का चोवा देकर चार बोतल शोषण करें। इसके पश्चात् आक के दूध (मदार) मे १० तोला कुक्कुटाण्ड भस्म खरल करके इस टिकिया पर लेप करदें और १० तोला कुक्कुटाण्ड भस्म एक मिट्टी के कूजे में डालकर इस टिकिया के नीचे ऊपर देकर, उसका मुख बन्द करके उस पर ३ कपरौटिया करें और ५ सेर उपलों की अग्नि दें। भस्म श्वेत से रङ्ग की तैयार होगी।

यह गोलियाँ सम्भोग के बाद खाली जावें तो सारी निर्बलता दूर हो जाती है। उदासी और सुस्ती जाती रहती है। दूध के साथ या वैसे ही जैसा अवसर हो, इनको अवश्य खाना चाहिए। यदि दैनिक खायी जायें तो शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और प्रमेह को दूर करने में विशेष गुणकारी हैं।

३९—श्वेत इलायची, जायफल, दालचीनी, अभ्रक-भस्म, ये १८-१८ माशा, सुपारी, गुलाब पुष्प १-१ तोला, श्वेत चन्दन, कस्तुरी १॥-१॥ माशा, स्वर्ण वर्क १८ नग, चादी वर्क २० नग, शिलाजीत असली १८ माशा, लोह भस्म २१ माशा, अर्क गुलाब में खरल करके चने समान गोलियां बनावें। केवल शिलाजीत भी १ रत्ती इसी प्रकार खाना बहुत हितकर है।

हस्तक्रिया-जन्य रोगनाशार्थ लिंग तैल

४०—कनेर की जड की छाल, नारियल, पारा, मीठा तेलिया, घुंघची श्वेत, मगज जमालगोटा सब १-१ तोला

एक सेर भैंस के दूध मे ८ पहर खरल करके छाया में शुष्क करें और जगली वेर प्रमाण गोलिया बनावें। फिर आतशी-शीशी में पाताल यन्त्र द्वारा तैल निकालें और शिश्नेन्द्रिय पर अच्छी तरह मालिश करें। ऊपर एरण्ड पत्र, पान पत्र या भोज पत्र बाधें और आहार पौष्टिक खावें, इससे नसो और पट्ठो मे बल भर जावेगा।

स्वप्नदोष नाशक उत्तम योग—

४१—बीजबन्द, दोनो मूसली, तालमखाना, समुद्रशोष, सरयाली, कौंच के बाज, सेमर छाल, मोलसिरी की छाल, सेमर का गोंद, इमली की मिगी, लिहसोड़े, ब्रह्मदण्डी, बहुफली, तज, मेदा लकड़ी प्रत्येक १-१ तोला, कीकर की कच्ची फली, गोखरु बड़ा प्रत्यक ६-६ तोला—चूर्ण करके सब औषधियों के समान भाग खाड मिलाकर १ तोला भर गाय के धारोष्ण दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करें। खटाई और वातल पदाथ सेवन काल मे वर्जित हैं।

उत्तम वटी—

यह शीघ्रपतन, स्वप्नदोष नाशक है। नोज तो साधारण है, परन्तु विचित्र आनन्ददायक गुणकारी है।

४२—इमली के बीजों के टुकड़े करके ३ दिन पानी में भिगोकर उसका छिलका दूर करें। फिर श्वेत मिगी को खरल मे डालकर खरल करें। बाद में समभाग मिश्री मिलावें, दोनों घुलकर पतले हो जावेंगे। खरल करते करते जब गाढ़े हो जावें तो गोलिया बनावें।

मात्रा—२ माशा प्रतिदिन दूध मे खावें। बहुत ही गुणकारी है। ३ माशा पानी या दूध के साथ तीसरे पहर यदि खावें तो रात को विचित्र आनन्द देखें।

लिंग तैलों का सरदार

[निर्बल रगों और पट्ठों का पूरा-२ इलाज]

४३—श्वेत सखिया, पीत सखिया, काला सखिया, लाल सखिया प्रत्येक ६-६ माशा इन सबको सिहुवसा (यदि ना मिले तो रीछवसा) के साथ खरल करें। ६ माशा चरबी मिलाकर एक दिन खरल करें। इसी प्रकार १० दिन तक करें। फिर—

पान १० नग, जायफल १ नग, लौंग २ नग, जमालगोटा ५ नग, बादाम गिरी १० नग, अकरकरा, श्वेत मोम, रेगमाही नर, लोहबान का जोहर ये सब ६-६ माशा, केशर, जावित्री ३-३ माशा, पिस्ता गिरी १२ माशा, वानर-पुरीष, मालकागनी १-१ तोला, कुचला १ नग, गोंद बील (गधे के पेशाब के नीचे की गाद) ५ तोला सबको एकत्र करके खरल करें और छोटी छोटी गोलिया आतशी-शीशी मे डालकर पाताल-यन्त्र द्वारा तैल निकालें। तिलाओ का बादशाह तैयार है।

गुण—किसी नस पर मलो, तैल खपने पर वह नस तत्काल कठोर मालूम होगी। ७ दिन के भीतर ही पर्याप्त बल उत्पन्न हो जाता है। रग इसका लाली पर होता है। यदि काला होजावे तो समझो कि कुछ खराब हो गया है।

वाजीकरण व धातुवर्धक योग—

४४—श्वेत मूसली, कृष्ण मूसली, बीजबन्द, गोखरु, तज, रत्नजोत, बहुफली, सोंठ, समुद्रशोष, शतावरी, सरयाला, कौंच बीज, छोटी दूधी, सेदासक, गोखरु, कतीरा, मोचरस, उटगनबीज, कीकरफली—प्रत्येक ३-३ माशा। सिघाड़ा, सगजराहत-भस्म ६-६ माशा, खाड़ सबके समभाग मिलाकर चूर्ण करें।

मात्रा—१ तोला भर दूध से खावें।

गाजर पाक

[प्रधानागो को बलदायक और वाजीकरण]

४५—गाजरें (मोटी छिली हुई गुठली रहित) कद्दूकश की हुई ३ सेर लेकर ९ सेर गोदुग्ध मे इतना उबालें कि खोयावत् हो जावें। फिर गोघृत १ सेर में भूनें। दो सेर गुड पानी मे घोल कर छान लें। फिर इसकी चाशनी करें और उपरोक्त खोया मिला कर खूब पकावें।

माष (उड़द) चूर्ण, चनो का चूर्ण १-१ तोला इन दोनों को गोघृत में मिलावें और ऐसा पकावें कि हलुवा हो जाय, थोड़ा और पकावें ताकि शीघ्र खराब न हो। फिर सालम पजा २ तोला, सकाकुल मिश्री १ तोला, बहमन श्वेत ८ माशा, सत्व ईसबगोल १ तोला, बशलोचन,

तोदरी रक्त, मूसली श्वेत, इन्द्रयव, वंगभस्म, श्वेत इलायची दाना ये सब ८-८ माशा इन सबको महीन पीस-छान कर मिलावें।

बादाम गिरी, फिन्दक गिरी, पिस्ता गिरी, नारियल गिरी, अखरोट गिरी, चिलगोजा गिरी, बिनोला गिरी, छुहारा गुठली रहित, खसखस श्वेत, श्वेत तिल, चिरौंजी प्रत्येक ५-५ तोला जो कतरे जा सकते हैं उनको कतर लें। शेष कूट कर डाल दें। फिर केवड़ा-अर्क ५ तोला मिला कर रखें। २-२ तोला प्रातः साय खायें।

४६—बूढ़ों को युवा बनाने वाला योग—छोहारा चूर्ण ४० तोला, उड़द की धुली हुई दाल का चूर्ण ४० तोला, इमली बीज की गिरी, जामुन की मींगी, तालमखाना, साचरस, कलौंजी तज, बड़ी इलायची के दाने, बहमन लाल, इन्द्रयव पिष्ट, उटङ्गन बीज, सालम मिश्री, सकाकुल मिश्री, ढाक का गोंद, कीकर का गोंद, बिनौले की गिरी, तोदरी श्वेत, बालबन्द, धपड़ा लाल, कटकटारा मूल प्रत्येक १-१ तोला। सेमल मूसली २ तोला, भुने चने छिलका सहित २ तोला, अम्बर विलायती ८ माशा, रूमी मस्तगी २ माशा। पहले छोहारों के टुकड़े-टुकड़े करके कटाई के रस में जिसको लोग भटकटैया भी कहते हैं, ३ दिन तक भिगो रक्खें। फिर शुष्क करके चूर्ण करें।

उड़द की दाल रात्रि को गाय के दूध में भिगो कर प्रातः साफ करके छाया में शुष्क करलें और पीस लें। फिर दोनों को घृत में भूनें। जब लाल हो जावें तो सबका चूर्ण करके एकत्र करें।

एक पाव पारद को ५ सेर पानी में औटावें। जब एक सेर पानी शेष रहे तो उतार कर पारा पृथक करें और सब औषधियों के समान भाग मिश्री इस पानी में घोलें और चाशनी तैयार करें। जब तैयार हो जावे तो थोड़ा गुलाब व केवड़ा सुगन्धि के लिए डाल कर सब औषधियों को डाल दें और ऊपर से—

बादामगिरी, चिरौंजीगिरी, पिस्तागिरी, नारियलगिरी सब १-१ तोला, दाख ४ तोला डालकर २-२ तोला के मोदक बनावें और प्रातःकाल ही बासी मुख एक मोदक खाकर ऊपर से आधा सेर दूध पीवें। २१ दिन तक स्त्री सहवास न करें। कई बार का अनुभूत है। यदि युवक के लिये बनाना हो तो पारा का पानी आवश्यक नहीं है, केवल जल ही डालें।

४७—महाशक्तिदाता लोह—दो मास खिलाने से अच्छा लाभ होता है। अद्वितीय योग कहना तो ठीक नहीं। पीछे जो सिंगरफ भस्म लिखा है वह इससे भी बढ़िया है। वैसे बहुत से योगों के साथ उत्तम के स्थान में अद्वितीय भी लिखा जावे तो उसका यह मतलब नहीं होता कि दूसरा कोई योग उसके समान नहीं हो सकता। अस्तु यह योग नीचे लिखा जाता है—

फौलाद चूर्ण २० तोला, श्वेत संखिया, हरताल वर्की, शुद्ध आमलासार गन्धक, शुद्ध पारा प्रत्येक ४-४ तोला, कपूर २ तोला।

पहले फौलाद चूर्ण २० तोला, श्वेत संखिया १ तोला, कपूर २॥ माशा। तीनों को एक घण्टा घृत कुमारी के रस में खरल करके मिट्टी के कूजे में भली-भांति बन्द करके ५ सेर उपलों की अग्नि दें। दूसरी बार फौलाद और हरताल वर्की १-१ तोला, कपूर २॥ माशा, घृत कुमारी के रस में खरल करके ५ सेर उपलों की आग दें। तीसरी बार उपर्युक्त फौलाद और आमलासार गन्धक १ तोला, कपूर २॥ माशा, घृत कुमारी के रस में १ घण्टा खरल करके ५ सेर उपलों की अग्नि दें। चौथी बार उपर्युक्त फौलाद और पारा १-१ तोला, कपूर २॥ माशा घृत कुमारी के रस में १ घण्टा खरल करके ५ सेर उपलों की अग्नि दें। पांचवी बार फौलाद, श्वेत संखिया १-१ तोला और कपूर २॥ माशा घृत कुमारी के रस में १ घण्टा खरल करके ५ सेर उपलों की अग्नि दें। छठी बार वही फौलाद और वर्की हरताल १-१ तोला, कपूर २॥ माशा घृत कुमारी के रस में खरल करके ५ सेर उपलों की अग्नि दें। सातवीं बार वही फौलाद और आमलासार गन्धक १ तोला, कपूर २॥ माशा डालकर घृत कुमारी के रस में १ घण्टा खरल करके ५ सेर उपलों की

अग्नि दें। आठवी बार पारा फिर पहिली चीजें इसी प्रकार १६ अग्नि दें भस्म तैयार होगी। जितनी भस्म हो उतनी ही शुष्क वीर बहूटिया मिलाकर कढाही मे डाल अग्नि पर रखें। वीर बहूटिया जल जावें तो फूक मार कर उनको निकाल दें। भस्म खीच सी होगी। माश्रा ४ चावल, मक्खन में दें। यह भस्म दैनिक अग्नि देने से १६ दिन में तैयार हो जाती है। हम ६४ अग्नि देकर भी बनाते हैं। उत्तम वाजीकरण है। बताया गया है कि तीन मात्राओं से ही नपुंसकता दूर होती है। पूयमेह, शोष रोग, यकृत की निर्बलता आदि मे लाभदायक है।

इस फौलाद भस्म को ठीक २० तोला उत्तम रेता कर हमने बनवाया। जब अग्नि समाप्त हुई तो बहुत उत्तम रङ्ग की भस्म तैयार हुई, परन्तु जब वीरबहूटी के साथ अग्नि पर रखा तो रग काला हो गया। हमने चारों अन्तिम वस्तुओ में १-१ अग्नि और दी और तब वह उन्नावी रङ्ग की बहुत उत्तम भस्म हुई।

हमने यह योग कई रोगियों को दिया है। गुण करता है। यदि कोई इसको २ मास तक सेवन करे तो अवश्य शरीर को गाठ देगा। चेहरे को लाल करेगा।

परीक्षित वाजीकरण प्रयोग—यह योग वास्तव मे वाजीकरण है। शीघ्रपतन को दूर करता है, शुक्रमेह का नाशक है और स्वप्नदोष को गुणकारी है। विलक्षणता यह है कि विष्टम्भी नही है बडा सुगम योग है। प्रत्येक धनी-निर्धनी के काम आ सकता है—

४६—तज, तालमखाना, श्वेतमूसली, काली मूसली, उटगन, शतावर, शकाकुल, बहमन सफेद, बहमन लाल, बीजबन्द, कौंचबीज, मोचरस, गोखरू, पिस्ता की गिरी, श्वेत इलायची, कद्दू की मींगी, तरबूजे की मींगी, भांग के बीज प्रत्येक ८-८ तोला। बडी इलायची १६ तोला, बहुफली १६ तोला, सालब २६ तोला, वंशलोचन १ तोला, बादाम की गिरी ४१ तोला, त्रिफला १० तोला, मिश्री ३ सेर। मिश्री की चाशनी बना औषधिया कूट छान मिलावें। १-१ तोला प्रात साय दूध के साथ खावें।

थोड़े व्यय से बढ़िया योग

४८—आमला ६ तोला, सत गिलोय, गोखरू, वशलोचन, श्वेत इलायची प्रत्येक १-१ तोला। सबको कूट पीसकर चूर्ण बनाकर रखें। इनमें से १ तोला चूर्ण मक्खन और मधु दोनों २ तोला मिलाकर खा लिया करें। ऊपर से दूध पीवें।

धातु संजीवनी

५०—कस्तूरी २ भाग, स्वर्ण १ भाग, चादी वर्क ३ भाग, केशर, जावित्री दोनों ४-४ भाग, श्वेत इलायची दाना ५ भाग, जायफल ६ भाग, वंशलोचन ७ भाग।

इन सबको बकरी के दूध या पान के रस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलिया बनावें।

मात्रा—एक या दो गोली मलाई या मक्खन या दूध के साथ खावें तो वीर्य गाढा हो, पुरुषार्थ आवे, शीघ्रपतन दूर हो। इसका नाम धातु सजीवनी है। शुष्क खराब वीर्य को भी यह पुन: सन्तान उत्पन्न करने योग्य बनाती है।

वाजीकरण योग—यदि कोई मनुष्य इस योग को नियमपूर्वक सेवन करेगा तो नपुंसकता नष्ट होगी और पूर्ण आयु को प्राप्त होगा—

५१—ताम्र चूर्ण शुद्ध १ तोला को छोटी कटाई के रस मे यहा तक खरल करें कि एक सेर रस खप जावे। जब लुगदी सी हो जावे तो इसको मिट्टी के कूजे मे डालकर मुख बन्द करके एक मन उपलो की अग्नि देवें। ताम्र भस्म होगा। दूसरे दिन हरताल वर्की और पारा ३-३ माशा सम्मिलित करके अर्क दुग्ध मे ४ पहर तक खरल करें। फिर टिकिया बनाकर शुष्क कर और एक अर्क पत्र में लपेटकर ढाक की राख में दबाकर ४ पहर की अग्नि देवें अर्थात् नीचे ऊपर राख देकर नीचे से अग्नि दें और शीतल होने पर निकालें। यह त्रिधातु भस्म तैयार समझें।

मात्रा—अर्ध चावल, मलाई या मक्खन में दें और दूध यथा सामर्थ्य पीवें। यदि ४० दिन तक औषधि को खाया जाय, खट्टे पदार्थों और मैथुन से बचा रहे तो फिर आनन्द देखें। एक ही चमत्कारिक योग है।

—०✤०—

ध्वजभंग

आचार्य गया प्रसाद शास्त्री आयु. बृह., भिषक् रत्न,
प्रिंसीपल—श्री नागार्जुन आयु विद्यापीठ,
मुरलीधर बाग, हैदराबाद ।

क्लैब्यहर वटी—अभ्रक भस्म, नागभस्म, बंगभस्म, लोहभस्म, मुक्ताशुक्तिभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शिंगरफभस्म, मल्लचन्द्रोदय, शुद्ध कुचिला, शुद्ध अफीम, शुद्ध भाग शुद्ध धतूरे के बीज, जायफल, जावित्री, अकरकरा, खुरासानी अजवाइन, सफेद मिर्च छोटी पीपल, लवंग ये सब १-१ तोला, केशर ६ माशा, कस्तूरी ६ माशा ।

विधि—समस्त काष्ठादि औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण तथा रसभस्मादि को खरल मे डालकर एकजीव करलें । अनन्तर बगला-पान के स्वरस में शुद्ध अफीम, केशर तथा कस्तूरी को किसी छोटे खरल में पृथक खरल करके क्रमश. पूर्वोक्त औषधियो में मिला लें । सब वस्तुओ के मिल जाने पर ३ भावनाएं अदरख के रस और ३ भावनायें पान के रस की देकर २-२ रत्ती की गोली बनालें ।

प्रातः साय १-१ गोली गर्म दूध के साथ सेवन करने से, बलवीर्य की वृद्धि होकर २० प्रकार के प्रमेह तथा नपुंसकता नष्ट होती है । योग उत्तम है ।

कायाकल्प वटी—शुद्ध सफेद संखिया, अनविधे मोती, सोने के वर्क, केशर, कस्तूरी, पाव जहरहैवानी, अफीम, जुन्दवेदस्तर, रूमीमस्तंगी, अकरकरा, जीरा सफेद, जायफल, जावित्री १-१ तोला लें । अर्क गुलाब १ बोतल ।

विधि—काष्ठादि औषधियों तथा शेष अन्य वस्तुओं का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर रखना । किसी पक्के खरल में प्रथम अनविधे मोतियों को भलीभांति खरल करके क्रमश: सोने के वर्क, अम्बर केशर, कस्तूरी तथा सफेद संखिया मिलाकर खरल करना । शुद्ध अफीम को गुलाब जल में खरल करके पूर्वोक्त औषधियों में मिलाना । अनन्तर अवशिष्ट औषधियों को मिलाकर अर्क गुलाब मे एक सप्ताह तक भलीभांति घुटाई करना । स्निग्ध और मसृण-पिष्टी तैयार होजाने पर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेना । प्रात.सायम् या रात्रि में आवश्यकतानुसार गर्म दूध के साथ १-१ गोली सेवन करने से बलवीर्य की वृद्धि होती है, कामोद्दीपन होता है तथा नपुंसकता नष्ट होती है । सभी प्रकार के वात-विकारो मे भी ये गोलियां अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई हैं ।

अपूर्वशक्तिप्रद घृत—सफेद कनेर की जड़, केवाच की जड़ १-१ सेर । विदारीकन्द, असगन्ध नागौरी, शतावरी, सफेद मूसली ४०-४० तो., क्वाथार्थ जल २० सेर ।

विधि—पूर्वोक्त औषधियों को जवकुट करके २० सेर जल में ४८ घण्टे भिगोकर क्वाथ विधि से ५ सेर क्वाथ सिद्ध करना चाहिए ।

कल्क द्रव्य—शुद्ध सफेद संखिया ५ तोला, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध, मैनसिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध कुचला, सींगिया शुद्ध शिलाजीत प्रत्येक २॥-२॥ तोला । शुद्ध अफीम, कपूर केशर १-१ तोला, कस्तूरी ६ माशा, सफेद चन्दन का चूर्ण, कौड़िया लोबान, हाथी दांत का चूर्ण, राल सफेद, सफेद घुंघची, छोटी कटेरी के बीज, शुद्ध धतूरे के बीज, बड़ी इलायची के बीज, मालकागनी, कूठ, छोटी पीपल, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, लौंग, जायफल, जावित्री, भाग ये १७ द्रव्य समान भाग २॥-२॥ तोला लें ।

काष्ठादि औषधियों तथा संखिया आदि को कूट-पीस छानकर चूर्ण बनाना और उसे किसी बड़े खरल में डाल कर दुग्ध के योग से कल्क बनाना । कल्क बन जाने पर १५ सेर के किसी बड़े ढक्कनदार पात्र में पूर्वसिद्ध काढ़ा ५ सेर, गोदुग्ध २॥ सेर, मूर्छित (गर्म करके शीतल किया हुआ) गाय या भैंस का उत्तम घी १ सेर तथा कल्क आदि सभी द्रव्यो को डालकर पात्र का मुख बन्द करना, उसे अग्नि पर चढ़ाना और मध्यमाग्नि के द्वारा घृत-सिद्ध के प्रकार से घृत सिद्ध करना जलीयांश जल

—शेषांश पृष्ठ ३४४ पर देखें ।

नपुंसकता में सफल प्रयोग

श्री आर्य वैद्य पं. मिलिन्द वैद्यवाचस्पति, दिवानपारा, भावनगर (गुज.)

विविध तिला—

तिला मस्ताना—चर्बी शेर, चर्बी रीछ, चर्बी सांड, चर्बी साप और तेल मछली, तेल धतूरा, तेल कंचुआ, वीर बहूटी, जायफल, कांगनी, सरसों पीली, जाविश्री बीज, लाजवन्ती, अर्कपुष्प, मींगी बिनोला, वत्सनाभ, कुचला केशर ये सब १० १० ग्राम। सबको घोटकर थोड़ा सा सुखाकर पातालयन्त्र से तेल निकालें।

प्रयोग विधि—सीवन, सुपारी को बचाकर मालिश करें तथा ऊपर से बगला पान बांध दें। ठंडे पानी से इन्द्रिय को बचाते रहें। फुंसियां निकलने पर तिला लगाना बन्द करके शतधौत घृत का लेप करते रहें। मिटजाने पर फिर से तिला लगावें। ४० दिन के प्रयोग से पुरुषेन्द्रिय लोहे जैसी सुदृढ़ बन जाती है। हस्तमैथुन, गुदामैथुन या अन्य अप्राकृतिक मैथुन से इन्द्री की नसों में यदि कमजोरी आ जाती है, उत्थान बराबर नहीं होता, जल्दी से वीर्य गिर जाता है तो उस वक्त यह तिला मस्ताना अवश्य उपयोग में लेना चाहिए।

विजय तिला—अश्वगन्धा, कुचला, पलाश बीज, धतूरा, तेलिया विष, मालकागनी, अकरकरा, श्वेत कनेर मूलत्वक, लौंग, दालचीनी, जायफल, काकमूलत्वक, एरण्ड मूलत्वक प्रत्येक १०-१० ग्राम, चर्बी सुअर, चर्बी सांड, वीर बहूटी, चर्बी रीछ, चर्बी शेर २०-२० ग्राम, कस्तूरी ३ ग्राम। सबको भेड़ के दूध की ३ भावना देकर पाताल यन्त्र से तैल खींच लेवें।

यह विजय तिला आशुफलकारी है। निर्मल संस्थान कामशक्ति केशरी वटी बनाता है उसके साथ इस तिला की मालिश करने से सोने में सुगन्ध पैदा हो जायगी।

शिश्न शिथिलता नाशक लेप—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १०-१० ग्राम लेकर उसकी कज्जली बना लेवें। वाराह वसा, शेर की चर्बी, मालकागनी का तेल दालचीनी, अकरकरा, जायफल, वीरबहूटी, कटेरीफल ४०-४० ग्राम। वनोषधियों का चूर्ण कज्जली के साथ घोटकर वसा चर्बी तेल सभी मिलाकर घोट देवें। एक रस हो जाने पर प्रतिदिन सीवन सुपारी छोड़कर शिश्न पर लगावें। इसकी मालिश से सिर्फ ४० दिन में ही इन्द्री की शिथिलता दूर हो जायगी।

नवयौवन तिला—

यह तिला उन लोगों को अवश्य नवजीवन व नवयौवन देता है जिन्होंने बचपन में नादानी करके अपने ही हाथों से अपने आपको बरबाद बना लिया है।

विधि—सफेद संखिया ६ ग्राम, जाफरान ३ रत्ती कस्तूरी १ रत्ती, लौंग ३ ग्राम, जातिफल २ ग्राम, जायपत्री ३ ग्राम, श्वेतकनेर का मूलत्वक ६ ग्राम, गोघृत ६० ग्राम। पहले संखिया को आक के क्षार में डुबोये रखो, १० दिन तक हर दिन पुराना अर्कक्षीर निकालते रहें और नया अर्क क्षीर डालते रहें। १० के बाद संखिया को निकालकर गोघृत से दो दिन तक ठीक तरह से खरल करें। बाद में इस संखिया मिश्रित घृत को चीनी मृत्तिका के बर्तन में धूप में रख छोड़िये। ४ घंटे धूप में रखने के बाद ऊपर का घी धीरे से अलग बर्तन में ले लीजिये। उस घृत में अन्य सभी औषधियां डालकर ठीक तरह से खरल करके एक रस बना दें। हर दिन ८ घण्टे खरल तीन-चार दिन तक करें।

यह नवयौवन तिला हस्तमैथुन, गुदामैथुन पशुमैथुन अन्य कैसा भी अप्राकृतिक मैथुन कर्म करके बिगड़े हुए लिंग को फिर से नवजीवन-नवयौवन देता है। नसों की कैसी भी कमजोरी होगी इसके प्रयोग से अवश्य दूर होगी।

लगाने की विधि—सीवन-सुपारी छोड़कर रात्रि को मालिश करें। उसके ऊपर नागरबेल पान जरा गर्म करके लगाकर ऊपर धागे लपेट दीजिए। कभी छाले या फुन्सियां हो जायें तो उनके ऊपर शतधौत गोघृत को लगाते रहें, मिट जावेंगे। मिट जाने पर फिर से तिला लगावें। ऐसा ५-७ बार करने से नामर्दी से छुटकारा मिल जायेगा। इस तिला के साथ-साथ वीर्य की कमजोरी को एवं

विकारों को दूर करने के लिए 'वाजीकरण रस' या अन्य वाजीकरण उत्तम औषधियां सेवन करें।

वीर्यस्तम्भक योग—

मिलिन्द महास्तम्भक वटी—

यह योग स्तम्भक योगो में सर्वश्रेष्ठ है। मेरी नम्र विनती है कि वैद्यगण इसे एकवार अवश्य बनायें और धन एवं यश का सौभाग्य प्राप्त करें।

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, चम्पा के फूलों की केशर, धतूरे के फूलो की केशर, लौंग, अजमोद समुद्रघोष, जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवायन, केशर, छोटी इलायची, अकरकरा, लौंग, मूर्वामूलत्वक् बहमन दोनों, शेकटा का बीज, पोस्त का धन, पीपल, पान की जड। पारे गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमें अन्य सब चीजों का चूर्ण मिलाकर ताम्बुलार्क में घोटकर चना प्रमाण बी बनावें। इस गोली से थोडे दिन में स्तम्भन शक्ति बढ जाती है। अगर इससे एक ही दिन मे लाभ पाना हो तो इसमें शुद्ध अफीम डालनी चाहिये (हर चीज १० ग्राम हो तो अफीम २५ ग्राम लेना चाहिए) अफीम युक्त स्तम्भक गुटिकायें जहा तक हो नही लेनी चाहिए।

मात्रा—रात्रि के समय शहद के साथ ४ गोली (अफीम युक्त हो तो २ गोली) खाकर १ पहर के पश्चात तेल में भुनी अजवायन ३ ग्राम खावे। इस वटी के प्रभाव से लिंगेन्द्रिय अत्यन्त ताकत वाली हो जाती है। वीर्य अत्यन्त घट्ट बन जाता है और सम्भोग में नारी का मद हरण अवश्य होता है। वृद्ध पुरुष भी इसे ४० दिन सेवन करे तो रमणीप्रिय बन जावे।

लिंग स्तम्भन लेप—पुरुषेन्द्रिय की मणि पर श्वेत करवीर की जड का लेप करके स्त्री समागम करने से वीर्य का स्तम्भन अवश्य होगा।

कामकिल्लोल चूर्ण—बंगेश्वर रस ३ भाग, जातीफल, जावपत्री, लौंग, पीपर छोटी २-२ भाग, शतावर १५ भाग, मध २० भाग, शर्करा २० भाग, गोघृत ४० भाग, स्वर्णभस्म आधा भाग, मल्लचन्द्रोदय १ भाग सबको वस्त्रपूत करके मधु घृत में मिलाकर रक्खो। रात को सोते समय ३ से ५ ग्राम चूर्ण (अवलेह) चाटकर दुग्ध पीवें। १५-२० रोज में ही इसका असर (लाभ) दिखाई देगा। हर शरद ऋतु के मौसम मे ४ महीना लेवे पर शतायु अवश्य होंगे। स्तम्भन शक्ति को बढाता है।

रूप विलास गुटिका—शुद्ध कुचला ५० ग्राम, अकरकरा, लौंग, जायफल, जावित्री, वङ्गभस्म १०-१० ग्राम केशर ५ ग्रा, अफीम ५ ग्रा, नागरवेल के १५० पान का रस निकाल उपरोक्त औषधिया घोटकर मटर से थोडी बडी गुटिका बनावें। १ से २ गोली सुबह शाम दूध के साथ लेने से नामर्दी को दूर करती है। स्तम्भन शक्ति बढाती है। जातीय निर्बलता को दूर करती है।

— पृष्ठ ३३८ का शेषांश —

५२—**स्थूलीकरण योग**—पीपल, सफेद कन्नेर की जड का छिलका, आक की जड का छिलका, कैचुए शुष्क, घोडे के सुम, घूंघची सफेद, मालकागनी के बीज, लौंग, केशर, दालचीनी, कुचला, लोबान, इलायची दाना प्रत्येक समभाग लेकर आक का दूध डालकर ७ दिन खरल करें और मोटी-मोटी गोलिया बनालें। उन्हें सुखाकर आतिशी शीशी में डालकर ऊपर शेर की चर्बी डाल दें ताकि इसमें गोलिया मिश्रित हो जावें। फिर पाताल यन्त्र से तेल निकालें।

५३—इन्द्रजो कड़वा, असगन्ध, वच, कूठ कडवा, शतावर, कण्डियारी बीज, आक की जड, कुचला, अकरकरा, भिलावा, मीठा तेलिया, दालचीनी, सोंठ प्रत्येक ५-५ तोला लेकर ८ सेर पानी मे डाल मन्द अग्नि पर पकावें। २ सेर पानी रह जावे तो मल छान कर एक सेर मालकागनी का तेल डाल कर और २ सेर भैंस का दूध डालकर तेल सिद्ध करें और उतार कर छान लेवें। फिर ५ तोला जिरफ रूमी (यूनानी औषधि) पीस कर मिला लेवें। गरम-गरम मे मिलावें और तीन दिन धूप में भी रख देवें ताकि औषधि मिल जावे। दोनों तेल तैयार होने पर नं० ५२ की आध सेर न० ५३ की १ सेर और शेर की चर्बी पाव भर मिलाकर रखलें। इस तेल की ५-१० मिनट दिन मे दो बार मालिश किया करें।

—स्व० पं० ठाकुरदत्त शर्मा अमृतधारा, देहरादून

ध्वजभंग पर अन्य परीक्षित प्रयोग

मृगमदादि वटी—

कस्तूरी, कपूर ६-६ माशा, अनविंधे मोती, केशर, १-१ तोला, स्वर्ण वर्क १० नग, चांदी के वर्क २० नग, सत्व कुचला (४ चावल) १ ग्रेन. जाविंत्री १॥ तोला, जायफल, अकरकरा, कबाब चीनी मिर्च, छोटी इलायची ये चारों २-२ तोला।

निर्माण विधि—प्रथम मोतियों को ३ दिन लगातार गुलाब जल में घोंट कर पिष्टी बना लें। फिर काष्ठौषधियों को छोड़कर बाकी अन्य औषधियां पिष्टी में मिलाकर १ दिन तक गुलाब जल में घोटें। (कस्तूरी को प्रथक २ तोला गुलाब जल मे घोंटकर तैयार रखें) फिर उसमें मोती आदि की पिष्टी व अन्य समस्त काष्ठौषधियों का बारीक कपड़छन चूर्ण डालकर घोटें। घुटाई खूब होनी चाहिए। फिर २ तोला असली शहद डालकर घोटें और देशी मटर के समान गोलिया बना छाया में सुखाकर प्रयोग करें।

गुण व सेवनविधि—वाजीकरण और बलवर्धक औषधियों में कस्तूरी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, यह सर्व प्रसिद्ध है। मोती हृदय को बल देने में प्रसिद्ध है। अन्य औषधियों का मिश्रण होकर यह ऐसा प्रभावशाली योग बनता है कि इसके गुणों को देख कर आश्चर्य होता है।

प्रमेह की एक ऐसी अवस्था होती है, जिसमे रोगी उत्तरोत्तर दुर्बल होता जाता है। शीतकाल में उसको यह योग सेवन करावें। आप देखेंगे कि जो रोगी एड़िया रगड़ रहा था वह लाल, मोटा, ताजा, हृष्ट-पुष्ट होगया है। सब लोग उसके स्वास्थ्य को देख कर आश्चर्य करते हैं। अप्राकृतिक मैथुन द्वारा प्राप्त तीव्र नपुंसकता और निर्बलता पर तो रामबाण है। सुस्ती व नामर्दी के लिये चमत्कारिक है। मस्तिष्क के विकार, उन्माद और स्त्रियों के हिस्टेरिया आदि पर भी उत्तम सिद्ध होता है। शीतकाल में वृद्धों के सेवन करने के लिए इससे उत्तम औषधि मिलना कठिन है। यह औषधि जोड़ों के दर्द, खांसी, श्वास आदि रोगों में भी दी जा सकती है।

सेवन विधि—पित्त-प्रकृति के रोगियों को १ वटी केवल प्रातःकाल मलाई में सेवन करावें। वृद्धों तथा नपुंसकता के रोगियों को १ गोली प्रातः तथा १ गोली सायंकाल के समय गाय के खांड-मिश्रित धारोष्ण दूध से सेवन करावें।

नोट—१—पित्त-प्रकृति के रोगियों तथा वृद्धों को इसका सेवन केवल शीतकाल में ही करावें, परन्तु नपुंसकता के रोगियो को हर मौसम में सेवन करा सकते हैं।

२—देश, काल, अवस्था तथा रोगानुसार वैद्य स्वयं विचार करके मात्रा तथा अनुपान निश्चित कर सकते हैं।

नपुंसकता हर पोटली—

वीरबहूटी केंचुए, चूक, असगन्ध नागौरी, आमाहल्दी, भुने हुए चने, हाथी दांत का बुरादा प्रत्येक ६-६ माशा लेकर कूट-छान कर दो पोटलियां बनालें।

प्रयोग विधि—इन दोनों पोटलियों को गुलरोगन में कोयले की आंच पर गर्म करें। बारी-बारी से सात दिन तक पोटली का गुनगुना सेंक नित्य १ घण्टा करें। सेंकने के पश्चात तनिक गर्म किया पान कामेन्द्रिय पर लपेट दें व ऊपर पट्टी लपेट कर कच्चे धागे से बांध दें। एक सप्ताह लगातार सेंकने के पश्चात दो-तीन दिन सेंकना बन्द करदें, तथा दिन मे दो-तीन बार घी चुपड़ दिया करें। फिर बाद में नई पोटलियों से सेंकना शुरू करें। इस प्रकार ३-४ सप्ताह करें। जब तक लिंग पर सेंक किया जाय, तब तक लिंग को शीतल-जल से न धोना चाहिये।

गुण—यह सेंक लिंग के सर्व-दोष दूर करके उसे शक्ति प्रदान करता है। कष्ट साध्य नपुंसकता मे भी इसका कुछ दिन प्रयोग करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। लिंग के दोषों के लिए रामबाण है।

चिकित्सा विधि—प्रात काल ६ बजे-गर्म जल स्नान करके १ घन्टे तक नपुंसकताहर पोटली से इन्द्री को सेकें। बाद मे उसके ऊपर एक पान तनिक गर्म करके कच्चे धागे से बाध दें। प्रात.काल ८ बजे-१ मृगमदादि वटी खांड मिश्रित धारोष्ण गाय के दुग्ध से लें। मध्याह्न १२ बजे-भोजनोपरात आध औंस (१। तोला) द्राक्षासव बराबर का जल मिलाकर सेवन करें। सायकाल ४ बजे-१ मृगमदादि वटी खाड-मिश्रित धारोष्ण गाय के दुग्ध से लें। रात्रि को ८ बजे-भोजनोपरात आधा औंस द्राक्षासव बराबर का जल मिलाकर सेवन करें। रात्रि को १० बजे-१ या २ चने के बराबर तिला सीवन सुपारी को छोड़कर लिंग पर मलो। बाद में एक पान को तनिक गर्म करके कच्चे धागे से बाध दें और सो जावें।

नोट—१-पोटली तथा तिला का ७ दिन प्रयोग करके २-३ दिन के लिये प्रयोग करना छोड़ दें और यदि फफोले पड जावें तो उन पर घी चुपड दें।

२-जब तक पोटली तथा तिला का प्रयोग किया जावे इन्द्री को शीतल जल से धोना वर्जित है।

३-द्राक्षासव पुराने से पुराना प्रयोग करें। पुराने आसव ही उत्तम तथा गुणकारी होते हैं, नये नही।

पथ्य—सेब, अनार, सन्तरा, गन्ना आदि तथा पौष्टिक पदार्थ दूध, घी, खोया, रबडी व मलाई आदि पथ्य हैं।

अपथ्य—खटाई, गुड, तेल, मिर्च, लहसुन, प्याज, मांस तथा मदिरा आदि उत्तेजक वस्तुयें सेवन नहीं करनी चाहिये।

—आचार्य वैद्य बी० एन० जी शर्मा वैद्य भूषण
नाभागेट, पटियाला।

नपुंसकता पर दो उत्तम प्रयोग

लिंगेन्द्रिय के छोटे हो जाने पर—कान का मैल लेकर उसे अच्छी मदिरा मे रगडें। जब वह लेसदार मलहम सा बन जाय तो रात्रि को सोते समय लिंगेन्द्रिय पर लेप करें और सो जावें। प्रात काल गुल-बाबूना, नाखूना और इन्द्र जौ का क्वाथ बना उससे धोलें। ऐसी क्रिया ३-४ दिन ही करने से इन्द्री स्थूल हो जायगी।

लिंगेन्द्रिय की शिथिलता पर—श्वेत मल्ल ६ माशे लेकर २॥ तोला सुअर की वसा में खूब घोटें। ६-७ दिन घोटने के पश्चात उसको हलकी अग्नि पर रखें और उसमें एक सूखी हुई लाल मिर्च डाल दें। जब वह मिर्च जल कर राख हो जाय तो उसको उतारकर छान लें। इस तरल को रात्रि के समय काम मे लावे।

इससे इन्द्री में कितनी भी शिथिलता क्यो न आ चुकी हो, लगाते रहने से ठीक हो जायगी। इससे कभी-कभी इन्द्री पर दाने से हो जाते हैं। उस समय थोडा सा सौ-बार का धोया हुआ घृत अथवा मक्खन उस स्थान पर चुपड दें। खाने के लिए बलानुसार रोगी को कोई अन्य औषधि दें, पर उसमे समय और आयु का ध्यान रखें।

ये दोनो योग अनेको रोगियों पर परीक्षित हैं।

—स्व० कविराज प्रोफेसर धर्मदत्त जी चौधरी
आयुर्वेदाचार्य, चण्डीगढ़

मदनमञ्जरी गुटिका—अभ्रक भस्म ४ भाग, बङ्ग भस्म, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, लवङ्ग, जावित्री, काले तिल प्रत्येक २-२ भाग, मिश्री इन सबसे आधी, घृत, मधु, विपम भाग (अर्थात् दोनों बराबर न हो) सबको मिला के चने प्रमाण गोली बनावे। प्रात-साय १-१ गोली गोदुग्ध के साथ सेवन करावें। ४० दिन सेवन करने से सम्पूर्ण वीर्य विकार दूर हो जाते हैं। चन्द्रप्रभा वटी विजयपाक भी इस रोग मे विशेष लाभ करते हैं।

नोट—धातु रोग आराम होने के बाद निम्न योगों को सेवन कराना चाहिए—

घृत—श्वेतगुञ्जा, मालकागनी, श्वेत कनेर की जड का छिलका, अकरकरा, छोटी इलायची प्रत्येक १-१ छटांक बारीक कूट पीसकर १० सेर दूध मे मदाग्नि से पकावे। ६-७ सेर दूध रहने पर दही जमाकर घी निकाल लेवें। इसे २ माशे से ४ माशे तक आध पाव दूध मे १ तोला मिश्री डालकर प्रात साय पीवें। इसी को लिंग पर मसलें और घी दूध अधिक खावे।

कामनी मदभञ्जन वटी—

अकरकरा, लौंग, केशर, सोंठ, पीपर, जावित्री, जायफल, लाल चन्दन ३-३ माशा, शुद्ध गन्धक ६ रत्ती, शुद्ध हिंगुल ६ रत्ती, शुद्ध अफीम १ तोला। पहले लाल चदन तक की आठों दवाओं को ६-६ माशे कूट पीस कपड़छन कर फिर सबको पृथक-पृथक ३-३ माशे तोल कर खरल में डालकर रगडो। ऊपर से ६-६ रत्ती शुद्ध गन्धक और फिर शुद्ध हिंगुल डालते जावें। अंत मे शोधी हुई अफीम डालकर घोटें। घोटते-२ थोडा-२ जल भी डालते जावें जब गोली बनने योग्य हो जाये तब ३-३ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखाकर रखलें। यदि वीर्य जल्दी-२ निकल जाता हो, प्रसङ्ग में रुकावट न होती हो तो आप सोने से पहले एक गोली खाकर ऊपर से मिश्री मिलाकर दूध पीवें। २१ या ४० दिन सेवन करने से वीर्य की स्तम्भन-शक्ति और मैथुन शक्ति निश्चय ही बढ जायेगी। वीर्य का पतलापन और ध्वजभङ्ग नपुंसकता नाश करने में यह अद्भुत योग है।

नपुंसकता नष्ट करने के लिए—

मासाहारी बकरे को मारें, उस बकरे के अण्डकोष लेकर उसका सुखाया गया चूर्ण ३ तोला, कालेतिल एक तोला, केशर, जायफल, जावित्री, कौंच की जड का चूर्ण ६-६ माशे, कस्तूरी, आधी रत्ती, मकरध्वज, अम्बर दोनों १-१ रत्ती, मोती ३ रत्ती, अफीम, स्वर्ण वर्क दोनो ४-४ रत्ती चांदी के वर्क ३ माशा।

पहले अहिफेन और केशर को जल में घोटकर अलग रखलें। बाद में बाकी दवाओं के चूर्ण को मिलाकर घोटें और ऊपर से (अहिफेन केशर का जो जल बनाकर रखा है वह जल) थोडा-थोडा सा डालते जावें। जब घोटते-२ गोली बनने योग्य होजावे तब इन सबकी ६० गोलियां बनालें। १-१ गोली प्रातःसायं उष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करें। आहार पौष्टिक करना चाहिए। इससे नपुंसकता नष्ट होकर कामशक्ति बढ़ती है।

—श्री कविराज वेदव्यासदत्त शर्मा आयुर्वेदाचार्य,
जालंधर (पंजाब)

शाही तिला—

(अकबर-बादशाह के जमाने का यह तिला है)

एक ताजा मारू बैंगन लेकर उसमें बडी सुई से छिद्र करके चारो ओर ६० बडी पीपल घुसा देवें और छाया में सुखा लें। सूखने पर-सूखे केंचुवे ५ तोला, रेगामाई मछली, बीर बहूटी, एक पोथिया लहशन तीनों २-२ तोला—कूट छानकर आधा सेर तिलों का तेल डालकर लोहे की कडाई में पकालें। फिर लोहे की कछली से सबको रगड कर रख दें। इन्द्री का अग्रभाग छोड कर प्रातःसायं मालिश करके ऊपर से पान बाध दें। नपुंसकता का निशान तक भी न रहेगा।

—आयुर्वेद मार्तण्ड प. शिवचन्द्र राजवैद्य,
हरिद्वार

★ पृष्ठ ३३९ का शेषांश ★

जाने और कल्क के पक जाने पर घृत को अग्नि से उतार कर और छानकर साफ शीशे के बर्तन मे रख लेना चाहिए। भोजन के अनन्तर १ से २ रत्ती तक इस घी को लगे हुए पान में खावे तथा लिंगेन्द्रिय पर मालिश करने से पुरुषत्व शक्ति की प्राप्ति होती है।

नोट—केवल कल्क द्रव्यों को ४० तोला घी में मसलकर पाताल-यन्त्र के द्वारा भी घृत सिद्ध किया जा सकता है। यदि उपर्युक्त विधि से घी सिद्ध किया जाय तो घी के पकने के समय विष-द्रव्यों की भाफ से आख और मुख की रक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। पात्र के मुख पर ढक्कन रखकर और उसकी सन्धि को गेहूँ के सने हुए आटे से बन्द कर यदि घी को पकाया जाय तो अधिक अच्छा है। १०-१२ घण्टे क्रमश मन्द तथा मध्यम अग्नि देने से अत्युत्तम घी सिद्ध होता है।

उपदंश तथा उपदंश विषजात रोगों की चिकित्सा

[१]

श्री डा० शिवपूजन सिंह कुशवाहा एम० ए०

(क) खुरासानी अजवायन, देशी अजवायन, अजमोद प्रत्येक ३-३ माशा, सफेद मिर्च २१ नग, लौंग टोपी दार २१ दाना, मुर्दासिंग ३ रत्ती, शुद्ध रसकर्पूर ६ मा इन सबको एक सप्ताह तक अद्रक के रस मे खरल करके छोटे बेर के समान गोलिया बनालें। नित्य १ गोली पानी के साथ लेनी चाहिये। दो सप्ताह तक सेवन करें। हवा मे न रहे। चने की तरी के साथ केवल गेहू की रोटी खावे। इससे पुराना फिरङ्ग रोग भी नाश हो जाता है।

(ख) रस कर्पूर आधा तोला बहुत महीन चूर्ण करके एक छटाक घृत या आधा औंस वेसलीन मे मिला दें। यह आतशक घाव के लिए बढ़िया मरहम है।

यदि सभोग काल के पश्चात् इसे शिश्न मे भलीभाति लगा दिया जावे तो आतशक होने का भय नहीं रहता। आतशक के कीटाणु बडे सख्त होते हैं, सहज मे नहीं मरते इसलिए मरहम भलीभाति लगाना चाहिए।

(ग) चिकनी सुपारी को घिसकर (जल के साथ) घावो पर लगाना चाहिए।

(घ) रक्तचन्दन, असली केशर, कालीमिर्च, लौंग तथा रस कर्पूर इन सबको समभाग ले, जल द्वारा खरल मे घोंट १-१ रत्ती की गोलिया बना उनमे से एक गोली प्रतिदिन मक्खन में लपेटकर प्रयोग करने से भीषण आतशक भी नाश हो जाता है। गोली को मक्खन मे इस प्रकार से रखे कि चारो ओर से मक्खन ही मक्खन हो जिससे गोली दांतों मे न लगने पावे अन्यथा स्पर्श होने पर दांतों के गिरने का भय है।

(ङ) रीठे के छिलके को सुखाकर बारीक चूर्ण करके चने के बराबर गोलिया बना और दही मे मिलाकर खाने से आतशक का नाश हो जाता है। नमक व लालमिर्च निषेध है।

(च) अमीर रस (सि० भै० म० मा०)—एक या दो रत्ती मुनक्का मे भरकर रोगी को निगलने को दें। दात से चबाना निषेध है। डाबर, बैद्यनाथ, गुरुकुल आदि विश्वसनीय औषधालयो से बनी हुई लें।

(छ) गेहूँ के आटे की कुप्पी बना उसमे रस कर्पूर ४ रत्ती बन्द कर आटे पर लौग का चूर्ण लगा जल के साथ निगलने को देना चाहिए। दातो से स्पर्श निषेध है। ऊपर से पान खाना चाहिए। इसके सेवन काल मे शाक, नमकीन पदार्थ, धूप, सभोग सर्वथा त्याज्य हैं।

(ज) पारद २४ रत्ती, मधु ७२ रत्ती, खैर २४ रत्ती, अकरकरा ४८ रत्ती खरल मे मर्दन करके ७ गोली बनावें। १ गोली प्रात काल मुख से सेवन करें। अम्ल तथा लवणयुक्त पदार्थों का सेवन त्याज्य है।

(झ) शुद्ध हिंगुल ६ तोला, मदार की जड १ तोला, भागरा १ तोला, माजूफल १ तोला इन सबका चूर्ण कर ले। खैर की लकडी के कोयले के साथ हुक्के पर १ माशा चूर्ण रखकर पीना चाहिए।

—श्री डा० शिवपूजनसिंह कुशवाहा एम० ए०
वेद मन्दिर, गीता आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

[२]

श्री कविराज प० उदयनारायण झा आयुर्वेदाचार्य

सर्व प्रथम उपदश ग्रसित रोगियों को पचकर्म (स्नेह स्वेद, वमन, विरेचन, वस्तिकर्म) द्वारा अत्यन्त बढे हुए दोषों को शमन करना चाहिये। ऐसा करने से दोष न्यून होकर सूजन और पीडा तत्काल शात हो जाती है। किंतु इस विज्ञान युग मे पचकर्म का बखेडा रोगी और चिकित्सक कोई भी करने के लिए तैयार नही होते। इसलिये पचकर्म की चर्चा छोडकर द्विकर्म यानी (वमन, विरेचन) के द्वारा ही शरीर को साधारण तौर पर शुद्ध करावें। किंतु अगर

उपदंश ग्रसित व्यक्ति अत्यन्त दुर्बलता के कारण वमन-विरेचन के योग्य न हो तो उसके अत्यन्त बढे हुये दोषों को सिर्फ निरूह वस्ति द्वारा ही दूर करें। उपदश रोग में इस बात पर पूर्ण ध्यान रखें कि लिङ्ग पकने न पावे क्योंकि पक जाने से सारी जमा पूंजी (लिङ्ग) का क्षय हो जाता है और भुक्त भोगी को अपनी अमूल्य पूंजी क्षणिक सुख के लिये गवांकर सारा जीवन पश्चाताप के सिवा कुछ नही मिलता।

१—इलायची, रायसन, कूठ, अगर, देवदारू, धूप, सरल, मुलैठी और पुण्डरिया इन सब औषधियो को समभाग लेकर कल्क बनाकर प्रलेप करें। और इन्हीं औषधियो के रस से सेवन करें। ऐसा करने से वातज उपदश मे लाभ होते देखा गया है।

२—जल बेंत, एरण्ड के बीज की मींगी, जौ और गेहू के सत्तू इन सबको पीसकर घृत में मिलाकर किंचित् उष्णकर प्रलेप करने से वातज उपदश नष्ट होता है।

३—सफेद कमल, लाल कमल, कमल की नाल, राल, अर्जुन की छाल, बेल और यष्टीमधु इन सबको समान भाग लेकर वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। पुन घृत मिलाकर मरहम बनाले। इसके लेप करने से पित्तज उपदश में आराम होता है।

४—घृत, दुग्ध, मिश्री, ईख, शहद और जल इनके सेवन करते रहने से अथवा न्यग्रोधादि गण का क्वाथ बनाकर और अत्यन्त शीतल करके सेवन करने से पित्तज उपदश शात होता है।

५—आरग्वधादि गण की औषधियों के सेवन करने से कफज उपदश में फायदा होता है।

६—शाल की छाल, अजकर्ण नामक शाल की छाल, अश्वकर्ण (गजटढ़ू, गजहड) की छाल और धव की छाल इन सबको मदिरा में पीसकर किंचित् उष्ण करके तेल में मिलाकर प्रलेप करने से कफज उपदश शान्त होता है।

७—बेंत की छाल, गूलर की छाल, वड की छाल, जामुन की छाल, साल की छाल, कदम्ब की छाल, पीपल की छाल, अर्जुन की छाल और निम्ब की छाल इनको समभाग लेकर क्वाथ बनाकर धोने से या उक्त औषधियों के चूर्ण को घृत से मिलाकर लेप करने से पित्तज एवं रक्तज उपदश नष्ट होते हैं।

त्रिदोषज और रक्तज उपदश असाध्य होते हैं इसलिए वैद्यवर ऐसे रोगियों को त्याग दें।

८—पटोलपत्र, नीम की छाल, त्रिफला और निम्ब गिलोय इन सबको समभाग लेकर क्वाथ बनाकर पान करने से सर्व प्रकार के उपदश आराम होते हैं।

९—खैर की छाल और शाल की छाल समभाग लेकर क्वाथ बनाले। शुद्ध गूगल और त्रिफला का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से सब उपदश आराम होते हैं।

यूनानी योग—

१०—आक (मदार) की लकडी को जलाकर कोयला बनालें। पुन उसे पीसकर दवा के बराबर शक्कर मिलादें और दो तोले दवा को गोघृत में मिलाकर प्रात काल सात दिन तक सेवन करें और प्रतिदिन मास खायें। ऐसा करने से उपदश आराम होता है।

११—काबुली हरड का छिलका, काली हरड, काली मिर्च, प्रत्येक नौ-नौ मासे, पारा ढाई तोले, शक्कर छह तोले और शहद तीन तोले इन सबको कूट छानकर १४ पुडिया बनाले। प्रात साय इसके सेवन करने से सर्व प्रकार के उपदश नष्ट होते हैं।

१२—तुलसी की हरी पत्तिया चौदह मासे, नीला थोथा साढे तीन मासे पीसकर बेर के समान गोलिया बनाकर प्रतिदिन उष्ण जल के साथ प्रात काल एक गोली सेवन करने से सर्व उपदश नाश होते हैं। इसके सेवन काल मे बिना घृत की खिचडी खाना पथ्य है।

१३—मदार की जड एक तोला, और कालीमिर्च आधा तोला को वस्त्रपूत चूर्ण करके गुड में मिलाकर ज्वार के समान गोलिया बनालें। और प्रात साय एक एक वटी सेवन करें। खटाई, बादी तथा नमकीन चीजों का भक्षण छोड दें। उपदश में फायदा होता है।

१४—शुद्ध पारद, अकरकरा, अजवायन प्रत्येक छह माशे, शुद्ध भिलावे ७ नग, तिल भिलावे के बराबर और

गुड़ सबके बराबर लें। इन्हे कूट छानकर चौदह गोलियां बनालें और प्रात सायं एक एक गोली दही के साथ खाया करें। इससे उपदंश जाता रहेगा।

१५—शुद्ध पारद, खुरासानी, अजवायन, शुद्ध भिलावा, अजमोद, अश्वगन्धा प्रत्येक ३-३ माशे, गुड़ ३ तोले ४ माशे—कूट छानकर जगली वेर के समान गोलिया बनाकर १-१ गोली प्रात.साय गले में धरकर जल के साथ निगल जायें, दांतों मे नहीं लगने पावे। इस पर भात, दाल, खिचड़ी, गेहूँ की रोटी पथ्य है। खटाई और वादी की चीजो को त्याग दें तो पाच दिन मे रोग दुर हो जाता है। अगर मुह आजाये तो कचनार की छाल औटाकर कुल्ला करें। यह दवा उपदश और फोड़ो की पीड़ा जो उपदश के कारण हुई हो निहायत फायदा करती है। इस दवा का प्रयोग विरेचन के बाद करायें।

१६—पपरिया कत्था चौदह माशे, पारा ४ माशे, ३ साल का पुराना गुड़ साढ़े तीन तोले सबको पीस सात गोलिया बना सेवन करने से उपदंश जाता रहता है।

उपदंश पर अनुभूत मरहम

१७—रसकपूर, सफेदा कासगिरी प्रत्येक सात माशे, छोटी इलायची के बीज साढ़े तीन माशे घृत मे मिलाकर मरहम बनालें। और इसे उपदश के व्रणों मे लगावें।

१८—कत्था २ माशे, सेलखरी १ माशे, नीलाथोथा १ चने के बराबर थोड़ी सी पीली कौड़ी की भस्म, शतधौत घृत मिलाकर मरहम बनाले। पुन. उपदश के व्रण पर लगाओ।

१९—मदार के २१ पत्तो को आधा पाव सरसों के तेल मे ७-७ पत्तो ३ बार जलाकर राख करले। पुन मोम मिलाकर मरहम तैयार करें और तब इसे व्रण पर लगावे।

उपदंश पर अनुभूत प्रलेप

२०—प्रथम लोह की कढ़ाई मे त्रिफला को भूनलें। पश्चात शहद में पीसकर उपदश के व्रणों पर प्रलेप करने से व्रण-घाव भर जाते हैं।

२१—हरड़ के चूर्ण को शहद के साथ मिलाकर व्रणों पर प्रलेप करने से लिंग की पीड़ा दूर होती है एव उपदश के व्रणों में फायदा होता है।

२२—भारगी की जड़, चिरचिटे की जड़ और चंदन इनको समभाग लेकर पीसलें। इसके लेप करने से अथवा मैंनसिल को शहद मे पीसकर लेप करने से उपदंश रोग बहुत ही जल्द नष्ट होता है।

२३—कनेर की जड़ को जल में पीसकर प्रलेप करने से असाध्य उपदश रोग और उसकी घोर पीड़ा तत्काल शमन हो जाती है।

२४—लोघ, रसौत, तगर, कचनार और नागकेशर इनको जल में पीसकर लेप करने से उपदश रोग नष्ट होता है।

२५—फिटकरी, सोना गेरू, नीलाथोथा, हीरा कसीस, सेंधा नमक, लोध्र, रसौत, हरताल और मैनशिल इनको पीसकर शहद या घृत मे मिलाकर प्रलेप करने से उपदश नष्ट होता है।

२६—नील कमल (अभाव में नीलोफर), कुमुद, रक्तकमल और श्वेत कमल इन सबको पीसकर गाढ़ा प्रलेप करने से उपदंश रोग नष्ट होता है।

उपदश नाशक घृत

२७—चिरायता, नीम, त्रिफला, पटोल पत्र, करञ्ज, बाबले, खैरसार और विजयसार इनके कल्क और क्वाथ से घृत को पकावें। यह घृत सब प्रकार के उपदश को शीघ्र नष्ट करता है।

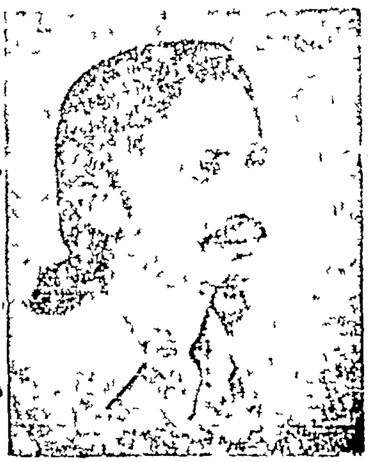
२८—करज, नीम, विजयसार, शाल, जामुन और न्यग्रोधादि गण की समस्त औषधियो के क्वाथ और कल्क के द्वारा घृत को सिद्ध करें। यह घृत तत्काल सर्व प्रकार के उपदशों को नष्ट करता है तथा दाह, पाक और स्राव को दूर करता है।

उपदंश नाशक तैल

२९—घर का धुआ १ पल, हल्दी २ पल और मोम २ पल इन सब चीजो को १ प्रस्थ तिल के तैल में विधिपूर्वक पकावें। यह तैल खाज, सूजन को दूर करता है एव उपदश के व्रणो की राद (मवाद) आदि निकाल उसको शुष्क कर त्वचा को स्वच्छ वर्ण बनाता है।

कामोपचार में गलत मान्यताएं

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, भारद्वाज औषधालय,
स्वामीनारायण मन्दिर, सावर-कुण्डला (भावनगर) गुजरात



काम अर्थात् सेक्स सम्बन्धित रोगो का उपचार करना उसे कामोपचार कहा जाता है। कामोपचार में अनेक रोग आ जाते हैं। कामोपचार हेतु आयुर्वेदीय ग्रन्थों में वाजीकरण अध्याय भी है। एव नपुसक आदि अलग अध्याय भी हैं। मैथुन सम्बन्धी अनेक उपचार दिए गये हैं। आचार्यों ने जो भी वर्णन किया है, वह सभी विचारपूर्वक एव हेतुपूर्वक किया है। कही भी अतिशयोक्ति नही है। शास्त्राधार सिवा कोई भी चिकित्सक चिकित्सा नही कर सकते। जो व्यक्ति शास्त्रानुसार चिकित्सा करने का दावा करते हैं, शास्त्रज्ञ नही हैं, सिद्ध हस्त नही है, निदान-चिकित्सा एव औषधि निर्माण तथा गुण धर्म आदि से अनभिज्ञ होते हैं, केवल धनोपार्जन हेतु अपनी प्रशसा खुद करके चिकित्सा का दावा करते हैं, उसको शास्त्र में 'छद्मचर' कहा गया है। इन छद्मचरो द्वारा समाज में कुछ गलत मान्यताएं दी गई हैं, उसमें भी काम सम्बन्धी अनेक गलत मान्यताएं प्रचलित की गई हैं और समाज उनको स्वीकार करते देखा जाता है।

कुछ गलत मान्यताए निम्नोक्त हैं-यथा

१ स्वप्नदोष रोग है।

२ लिङ्ग की लम्बाई बढ़ाई जा सकती है।

३ मूत्रमार्ग से धातुस्राव होता है।

४ हस्तमैथुन रोग है। इत्यादि

'पुरुष रोग चिकित्साङ्क' में लिङ्ग की लम्बाई विषय पर प्रसिद्ध सेक्सोलोजिस्ट श्री सुभाष ठाकर का लेख तथा हस्तमैथुन के बारे मे हमारा लेख अन्यत्र दिया गया है, अत उन दो विषयों को छोडकर यहा मूत्रमार्ग से धातु स्राव होता है और स्वप्नदोष पर ही विचार करेंगे।

मूत्र मार्ग जन्य धातु स्राव—

यह वाक्य चिकित्सक को चिकित्सा व्यवसाय में बार बार सुनने को मिलता है, व्यवहार मे उपयुक्त भी किया जाता है। कोई दुबला पतला कृशकायी युवा जब चिकित्सक के पास आता है, तब चिकित्सक कृशकायी युवा लडके की नाड़ी पकडकर निदान करते है और कहते हैं कि आपको धातुस्राव होता है। अर्थात् मूत्र के साथ कीमती धातु (शुक्र) का स्राव होता है। युवक मान जाता है। घबरा जाता है और वैद्य जी से कहता है कि क्या होगा ? धन की चिन्ता मत करो, चिकित्सा द्वारा हमारा रोग मिटा दो। तब चिकित्सक आनन्द मे आ जाता है और मनमानी ढङ्ग से पैसा कमाने लगता है। क्या यह कथित धातुस्राव कोई रोग है ? यह प्रश्न उठता है। यह समस्या आजकल समाज मे प्रचलित है। इस पर विचार करना जरूरी है, परम कर्तव्य भी है। तो आइए निम्नोक्त विचार प्रस्तुत हैं।

शास्त्रमत—सर्व प्रथम तो विचार करना होगा कि आयुर्वेद शास्त्र मे ऐसा कोई विचार किया गया है या

नही ? आयुर्वेद के सभी शास्त्रो मे कोई भी अध्याय मे, कोई भी विषय मे मूत्रमार्ग द्वारा धातु (शुक्र) स्राव होता है–ऐसा नहीं बताया है। यदि ऐसा कोई रोग होता तो जरूर मार्गदर्शन दिया गया होता। क्योंकि शास्त्रों मे अनेक प्रकार के बडे एवं छोटे रोगों का वर्णन प्राप्त है। क्षुद्र रोगाधिकार मे असंख्य छोटे-छोटे रोगों का वर्णन है। वाजीकरण अध्याय जो काम सम्बन्धी अध्याय है, उसमे भी धातुस्राव का उल्लेख नही है। नपु सक अध्याय में भी नही है। मतलब यही होता है कि आचार्यों ने ऐसा कोई रोग माना नहीं है। जो हम शास्त्र को स्वीकारते है तो यह शास्त्र मत मानना ही होगा। धातुस्राव नामक कोई रोग नही है।

दूसरी जरूरी स्पष्टता निम्नोक्त है—

मूत्र और शुक्र शिश्न द्वारा बाहर निकलता है। बाहर निकलने का मार्ग एक है। शुक्र का उत्पत्ति स्थान वृषण है, वहां से दोनो वृषणों मे दायी और वायी ओर से एक शुक्र नलिका निकलती है। यह नलिका मूत्राशय की दोनो ओर मूत्र द्वार की बाजू मे और इन्द्रिय (शिश्न) के मूलद्वार के ऊपर-जहा शुक्राशय नामक वीर्य की थैली रहती है, वहां तक नलिका आती है। शुक्राशय के बाजू में ही पौरुष ग्रन्थि विद्यमान रहती है। जब शुक्र का वेग आता है, तव वृषण में से शुक्र नलिका द्वारा वीर्य शुक्राशय मे आता है और शुक्राशय मे से शुक्र शिश्न द्वारा बाहर निकलता है। जब मूत्र की उत्पत्ति व मूत्र प्रणाली अथवा मूत्रवह स्रोत दोनो वृक्को से होती है। वृक्क कटि प्रदेश मे वाम एव दक्षिण भाग में उपस्थित हैं। वृक्क मे से मूत्र गवीनी द्वारा मूत्राशय में आता है, और मूत्राशय से मूत्र निकलता है। मूत्र एव शुक्र का मार्ग अलग है। अवयव भी अलग अलग हैं। वृक्क ऊपर हैं, वृषण नीचे रहते हैं। दोनों की नलिया भी अलग अलग हैं। सिर्फ बाहर निकलने का मार्ग एक है। तो क्या शुक्र एव मूत्र एक साथ शिश्न द्वारा बाहर निकल सकता है ? नहीं कदापि नही। क्योंकि प्रकृति ने रचना की है कि जब मूत्राशय का द्वार खुला होता है तब उसमे से मूत्र शिश्न द्वारा बाहर निकलता है। जब शुक्राशय का द्वार जो शिश्नेन्द्रिय में खुलता हैं, वह बन्द हो जाता है और जब मैथुन या हस्तमैथुन एवं स्वप्नदोष की अवस्था मे शुक्र शिश्वेन्द्रिय द्वारा बाहर निकलता है, तव मूत्राशय का द्वार जो शिश्नेन्द्रिय में खुलता है वह बन्द हो जाता है। यही कुदरत की रचना है। कभी भी दोनों के द्वार एक साथ नही खुलते हैं। यदि कोई दावा करता है कि धातु स्राव मूत्र मार्ग द्वारा मूत्र के साथ होता है। यदि मान लिया जाय कि मूत्र के साथ धातु का स्राव होता है। क्योंकि उसके मतानुसार ऐसा होना आवश्यक है कि—जब मूत्र प्रवृत्ति होती है तब मूत्र द्वार खुलता है और साथ मे धातु का स्राव होता है तो शुक्राशय का द्वार भी खुला रहता है तो जब वीर्य पात होता है—यथा मैथुन तथा स्वप्न दोष द्वारा वीर्य पात होता है, तो इन वीर्यपातो के साथ मूत्र का स्राव भी होना चाहिए। क्या ऐसा होता है ? नहीं होता। मैथुन के समय वीर्यपात के साथ कभी भी मूत्र प्रवृत्ति नहीं होती। अर्थात् उस समय सिर्फ शुक्राशय का द्वार खुला रहता है। मूत्र द्वार बन्द रहता है। इसी तरह मूत्र प्रवृत्ति के समय सिर्फ मूत्र द्वार खुला रहता है और शुक्राशय का द्वार बन्द रहता है। अत दोनो प्रवृत्ति एक साथ नही होती। और भी देखो—

चौराहों (चार रास्ता) पर ट्राफिक पुलिस और सिग्नल क्यू होता है ? चारों ओर से आपस मे वाहन या लोग टकरा न जायें—दुर्घटना न हो। इसी वजह से सिग्नल दिया जाता है। जब एक साईड खुली होती है तो सामने की या बाजू की साइड बन्द करादी जाती है और वाहन चला जाता है। उसी तरह यहा भी ऐसा होता है। सिग्नल या ट्राफिक पुलिस की व्यवस्था न हो तो वाहन आपस में टकराता है, दुर्घटना होती है—मृत्यु भी होती है। यह मानलो कि शुक्र एव मूत्र का स्राव एक साथ होता है तो शुक्राणु कभी भी जीवित नही रह सकते। क्योंकि बाहर निकलने का मार्ग एक है और शुक्र मे शुक्राणु जीवितावस्था मे विद्यमान होते हैं–

और मूत्र मे अम्लता अधिक होती है। शुक्राणु अम्लता मे जीवित नही रह सकता। अत दोनो क्रिया एक साथ होती तो मूत्रमार्ग में मूत्रजन्य अम्लत्व के कारण शुक्रकीट मर जायेंगे। शुक्रकीट को जीवित रहने के लिए ही मूत्र प्रवृत्ति के साथ शुक्र स्राव नही होता। यद्यपि कोई कहेगा कि मूत्र परीक्षा द्वारा या व्यक्ति अपनी मूत्र प्रवृत्ति के समय प्रत्यक्ष देखता है कि मूत्र प्रवृत्ति के अन्त मे या आदि समय मे चिकना स्राव होता है। चिकना तन्तु समान कुछ लम्बाई वाले धागे की तरह शिश्न मे से बाहर निकलता या टपकता देखा जाता है—यह मूत्रस्राव द्वारा ही होता है। प्रश्न उठता है यह चिकनाहट—धातु नही है तो क्या है ? समाधानपूर्वक उत्तर इस प्रकार है—कभी-२ मूत्रस्राव के साथ चिकनाहट देखी जा सकती है। वास्तव मे यह चिकना पदार्थ या स्राव धातु (शुक्र) का नही है। मूत्राशय के द्वार के पास पौरुष ग्रन्थि होती है। उसका मुख्य कार्य यह होता है कि—निरन्तर अति अल्प मात्रा मे इस ग्रन्थि मे से स्राव बहता रहता है—और शिश्नेन्द्रिय द्वारा बाहर निकलता रहता है। कारण यह है कि मूत्रस्राव द्वारा शिश्न नलिका मे अम्लता एव क्षार चिपक जाता है। यदि यह विकृति निरन्तर बनी रहती तो मूत्र नलिका मे दाह सुजन इत्यादि हो जाये। यह विकृति न हो इस हेतु पौरुष ग्रन्थि मे से स्राव बहता है और शिश्न नलिका के क्षार एव अम्लता को नष्ट करता है। दूसरा महत्व का कार्य यह है कि यदि मूत्रजन्य अम्लता आदि नलिका मे विद्यमान होगे तो—जब शुक्रपात होगा तब शिश्न नलिका में विद्यमान अम्लता आदि से शुक्र कीट फिर मर जायेंगे। अत शुक्रकीट को जीवित रखने के लिए भी यह चिकना स्राव जरूरी है। यदि कोई सवाल करेगा कि यह स्राव चिकनाहट के स्वरूप मे स्वस्थावस्था में दिखाई नही देता—हर समय भी दृष्टव्य नही होता और कुछ समय मे ही क्यों दिखाई देता है ? स्वस्थावस्था मे प्राकृतावस्था होती है अत दिखाई नहीं देगा। मगर जब तीव्र विबन्ध, जीर्ण प्रवाहिका में बलपूर्वक मल प्रवृत्ति होती है तब पौरुष ग्रन्थि में क्षोभ पैदा होता है। तब अति प्रवाहण से स्राव अत्यधिक मात्रा में बाहर निकलता है। और अम्लपित्त, पौरुष ग्रन्थि शोथ, शुष्क कास (वातज), मूत्रकृच्छ्र, विषमज्वर, सन्निपातिक ज्वर, कामेच्छा, हस्तमैथुन, अष्टविध मैथुन आदि विकृति होती हैं तब उनका प्रभाव पौरुष ग्रन्थि पर होता है और परिणामत' स्राव मे अधिकता आ जाती है। अत यह चिकनाहट जैसा स्राव शुक्र का नही है। और भी देखो—

शुक्र स्राव कब होता है ? तीन समय निश्चित होता है। १-मैथुन समय, २-हस्तमैथुन समय, और ३-स्वप्नदोष समय। इस ३ समयावस्था में ही शुक्र स्राव या वीर्यपात होता है। अन्यथा नही हो सकता। यदि मान लिया जाय कि मूत्रस्राव मे शुक्रस्राव होता है तो दिन रात में कई बार मूत्र प्रवृत्ति होती है, और उस समय हर मूत्र प्रवृत्ति के साथ यदि जो शुक्रस्राव होता रहेगा तो नतीजा क्या होगा ? शुक्राशय मे १० से २० ग्राम तक ही शुक्र रह सकता है। बार बार शुक्राशय मे शुक्र नही जाता। कामेच्छा का वेग प्रबल होता है—तब ही वृषण मे से शुक्र शुक्राशय मे आता है। मूत्रप्रवृत्ति समय मे कामेच्छा तो उत्पन्न नही होती। अत शुक्राशय में से कभी भी स्राव मूत्र के साथ नही होता।

मैथुनेच्छा प्रबल होती है और लिङ्गोत्थान होता है तब बिना मैथुन भी शिश्न से चिकना स्राव देखा जाता है। वास्तव में यह स्राव शुक्र का नही सिर्फ पौरुष ग्रन्थि का ही स्राव है। वीर्य में जो पतलापन देखा जाता है, खास प्रकार की गन्ध होती है वह पौरुष ग्रन्थि जन्य स्राव की होती है।

छद्मचर या धूर्त लोग कहते फिरते हैं कि मूत्र के साथ धातुस्राव होता है। कीमती धातु चली जाती है। तुम मर जाओगे। अरे। भाई देखो तो सही ! धातु एक नही है। सिर्फ शुक्र धातु नही है, शरीर में सात धातु विद्यमान होती हैं। यथा—रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और सातवी शुक्र। शुक्र तो अतिम धातु है। यदि धातु स्राव का मतलब होगा तो रस रक्तादि धातुओं का स्राव क्यों नही होता ? सिर्फ शुक्र धातु का स्राव मानना कितना ठीक है।

सारांश—

(१) शास्त्र मे उल्लेख नही हैं । यदि ऐसा होता तो अवश्यमेव शास्त्र मे उल्लेख होता ।

(२) मूत्र प्रवृत्ति के साथ कभी-कभी चिकना स्राव दिखाई देता है—वह सिर्फ पौरुष ग्रन्थि का स्राव है शुक्र का नहीं ।

(३) मूत्र एव शुक्र का उत्पादन केन्द्र अलग-अलग एवं दूर हैं । वहन मार्ग भी अलग-अलग हैं । सिर्फ वाहर निकलने का मार्ग एक है ।

(४) धातु शब्द से केवल शुक्र को नही समझें वल्कि रसरक्तादि सातों धातु अभिप्रेत हैं ।

(५) धातुस्राव से दुर्बलता आ जाती है । शिर शूल होता है, भ्रम, तिमिर दर्शन होता है, अंगमर्द होता है, भूख नही लगती, लिङ्गोत्थान नही होता, शीघ्रपतन, ध्वजभङ्ग इत्यादि होता है—यह सब गलत है । मूत्रस्राव के साथ शुक्र का स्राव होता ही नही तो उपरोक्त रोग कैसे हो सकता है ? सोचिएगा ।

(६) यदि कोई कहे कि औषधोपचार से धातु (शुक्र) स्राव वन्द हो जाता है तो वह भी गलत है । स्राव शुक्र का नही है और शुक्रवर्धक एव शुक्र स्तम्भक औषधियों मे कोई परिणाम भी नही मिलेगा ।

(७) नाडी परीक्षा से शुक्रस्राव (धातुस्राव) का ज्ञान सम्भव नही है ।

अत मूत्र प्रवृत्ति के साथ धातु स्राव होता है—यह मान्यता गलत सिद्ध होती है ।

स्वप्नदोष —

जिस तरह हस्तमैथुन, मूत्र के साथ शुक्र का स्राव होना इसका कोई उल्लेख शास्त्र मे नहीं है, उसी तरह स्वप्नदोष का कही भी किसी आयुर्वेद शास्त्र में वर्णन नहीं मिलता । यदि स्वप्नदोष को रोग माना गया होता तो आचार्यों ने उल्लेख किया होता । अत आचार्यों ने स्वप्नदोष को रोग नहीं माना है । स्वप्नदोष शब्द का उल्लेख भी नहीं किया है । स्वप्नदोष शब्द या कथित रोग आज की देन है तो भी इसको रोग नही कह सकते ।

स्वप्नजन्य मैथुन या वीर्यस्राव को केवल मानसिक दृष्टि से विचार करना जरूरी होगा । यदि मानसिक रोग ही माना जाय तो भी अन्य लक्षण स्पष्टता से दृष्टिगोचर नहीं होंगे । अन्य मानसिक रोग होते हैं—उसमे कुछ मन सम्बन्धी तो कुछ शारीरिक सम्बन्धी लक्षण लम्बे समय तक मिल सकते हैं । स्वप्नजन्य वीर्यस्राव में ऐसा नही होगा । यदि व्यक्ति को स्वप्न मे वीर्यस्राव हो गया, वह जागृतावस्था मे आ गया और कुछ समय तक चिन्ता करेगा, मन क्षुब्ध हो जायेगा । सुबह होगा तो वह अपनी क्रिया करने लगेगा । सासारिक, व्यवहारिक आदि सभी कर्म करने लगता है । क्योकि स्वप्नस्राव से थकान तो लगती नही । कोई कहेगा कि स्वप्नदोष से थकान लगती है, शीघ्रपतन, ध्वजभङ्ग, अङ्गमर्द, चिन्ता, शिर शूल आदि हो जाता है । यह सभी गलत हैं । यदि मैथुन से ऐसा होता तो स्वप्नस्राव से भी होता । व्यक्ति जीवन में कितनी वार मैथुन करता है उसको कुछ भी विकृति नही आती तो स्वप्नदोष से ऐसी विकृति क्यों ?

चिकित्सा व्यवसाय मे ऐसा भी देखा गया है कि जिनको विवन्ध होता है—उनको स्वप्नदोष होता है । विबध मे आन्त्र दृढ एव वजन युक्त हो जाते हैं । उसका वजन पौरुष ग्रन्थि पर आ जाता है या आन्त्र का दबाव शुक्राशय या पौरुष ग्रन्थि पर आ जाता है तव स्वप्न मे वीर्यस्राव हो जाता है । यहा इस अवस्था मे मन उत्तरदायी होता है ।

जिस व्यक्ति को महिने मे अत्यधिक रात्रि में यथा पाच-सात-दस-पन्द्रह वार स्वप्नस्राव होगा तो उनको शारीरिक विकृति नही मगर केवल मानसिक विकृति माननी चाहिए । क्योकि व्यक्ति का काम सम्बन्धी मनोवल दृढ नही है और वारवार वह सैक्स सम्बन्धी विचाराधीन होता जाता है—सोते समय सुन्दर स्त्री का विचार करना है या तो सैक्स सम्बन्धी कहानिया पढेगा या नग्न चित्रों को देखेगा और उसकी काम-वासना भडक उठती है—उसी अवस्था मे वह निद्राधीन हो जाता है । मन तो अशान्त ही है-उसी अवस्था में उसको पढी देखी-वातो का

स्वप्न आता है और मनमानी सुन्दर स्त्री से स्वप्न मे ही सम्भोग करके अपनी अधूरी इच्छा पूरी करेगा। यह क्रिया बार-बार होती है, बार-बार स्वप्न आता है और बार बार स्वप्न में वीर्यस्राव हो जाता है। यह कोई रोग नही है। यदि रोग मान लिया जाय तो उसमे दोषादि भेद तो होना चाहिए। वातादि दोष की विकृति-जन्य लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। तो वातादि दोष बिना उसको कैसे रोग मान सकोगे। केवल यह कर्म मन द्वारा हुआ अकुदरती कर्म कह सकोगे। एक-दो बार हुआ स्वप्नदोष तो कुदरती और आवश्यक कर्म है और अधिक सख्या में अकुदरती कर्म कहना जरूरी है।

ऐसा भी ज्ञातव्य होता है कि व्यक्ति का जब विवाह हो जाता है-तो उसके बाद स्वप्नदोष शायद नही होगा। यदि स्वप्नदोष रोग है तो विवाहित जीवन मे भी रोग कैसे मिटेगा। विवाह कोई दवा तो है नही। यदि मान लिया जाय कि विवाह होने पर काम सम्बन्धी अतृप्त इच्छा परिपूर्ण होती है और मन शान्त हो जाता है और स्वप्न दोष नही होता तो यहा भी मन को आश्वासन मिला है। मन को अन्य उपाय से भी शान्त किया जाता है यथा योग-साधना-जप आदि। तो उसमे मन पवित्रता की ओर चला आयेगा और काम सम्बन्धी विचार भी नही आयेगा और स्वप्नजन्य वीर्य स्राव नही होगा।

अत स्वप्नदोष को रोग मानना जरूरी नहीं है। उसको केवल मन द्वारा काम सम्बन्धी अतृप्त इच्छा जन्य स्वप्न में होती परिपूर्णता स्वरूप विकृति माननी जरूरी होगी।

कुछ वाजीकरण औषधि योग



- विदारीकन्द के चूर्ण मे विदारीकन्द के स्वरस की भावना देकर इस चूर्ण में असमान मात्रा मे घी तथा शहद मिलाकर रात्रि को दें तथा ऊपर से यथेष्ठ दूध पिलायें।
- कोंच बीज का छिलका उतार कर कपडछन चूर्ण ५ ग्राम सुबह शाम दूध के साथ लें।
- उटिङ्गन को दूध मे पका उसका छिलका निकाल दें तथा सुखाकर चूर्ण करलें। यह चूर्ण सुबह शाम मिश्री के साथ फाककर ऊपर से दूध पीवें।
- कौंच बीज, काकडा सिंगी, मुलेठी समान भाग का चूर्ण ३-३ मासे सुबह शाम धारोष्ण दूध के साथ पीवें।
- सफेद घु घची, कौंच बीज तथा गोखरू के चूर्ण मे मिश्री मिला दूध डालकर पाक कर अवलेह जैसा बनालें। इसको नियमित सेवन करें।

—वैद्य श्री धीरेन्द्र बी० त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य
५१-शिवशक्ति सोसाइटी, नेत्र अस्पताल के सामने
हाथ सण्डी रोड, सावर-कुण्डला (भावनगर) गुजरात

मीरा प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ के आदेश से प्रतिमा प्रिन्टर्स, अलीगढ़ में मुद्रित।